भगवान महावीर पच्चीस-सौवें निर्वाण-महोत्सव समारोह
के उपलक्ष्य मे

प्रकाशक
श्री मरुधरकेशरी साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर-ब्यावर

प्रेरक : श्री रजत मुनि
सपादक :
श्री सुकन मुनि

प्रथम आवृत्ति
वि०स० २०३० आषाढीपूर्णिमा

मुद्रणव्यवस्था
सजय साहित्य सगम, आगरा-२
मुद्रक
रामनारायन मेडतवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२

मूल्य : आठ रुपये मात्र

अभिनन्दन

'प्रवचन सुधा'

(मनहर छंद)

मिटाने को मोह माया, जग-जाल जलाने को
श्रीखण्ड - सी प्रवचन-सुधा सुधा सम है।
प्रमत्त न दमो दीह, मान खुला तोल देती
वर रूप सिद्धि देनी, मोक्ष ही के सम है।
चमकते भाव-उडु, ज्योति को जगावे नित
नही होती भव भीर ज्ञान भी न कम है।
सुनि सुठि भाव मरुधर केशरी के मित,
धाम धाम पहुचाना, 'सुकन' सुगम है।

× × ×

(हरिगीतिका)

प्रवचन-सुधा का पात्र पाठक ! ज्ञान से भरपूर है।
आत्म - भाव प्रबोध करता, तम हटाता दूर है।।
पढलो समझलो कार्य मे, परिणत 'सुकन' कर लो जरा।
मोक्षगामी हो अवश्य, उपदेश है सच्चा खरा।। १ ।।

प्रकाशकीय

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आँख है। यह आँख जन्म से नही, किन्तु अभ्यास और साधना के द्वारा जागृत होती है। कहना नही होगा, इस दिव्य नेत्र को जागृत करने मे सद्‌गुरु का सहयोग अत्यन्त अपेक्षित है। सद्‌गुरु ही हमारे इस दिव्य चक्षु को उद्‌घाटित कर सकते हैं। उनके दर्शन, सत्सग, उपदेश और प्रवचन इसमे अत्यन्त सहायक होते हैं। इसलिए सद्‌गुरुओ के प्रवचन सुनने और उस पर मनन करने की आज बहुत आवश्यकता है।

बहुत से व्यक्ति सद्‌गुरुदेव के प्रवचन सुनने को उत्सुक होते हुए भी वे सुन नही पाते। चूकि वे सुदूर क्षेत्रो मे रहते हैं, जहा सद्‌गुरुजनो का चरण-स्पर्श मिलना भी कठिन होता है।

ऐसी स्थिति में प्रवचन को साहित्य का रूप देकर उनके हाथो मे पहुचाना और भगवद्‌वाणी का रसास्वादन करवाना एक उपयोगी कार्य होता है। ऐसे प्रयत्न हजारो वर्षों से होते भी आये हैं। इसी शुभ परम्परा मे हमारा यह प्रयत्न है श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन साहित्य को व्यवस्थित करके प्रकाशित कर जन-जन के हाथो मे पहुँचाना।

यह सर्वविदित है कि श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन बडे ही सरस, मधुर, साथ ही हृदय को आन्दोलित करने वाले, कर्तव्यबुद्धि को जगाने वाले और मीठी चोट करने वाले होते है।

उनके प्रवचनो मे सामयिक समस्याओ पर और जीवन की पेचीदी गुत्थियो पर बड़ा ही विचारपूर्ण समाधान छिपा रहता है, साथ ही उनमे बड़ा चुटीलापन और रोचकता भी रहती है, जो श्रोता और पाठक को चुम्बक की भाँति अपनी ओर खीचे रखते हैं। इसलिए हमे विश्वास है कि यह प्रवचन साहित्य पाठको को रुचिकर और मनोहर लगेगा।

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति के द्वारा मुनिश्री जी का कुछ महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित किया गया है, और अभी बहुत सा साहित्य, कविताएँ, प्रवचन आदि अप्रकाशित ही पड़ा है। हम इस दिशा मे प्रयत्नशील है कि यह जनोपयोगी साहित्य शीघ्र ही सुन्दर और मनभावने रूप मे प्रकाशित होकर पाठको के हाथो मे पहुचे।

इन प्रवचनो का सपादन मुनिश्री के विद्याविनोदी शिष्य श्री सुकन मुनि जी के निर्देशन मे किया गया है। अत मुनिश्री का तथा अन्य सहयोगी विद्वानो का हम हृदय से आभार मानते है।

पुस्तक को मुद्रण आदि की दृष्टि से आधुनिक साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करने मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' का हार्दिक सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, जिसे भुलाया नही जा सकता।

अब यह पुस्तक पाठको के हाथो मे प्रस्तुत है– इसी आशा के साथ कि वे इसके स्वाध्याय से अधिकाधिक लाभ उठायेगे।

—पुखराज सिशोदिया
अध्यक्ष
श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति

दो शब्द

साधारण मनुष्य की वाणी 'वचन' कहलाती है, किन्तु किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तक की वाणी 'प्रवचन' होती है। उसकी वाणी मे एक विशिष्ट बल, प्रेरणा और दिव्यता-भव्यता का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर बिजली की भाति आन्दोलित करने की क्षमता उस वाणी मे होती है।

प्रवचन-सुधा के प्रवचन पढते समय पाठक को कुछ ऐसा ही अनुभव होगा इन प्रवचनो मे जितनी सरलता और सहजता है, उतना ही चुटीलापन और हृदय को उद्बोधित करने की तीव्रता भी है। मुनिश्री की वाणी बिल्कुल सहज रूप मे नदी प्रवाह की भाँति बहती हुई सी लगती है, उसमे न कृत्रिमता है, न घुमाव है और न व्यर्थ का शब्दो का उफान ! ऐसा लगता है, जैसे पाठक स्वय वक्ता के सामने खडा है, और साक्षात् उसकी वाणी सुन रहा है प्रवचनो की इतनी सहजता, स्वाभाविकता और हृदय-स्पर्शिता बहुत कम प्रवक्ताओ मे मिलती है।

इन प्रवचनो मे जीवन के विविध पक्षो पर, विभिन्न समस्याओ पर मुनिश्री ने बडे ही व्यावहारिक और सहजगम्य ढग से अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। कही-कही विषय को ऐतिहासिक एव तुलनात्मक दृष्टि से व्यापक बनाकर उसकी गहराई तक श्रोताओ को ले जाने का प्रयत्न भी किया गया है। इससे प्रवचनकार की बहुश्रुतता, और सूक्ष्म-प्रतिभा का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमलजी सचमुच 'मिश्री' की भांति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक हैं। उनके नाम के पूर्व 'मरुधरकेसरी' और कभी-कभी 'कनकमिश्री' विशेषणों का भी प्रयोग होता है—यह विशेषण उनके व्यक्तित्व के बाह्य-आभ्यन्तर रूप को दर्शाते हैं।

मिश्री—की दो विशेषताएँ है, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही मुह मे पानी छूट जाता है। किन्तु उसका बाह्य आकार बड़ा कठोर है, यदि ढेले की तरह उसको फेंककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शब्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन मे नही है?

उनका हृदय बहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दुखी व सतप्त देखकर मोम की भांति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे बद कर लेने से जैसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दुखी देखकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते है, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त से उसे आशीर्वाद देने तत्पर हो जाते है। जीव दया, मानव-सेवा, साधर्मिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है!

उनका दूसरा रूप है—कठोरता! समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी भ्रष्टाचार देखते है, अनुशासनहीनता और साम्प्रदायिक द्वन्द्व, झगड़े देखते है तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते हैं। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे उन दुर्गुणो व बुराइयो को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर खड़े हो जाते है। समाज मे जहा-तहा साम्प्रदायिक तनाव, विरोध और आपस के झगड़े होते है—वहा प्राय मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो की कड़ी चोट पड़ती है, और वे उनका अन्त करके ही दम लेते है।

लगभग अस्सी वर्ष के महास्थविर मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज के हृदय मे समाज व सघ की उन्नति, अभ्युदय और एकता व सगठन की तीव्र तड़प है।

दो शब्द

साधारण मनुष्य की वाणी 'वचन' कहलाती है, किन्तु किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तक की वाणी 'प्रवचन' होती है। उसकी वाणी मे एक विशिष्ट बल, प्रेरणा और दिव्यता-भव्यता का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर बिजली की भाति आन्दोलित करने की क्षमता उस वाणी मे होती है।

प्रवचन-सुधा के प्रवचन पढते समय पाठक को कुछ ऐसा ही अनुभव होगा इन प्रवचनो मे जितनी सरलता और सहजता है, उतना ही चुटीलापन और हृदय को उद्बोधित करने की तीव्रता भी है। मुनिश्री की वाणी बिलकुल सहज रूप मे नदी प्रवाह की भाँति वहती हुई सी लगती है, उसमे न कृत्रिमता है, न घुमाव है और न व्यर्थ का शब्दो का उफान ! ऐसा लगता है, जैसे पाठक स्वय वक्ता के सामने खडा है, और साक्षात् उसकी वाणी सुन रहा है प्रवचनो की इतनी सहजता, स्वाभाविकता और हृदय-स्पर्शिता बहुत कम प्रवक्ताओ मे मिलती है।

इन प्रवचनो मे जीवन के विविध पक्षो पर, विभिन्न समस्याओ पर मुनिश्री ने बडे ही व्यावहारिक और सहजगम्य ढग से अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। कही-कही विषय को ऐतिहासिक एव तुलनात्मक दृष्टि से व्यापक बनाकर उसकी गहराई तक श्रोताओ को ले जाने का प्रयत्न भी किया गया है। इससे प्रवचनकार की बहुश्रुतता, और सूक्ष्म-प्रतिभा का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमलजी सचमुच 'मिश्री' की भाति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक हैं। उनके नाम के पूर्व 'मरुधरकेसरी' और कही-कही 'कडकमिश्री' विशेषणो का भी प्रयोग होता है—यह विशेषण उनके व्यक्तित्व के वाह्य-आभ्यन्तर रूप को दर्शाते हैं।

मिश्री—की दो विशेषताएँ है, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही मुह मे पानी छूट जाता है। किन्तु उसका वाह्य आकार वडा कठोर है यदि ढले की तरह उसको फेंककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शब्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन मे नहीं हैं?

उनका हृदय वहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दुखी व सतप्त देखकर मोम की भाँति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे वद कर लेने से जैसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दुखी देखकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते है, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त से उसे आशीर्वाद देने तत्पर हो जाते हैं। जीव दया, मानव-सेवा, साधर्मिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है।

उनका दूसरा रूप है—कठोरता। समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी भ्रष्टाचार देखते हैं, अनुशासनहीनता और साम्प्रदायिक द्वन्द्व, झगडे देखते है तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते हैं। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे उन दुर्गुणो व वुराइयो को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर खडे हो जाते हैं। समाज मे जहा-तहा साप्रदायिक तनाव, विरोध और आपस के झगडे होते हैं—वहा प्राय मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो की कडी चोट पडती है, और वे उनका अन्त करके ही दम लेते हैं।

लगभग अस्सी वर्ष के महास्थविर मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज के हृदय मे समाज व सघ की उन्नति, अभ्युदय और एकता व सगठन की तीव्र तडप है।

एकता व सगठन के क्षेत्र मे वे एक महत्वपूर्ण कडी की भाँति स्थानकवासी श्रमण सघ मे सदा-सदा से सन्माननीय रहे है। समाज सेवा के क्षेत्र मे उनका देय बहुत बडा है। राजस्थान के अचलो मे गाव-गाव मे फैले शिक्षाकेन्द्र, ज्ञानभडार, वाचनालय, उद्योगमन्दिर, व धार्मिकसाधना केन्द्र उनके तेजस्वी कृतित्व के बोलते चित्र है। विभिन्न क्षेत्रो मे काम करनेवाली लगभग ३५ सस्थाएँ उनकी सद्प्रेरणाओ से आज भी चल रही है, अनेक सस्थाओ, साहित्यिको, मुनिवरो व विद्वानो को उनका वरद आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। वे अपने आप मे व्यक्ति नही, एक संस्था की तरह विकासोन्मुखी प्रवृत्तियो के केन्द्र है।

मुनिश्री आशुकवि है। उनकी कविताओ मे वीररस की प्रधानता रहती है, किन्तु वीरता के साथ-साथ विरक्ति, तपस्या और सेवा की प्रबल तरगे भी उनके काव्य-सरोवर मे उठ-उठ कर जन-जीवन को प्रेरणा देती रही है।

श्री मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो का विशाल साहित्य सकलित किया पडा है, उसमे से अभी बहुत कम प्रवचन ही प्रकाश मे आये है। इन प्रवचनो को साहित्यिक रूप देने मे तपस्वी कविरत्न श्रीरूपचन्द जी म० 'रजत' का बहुत बडा योगदान रहा है। उनकी अन्तर् इच्छा है कि मरुधर केसरी जी म० का सम्पूर्ण प्रवचन साहित्य एक माला के रूप मे सुन्दर, रुचिकर और नयनाभिराम ढग से पाठको के हाथो मे पहुचे। श्री 'रजत' मुनि जी की यह भावना साकार होगी तो अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण कृतिया हमे प्राप्त हो सकेगी। विद्याप्रेमी श्री सुकन मुनिजी की प्रेरणाओ से इन प्रवचनो का सपादन एव प्रकाशन शीघ्र ही गति पर आया है, और आशा है भविष्य मे भी आता रहेगा।

मुझे विश्वास है, प्रवचन-सुधा के पाठक एक नई प्रेरणा और कर्तव्य की स्फूर्ति प्राप्त कर कृतार्थता अनुभव करेंगे।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अनुक्रमणिका

● ●

प्रवचन-सुधा

१ | देव तू ही, महादेव तू ही

संसार में प्रत्येक वस्तु का प्रतिपक्ष अवश्य है। देखो—अमृत का प्रतिपक्षी विष है, धूप की प्रतिपक्षी छाया है, लाभ की प्रतिपक्षी हानि है, यश का प्रतिपक्षी अपयश है और सम्पन्नता की प्रतिपक्षी दरिद्रता है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के भी प्रतिपक्षी जानना चाहिए। इन प्रतिपक्षियों की संसार में सर्वत्र घुड़-दौड़ चल रही है। कभी यदि एक का वेग बढ़ता है तो कभी दूसरे का वेग बढ़ता है। जब जिसका वेग जोरदार होता है, तब वह अपने प्रतिपक्षी को दबा देता है। यदि अन्धड़ आकाश में अधिक छा जाता है, तो तावड़ा कम हो जाता है। यदि पुण्यवानी का उदय प्रबल होता है तो दरिद्रता घट जाती है और यदि पाप का तीव्र उदय होता है तो दरिद्रता आ घेरती है। इसलिए कवि कहता है कि—

रवि उगते कुमति-घटा विलायी सुमति आई।

अर्थात्—सूर्य का उदय होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। यहां तक कि जहां पर सूर्य की किरणें नहीं पहुंच पाती है, ऐसे तंग घर गुफा आदि में भी इतना प्रकाश पहुंच ही जाता है, कि वहां पर रहने वाले मनुष्य को भी सूर्य के उदय का आभास हो ही जाता है। और भी कहा है—

तारों की ज्योति से चांद छिपे नहिं, सूर्य छिपे नहिं बादल छाया,
जग जुरे रजपूत छिपे नहिं, दाता छिपे नहिं मांग न आया।
चंचल नारि के नैन छिपे नहीं, नीच छिपे नहीं ऊंच पद आया,
जोगी के भेष अनेक करें, पर कर्म छिपे न भभूति लगाया॥

शास्त्रो मे बताया गया है कि ६६९७५ कोडाकोडी तारे है। परन्तु उनसे क्या चन्द्र छिपता है ? नही छिपता। चन्द्र के प्रकाश के सामने वे सब टिम-टिमाते दृष्टि गोचर होते है। आकाश मे मेघ घटा कितनी भी छा जाय, परन्तु सूर्य का अस्तित्व नही छिपता है। यदि युद्ध की भेरी बजाने लगे तो असली राजपूत चुपचाप ठहर नही सकता है, वह तुरन्त तैयार होकर और शस्त्रास्त्र ले कर युद्ध के मैदान मे जा पहुचेगा। ऐसे समय उसका क्षत्रियत्व छिप नही सकता है। यदि याचक जन द्वार पर आकर याचना करे, तो दाता भी छिपता नही है। उसके कानो मे याचक के शब्द पहुचे नही, कि वह तुरन्त आकर उस याचक की इच्छा पूरी करेगा। जिस स्त्री ने लज्जा और शील को जलाञ्जलि दे दी और कुलीनता को पलीता लगा दिया। ऐसी चचल मनो-वृत्ति वाली स्त्री भी छिपाए नही छिपेगी, उसके चचल नेत्र उसके हृदय की चचलता को प्रकट कर ही देगे। कोई नीच व्यक्ति यदि कितने ही ऊँचे पद पर जाकर के बैठ जाय, परन्तु उसकी नीचता भी छिपी नही रहेगी। इसी प्रकार यदि कोई बदमाश या दुराचारी मनुष्य शरीर मे भस्म लगा कर साधु का भेष भी धारण कर लेवे, परन्तु उसके भी कर्म छिपाये नही छिपेंगे। किन्तु जो सच्चे साधु है, जिन्होने ससार, देह और भोगो से विरक्त होकर साधुपना अगीकार किया है, उनके पास बाहिर मे कुछ भी नही होते हुए भी अन्तरग मे ऐसी शक्ति प्रगट होती है कि वह भी छिपाये नही छिपती है। वह जिधर से भी निकल जाता है, उसके त्याग और तपस्या का प्रभाव सब लोगो पर अपने आप पडता है और राजा-महाराजा लोग स्वय आकर उसके चरणो मे नम्रीभूत होते है। इसका कारण यह है कि उसके त्याग से प्रति समय उत्तम भाग्य का निर्माण हो रहा है और पुरातन पाप कर्म निर्जीण हो रहे हैं। जिसका हृदय शुद्ध है, वह स्वय भी आनन्द का उपयोग करता है और दूसरो को भी आनन्द प्रदान करता है। ऐसा साधु जहा भी जाता है, उसके प्रभाव से लोगो का अज्ञान-अन्धकार स्वय ही दूर होने लगता है। ऐसे ही गुरुजनो के लिए ससार नमस्कार करता है। जैसा कि कहा है -

> **अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।**
> **चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनम ॥**

अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे बने पुरुषो के नेत्र जिसने अपने ज्ञान रूपी अजनशलाका से खोल दिए है, उस श्री गुरुदेव के लिए नमस्कार हो।

गुरु की महिमा

भाई, गुरु का माहात्म्य भी तभी तक है, जब तक कि वह निर्लोभी है, विषय-कषाय से दूर है। और जहा उसमे किसी भी दोष का सचार हुआ कि उसका सारा माहात्म्य समाप्त हो जाता है। जज की—न्यायाधीश की प्रतिष्ठा तब तक ही है, जब तक कि वह निर्लोभवृत्ति से अपना निर्णय देता है। और जहा उसमे लोभ ने प्रवेश किया, और रिश्वत लेना प्रारम्भ किया, वही उसकी सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। लोभ आने के पश्चात् ज्योतिषी का ज्ञान, मत्रवादी का मत्र-प्रयोग, चिकित्सक की चिकित्सा और पचो की पचायत भी समाप्त होते देर नही लगती है।

किन्तु जिस व्यक्ति मे स्वाभिमान है, वह अपने पद का विचार करता है अत वह ऐसा कोई भी काम नही करता है, जिससे कि उसके पदकी प्रतिष्ठा मे आघात पहुचे। स्वाभिमानी या मनस्वी व्यक्ति के पास धन, परिवार, बल, बुद्धि आदि सब कुछ होते हुए भी वह विचारता है कि यह सब मेरा कुछ भी नही है। ये सब तो पुण्यवानी से प्राप्त वस्तुएँ है। जिस समय पुण्यवानी समाप्त हो जायगी उसी समय इन सब के भी समाप्त होने मे देर नही लगेगी। मेरा ज्ञानानन्दमयी स्वभाव सदा मेरे पास है। फिर मैं उसका स्वाभिमान न करके उन पर वस्तुओ का अभिमान क्यो करूँ जो कि क्षणभगुर है। इस प्रकार वह ससार की किसी भी वस्तु का अहकार नही करता है।

भाइयो, एक सूर्य का उदय होने पर सारे ससार के अन्धकार का नाश हो जाता है। दुनिया के जितने भी कार्य है, वे सब सूर्य के पीछे ही है। सूर्य के उदय होने पर ही किसान किसानी को, व्यापारी व्यापार को, मजदूर मजदूरी को और दानी दान को भलीभाति सम्पन्न करता है। यह अन्धकार भी एक प्रकार का नही है, किन्तु अनेक प्रकार का है। आलस्य और प्रमाद भी सूर्य से दूर होता है। पूर्व समय मे लोग जन्म-मरण और परण (विवाह) आदि मे सूर्य, चन्द्र की साक्षी देते थे। दान भी दिन मे ही दिया जाता था, विवाह भी दिन मे ही होते थे और मन सम्मान के समारोह भी दिन मे ही होते थे। परन्तु आज तो किसी भी बात की मर्यादा नही रही है। ससार मे सभी दुर्गुण एक कुमति के पीछे चलते है और सभी सद्गुण एक सुमति के पीछे चलते है। सद्गुरु की शिक्षा के प्राप्त होते ही सभी गुण स्वयमेव प्राप्त होने लगते है। किन्तु गुरु भक्ति के बिना कुछ भी नही है। सदाचार का सचार इस प्रकार गुरु भक्ति के होने पर ही होता है। अत कहा गया है कि—

गुरोभक्ति गुंरो भक्ति गुंरोभक्तिः सदाऽस्तु मे।
चारित्रमेव ससार-वारण मोक्षकारणम् ॥

मेरे हृदय मे गुरु के प्रति भक्ति सदा ही वनी रहे, सदा ही वनी रहे। क्योकि उनके प्रताप और प्रसाद से ही भव्यजीवो के हृदय मे चारित्र का भाव जागृत होता है। और यह चारित्र ही ससार का निवारण करनेवाला है और मोक्ष का कारण है।

लोग कहते है कि अरिहन्त, सिद्ध वडे है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश वडे है। परन्तु उनका यह वडप्पन किसने वताया क्या ? हमने उनको देखा है ? या उनसे वातचीत की है ? उनके गुणो को किसने वताया ? अरिहन्त और सिद्ध की पहिचान किसने वतलायी ? पच परमेष्ठियो के गुण किसने वतलाये ? सवका उत्तर यही है कि गुरु के प्रसाद से ही यह सव जानकारी प्राप्त हुई है। यदि गुरु न होते तो ससार मे सर्वत्र अन्धकार ही दृष्टिगोचर होता। इसलिए सवसे वडा पद गुरु का ही है। इसी कारण से श्री दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है कि—

जस्सतिए धम्मपयाइ सिक्खे तस्सतिए वेणइय पउजे।
सक्कारए तस्सण पचएण काएण वाया मणसावि णिच्च ॥

अर्थात् जिसके समीप धर्म के पदो को सीखे उसका सदा विनय करना चाहिए, उसको पचाग नमस्कार करे और मन, वचन काया से उसका नित्य सत्कार करे।

तीर्थंकर जैसे महापुरुप भी पूर्व भव मे गुरु के प्रसाद से दर्शन-विशुद्धि आदि वीस वोलो की आराधना करके तीर्थकर नाम गोत्र का वन्ध करते हैं। पुन. तीर्थकर बनकर जगत का उद्धार करते हुए मोक्ष को प्राप्त करते है। यह सव गुरुभक्ति का प्रसाद है। भाई, गुरु के विना ज्ञान प्राप्त नही होता है।

लोभ छोड़िए

मनुष्य को अपनी उन्नति करने के लिए आवश्यक है कि वह लोभ का परित्याग करे। धन के लोभ को ही लोभ नही कहते है, अपि तु मान-प्रतिष्ठा का मोह भी लोभ कहलाता है। परिवार की वृद्धि का लोभ भी लोभ है और किसी भी प्रकार की सग्रह-वृत्ति या लालसा को भी लोभ ही कहते है। मनुष्यो को शरीर का भी लोभ होता है कि यदि हम तपस्या करेगे तो हमारा शरीर दुर्बल हो जायगा। भाई लोभ को पाप का बाप कहा जाता है। यह लोभ सर्व अवगुणो का भडार है। और भी कहा है कि **'लोहो सव्व विणासणो'** अर्थात् लोभ सर्व गुणो का विनाशक है। लोभ से, इस परिग्रह के सचय की वृत्ति से मनुष्य क्या क्या अनर्थ नही करता है। किसी ने ठीक कहा है कि—

बेटा मारे बाप को, नारि हने भरतार।
इस परिग्रह के कारणे, अनरथ हुए अपार ॥

भाई, संसार में यदि देखा जाय तो बाप और बेटे का सम्बन्ध सबसे बड़ा है। परन्तु लोभ के वशीभूत होकर बेटा बाप को मार देता है और बाप बेटे को मार देता है। पति अपनी पत्नी को और पत्नी अपने पति को मार देती है। इस प्रकार संसार में इस परिग्रह के कारण आज तक अपार अनर्थ हुए हैं।

और भी देखो—प्रातः काल चार बजे से लेकर रात्रि के १० बजे तक एक नौकर जो मालिक की अनेक प्रकार की बातें सुनता है, गालियों को सहन करता है, उसके साथ देश-विदेश में जाता है और नाना प्रकार के संकटों को उठाता है, वह सब लोभ के पीछे ही तो है। यह भौतिक मकान तो लोहे-पाषाण के खंभों के आधार पर ठहरता है। परन्तु लोभ का महल बिना खंभों के अधर ही आकाश में निर्मित होता है। मनुष्य आकाश का पार भले ही पा लेवे, परन्तु लोभ के पार को कोई नहीं पा सकता है। अन्याय, छल, छिद्र, कपट और धोखा आदि यह सब कुछ लोभ ही कराता है।

किन्तु जिसने अपने आत्मा के पद को पहिचान लिया कि मैं तो सत् चिद्-आनन्दमय हूं, वह फिर इन भौतिक पर पदार्थों का अभिमान नहीं करता है। वह सोचता है कि मेरा पद तो सर्वोपरि है, उसके सामने संसार के बड़े से बड़े भौतिक पद भी तुच्छ हैं—नगण्य हैं, ऐसा समझ कर वह किसी भी सांसारिक वस्तु का अभिमान नहीं करता है। यहां तक कि वह फिर अपनी जाति का, कुल का, विद्या का, धन का और शरीर-सौंदर्य आदि का भी अभिमान नहीं करता है।

स्वभाव क्यों [illegible] ?

एक बार एक भाई एक महात्मा के पास पहुंचा और उनसे [illegible] - महाराज मुझे दुःख क्यों होता है, भय क्यों लगता है और नाना [illegible] चिन्ताएं क्यों सताती हैं ? इसका क्या कारण है ? कोई [illegible] जिससे मैं इन सबसे विमुक्त हो जाऊं ? और [illegible] आ जाय ? महात्मा ने कहा—देख, मैं एक उपाय [illegible] पर अमल करेगा तो अवश्य शान्ति को प्राप्त होगा। [illegible] तो मैं हूं, और मेरे से बढ़कर संसार में [illegible] मानता है, ऐसा दूसरा कोई नहीं [illegible] फिर तुझे कोई चिन्ता नहीं [illegible]। [illegible]

हृदय मे धारण कर ली और तदनुसार प्रवृत्ति करने लगा। अव इस के पश्चात् यदि कोई उसे कुछ भला-बुरा कहता, तो वह उसके कहने को बुरा नही मानता। प्रत्युत यह सोचता है कि मुझ से बढकर कोई दूसरा बुरा नही है और मुझसे बढकर कोई भला भी नही है। मैं तो सदा सत्-चिद्-आनन्दमय हू। मेरे भीतर जो चिन्ता, भय, आशा और लोभादिक दुर्गुण थे, वे सब गुरुदेव की कृपा से निकल गये है। अब वह किसी की निंदा भी नही करता है और सबसे हसकर बोलता है। यदि कोई उसकी निन्दा भी करता है तो भी वह उससे हसकर ही बोलता है। उसके इस परिवर्तन से उसका यश सर्व और फैल गया और सब लोग कहने लगे कि अरे, यह तो गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी महात्मा बन गया है। अब सभी लोग उसे बहुत भला आदमी मानने लगे।

भाई, ससार मे कुछ ऐसे भी लोग होते है, जिन्हे दूसरो का उत्कर्ष, यश या बडप्पन सहन नही होता है। उसके पडोस मे भी एक ऐसा ही व्यक्ति रहता था। उसे इसका यश सहन नही हुआ और उसने प्रतिदिन प्रातःकाल अपने घर का कूडा-कचरा उसके घर के आगे डालना प्रारम्भ कर दिया। वह बिना कुछ कहे उसे उठाकर कचरा-घर मे फेंक आता। यह देख उसकी स्त्री कहने लगी— आप उस कचरा डालनेवाले से कुछ भी नही कहते है? पर वह उत्तर देता, यदि वह अपना स्वभाव नही छोडता है, तो मैं क्यो अपना स्वभाव छोडू? अपना कचरा उठाकर कूडा-घर मे डालना ही पडता है, फिर जरा-सा और उठाकर डाल देने मे क्या कष्ट है? फिर जिस चबूतरी पर वह कचरा डालता है, वह तो पत्थर की बनी है। वह मेरी आत्मा पर तो नही डाल सकता है। इसलिए अपन को समभाव मे रहना चाहिए। दुनिया की जैसी मर्जी हो, वह वैसी करती रहे। उससे अपना क्या बनता—बिगडता है। इसप्रकार इस व्यक्ति ने स्त्री को समझाकर शान्त कर दिया और स्वय भी शान्ति मे रहने लगा।

धीरे-धीरे उस पडौसी की हरकतें दिन पर दिन बढने लगी। अब वह मकान के भीतर भी अपना कचरा डालने लगा। उसके ग्राहको को भडकाने लगा और उसकी बदनामी भी करने लगा। परन्तु वह शान्तिपूर्वक इन सब बातो को सहन करता रहता और अपने गुरुदेव के द्वारा दिये हुए मत्र का पालन करता हुआ अपने मे मस्त रहता। इस प्रकार दोनो अपने-अपने स्वभाव से काम करते रहे और पाच वर्ष बीत गये। सब नगर-निवासी कहने लगे कि देखो—यह पडौसी कितना नीच है जो वर्षों से उसके घर पर कचरा फेंकता चला आरहा है और इसे तग करता रहता है। परन्तु वह लोगो को मना कर

देता कि भाई उनके कूड़ा कचरा फेंकने से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ता है। मैं तो जैसा हूं, वैसा ही हूं। मेरे हाथ, नाक, कान, जीभ आंख और हाथ-पैरो मे कोई कमी या कसर थोड़े ही पड़ती है। कसर तो शोक, चिन्ता और दुःख से पड़ती है। सो यह सब गुरु महाराज ने दूर कर दी है। अब मुझे दुःख का क्या काम है? पड़ोसी भी उसकी और उसकी स्त्री की यह शान्ति देखकर आश्चर्य करता है, परन्तु अपनी हरकत से बाज नहीं आता है।

एक दिन नगर के बाहिर महादेव जी का मेला था। पड़ोसी ने स्नानकर बढ़िया कपड़े पहिने और एक नई मटकी मे मल-मूत्रादि भर कर उसे ढक्कन ऊपर से बांध दिया और उसके ऊपर एक शाल रखकर और हाथ मे छड़ी लेकर घर से बाहिर निकला। इसी समय वह भला आदमी भी मेले मे जाने के लिए घर से बाहिर निकला। उसे देखते ही यह दुष्ट बोला—भाई साहब! यदि यह घड़ा आप मेले तक पहुंचा देगे तो बड़ी कृपा होगी। उसने भी हसते हुए वह घड़ा ले लिया और मेले को चल दिया। वह उसके पीछे इस शान से छड़ी घुमाते हुए चल रहा था, मानो यह मालिक है और नौकर मटकी लिए आगे चल रहा है। जब वे दोनो मेले के बीच मे पहुंचे तो उस दुष्ट ने सबके सामने अपनी छड़ी को घुमाकर उस घड़े पर दे मारी। घड़े के फूटते ही उसमे भरी हुई सारी गन्दगी से वह भला आदमी लथ-पथ होगया। फिर भी वह खिल-खिलाकर हसने लगा। यह देख पड़ोसी बोला—भाई, क्यो हसे? वह बोला—भाई, आप जितने भी प्रसग मेरे बुरे के लिए बनाते है। उनसे मेरा बड़ा उपकार हो रहा है। अनेक भवो के सचित ये सब दुष्कर्म आपके निमित्त से उदीर्ण होकर निर्जीर्ण हो रहे है। यदि आप निमित्त न बनते तो पता नही, आगे ये कब उदय मे आते और मै उस समय समभाव से इन कर्मो का उदय सहन भी कर पाता, या नही? आपके सुयोग से मै अभी ही इस कर्म-भार से हलका हो गया हूं। इसलिए आपको लाख-लाख धन्यवाद है। यह सुनते ही वह पड़ोसी उनके चरणो मे पड़ गया और कहने लगा—भाई, मुझे माफ करो। आज तक मैने आपको क्रोधित करने के लिए अनेक प्रयत्न किये और आज तो सबसे अधिक दुर्व्यवहार इस भरे मेले मे आपके साथ किया। परन्तु आपने अपनी अपार शान्ति का परिचय दिया है। आप मे सच्ची मानवता के दर्शन आज मैने किये है। मै अपने अपराधो की सच्चे दिल से क्षमा याचना करता हूं। आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे क्षमा करेगे। आप अपने कपड़े खोल दीजिए, मै अभी बाजार से धोकर लाता हूं और आपको स्नान कराता हूं। उसने कहा—भाई, आज तक आप जो कुछ करते रहे, सो आप तो [illegible] ले। उदय तो मेरे पाप कर्मो का था। मुझे तो इस बात का

दुःख है कि मेरे निमित्त से आज तक आपको इतना सक्लेश उठाना पडा और दुष्कर्मों का वन्ध करना पडा। मेरी ओर से आपके प्रति पूर्ण क्षमा भाव है। रही कपडे धोने की वात, तो अभी शरीर मे इतनी सामर्थ्य है कि यह काम मैं स्वय कर लूंगा। इसके लिए आपको कष्ट उठाने की आवश्यकता नही है। यह सुन पडौसी स्तम्भित-सा रह गया। उस दिन के पश्चात् वह पडौसी उसके नाम की माला प्रात साय काल फेरने लगा और उसका सच्चा भक्त वन गया। सर्व ओर वह उसके गुण-गान करने लगा। उसकी इस भक्ति को देखकर एक देवता ने परीक्षार्थ व्रह्मा का रूप वनाकर नगर के पूर्व की ओर आसन जमाया। सारे नगर-निवासी लोग उसकी वन्दना के लिए गये। मगर यह पडौसी नही गया। वोला—सच्चा व्रह्मा तो मेरे पडौस मे ही रहता है। दूसरे दिन उस देवता ने विष्णु का रूप वनाकर दक्षिण दिशा मे आसन जमाया। सव लोग उसकी वन्दना को गये, मगर यह नही गया। तीसरे दिन उस देवता ने महादेव का रूप वनाकर नगर के पश्चिम मे और चौथे दिन कामदेव का रूप वनाकर नगर के उत्तर मे आसन जमाया। मगर वह कही भी किसी की वन्दना के लिए नही गया और सवसे यही कहता रहा कि सच्चा व्रह्म, विष्णु, महादेव और कामदेव तो मेरा पडौसी ही है। इसके अतिरिक्त कोई वडा मेरे लिए नही है। जिसने सर्व प्रकार के अहकार का परित्याग कर दिया है और जो स्वात्म-निष्ठ है, और स्वाभिमानी है, मैं तो उसे ही हाथ जोडता हू। जो सासारिक प्रपचो मे फस रहे है, जिनके माया-मोह लग रहा है, जो राग-द्वेष से भरे हुए हैं, जिनका मन स्वय अशान्त है, ऐसे व्यक्ति कैसे पूज्य हो सकते है। मैं तो अपने इस पडौसी को उन सवसे वढकर देखता हू, इसलिए मेरा तो यही आराध्य है, पूज्य है और मेरा यही सर्वस्व है। भाई, दूसरे के हृदय का परिवर्तन इस प्रकार किया जाता है और अपने ऊपर विजय इस प्रकार सहन-शील वनकर प्राप्त की जाती है। जिसे अपने आपका भान हो जाता है, वही सच्चा स्वाभिमानी वन सकता है। भौतिक वस्तुओ के अभिमान को तो दर्प, मद या अहकार कहते है। इसलिए मनुष्यो को इन भौतिक वस्तुओ का मद न करके अपने आत्म-गुणो का अभिमान करके उन्हे प्राप्त करने और आगे वढाते रहने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

आपके सामने मीराबाई का उदाहरण उपस्थित है। वह कुडकी के मेडतिये की लडकी और राणा रतनसिंह की रानी थी। उसका पीहर और ससुराल दोनो ही सर्वप्रकार से सम्पन्न थे। उसे आत्म-भान हो गया, तो राणा जी की रुकावट खटकने लगी। राणा ने कहा—देख मीरा, एक म्यान मे दो तलवारे

नहीं रह सकती। मेरे पीछे ही तेरा सारा सुख सौभाग्य है। इसलिए तू इन सांवरी की बातों को छोड़ दे। तब मीरा ने उत्तर दिया—'लिया मैं तो सांवरिया ने मोल राणा' 'सांवरिया' के 'सां' का अर्थ है वह, जो अपना था, उसे 'वरिया' अर्थात् मैंने वर लिया है। जो मेरी वस्तु थी, उसे मैंने वरण कर ली है। अब मेरा ध्यान उसके सिवाय किसी दूसरे की ओर नहीं है। उसके इस उत्तर से रुष्ट होकर राणा ने उसे कितने ही कष्ट दिये। मगर वह रंच मात्र भी अपने ध्येय से चल-विचल नहीं हुई और अपने स्वरूप में मग्न रही। उसका आत्मिक विकास उत्तरोत्तर आगे बढ़ता ही गया और आज सारा भक्त समाज मीरा का पथानुगामी एवं भक्त बन रहा है।

भाइयो, भगवान महावीर ने हमें प्रारम्भ से ही यह शिक्षा दी है कि प्रत्येक आत्मा अपना भला और बुरा करने में स्वतन्त्र है। अतः दूसरा कोई सुख-दुःख देता है, यह भ्रम छोड़कर दूसरे पर इष्ट-अनिष्ट बुद्धि को छोड़कर आत्म-स्वरूप में तू स्थिर रह। अपने को मेरे समान समझ। और जिस मार्ग पर चलकर मैं साधारण आत्मा से परमात्मा बना हूं, तू भी इसी मार्ग को अपना करके आत्मोद्धार कर। दीनवृत्ति को छोड़कर मनस्वी और स्वाभिमानी बन। संसार के सबसे उत्तम गुण तेरे ही भीतर भरे हुए हैं। संसार में देव भी तू ही है महादेव भी तू ही है, संसार की समस्त ऋद्धि और समृद्धि तेरी आत्मा के अन्दर विद्यमान है। इन तम पटलों को दूर करके उसे प्रकट कर। फिर तुझे सर्व ओर आनन्द ही आनन्द दृष्टि गोचर होगा। यह अवसर इस मानव-योनि में ही प्राप्त होता है, अन्य पशु—आदि योनियों में नहीं। अतः इस अवसर से लाभ उठा और अपने ध्येय को प्राप्त करने का पुरुषार्थ स्वाभिमानी बन करके कर।

वि० सं० २०२७ आसोज सुदि ५

जोधपुर

२ नमस्कारमंत्र का प्रभाव

'ओली' यह शब्द आवली का अपभ्र श रूप है। आवली, पक्ति, श्रेणी और परम्परा ये सब एकार्थवाचक शब्द है। सनातन कहे जानेवाले वैदिक धर्म मे ओली का प्रारम्भ आसोजसुदी १ से होता है, इसी को नवरात्रिका प्रारम्भ कहते है। किन्तु जैन सम्प्रदाय मे इस नवरात्रिका प्रारम्भ आसोजसुदी ७ से होता है। जैन धर्म और वैदिक धम ये दो भिन्न-भिन्न ही धर्म हैं। वैदिक धर्म को ही हिन्दु धर्म कहा जाने लगा। जव मुसलमान पश्चिम की ओर से सिन्धु पर आये, तब उन्होने इसका नाम पूछा। वहा पर कोई मारवाडी खडा था। उसने नदी का नाम हिन्दु वताया। क्योकि मारवाड मे आज भी 'स' को 'ह' वोलते है। जैसे—'सत्तरह' को 'हतरह' और 'सोजत' को 'होजत' कहते है। इस प्रकार सिन्धु का नाम 'हिन्दु' वोला जाने लगा और उसके इस ओर के समस्त प्रदेश को हिन्दुस्तान। इसी प्रकार हिन्दुस्तान मे रहनेवालो के धर्म को हिन्दु धर्म कहा जाने लगा ? वैसे इस देश का प्राचीन नाम भारत वर्ष एव आर्यावर्त है। इस देश मे मुख्य रूप से छह दर्शन या मत प्रचलित रहे है—वौद्ध, नैयायिक, साख्य, मीमासक जैन और चार्वाक। इनमे जैनदर्शन एक स्वतत्र दर्शन है। इसका तत्व-विवेचन एव पर्व-मान्यता आदि सभी वाते अन्य मतो से सर्वथा भिन्न है। जैन मतावलम्वियो के दीपावली, अक्षयतृतीया, रक्षावन्धन आदि पर्वों का आधार भी हिन्दुधर्म से सर्वथा भिन्न है।

देवी पूजा के नाम पर

हिन्दुओं की नवरात्रि में दुर्गा के सम्मुख बकरे, भैंसे आदि पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है। हिन्दु लोग भैरव की माता को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की हत्या करते हैं। कितने ही लोग अपनी सन्तान के दीर्घजीवन की आशा से और कितने ही लोग अनेक प्रकार के भयों से संत्रस्त होकर मूक पशुओं की गर्दनों पर खटाखट तलवारें चलाते हैं और खून की धाराएं बहाते हैं। प्रारम्भ में जो आर्य धर्म हिंसा से सर्वथा रहित था, वही पीछे जाकर हिंसामय हो गया। बीच के समय में ब्राह्मणपंथियों का राजा लोगों पर प्रभाव बढ़ा और उन्होंने यह प्रचार किया कि हिंसा से ही शान्ति मिलती है। इस लोक में सन्तान-प्राप्ति के लिए, धनोपार्जन के लिए, तथा परलोक में स्वर्ग पाने के लिए यज्ञ करना आवश्यक है और यज्ञों में बकरे आदि मूक पशुओं का हवन करना जरूरी है। इस प्रकार का उपदेश देकर हिंसामय यज्ञों का उनके पुरोहितों ने भरपूर प्रचार किया। भाई, अच्छी बातें तो दिमाग में बड़ी कठिनाई से जमती हैं। परन्तु बुरी बातों का प्रभाव मनुष्य पर जल्दी होता है। नायों की जाति में गाली जोड़ा देते हैं, तो शाम से लेकर सबेरे तक गीतों का अन्त आता है क्या? नहीं। परन्तु यदि जैन समाज में एक चौबीसी गवाई जाए, तो वह भी शुद्ध नहीं बोल सकेंगे। उसमें अशुद्धियों की भरमार रहेगी। अरे, चौबीसी छोड़ो और सैकड़ों व्यक्तियों को नवकारमन्त्र भी शुद्ध नहीं आता है। इसका कारण यह है कि लोग विषय-कषाय की प्रवृत्तियों से चिर-परिचित हैं। किन्तु धर्म से अभी तक भी—जैनकुल में जन्म लेने पर भी—अपरिचित ही हैं।

वाममार्ग में भी कुण्डापन्थ और कांचलियापन्थ हो गये हैं। कुण्डापन्थियों में पंच मकार के सेवन का भारी प्रचार रहा है। वे पंच मकार हैं—मांस, मदिरा, मद्य, मैथुन और मछली। कांचलियापन्थी कुण्डापन्थियों से भी आगे बढ़ गये। ये लोग अपने सम्प्रदाय की स्त्रियों की कांचलियां (चोलियां) एक घड़े में डालते हैं और फिर लूट मचाते हैं। यदि बेटी की कांचली बाप के हाथ में आ जाय, या माँ की कांचली बेटे के हाथ में आ जाए, तो वह उसके साथ मैथुन सेवन करता है। उनका कहना है कि सच्चा धर्म तो इतना ही मात्र है, क्योंकि हम लोगों ने ममता को छोड़ा, और हम लोग बिना किसी भेद-भाव के परस्पर स्त्रियों का विनिमय करते हैं। वे कहते हैं कि आदान या प्रति-दान तो कन्या का दान करने के समान पुण्य कार्य है।

आज के जमाने में विषय-कषायों के पोषक अनेकानेक और पन्थ प्रचलित हैं। [illegible] है, [illegible] और अहिंसा

को मारते है। जो लोग एक वार धर्म से भ्रष्ट हो गये, वे दूसरो को भी भ्रष्ट करते रहते है। इससे व्यभिचार वढ रहा है और खान-पान भी विगड रहा है। यह सब क्यो हुआ ? क्योकि सनातन सम्प्रदायवालो ने इन कुप्रवृत्तियो का प्रारम्भ होते ही उन्हे दूर करने का प्रयत्न नही किया। जब कोई कुप्रथा एक वार किसी सम्प्रदाय मे घर कर लेती है, तब उसे दूर करना कठिन हो जाता है। यद्यपि अनेक बुद्धिमान सनातनी इन कुप्रवृत्तियो को वुरा कहते है और जीव-घात को महापाप कहते है। परन्तु कहने मात्र से कोई दुष्प्रवृत्ति दूर नही हो सकती। उसके लिए तो जान हथेली पर रखकर प्रचार करना होगा। तव कही वन्द होने की आशा की जा सकेगी।

तप-त्याग का प्रभाव

हा, तो मै कह रहा था कि आज से जैनियो की नवरात्रि प्रारम्भ हो रही है। यहा हिंसा का काम नही है और न किसी प्रकार की अन्य कुप्रवृत्तियो का नामो-निशान है। यहा तो केवल दया का पालन करना है। दया को पालने के लिए इन्द्रियो के विकारो को जीतना पडता है। और वह तव सम्भव है, जवकि त्याग-तपस्या हो। नवरात्रियो मे पहिले सव लोग आयविल करते थे। इन दिनो लोग नीरस, रूखा और अन्‍ना खाते है। वह भी कैसा ? केवल दो द्रव्य लेना, तीसरे का काम नही। यदि गेहू की गूघरी खाली तो खाखरे, चावल और रोटी नही खा सकते। चना लेगे तो केवल उसे ही लेंगे। आज कल तो लोगो ने भगवान के द्वारा वतलाये हुए त्याग प्रत्याख्यानो को तोडमरोडकर रख दिया। अव नाम तो ओलियो का है, परन्तु रोलिया कर रहे है। जैसे गेहू मे रोली लग जाती है, तो वह फिर ठीक रीति से नही पक सकता है। उसी प्रकार आज नाम तो ओलियो का है, परन्तु कहते है कि नीबू-नमक डाल दो। ढोकलिया वनाते है, तथा और भी अनेक प्रकार की खाने की वस्तुए बनाते है और थोडा-थोडा सवका स्वाद लेते है। परन्तु आयबिल तो वही है कि एक अन्न लिया और उसे पानी मे निचोड कर खालिया। इस प्रकार के आयबिल का ही महत्त्व है। इसे ही लूखा एकाशन कहते हैं। इस रीति से यदि इन नवरात्रियो मे नौ आयबिल करलें, तो यह अठाई से भी अधिक तपस्या है। कारण कि अठाई करने से जितनी शक्ति क्षीण नही होती हैं, जितनी कि आयविल करने से होती है। भूखे रहने से शक्ति नष्ट नही होती है, परन्तु नमक नही खाने से बहुत शक्ति नष्ट होती है। भाई, अपनी इन्द्रियो को वश मे करने के लिए जैनियो की ये नवरात्रिया हैं। इन दिनो पच परमेष्ठी के वाचक पाच पद और ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ये चार गुण, इन नौ का जप, ध्यान, स्मरण और चिन्तन किया जाता है।

पंच परमेष्ठियों में पहिला पद अरिहन्त का है, उनका वर्ण लाल कहा गया है। दूसरा पद सिद्ध का है, उनका वर्ण श्वेत है। तीसरा पद आचार्य का है, उनका वर्ण हरा है। चौथा पद उपाध्याय का है, उनका वर्ण पीला है और पांचवां पद साधु का है उनका वर्ण श्याम माना गया है। जिस पद का जैसा वर्ण है वैसे ही वर्ण का आयंबिल किया जाता है। इन पंच परमेष्ठियों के चार गुण हैं—**णमो णाणस्स, णमो दंसणस्स, णमो चरित्तस्स, णमो तवस्स।** इनमें सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को नमस्कार किया गया है। नमस्कार मन्त्र के पांचों पदों में पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है। आचार्यों ने इस नमस्कार मन्त्र का माहात्म्य बतलाते हुए कहा है कि—

एसो पंच णमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

अर्थात् यह पंच नमस्कार मंत्र सर्व पापों का नाश करने वाला है और सब मंगलों में प्रथम मंगल है।

उक्त पंच परमेष्ठी और ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन नव पदों का जाप नौ करोड़ प्रमाण कहा गया है। जिसके पुण्यवानी पोते होवे, वही नौ करोड़ का जाप कर सकता है। यदि पुण्यवानी न हो और कोई जाप करे तो अनेक विघ्न खड़े हो जाते हैं। भाव पूर्वक जाप करने वाले के लिए कहा गया है कि—

'नौ लाख जपता नरक टाले, नौ कोडि जपतां मोक्ष जावे'।

किन्तु भाई, माला हाथ में चलती रहे और नींद लेते हुए कुछ का कुछ जाप करता है, तो उसमें कोई लाभ नहीं है। हां, आयंबिल करो, जप करो और इन पदों के अर्थ-चिन्तन में लीन हो जाओ, तभी जाप का फल प्राप्त होता है।

हां, ग्यारह वर्ष तक द्वारिका का कुछ नहीं बिगड़ा, जब ग्यारह वर्ष, ग्यारह मास और उनतीस दिन निकल गये और अन्तिम दिन आया, तब लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई कि अब इस द्वारिका का क्या बिगड़ सकता है। वे सोचने लगे कि अब कुछ हानि होने वाली नहीं है। कृष्ण महाराज [illegible] है। उस समय द्वारिका में भी [illegible], [illegible] और [illegible] आदि चरम शरीरी अनेक [illegible] थे। परन्तु होनहार तो हो करके ही रहती है। अन्तिम दिन आदमी ने [illegible] नहीं था। [illegible] नहीं थे। [illegible]
[illegible]

द्वारिका पुरी इतने वर्षों तक जो अखडित रही, वह आयबिल का प्रताप था। जो भी व्यक्ति विश्वास-पूर्वक आयविल तप करे और नवकार मत्र का एकाग्र चित्त से जप और ध्यान करे, उसके ऊपर पहिले तो किसी भी प्रकार का विघ्न, उपद्रव और चिन्ता आदि आयेंगे ही नही। यदि कदाचित् पूर्वोपार्जित तीव्र पाप के उदय से आ भी जाय, तो वह नियम से दूर हो जायगा। भाई, एक बार शुद्ध-अन्तकरण से नवपद का स्मरण करो, कोई भी विघ्न-बाधा नही आयगी। यदि जाप करते हुए विघ्न-बाधा आवे, तो समझो कि व्रत-विधान और नव-पद-जाप विधिपूर्वक नही हो रहा है और पुण्यवानी मे भी कसर है। यदि आनेवाले विघ्न टल जायें, तो समझना चाहिए कि दिन-मान अच्छे है—हमारा बेडा पार हो जायगा।

आप लोग प्रतिदिन सुनते है और आपके ध्यान मे भी है कि श्रीपाल और उनके साथियो की क्या स्थिति थी ? वे कैसे सकट मे पडे और अन्त मे किस पद पर पहुचे। भाई, यह सब नवपद के स्मरण का ही प्रताप है। इस नवपद की ओली आती है आसोज सुदी सप्तमी और चैत्र सुदी सप्तमी से। इस नवपद मे क्या रहस्य भरा है, यदि आप शान्ति से सुनने और समझने का प्रयास करे तो आप को वह रहस्य ज्ञात हो जायगा। इस एक सज्झाय मे श्रीपाल का सारा चरित्र गर्भित है और सारी बाते उसमे बता दी गई है। मनकी गति को रोकने के लिए यह 'ओली' बताई गई है। यदि इसे पल्ले बाधोगे, तो यह माल अन्त तक आपके साथ चलेगा। ये दुनियादारी के माल-जिन्हे आप भारी सभाल करके रखते है, वे साथ मे जाने वाले नही हैं। परन्तु नवपद का स्मरण अवश्य साथ मे जायगा। भाई, ऐसा सुवर्ण अवसर आप बार-बार चाहे तो मिलना सभव नही है। इसलिए प्राप्त हुए इस उत्तम अवसर को हाथ से नही निकलने देना चाहिए।

श्रीपालजी को गुरु महाराज ने एक बार ही आदेश दिया कि नौ आय-बिल करो। उन्होने उसे शिरोधार्य कर लिया और विधिवत् नवकार मत्र का साधन किया। वे कोढीपन की दशा मे जगल मे थे, जहाँ पर किसी भी प्रकार की जोगवाई नही थी। परन्तु स्वधर्मी भाई ने वहा पर भी सब सुविधाए जुटा दी। एक-एक ओली मे एक-एक सिद्धि मिलती है। भाई, नौ निधिया है और ये नौ ही ओलियाँ है। ऋद्धि-सिद्धि भी नौ ही है और सनातनियो के अनुसार दुर्गा भी नौ है। जो लोग दुर्गा पाठ करते है, तो उसके भी सात सौ श्लोक है। आपके यहा भी सप्तशती है, उसके भी सात सौ श्लोक है। इस सप्तशती का आप लोग पाठ करे और अपनी पुण्यवानी को बढावे। ये नवसिद्धि रूप

की गायो के लिए प्राण दिये, तभी कहते है रग पानू राठौड। तेजाजी ने गायो की रक्षा की। उनका सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। रास्ते मे काला सर्प मिला, उससे वापिस आने की प्रतिज्ञा की और फिर वापिस वहा पहुचे और उससे कहा कि डक मार। साप ने कहा कि तेरा सारा शरीर तो छिन्न-भिन्न है। मैं कहा डक मारू ? तब तेजाजी ने अपनी जीभ निकाल करके कहा—यह घाव रहित है, इस पर तुम डक मारो। सापने सोचा यह कितना सत्य-वादी और प्रतिज्ञा को निभाने वाला है। अत उसने उसे नही डसा और उससे कहा—यदि किसी व्यक्ति को काला साप काट खायगा, वह जो तेरा नाम ले लेगा तो वह बच जायगा। तेजाजी को यह वरदान कब मिला ? जब उन्होने अपने प्राणो की कोई चिन्ता नही की और अपनी प्रतिज्ञा को निभाया।

आज लोग रामदेवजी का स्मरण करते है। वे कोई द्वारकाधीश नही थे। हम–आप जैसे मनुष्य ही थे। उन्होने गायो की रक्षा की, तभी रामदेवजी बाबा कहलाये और आज देवता के रूप मे पूजे जाते है। महापुरुषो के नाम-स्मरण से बुद्धि निर्मल होती है। आज शान्तिनाथ, नेमिनाथ या पार्श्वनाथ भगवान् यहा नही हैं, वे तो मोक्ष मे विराजमान है और वे किसी का भला-बुरा भी नही करते है। परन्तु उनका नाम लेने से हमारा हृदय शुद्ध होता है, इससे प्राचीन पाप गलता है और नवीन पुण्य बढता है। इस पुण्य से प्रेरित होकर उनके अधिष्ठायक देव हमारा कल्याण कर देते हैं। भाई, यह सब नाम की ही करामात है। वह तभी प्राप्त होगी, जब प्रभु का नाम-स्मरण करोगे। परन्तु हम चाहते हैं कि काम कुछ करना नही पडे और लाभ प्राप्त हो जाय। पर यह कैसे सम्भव है ? जो आज से प्रारम्भ करके आसोजसुदी पूर्णिमा तक नौ दिन उक्त नव पदो का अखण्डित एकाग्र चित्त से ध्यान करते है, उन्हे आगामी बारह मास का शुभाशुभ स्वप्न मे दृष्टिगोचर हो जाता है। यह कोई साधारण बात नही है। एक चमत्कारी बात है। परन्तु आज इस पर लोगो को विश्वास नही है। विश्वास क्यो नही है ? भाई, अति परिचय से आपके मन मे उसका महत्त्व नही रहा।

मेरठ (उ०प्र०) मे एक जैन भाई के पुत्र को सापने काट खाया और वह विप चढ जाने से मूर्च्छित हो गया। अनेक मत्रवादी कालवेलो को बुलाया गया। परन्तु किसी से भी विष नही उतरा। तब निराश होकर एक मुसलमान फकीर को बुलाया गया। उसके झाडा देते ही विष दूर हो गया और लडका उठकर बैठ गया। वे जैनी भाई यह देखकर बडे विस्मित हुए। फकीर के पैर पकड लिए और बोले—विप दूर करने का यह मत्र हमे बतला दीजिए। जब उस भाई ने बहुत हठ किया तो उसने एकात

वन गया है। यह सुनकर राव अति विस्मित होते हुए उसके कमरे मे पहुचे। उन्होने वह फूलमाला उससे मागी, तो उसने उन्हे दे दी। उनके हाथ मे लेते ही वह साप रूप से परिणत हो गई और उसने एक-एक करके तीनो को डस लिया। उसके डसते ही वे तीनो वेहोश होकर भूमि पर गिर पडी और घर मे हाहाकार मच गया। यह सुनते ही उस लडके के पिता-भाई आदि भी दौडे आये, और उस सम्यक्त्वी वाई को कोसने लगे। उसने णमोकार मत्र को जपते हुए उस साप को हाथ मे उठाया, तो वह फूल की माला वन गया। यह देखते ही वे लोग वोले—वाई, आज हम लोगो ने तुझे पहिचान लिया है। हम लोगो के अपराध को क्षमा कर और इन लोगो को जिन्दा कर दे। पति ने भी कहा—श्रीमती, इन्हे जिलाओ। अन्यथा मेरा मुख काला हो जायगा। यह सुनते ही उसने णमोकार मत्र को जपते हुए उस माला को उन मूर्च्छितो के शरीर पर फेरा। माला के फेरते ही वे सव होश मे आगई और हाथ जोड-कर वोली—वीदणीजी, हम लोगो को क्षमा करो। हम तुम्हारे सत्यधर्म से परिचित नही थे। तव श्रीमती ने कहा—मा साहव, इसमे मेरी कोई कला नही है। यह तो नमस्कार मत्र का प्रभाव है। उन लोगो के पूछने पर उसने वह मत्र सवको सिखाया। यह प्रत्यक्ष फल देखने से सवकी मत्र पर श्रद्धा जम गई। पुन उन्होने कहा—कि इस मत्र के जपने की विधि भी वताओ। तव श्रीमती ने कहा—द्वितीया, पचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या के दिन रात्रि-भोजन नही करना होगा, जमीकन्द नही खाना होगा और कच्चा पानी भी नही पीना होगा। तथा प्रतिदिन प्रात सायकाल शरीर शुद्ध करके शुद्ध वस्त्र पहिनकर एकान्त मे बैठकर मौन पूर्वक १०८ वार इसका जाप करना। इस विधि से यदि जाप किया जायगा, तो यह महामत्र सदा सिद्धि प्रदान करेगा। कवि ने कहा है—

श्रीमती लाई पुष्प की माला, कोढ़ गयो रे श्रीपाल को।
जाप जपो रे नवकार को। १
सकल मत्र शिर मुकुट मणी है—साधन है रे निसतार को।
जाप जपो रे नवकार को। २
उदयदान कहै उद्योगी बनके, तिर जावो भव पार को।
जाप जपो रे नवकार को। ३

भाइयो, नमस्कार मत्र का यह थोडा सा माहात्म्य आप लोगो को बताया है। इसके जाप से असख्य प्राणी ससार से पार हो गये और अनेको के भयानक सकट दूर हुए है। यह अनादि मूल मत्र अनादि काल से जगमगाता आया है

३ | जातीय-एकता : एक विचारणा

भाइयो, नीतिकारो ने कहा है कि उत्तम गुणो का समावेश उत्तम पुरुपो मे होता है और दुर्गुणो का समावेश अधम पुरुपो मे होता है। मैं आपसे पूछता हू कि क्या मनुष्य उत्तम और अधम शरीर से कहलाता है, कपडो से, या गहनो से ? इन किसी से भी मनुष्य उत्तम या अधम नही कहलाता है। किन्तु अपने उच्च कृत्यो से उत्तम और नीच कृत्यो से अधम कहलाता है। जो जैसा भला या बुरा कार्य करता है, वह दुनिया उसे वैसा ही कहने लगती है।

आज के बुद्धिवादी युग मे एक ओर तो दुनिया बडे सुधार की ओर जा रही है और दूसरी ओर भारी नुकसान कर रही है। ये दो बाते साथ मे चल रही है। सुधार के विषय मे आज लोग कहते है कि मानव मात्र को एक रूप मे मानो। उनका यह कहना गलत नही है, सत्य है। जब हम एक देश के निवासी है, एक ही आर्य सस्कृति के उपासक हैं और एक धर्म के माननेवाले है, तब हमारे भीतर भेदभाव क्यो होना चाहिए ? अत सब मनुष्यो का एकीकरण आवश्यक है। उनका यह कथन एक दृष्टिकोण से ठीक है। परन्तु दूसरा दृष्टिकोण गलत होता जा रहा है। क्योकि हमारे पूर्वजो ने प्रभ की यह समता वाणी नही सुनी, या उस पर अमल नही किया, यह हम मानने को तैयार नही हैं। वाणी उन्होने भी सुनी है और उस पर अमल भी उन्होने किया है।

होती चली गई। आचार-विचार से गिर गई और खान-पान से भी गिर गई। हिंसादि पापो मे निरत हो गई और सर्व प्रकार के दुर्व्यसन सेवन करने लगी, तब प्रतिवन्ध का उठाना तो दूर रहा, उल्टा उसे कठोर और करना पडा। अब आप लोग स्वय विचार करे कि जब उन लोगो का इतना अधिक पतन हो गया है, तब उनके साथ उच्च आचार-विचार और निर्दोष खान-पान वालो का एकीकरण कैसे किया जा सकता है। ऐसी दशा मे तो उनके साथ एकीकरण करना सारी सामाजिक शुद्धि को समाप्त करना है और उत्तम आचार-विचार वालो को भी हीन आचार-विचार वाला बनाना है। क्योकि ससर्ग से उनके दुर्गुणो का समाज मे और हमारी सन्तान मे प्रवेश होना सहज सभव है।

हरिजन कौन ?

भाई, आज सर्वत्र हरिजन-उद्धार की चर्चा है। 'हरिजन' यह कितना अच्छा नाम है। हरि नाम भगवान का है, उनके जो अनुयायी है, उन्हे हरिजन कहते है। **'हरिजन नर तो तेनें कहिये जे पीर पराई जाने रे'**, यह गान्धीजी का प्रिय भजन रहा है। हरिजन कहो, चाहे वैष्णवजन कहो, एक ही बात है। जो दूसरो की पीर जाने, वह हरिजन है। परन्तु हम देखते है कि जो लोग आज हरिजन कहलाते है, उनमे दया का नामोनिशान भी नही है। बेचारे दीन पशु-पक्षियो को मारना और खाना ही उनका काम है। जीवित सूकरो को लाठियो से निर्दयतापूर्वक मारना और जीवित ही उन्हे आग मे भून कर खाना नित्य का कार्य है। जिन लोगो मे इतना अधिक राक्षसपना आ गया है, पहिले उनके ये दुर्गुण छुडाना आवश्यक है। उनके आचार-विचार का सुधार करो, तब तो सच्चा हरिजन-उद्धार कहा जाय। परन्तु इस ओर तो किसी का ध्यान नही है। उलटे कहते है कि उनके साथ खान-पान करो उन्हे अपने समान समझो। यदि इस प्रकार उनकी बुरी आदतो को छुडाये बिना ही उन्हें अपना लिया गया तो वे फिर क्यो अपने दुर्गुण छोडेगे ? उनके ससर्ग से हमारे भीतर भी वे दुर्गुण आजावेगे। ऐसी दशा मे हरिजन-उद्धार तो नही होगा। हा, हमारा पतन अवश्य हो जाएगा।

कुछ लोगो का कहना है कि जो ऊँची जातिया कहलाती है, उनमे भी तो उक्त दुर्गुण पाये जाते है। भाई, आपका कहना सत्य है। ऐसे लोगो का हम कब समर्थन करते है। जो उच्च-जाति मे जन्म लेने पर भी नीच कार्य करते है, वे तो जन्मजात हरिजनो से भी अधिक निम्न है। उनका सुधार करना भी आवश्यक है। जब सर्दी का प्रकोप होता है और बर्फानी हवाये

गवाशनानां वचनं शृणोत्ययमहं मुनीना वचनं शृणोमि ।
न तस्य दोषो न च मे गुणो वा संसर्गजा दोष-गुणा भवन्ति ॥

अर्थात् हे महाराज, कृपाकर मेरी प्रार्थना सुनिये । हम दोनो अपनी मा के पेट से एक साथ जन्मे हुए दोनो सगे भाई है । वचपन मे ही वहेलियो के द्वारा हम दोनो पकड गये । मैं तो साधु-सन्तो के हाथो मे विका और यह मेरा भाई कसाइयो के हाथो मे विका । मैं साधु-सन्तो की वोली सुनता रहा, सो ये श्लोक आदि याद हो गये है । और मेरा भाई कसाइयो की वोली सुनता रहा, सो, उनके यहाँ जैसा वोलचाल रहा, वह उसे याद हो गया । महाराज, मेरे श्लोक वोलने मे न मेरा कोई गुण है और न उसके वोलने मे कोई दोष है । हम लोग अर्थ-अनर्थ को क्या जाने । जैसा सुना वैसा याद कर लिया । प्राणी मे दोप और गुण भले-वुरे ससर्ग से हो जाते है उस तोते की वात सुनकर उसे वावडी मे फेकने से रोक दिया और जगल मे छुडवा दिया ।

भाइयो, इसके कहने का अभिप्राय यही है कि हमे अपनी सन्तान को बुरे ससर्ग से वचाना चाहिए । आप नहा-धोकर और उत्तम वस्त्र पहिन कर निकले और यदि तेल या घी से चिक्कट जाजम विछी है तो उस पर नही वैठेंगे, क्योकि आप जानते है कि इस पर वैठने से हमारे कपडे खराव हो जायेगे । इसी प्रकार कोई चोर चोरी करके मार्ग मे जा रहा है । आपने आगे-पीछे कुछ विचार न करके उसका साथ पकड लिया इतने मे पीछे से पुलिस आगई, तो वह चोर के साथ क्या आपको नही पकडेगी ? अब आप कहे कि मैंने चोरी नही की है, मैं निर्दोप हू, इस प्रकार आप कितनी अपनी सफाई क्यो न देवे, पर पुलिस नही छोडेगी, क्योकि आप उस चोर के साथ थे ।

जाति-पाति किसलिए

सज्जनो, इस कुसंग का प्रभाव हम पर और हमारी सन्तान पर न पड़े, इसके लिए पूर्वजो ने यह जाति-पाति की दीवाल खडी की थी । अन्यथा उनका कलेजा छोटा नही था । और न उन्हे किसी से घृणा थी । यदि घृणा थी, तो दुर्गुणो से ही घृणा है । आज यदि ये हरिजन अपने दुर्गुणो को छोड दे, तो उनके अपनाने मे हमे कोई आपत्ति नहीं है ।

भाइयो और भी देखो आप सामायिक मे बैठे है और कोई वाई भी सामायिक कर रही है । न आप उसका स्पर्श कर रहे है और न वह आपका स्पर्श कर रही है । यदि किसी कारण-वश एक का से दूसरे सघट्टा हो जाय, तो इसमे किसी जीव की हिसा नही हुई है । परन्तु यह सघट्टा लोक-व्यवहार के विरुद्ध हैं, क्योकि इससे दोनों की ही बदनामी की आशका है । इसी प्रकार

पानी कितना ही पड जाता, तो वह सूख जाता था। कभी फिसलने का भय नही रहता था। परन्तु आज आप लोगो की भाग्यवानी वढ गई है। वह दिमाग मे, हाथो पैरो मे और वचन-व्यवहार मे नही वढी किन्तु फैशन मे बढी है। यह भाग्यवानी गिराने वाली है, पैरो को मजवूत रखने वाली नही है। पहिले के लोग ऐसी फिसलने की चीजो से दूर रहते थे।

सावधानी चाहिये

मैंने प्रारम्भ मे कहा था कि लोग आज के जमाने मे सारी जातियो का एकीकरण करने की कहते है। यह दृष्टिकोण बुरा नही है। परन्तु बुरा क्या है कि केले के छिलके के समान आज फिसलने के साधन अधिक है। यदि सावधानी से चला जाय, तव तो ठीक है। अन्यथा फिसले विना नही रहोगे। आप कहे कि फिसलते ही सावधान हो जावेंगे ? किन्तु भाई, फिसलने के वाद सभलना अपने हाथ नही रहता। कुसग मे पड कर कोई चाहे कि हम नही बिगडेगे, सो तुम्हारी तो हस्ती क्या है ? वडे-वडे महात्मा लोग भी ऐसे फिसले और इतने नीचे गिरे कि फिर ऊँचे नही आ सके। क्यो नही आ सके ? क्योकि फिसलने का काम ही बुरा है। भाई, जैसा जैन-सन्तो का त्याग है, वैसा वैष्णव और शैव-साधुओ का नही है। फिर भी त्याग की भावना सवमे थी और सभी ने मोक्ष के मार्ग मे कनक और कामिनी को दुर्गम घाटी कहा है। यथा —

मोक्षपुरी के पन्थ मे, दुर्गम घाटी दोय।
कनक-कामिनी से बचे शिव पद पावे सोय ॥

जब तक सनातनी साधु कनक और कामिनी से बचे रहे, तब तक उनकी साधु-सस्था पर कोई आच नही आई। परन्तु जब से उन्होने पैसे पर हाथ डाला और स्त्री रखने लगे, तभी से उनका अध पात प्रारम्भ हो गया। आज उन सम्प्रदायो मे कितने सच्चे साधु मिलेंगे ? पहिले जितने मठ और मन्दिर थे, उनके महन्त क्या स्त्रिया रखते थे। नही रखते थे। वे ब्रह्मचर्य से रहते थे, तो उनमे त्याग था। उनका राजाओ पर प्रभाव था और वे जो कुछ भी कहते थे, राजा लोग उसे स्वीकार करते थे। जब वे लोग फिसल गये और स्त्रियो को रखकर मन्दिरो को अपना घर बनालिया, तब से समाज मे उनका महत्त्व भी गिर गया। भाई, फिसलने के पश्चात् किसी का महत्त्व कायम नही रह सकता। इसलिए भगवान ने कहा है कि किसी की भी सगति करो, व्यवहार करो, इसमे आपत्ति नही। किन्तु जहा पर देखो कि आचार-विचार का ह्रास सम्भव है, मर्यादा टूटने का भय है, तो ऐसे ठिकानो से दूर रहो। उनके साथ

जो जू मारनेवालो के ही सम्पर्क मे सदा रही है, उसे जू मारते हुए दया का लेश भी नही है ।

भाई, जिनके हृदय मे दया है, जो जीव घात से डरते है, चोरी नही करते, झूठ नही वोलते, दूसरो की वहू-वेटी पर नजर नही डालते और लोभ-तृष्णा से रहित है, ऐसे पुरुप सदा ही कुसग से दूर रहते है। वे लोग कही ठहरने के पहिले यह देखते है कि यह स्थान हमारे ठहरने के योग्य है भी, या नही ? उनको ठहरने आते-जाते वा खाने-पीने आदि सभी कार्यों मे यतना करने की भगवान ने आज्ञा दी है । यदि किसी सन्त-महात्मा को विहार करते हुए प्यास लग जावे तो उन्हे आदेश है कि वे तालाव कुआ, प्याऊ आदि पर पानी नही पीवे । क्योकि उक्त स्थानो पर वैठकर भले ही वे अपने साथ का प्रासुक निर्दोप जल क्यो न पीवें । परन्तु देखने वालो के हृदय मे यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि इन्होने तालाब या प्याऊ का सचित्त पानी पिया है । इसी प्रकार साधु को गृहस्थ के ऐसे घर पर ठहरने की मनाई की गई है, जहा पर कि कपास आदि रखा हो और द्वार एक ही हो । क्योकि द्वार खुला रखने पर यदि गृहस्थ के सामान की चोरी हो जाय, तो साधु के वदनाम होने की सम्भावना रहेगी और यदि द्वार बन्द रखे तो जीव दु ख पावे । इसलिए भगवान ने ऐसे स्थान पर ठहरने का साधु के लिए निपेध किया है ।

मर्यादा से मान रहेगा

भाई, वि० स० १९९० की साल अजमेर मे साधु-सम्मेलन था । हम गुजराती और काठियावाडी सन्तो को लेने के लिए उधर गये थे । एक दिन हमने अठारह कोस का विहार किया तो थक गये । माघ का मास था, सर्दी को जोर था । फिर आबू के समीप तो उसका कहना ही क्या था । समीप मे एक रेल्वे स्टेशन था । हमने स्टेशन मास्टर से ठहरने के लिए पूछा । उसने कहा—कोई मकान खाली नही है । तब एक भाई ने वेटिंग रूम खोल देने के लिए कहा । स्टेशन मास्टर बोला—-यदि रात को कोई अफसर आगया, तव आपको खाली करना पडेगा । हमने कहा—ठीक है, यदि कोई आजाय, तो आप हमसे कह देना । हम जाकर वेटिंग रूम मे ठहर गये । रास्ते के थके हुए थे सो लेटते ही हम लोग सो गये । रात के दस वजे की गाडी से कोई अफसर उतरा । उसने ठहरने के लिए वेटिंग रूम खोलने को कहा । तव स्टेशन मास्टर ने कहा - वेटिग रूम मे तो जनाना सरदार है । अत उसके लिए बाहिर ही प्रवन्धकर दिया गया । उसके ये शब्द मैंने सुन लिये । मेरे साथ मे छगनलालजी स्वामी और चादमलजो स्वामी थे । मैंने उनसे कहा —यहा ठहरने पर यह

४ उदारता और कृतज्ञता

भाइयो, जिसका हृदय उत्तम है और जिसके विचार निरन्तर उन्नत बने रहते है, वह कैसी भी परिस्थिति मे जाकर घिर जाय, तो भी वह अपने स्वभाव मे स्थिर बना रहता है, उसमे किसी भी प्रकार का विकार दृष्टिगोचर नही होता है। ऐसे ही पुरुषो को धीर-वीर कहा जाता है। जैसा कि कहा है—

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषा न चेतासि त एव धीराः।

अर्थात् जिनका चित्त विकार के कारण मिलने पर भी विकार को प्राप्त नही होता है, वे पुरुष ही धीर-वीर कहे जाते हैं।

देखो—जुही, चमेली और मोगरा आदि के फूल हवा आदि के झोके से उडकर किसी कूडे-कचरे के ढेर पर भी जा पडे, तो भी वे अपनी सुगन्ध को नही छोडते है। यद्यपि वे स्थान-भ्रष्ट हो गये हैं, तथापि वे जिस किसी भी स्थिति मे पहुचने पर अपने सौरभ को सर्वत्र बिखेरते ही है।

अभी आपके सामने बताया गया है कि मैना सुन्दरी उत्तम-गुणवाली और बुद्धिमती है। परन्तु दैवयोग से ऐसा सयोग जुडा कि जहा उसे नही जाना चाहिए था, वहा जा पहुची। परन्तु ऐसी विकट परिस्थिति मे भी उसका हृदय घबराया नही। उसका ध्यान अपने मूल स्थान पर केन्द्रित हुआ और वह विचारने लगी कि यदि मैंने भूतकाल मे दान दिया है, शील पाला है और किसी का बुरा नही किया है, तो एक दिन ये सब सकट अवश्य दूर हो जावेगे। और

'ससारोऽपि सार.स्याद्दम्पत्योरेककण्ठयो ।'

यदि दम्पती का—स्त्री-पुरुष का—एक कण्ठ हो—एक हृदय हो, जो बात एक सोचे, वही दूसरा करे, जो एक कहे, वही दूसरा कहे और जो एक करे, वही दूसरा करे, तो नीतिकार कहता है कि ऐसा होने पर तो यह असार कहा जाने वाला ससार भी सार युक्त है।

किन्तु जहा पर ऐसा एक हृदय नही है, जहा पर स्त्री सोचे कि यह मुझे एक नौकर मिल गया है, मै इसे जैसा नचाऊगी, इसे वैसा ही नाचना पडेगा। और पुरुष सोचे कि यह मुझे एक नौकरानी मिल गई है, इसे रात-दिन मेरी चाकरी वजानी चाहिए। इस प्रकार की जहा मनोवृत्ति हो, वह स्त्री-पुरुष का सम्मेलन कहा तक सुखदायी होगा, यह बात आप लोग स्वय अनुभव करे।

आज भारत मे सर्वत्र सम्मेलनो की धूम मची हुई है। जातीय, प्रान्तीय, राजकीय और धार्मिक सम्मेलन स्थान-स्थान पर होते ही रहते है। उनकी बडे जोरो से तैयारिया होती हैं। और एक-एक सम्मेलन पर लाखो रुपया खर्च होते है, बडी दौड-धूप की जाती है। परन्तु जब हम उनका परिणाम देखते है, तब जीरो (शून्य) नजर आता है। इस असफलता का क्या कारण है ? यही कि इनके करने वाले ऊपर से तो सम्मेलनो का आयोजन करते है, किन्तु भीतर से उनके हृदय मे सम्मिलन का रत्ती भर भी भाव नही रहता है। सब अपनी मनमानी मोनोपाली को ही दृढ करने मे सलग्न रहते है। जब उनका स्वार्थ होता है, तब वे हर एक से मिलेगे, उसकी खुशामद करेंगे और कहेगे कि मैं आपका ही आदमी हू। किन्तु जैसे ही उनका काम निकला कि फिर वे आख उठा करके भी उसकी ओर देखने को तैयार नही है। फिर आप बतलावे कि देश, जाति और धर्म का सुधार कैसे हो ?

उपकार भूल गये

बलू दा के शम्भूमलजी गगारामजी फर्म वाले सेठ छगनमलजी मूथा—जिन्होने असहयोग आन्दोलन के समय श्री जयनाराणजी व्यास और उनके साथियो के साथ ऐसी सज्जनता दिखाई कि जिसकी हद नही। व्यासजी और उनके साथी जब-जब भी जेल मे गये तब उन्होने उनके परिवार वालो के खाने-पीने की और बच्चो की पढाई-लिखाई की समुचित व्यवस्था की, उनके घर माहवारी हजारो रुपये भिजवाये और पूरी सार-सभाल की। किन्तु स्वराज्य मिलने पर जब यहा काग्रेसी सरकार बनी और व्यासजी मुख्यमन्त्री बने, तब मुनीम की भूल से हथियारो के लायसेन्स लेने मे देर हो गई तो जैतारन के

सम्पर्क मे आकर यह रत्न कही ककर न बन जाय ? और मैना सोचती थी कि कब मै इनको इनके वास्तविक पद पर आसीन हुआ देखू ? ऐसे उत्तम विचार उनके ही हो सकते है जिन्होने जैन सिद्धान्त को पढा है, जिन्होने कर्मों के रहस्यो को समझा है और जिनके हृदय मे विश्व-बन्धुत्व की भावना प्रवाहित हो रही है। आप भी जैन कहलाते है और दयाधर्म की बडी-बडी बातें करते हैं। परन्तु अपने हृदय पर हाथ रखकर देखे कि क्या आपकी भी ऐसी भावना है ? आपकी तो भावनाए तो थोडी सी पूजी के बढते ही हवा हो गई हैं। आपके रिश्तेदार परिस्थिति से विवश होकर यदि आपके सामने आकर कुछ सहायता की याचना करते है, तो आपका मुख भी नही खुलता है। अरे, रोना तो इस बात का है कि यदि बोल गये तो सौ-दो सौ देना पडेंगे। परन्तु आपको यह पता नही है कि जैसी 'शर्म आप वेचे' हुए है, वैसी ये गरीब लोग नही वेचे हुए है। इस गरीबी मे भी इनके भीतर त्याग और वैराग्य की भावना है। अरे धनिको, यदि आप लोगो के पास से सौ-दोसौ रुपये चले भी गये और किसी की सेवा कर दी, तो आपके क्या घाटा पड जायगा ? जब जन्म लिया था और असहाय थे, तब क्या यह विचार किया था कि आगे क्या खावेंगे ? कैसे काम चलावेंगे ? और भाई-बहिनो की शादी कैसे करेंगे ? तब आमदनी तो सौ-दो सौ रुपये सालाना की नही थी। फिर भी उस समय कोई चिन्ता नही थी। और अब जब कि हजारो रुपये मासिक व्याज की आमदनी है, कोई धन्धा नही करना पडता है और गादी-तकिया पर बैठे आराम करते रहते हैं, तब सन्तोष नही है, किसी को देने की भावना नही है, रिस्तेदारो से प्रेम नही है और किसी की सहायता के भाव नही हैं। पहिले आठ आने का व्याज था, तब भी उतने मे आनन्द था। और आज दो और चार रुपये सैकडे का ब्याज है और लेने वाले की गर्ज के ऊपर इससे भी ऊपर मिलता है और इस प्रकार विना हाथ-पैर हिलाये लाखो रुपयो की आमदनी है। फिर भी आपका हृदय कीडो से भी छोटा बन गया है कि पैसा कम हो जायगा। अरे भाई, यदि कम हो जायगा, तो भी तुम्हारा क्या जायगा। हाथ से तो कमाया नही है और न साथ लाये थे। यदि चला गया तो क्या हो जायगा ? और यदि आपने परिश्रम से कमाया है और फिर भी चला गया, तब भी चिन्ता की बात नही है, फिर अपने पुरुषार्थ से कमा लोगे। इसलिए दिल को छोटा करने की आवश्यकता नही है।

पहिले राजाओ को रोना क्यो नही पडता था ? इसलिए कि जब आता तो ले लेते थे। और जब जाने का अवसर होता था, तो स्वय उसका मोह

विचार किया। चलते समय उन्होने एक जौहरी के पास से सवा करोड का एक बढिया माणिक खरीदा और देश को रवाना हो गये। मार्ग मे उन्होने सोचा कि वारी-वारी से एक-एक व्यक्ति प्रतिदिन अपने पास रखकर उसकी सभाल करता चले। तदनुसार वे चारो मित्र एक-एक दिन उस माणिक को अपने पास रखते और रक्षा करते हुये चले आ रहे थे। मार्ग मे एक शहर मिला। अत विश्रामार्थ वे चारो वहा की किसी धर्मशाला मे ठहर गये। वहा पर उन्होने वह माणिक एक जौहरी को दिखाया, तो उसने परीक्षा करके कहा—यह तो असली नही है, नकली है। यह सुनते ही उन सबके मुख फीके पड गये और सोचने लगे कि किसने असली को छिपा करके नकली माणिक रख दिया है। बहुत कुछ विचार करने पर भी जब कुछ निर्णय नही हो सका, तब उन्होने विचारा कि पहले अपन लोग खान-पान आदि से निवृत्त हो लेवे, पीछे इसका विचार करेगे। जब वे खान-पान और विश्राम आदि कर चुके, तब उन्होने आपस मे कहा कि भाई, असली माणिक है तो अपने चारो मे से किसी एक के पास। क्योकि पाचवा न अपने पास आया है और न अपन ने पाचवे को उसे दिखाया ही है। अत अच्छा यही है कि जिसने असली माणिक को लेकर यह नकली माणिक रख दिया है, वह स्वय प्रकट कर दे, जिससे कि बात बाहर न जाने पावे और अपन लोगो मे भी मैत्रीभाव यथापूर्व बना रहे। इतना कहने पर भी जब असली माणिक का किसी ने भेद नही दिया। तब वे चारो उस नगर के राजा के पास पहुँचे। और यथोचित भेट देकर राजा को नमस्कार किया। राजा ने इन लोगो से पूछा--कहा के निवासी हो और किस उद्देश्य से यहा आये हो? उन्होने अपना सर्व वृत्तान्त कहा और उस माणिक के खरीदकर लाने, मार्ग मे बारी-बारी से अपने पास रखने और यकायक असली के गुम होने और उसके स्थान पर नकली माणिक के आ जाने की बात कही। साथ ही यह भी निवेदन किया कि इस विषय मे आप न हम चारो मे से किसी से कुछ पूछताछ ही कर सकते है और न सभाला ही ले सकते हैं। और माणिक को ठिकाने आ जाना चाहिये। उनकी बात सुन कर राजा बडी दुविधा मे पडा कि विना पूछताछ किये, या खाना तलाशी लिए माणिक का कैसे पता लग सकता है? अन्त मे राजा ने दीवान से कहा—इनकी शर्त को ध्यान मे रख करके माणिक को तीन दिन के भीतर ढूँढ निकालो। दीवान बोला—महाराज, यह कैसे सभव है? राजा ने कहा —तुम दीवानगिरी करते हो, या आरामगिरी करते हो? मैं कुछ नही सुनना चाहता, तीन दिन के भीतर माणिक आना ही चाहिये। अन्यथा तुम्हे मृत्यु

इसी प्रकार महाराज जसवन्तसिंह की हाडा रानी लडी किले मे लालशाही को तोड दिया। इसलिये पिताजी, आप नारियो को अबला और मूर्खा न समझें। समय-समय पर उन्हे वहा पर अपना करतव दिखाया है, जहा पर कि बडे-बडे मर्दों ने घुटने टेक दिये थे। लडकी की वात सुनकर सन्तोष की सास लेते हुए दीवान ने पूछा बेटी, वता, इसके लिये तुझे किस साधन-सामग्री की आवश्यकता है। उसने कहा—मुझे किसी साधन-सामग्री की आवश्यकता नही है। आप केवल उन मुसाफिरो को आज की रात मे बारी-बारी से मेरे साथ चौपड खेलने के लिए भेजने की व्यवस्था कर दीजिये। मैं आज रात मे ही असली माणिक को निकाल करके आपके सामने रख दूगी। दीवान ने उन चारो मुसाफिरो को चौपड खेलने को आने के लिए निमत्रण दे दिया और रात्रि का एक-एक पहर उनके लिए निश्चित कर दिया।

दीवान ने अपने खाने मे गलीचा बिछवा दिया, गादी तकिए लगवा दिये और सबसे पहले उन चारो मे से राजकुमार को चौपड खेलने के लिए बुलाया। राजकुमार आया, और दीवानखाने मे अकेली लडकी को देखकर बोला—सुश्री, आप यहां अकेली है और मैं भी अकेला हूं। अत यह तो शका जैसी चीज है ? लडकी ने कहा—आप इसकी जरा भी शका मत कीजिए। जो शुद्ध हृदय के स्त्री-पुरुष है, उनके साथ खेलने मे शका की कोई बात नही है। अब दोनो चौपड खेलने लगे। जब खेलते हुए एक घन्टा बीत गया, तब लडकी ने एक कहानी सुनाना प्रारम्भ किया। वह बोली—कुँवर साहब, एक लडकी बचपन मे एक स्कूल मे पढती थी। साथ मे अनेक लडके और लडकिया भी पढती थी। उसका एक लडके से अधिक स्नेह हो गया तो एक दिन उसने उससे कह दिया कि मैं तेरे साथ शादी करूँगी। लड़के ने कहा—यह तेरे हाथ की बात नही है। मा-बाप की जहा मर्जी होगी, शादी तो वही होगी। तब लडकी ने कहा—मा-बाप जहा करेंगे, सो तो ठीक है। परन्तु फिर भी शादी होने के बाद पहिली रात मैं तुम्हारे पास आऊँगी। इस प्रकार उसने उस लडके को वचन दे दिया। जब वह पति के घर पहुची तो उसने रात्रि के प्रथम पहर मे अपने धनी से कहा—पतिदेव, मेरी एक प्रार्थना है कि बचपन मे जब मैं स्कूल मे पढती थी, तब अपने एक सहपाठी को मैंने ऐसा वचन दे दिया था कि शादी की पहली रात मैं तुम्हारे पास आऊँगी। यह सुनकर पति ने सोचा कि यदि यह दुराचारिणी होती, तो ऐसी बात मेरे से न कहती। यह कुलीन लडकी है। यद्यपि इसे ऐसा अनुचित वचन नही देना चाहिए था। फिर भी जब यह अपना वचन पूरा करने के लिये पूछ रही है, तब इसे

अब ये दोनो भाई-बहिन चलते हुए राक्षस के ठिकाने पर पहुचे। राक्षस मिला और उससे उस स्त्री ने कहा—अब तू मुझे खा सकता है। यह सुनकर राक्षस ने सोचा अरे, जब इसने अपना वचन निभाया है तब मैं इसे खाऊँ ? यह नही हो सकता। प्रकट मे उसने उससे कहा—अब मैं तुझे नही खाऊगा। तू मेरी बहिन है, यह कह कर उसने उसे बहुमूल्य आभूपण दिये और उसे पहुचाने के लिए वह राक्षस भी साथ हो लिया। कुछ आगे जाने पर वे चारो चोर मिले जो इसके आने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। इसने सामने पहुँच कर कहा— लो मैं आ गई हू। अब जो कुछ तुम लोग लेना चाहो सो ले सकते हो। चोरो ने देखा इसके साथ एक राक्षस और एक भला आदमी और यह अपने वचन की पक्की निकली है। अत इसे नही लूटना चाहिए। यह विचार कर उन्होने कहा—तू अब हमारी बहिन है, यह कहकर जो धन लूट मे लाये थे, वह उसे देकर उसे पहुचाने के लिए साथ मे हो गये।

कुछ दूर चलने पर जैसे ही उसका गाव आया कि उसका पति जो गुप्त रूप से अभी तक पीछे-पीछे चल रहा था, झट वहा से दूसरे मार्ग-द्वारा अपने घर मे जा पहुचे। थोडी देर मे यह स्त्री भी गई। पति ने पूछा- वचन पूरा करके आ गई ? इसने कहा—हा आ गई हूँ। बाहिर आपके छह साले खडे है। उनसे जाकर मिल लीजिए। वह बाहिर गया, सब का स्वागत किया और उन्होने जो धन दिया, वह लेकर और उन्हे विदा करके अपनी स्त्री के पास आ गया।

यह कहानी कहकर उस दीवान की लडकी ने पूछा - कुवर साहब, यह बताइये कि पति, चोर, राक्षस और साथी इन चारो मे सबसे बढकर साहूकार कौन है ? और इन चारो मे से धन्यवाद किसे दिया जावे ? तब राजकुमार ने कहा—राक्षस को धन्यवाद देना चाहिये, जो तीन दिन भूखा होने पर भी उसने उसे नही खाया। यह सुनकर उसने राजकुमार को धन्यवाद दिया और उनसे कहा—अब आप पधारिये।

राजकुमार के जाने के पश्चात दीवान-पुत्र आया। उसने उसके साथ भी चौपड खेली और सारी कहानी सुनाकरके पूछा – बताइये, आपकी राय मे धन्यवाद का पात्र कौन है ? उसने कहा—उसका पति और वह बाल साथी दोनो ही धन्यवाद के पात्र है। उसके पति ने तो अपनी स्त्री पर विश्वास किया और उसके साथी ने आत्म-सयम रखकर और बहिन बनाकर उसे वापिस किया। दीवान की लडकी ने इन्हे धन्यवाद देकर विदा किया।

चारो मुसाफिरो से कहा—आप लोग अपने माणिक को पहिचान लेवे। उन्होंने पहिचान करके अपने माणिक को उठा लिया। इस प्रकार बिना किसी की खाना-तलाशी लिए और नाम को प्रकट किये विना ही उनका माणिक उनके पास पहुच गया।

इस समय सारे राज-दरबारी यह जानने को उत्सुक थे कि यह माणिक किस प्रकार निकलवाया गया ? तब राजा ने उस दीवान की पुत्री से पूछा—बेटी, तूने कैसे इस माणिक को निकलवाया है ? तव उसने रात वाली कहानी कहकर इन लोगो से पूछा कि उन लोगो मे से आप लोग किसे धन्यवाद का पात्र समझते हैं ? तव उनमे से एक ने राक्षस की प्रशसा की, दूसरे ने धनी और उसके वाल-साथी की प्रशसा की तीसरे ने स्त्री की और चौथे ने चोरो की प्रशसा की। महाराज, चोरी की प्रशसा तो चोर ही कर सकता है। अत मुझ उस पर सन्देह हुआ और तरकीब से उसे निकलवा लिया। सारे दरवारी लोग सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और महाराज ने भी उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की। उन चारो मुसाफिरो मे जो राजा का पुत्र था, उसने पूछा—महाराज, यह किसकी पुत्री है ? दीवान वोला—रात को किसके साथ चौपड खेले थे ? उसने कहा—दीवान साहव की पुत्री के साथ। तब उसने अपना परिचय दिया कि मैं अमुक नरेश का राजकुमार हू और विना टीके के ही रिश्ता मजूर करता हूँ। राजा ने भी दीवान से कहा—दीवान साहब, अवसर अच्छा है, विचार कर लो। दीवान ने कहा—महाराज, मैं लडकी की इच्छा के जाने बिना कुछ भी नही कह सकता हू। अत उससे विचार-विमर्श करके सायकाल इसका उत्तर दूगा। तत्पश्चात् दरबार विसर्जित कर दिया गया और सायकाल सबको आने के लिए कहा गया।

घर जाकर दीवान ने अपनी पुत्री से पूछा—बेटी, राजकुमार के साथ सम्बन्ध के बावत तेरा क्या विचार है ? उसने कहा—यदि आपकी राय है, तो मुझे कोई आपत्ति नही है। साय काल राजदरबार जुडा। दीवान ने जाकर राजा से कहा—कि राजकुमार का प्रस्ताव हमे मजूर है। उसी समय दीवान ने धूम-धाम के साथ अपनी पुत्री का उस राजकुमार के साथ विवाह कर दिया और भर-पूर दहेज देकर उसे विदा कर दिया।

इस कहानी के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मनुष्य मे बुद्धि है, तो वह कठिन से भी कठिन परिस्थिति मे विकट से भी विकट समस्या का समाधान ढूढ सकता है। पर यह तभी सभव है, जबकि मनुष्य का हृदय शुद्ध हो।

५ पापों की विशुद्धि का मार्ग आलोचना

सज्जनो, शास्त्रकार भव्य जीवो के लिए उपदेश दे रहे है कि अपने आचार मे किये गये दोषो की विशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करो। जब तक मनुष्य छद्मस्थ है—अल्पज्ञानी है—तब तक भूले होना स्वाभाविक है। यदि मनुष्य से भूल हो गई, तो उसे गुरु के सम्मुख प्रकट करने पर वे क्या करेगे ? वे आपके दोष के अनुरूप दड देगे, या उपालम्भ देगे। मगर इससे आप शुद्ध हो गये और पापो की या भूलो की परम्परा आगे नही वढी। क्योकि भूल को सभाल करली। किन्तु जब मनुष्य एक भूल करने के पश्चात् अपनी भूल का अनुभव नही करके उसे छिपाने का प्रयत्न करता है, तब वह भूल करके पहिले ही अपराधी वना और उसे छिपाने का प्रयत्न करके और भी महा अपराधी बनता है। यद्यपि वह अन्तरग मे जानता है कि मैंने अपराध किया है, तथापि मानादि कषायो के वशीभूत होकर बाहिर मे गुरु आदि के सामने स्वीकार नही करना चाहता है। तथा जिसने अपनी भूल को बताया है, झूठ बोलकर वह उसका भी अपमान करता है। इस प्रकार वह अपराधी स्व और पर का विघातक चोर वनता है। जो स्व और परका चोर बनता है, वह परमात्मा का भी चोर है। इस प्रकार वह जानने वाले तीन पुरुषो का अपराधी वन जाता है। ऐसी दशा मे भी मनुष्य सोचता है कि हम ससार से पार हो जावेगे, क्योकि हमने

कि यह व्यापार-धन्धा तो कुछ करता नही है, फिर इसके पास यह धन कहा से आता है ? धीरे-धीरे यह बात राज्य के अधिकारियो के कानो तक पहुच गई। वे लोग भी गुप्त रूप से उसके ऊपर नजर रखने लगे। मगर वह व्यक्ति इतना सतर्क और सावधान था कि अधिकारियो की पकड मे नही आया। इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

इधर राज्य मे भ्रष्टाचार बढ गया और राज्याधिकारी अपने कर्तव्य-पालन मे शिथिल हो गये। फलस्वरूप राज्य के चालू खजाने की सम्पत्ति समाप्त हो गई और राज्य ऋण के भार से दब गया। दूसरी ओर दुष्काल पडा और एक समीपवर्त्ती राजा ने राज्य पर आक्रमण भी कर दिया। इससे राजा बहुत परेशानी मे पड गया। राज्य के अधिकारी किनारा-कशी करने लगे, तथा राज्य के अन्य हितैषी लोग भी अपनी नजर चुराने लगे। इस प्रकार राजा पर बहुत भारी मुसीबत आ गई। उस समय जिस व्यक्ति के पास गुप्त खजाने की चाबी थी, उसने सोचा कि राज्य इस समय सकट-ग्रस्त है। कही ऐसा न हो कि इससे सत्रस्त होकर राजा अपने प्राणो की बाजी न लगा दे। यह विचार कर वह एक दिन एकान्त-अवसर पाकर राजा के पास गया। राजा ने पूछा—भाई, तुम कौन हो और कैसे आये हो ? उसने कहा—महाराज, मै आपका चोर हू और यह कहने के लिए मैं आपके पास आया हू कि मेरे पास जो कुछ भी धन है, वह आप ले लीजिए, ताकि मै शुद्ध हो जाऊँ ? राजा उसकी बात सुनकर बडा विस्मित हुआ और बोला भाई, मै तुझे चोर नही समझता। मैंने गुप्त सूत्रो से तेरी जाच-पडताल की है, पर तेरी एक भी चोरी पकड मे नही आई है। जब चोरी नही पकडी गई है, तब मै तुम्हारा धन कैसे ले सकता हू ! वह व्यक्ति बोला—महाराज, मैने आपके खजाने से इतना धन चुराया है कि यदि मे व्याज-सहित उसका भुगतान करू, तो भी नही चुका सकता। अत मेरा निवेदन है कि आप मेरा सब धन लेकर मुझे चोरी के अपराध से मुक्त कीजिए। राजा ने कहा—भाई, जब तेरी चोरी पकडी ही नही गई हैं, तब मै कैसे तो तुम्हे चोर मानू और कैसे तुम्हारा धन लू ? हा, यदि तू राज्य की सहायतार्थ दे, या कर्ज पर दे, अथवा भेट मे दे, तब तो मै तेरा धन ले सकता हू। अन्यथा नही। वह बोला—महाराज, न तो मै भेंट देने के योग्य हू, न ऋण पर ही देने का अधिकारी हू और न राज्य की सहायता ही कर सकता हू। किन्तु मैने राज्य के खजाने से चोरिया की हैं, अत मै तो आप से यही प्रार्थना करता हू, कि मै आपका धन आपको वापिस देकर आत्म शुद्धि करना चाहता हू, कृपया मेरा धन लेकर मुझे शुद्ध कीजिए। अब दोनो अपनी अपनी बात पर अड गये। राजा कहता है कि तू चोर नही है तो मै

कि यह व्यापार-धन्धा तो कुछ करता नही है, फिर इसके पास यह धन कहा से आता है ? धीरे-धीरे यह बात राज्य के अधिकारियो के कानो तक पहुच गई। वे लोग भी गुप्त रूप से उसके ऊपर नजर रखने लगे। मगर वह व्यक्ति इतना सतर्क और सावधान था कि अधिकारियो की पकड मे नही आया। इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

इधर राज्य मे भ्रष्टाचार बढ गया और राज्याधिकारी अपने कर्तव्य-पालन मे शिथिल हो गये। फलस्वरूप राज्य के चालू खजाने की सम्पत्ति समाप्त हो गई और राज्य ऋण के भार से दब गया। दूसरी ओर दुष्काल पडा और एक समीपवर्त्ती राजा ने राज्य पर आक्रमण भी कर दिया। इससे राजा बहुत परेशानी मे पड गया। राज्य के अधिकारी किनारा-कशी करने लगे, तथा राज्य के अन्य हितैषी लोग भी अपनी नजर चुराने लगे। इस प्रकार राजा पर बहुत भारी मुसीबत आ गई। उस समय जिस व्यक्ति के पास गुप्त खजाने की चाबी थी, उसने सोचा कि राज्य इस समय सकट-ग्रस्त है। कही ऐसा न हो कि इससे सन्त्रस्त होकर राजा अपने प्राणो की बाजी न लगा दे। यह विचार कर वह एक दिन एकान्त-अवसर पाकर राजा के पास गया। राजा ने पूछा—भाई, तुम कौन हो और कैसे आये हो ? उसने कहा—महाराज, मै आपका चोर हू और यह कहने के लिए मैं आपके पास आया हू कि मेरे पास जो कुछ भी धन है, वह आप ले लीजिए, ताकि मै शुद्ध हो जाऊँ ? राजा उसकी बात सुनकर बडा विस्मित हुआ और बोला भाई, मै तुझे चोर नही समझता। मैने गुप्त सूत्रो से तेरी जाच-पडताल की है, पर तेरी एक भी चोरी पकड मे नही आई है। जब चोरी नही पकडी गई है, तब मै तुम्हारा धन कैसे ले सकता हू ! वह व्यक्ति बोला—महाराज, मैने आपके खजाने से इतना धन चुराया है कि यदि मे व्याज-सहित उसका भुगतान करू, तो भी नही चुका सकता। अत मेरा निवेदन है कि आप मेरा सब धन लेकर मुझे चोरी के अप-राध से मुक्त कीजिए। राजा ने कहा—भाई, जब तेरी चोरी पकडी ही नही गई हैं, तब मै कैसे तो तुम्हे चोर मानू और कैसे तुम्हारा धन लू ? हा, यदि तू राज्य की सहायतार्थ दे, या कर्ज पर दे, अथवा भेट मे दे, तब तो मै तेरा धन ले सकता हू। अन्यथा नही। वह बोला—महाराज, न तो मै भेंट देने के योग्य हू, न ऋण पर ही देने का अधिकारी हू और न राज्य की सहायता ही कर सकता हू। किन्तु मैने राज्य के खजाने से चोरिया की हैं, अत मै तो आप से यही प्रार्थना करता हू, कि मै आपका धन आपको वापिस देकर आत्म-शुद्धि करना चाहता हू, कृपया मेरा धन लेकर मुझे शुद्ध कीजिए। अब दोनो अपनी अपनी बात पर अड गये। राजा कहता है कि तू चोर नही है तो मै

कैसे तुझे दड दूं और कैसे तेरा धन ग्रहण करूं ? और वह व्यक्ति कहता है कि मै चोर हू, मैने आपका धन चुराया है, अत मुझे दड दीजिए और मेरा धन ले लीजिए। उसने आगे कहा—महाराज, आपके गुप्त खजाने की चावी मेरे पास थी, उससे मै गुप्त खजाने मे अव तक चोरिया करता। अव आपका राज्य आर्थिक सकट से ग्रस्त है, दुष्काल भी पड रहा है और दूसरे राजा ने राज्य पर आक्रमण भी किया हुआ है। ऐसी दशा मे आपको गुप्त खजाने की चावी देता हू और भडार को भी सभलाता हू। पर पहिले मुझे दड देकर और मेरा धन लेकर मुझे शुद्ध कर देवें। उसके इस प्रकार वहुत कुछ अनुनय-विनय करने पर भी जव राजा किसी प्रकार उसे चोर मानने और उसका धन लेने को तैयार नही हुआ, तव उसने महारानी जी के पास जाने के लिए राजा से आज्ञा मागी। राजा ने 'हा' भर दी। वह महारानी के पास पहुचा और उनसे वोला—महारानी जी साहव, मै आपका चोर हू। रानी ने पूछा– भाई, तू चोर कैसे है ? तव उसने उपर्युक्त सर्व वृत्तान्त उनसे कहा। रानी वोली—जव महाराज, तुझे चोर मानते और तेरा धन लेने के लिए तैयार नही हैं, तव मै कैसे तुझे चोर मान सकती हू और कैसे तेरा धन ले सकती हूं ? फिर जो चोर होता है, वह अपने मुख से नही कहता-फिरता है कि मै चोर हू और मेरा धन ले लीजिए। उसने वहुत कुछ आग्रह किया और यथार्थ वात भी कही। परन्तु रानी साहव न उसे चोर मानने को तैयार हुईं और न उसका धन लेने के लिए ही।

अव वह महारानी सा० के पास से महाराजकुमार के पास गया और उनसे भी उक्त सारी वातें कहकर और धन ले कर अपने को शुद्ध करने की वात कही। उन्होने भी उसे चोर मानने और धन लेने से इनकार कर दिया।

भाइयो, आप लोग वताये कि हमने जो पाप किया और उसे भगवान के सामने रख दिया, तो क्या भगवान हमे अपराधी मानेंगे ? कभी नही। वे यही मानेंगे कि प्रमाद-वश इससे यह भूल हो गई है, अत यह क्षमा का पात्र है। उस व्यक्ति ने जव चोरी की थी, तव वह चोर था। किन्तु जिसकी चोरी की थी, वह जव उससे ही अपना अपराध कह रहा है और उसका प्रायश्चित भी लेने को तैयार है, तव वह चोर नही रहा। अव तो वह साहूकार वन गया है।

जव महाराजकुमार ने उसे चोर नही माना और न उसका धन लेना स्वीकार किया, तव उसने महाराज, महारानी और महाराज कुमार इन तीनों को एकत्रित करके निवेदन किया कि मैं चोर हू और उसके दड रूप मेरा सव धन ले लीजिए। तव राजा ने कहा—यदि तू चोर है, तो वता, किस खजाने

से कब-कब कितना धन कहाँ से चुराया है ? वह बोला—महाराज, वह खजाना तो मुझे आपको बताने के लिए मनाई की हुई है। परन्तु मैं यह सत्य कहता हू यह खजाना आपका है और मैंने अमुक-अमुक समय इतना धन चुराया है कि अपना सारा धन देने पर भी मैं आपके ऋण भार से मुक्त नही हो सकता हू। राजा ने पूछा- उस खजाने मे कितना माल है ? उसने कहा—महाराज, इसका भी मुझे कुछ पता नही है। परन्तु मैं इतना अवश्य जानता हू कि उसमे अपार धन है ? राजा ने कहा—यदि ऐसी बात है तो तू वह खजाना मुझे बता। वह बोला महाराज, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हू, क्योकि मेरे पिता ने मरते समय उसे बताने के लिए मना किया था। हाँ, राज्य पर सकट आने के समय उसमे से धन निकाल कर आप को देने के लिए अवश्य कहा था। राज्य इस समय सकट-ग्रस्त है और मैंने उसमे से धन चुराया है। मेरे पास इस समय इतना धन है कि राज्य का सकट टल सकता है। अत मैं आप सबसे यही प्रार्थना करता हू कि आप मेरा धन लेकर मुझे शुद्ध कीजिए और राज्य के सकट को दूर कीजिए। राजा ने पूछा—तूने खजाने मे से धन क्यो चुराया ? उसने कहा—महाराज, मेरी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई थी और कुटुम्ब के भरण-पोषण का कोई मार्ग मेरे पास नही था, अत पर-वश होकर मैंने खजाने मे से धन लिया है। राजा ने पूछा—कितना धन लिया है ? वह बोला महाराज, मौखिक तो मैं नही बता सकता। परन्तु जब-जब जितना धन लिया हैं, उसे मिती-बार मैंने अपनी वही मे अवश्य लिखा है। राजा ने कहा—यदि ऐसा है, तो तू मेरे पैरो को हाथ लगाकर के कहदे कि मैंने चोरी की है। उसने कहा—महाराज, मे इससे भी बढकर हल्फिया कह सकता हूँ कि मैंने आपकी चोरी की है। यदि इतने पर भी आपको मेरी बात पर विश्वास न हो, तो आप मेरा सिर धड से अलग कर सकते है। उसकी यह बात सुनकर रानी ने राजा से कहा—यह सज्जन पुरुष प्रतीत होता है, अत इसकी बात को आप मान लीजिए। राजा ने कहा—इसे चोर मानने और इसका धन लेने के लिए मेरी आत्मा गवाही नही देती है। परन्तु यह मेरे पैरो को हाथ लगाकर क्यो नही कहता है कि मैं चोर हू। तब रानी ने उससे कहा—यदि तू महाराज के चरणो को हाथ लगाकर कहने को तैयार नही है तो देवगुरु की साक्षी से कहदे कि मैं चोर हू। उसने कहा हजूर, जब मेरी आत्मा स्वय साक्षी है, तब मैं देव-गुरु को क्यो साक्षी बनाऊँ ? उनको साक्षी बनाने की आवश्यकता ही क्या है ? इस प्रकार न राजा ही उसे चोर मानने को तैयार हुआ और न उसने देव-गुरु की साक्षी-पूर्वक कहने की बात ही स्वीकार की वह बार-बार यही

कहता रहा कि मैं हलफिया कहता हू कि मैंने आपके खजाने का धन चुराया है और इसलिए मैं आपका चोर हू, अपराधी हू। मगर राजा ने उसकी बात नही मानी। वह निराश होकर अपने घर चला गया और इधर राजा, रानी और राजकुमार भी सोच-विचार मे पड गये।

एक दिन राजा ने स्वप्न मे देखा कि उसके राजमहल मे एक बडा भारी खजाना है और उसमे अपार धन भरा हुआ है। उस खजाने की चाबी जिस व्यक्ति के पास है, वह आकर के कह रहा है कि यह खजाने की चाबी लो, और उसमे से जितना धन मैंने लिया है उसे भी सभालो। राजा स्वप्न देखते ही जाग गया और और विचारने लगा कि यह स्वप्न कैसे आया ? कही यह दिन मे उस व्यक्ति के द्वारा कही गई बातो के सस्कार से तो नही आया है ? क्योकि **'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'** अर्थात् जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। और स्वप्नो के विषय मे यह भी कहा है कि—**'अस्वप्नपूर्वं जीवाना न हि जातु शुभाशुभम्'** अर्थात् जीवो के आगामीकाल मे होनेवाला कोई भी शुभ या अशुभ कार्य बिना स्वप्न आये नही होता है। अत मेरा यह स्वप्न भी सार्थक ही प्रतीत होता है। राजा ने प्रात काल अपने स्वप्न का वृत्तान्त रानी से कहा। तब रानी भी बोली – महाराज मुझे भी यही स्वप्न आया है। महाराज कुमार ने भी आकर के कहा—आज मैंने ऐसा स्वप्न देखा है। महारानी और महाराज कुमार ने राजा से कहा—उस आदमी का कथन सत्य प्रतीत होता है। हमे उसकी बात मान लेनी चाहिए। मगर राजा ने कहा—दिन मे जो बातें हुई है, उनके असर से ही यह स्वप्न आया प्रतीत होता है। अत मैं अभी भी उसे चोर मानने को तैयार नही हू। इस प्रकार यह दिन निकल गया।

दूसरे दिन रात मे राजा ने फिर स्वप्न देखा कि कोई व्यक्ति आकर के कह रहा है—हे राजन ! उस व्यक्ति ने अन्न-जल का तब तक के लिए त्याग कर दिया है, जब तक कि तू उसे चोर मानकर उसका सब धन नही लेगा। अत तू उसका धन ले ले। यदि धन नही लेगा और वह मर गया तो उसकी हत्या के पाप का भागी तू होगा। सवेरे उठने पर मालूम हुआ कि इसी प्रकार का स्वप्न रानी और राजकुमार ने भी देखा है। जो पुण्यात्मा और सत्कर्मी होते है, उन्हे भविष्य-सूचक सत्य स्वप्न आया करते है। इस दिन भी राजा ने कुछ ध्यान नहीं दिया और यह दिन भी यो ही बीत गया।

तीसरे दिन राजा ने रात्रि मे फिर स्वप्न देखा कि कोई व्यक्ति कह रहा है कि हे राजन्, देख, उसे अन्न-जल का त्याग किये हुए आज तीसरा दिन है। तू अब भी उसकी बात को मान ले। यदि कल दोपहर तक तूने उसकी बात नही मानी तो उसी समय तेरा मरण हो जायगा। राजा की स्वप्न देखते ही नीद खुल गई। वह कुछ भय-भीत हुआ। राजा ने अपने स्वप्न की बात कही तो उन दोनो ने भी कहा—महाराज यही स्वप्न हम दोनो ने भी देखा है। तब राजा बोला इस विषय मे दीवान साहब से भी परामर्श कर लेना चाहिए। रानी ने कहा—महाराज, यह बात अपन लोगो से बाहर नहीं जानी चाहिये। दीवान साहब के भ्रष्टाचार के कारण ही तो राज्य की यह दुर्दशा हो रही है। अत उनसे इस विषय मे विचार-विमर्श करना ठीक नहीं है। तब रानी ने गाडी भिजवा करके राजकुमार के द्वारा उस व्यक्ति को कहलवाया कि आप पारणा करे और धन को गाडी मे भर कर राजमहल भिजवा देवें। राजकुमार ने जाकर उससे अन्न-जल ग्रहण करने और धन राजमहल भिजवाने की बात कही। वह बोला—न मैं अन्न-जल ही ग्रहण करूँगा और न धन ही दूँगा। जब महाराज मुझे चोर मान कर मेरा धन दण्डस्वरूप लेंगे, तभी मैं अन्न जल ग्रहण करूँगा और धन भी तभी दूँगा। राजकुमार उसके इस उत्तर से निराश होकर वापिस चले आये और अपनी माताजी से सब हाल कह सुनाया। रानी बोली—बेटा यह भी अपनी हठ पर डटा हुआ है और महाराज भी अपनी हठ पर डटे हुए हैं। अब क्या किया जाये? दोनो सलाह करके महाराज साहब के पास गये और बोले—महाराज, क्या उसके प्राण लेना है, अथवा स्वय के मरने का निश्चय किया है? महाराज बोले—महारानी जी, स्वप्न से आसार तो ऐसे ही दिखते हैं। पर मुझे निश्चय कैसे हो कि वह चोर है? तब रानी ने कहा—महाराज, इतने प्रमाण आपको मिल चुके हैं, फिर भी आप उसे चोर मानने को तैयार नही हैं, यह बडे आश्चर्य की बात है। इस प्रकार समझा-बुझा कर रानी राजा को लिवाकर उसके घर पहुची। वहा जाकर राजा ने उससे कहा—भाई, भोजन करो और अपना धन मुझे दे दो। राजा की यह बात सुनकर वह बोला—महाराज, जब तक आप मुझे चोर नही मानेंगे और मेरे पास के धन की चोरी का माल मान करके नही लेंगे, तब तक न मैं अन्न-जल ही ग्रहण करूँगा और न धन ही दूँगा। राजा फिर भी उसे चोर मानने को तैयार नही हुआ। इतने मे बारह बजने का समय होने को आया और राजा की तबियत एकदम बिगड गई। वह छटपटा कर मूच्छित हो गया। राजा को तुरन्त राजमहल मे ले जाया गया। चिकित्सक बुलाये-गये और सर्व-

प्रकार के उपचार प्रारम्भ किये गये। मगर राजा की हालत उत्तरोत्तर बिगड़ती गई और नाडी ने भी अपना स्थान छोड दिया। राजा की यह दशा देखकर रानी और राजकुमार रोने लगे और सारे राजमहल मे कुहराम मच गया।

इसी समय बेहोशी की हालत मे राजा का ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई मनुष्य आकर कान मे कह रहा है कि क्यो व्यर्थ अपने प्राण गवाता है। वह सत्य कहता है कि मैं चोर हू। अत तू जाकर और उसे चोर मानकर उससे धन ले आ और गुप्त खजाने की चावी भी उससे ले आ। तीसरे दिन वह स्वय आकर गुप्त खजाने को भी बतला देगा। कानो मे ये शब्द पडते ही राजा होश मे आ गया। सारे लोग यह देखकर बड हर्षित हुये। राजा ने उसके यहा जाकर कहा—भाई, मेरे खजाने की चावी मुझे दो और मेरा माल भी मुझे दो और अब अन्न-जल ग्रहण करो। उसने सहर्ष चावी राजा को सौप दिया और अन्न-जल को ग्रहण करके अपने नियम को पूरा किया।

राजा भी चावी और धन लेकर राजमहल लौट आया। तीसरे दिन वह व्यक्ति राजा के पास आया और नमस्कार करके बैठ गया। राजा ने कहा—भाई, तुमने गुप्त खजाने की चावी तो मुझे दे दी है, मगर वह स्थान तो बतलाओ, जहा पर कि गुप्त खजाना है। तब उसने कहा—महाराज, आप प्रतिज्ञा कीजिये कि यदि मेरे ऊपर बडी से भी बडी आपत्ति आयेगी, तब भी मै खजाने को खाली नही करूँगा। आपके प्रतिज्ञा करने पर जब मुझे विश्वास हो जायगा, तभी मै गुप्त खजाने के स्थान को बतलाऊँगा। हा राज्य पर और जनता पर आपत्ति आने के समय आप उससे धन लेकर उसका दु ख दूर कर सकते हैं। परन्तु अपने या अपने परिवार के लिए कभी भी उससे धन नही ले सकेंगे। महाराज-द्वारा उक्त प्रतिज्ञा के करने पर वह उस स्थान पर ले गया, जहा पर कि गुप्त खजाना था। राजा ने उसका ताला खोला तो देखा कि वहा पर अपार धनराशि पडी है। यह देखकर राजा ने कहा—इसे बन्द कर दो। जब वह खजाने को बन्द करके चावी राजा को देने लगा तब राजा बोला—अब मुझे चावी की आवश्यकता नही है। अब तो मै जब चाहूँगा, तभी ताला तुडवा करके धन को ले लूँगा। मैंने इतने दिन तक निभाली। अब मै अपनी आत्मा को बिगाडना नही चाहता हू।

भाइयो, यह एक द्रव्य दृष्टान्त है। भाव-दृष्टान्त यह है कि हमारी आत्मा के निज गुणरूपी गुप्त खजाने की चावी सम्यक्त्व है। वह परम पिता भगवान ने हमे दी है। परन्तु हमने उस व्यक्ति के समान निरन्तर चोरियाँ

ही की है। कभी तपस्या मे चोरी की, कभी व्रत-पालने मे चोरी की और कभी आचार मे चोरी की। उनके फलस्वरूप मर कर किल्विपी देव हुए। किल्विषी अर्थात् पाप-बहुत नीच जाति के देव क्यो हुए ? क्योकि हमने अपने पापो की आलोचना नही की—अपने पापो को गुरु के सम्मुख प्रकाशित नही किया। जब तक हम अपने पाप प्रकाशित नही करते हैं, तब तक हम सब चोर ही हैं। परन्तु जब आत्मा के भीतर सम्यक्त्व प्रकट हो गया, तब हमे यह कहने का साहस आया कि भगवन्, मैंने तपस्या मे चोरी की है, व्रतो मे चोरी की है और आचार मे चोरी की है। प्रभो, मै आपका चोर हू, आप मुझे दण्ड दीजिए। तब भगवान् कहते हैं—तुम चोर नही हो। तुम अपनी आलोचना स्वय कर रहे हो तो यह तो तुम्हारी साहूकारी ही है।

जब एक राजा अपने को चोर कहने वाले व्यक्ति को चोर मानने के लिए तैयार नही है, तब भगवान उसे चोर कैसे मान सकते है ? जो अपने अपराध को स्वय स्वीकार कर रहा है, वह अपराधी, पापी या चोर नही है, क्योकि अपने अपराध को स्वीकार करना तो उत्कृष्ट कोटिका तप है कि जो कुछ भी उसने अज्ञान, प्रमाद से, या जानबूझ कर पाप किया है, वह सबके सम्मुख प्रकट कर देवे। जो व्यक्ति जब तक अपने पाप को छिपा करके रखता है, तब तक उसका कल्याण नही हो सकता है।

एक साधु गगा के किनारे पर रह कर खूब तपस्या करता था। कुछ धीवर लोग उसके सामने ही जाल डाल कर नदी मे से मछलिया पकडा करते थे। एक दिन उसने धीवरो से पूछा—तुम लोग इन मछलियो को ले जाकर के क्या करते हो ? उन्होंने बताया कि इन्हे तेल मे तल करके खाते है। साधु सुनकर विचारने लगा मछली खाने मे स्वादिष्ट होती होगी। तब उसने भी मछली पकड कर और उसे तल कर खाई। मछली खाने से उसके पेट मे बहुत दर्द उठा। वैद्यो से दवा लेने पर भी आराम नहीं मिला। वह बहुत दुखी हुआ। एक चतुर पुराने वैद्य ने साधु की नाडी देखते हुए पूछा—आप सत्य कहिये, क्या खाया है। उसने चार-पाच बार झूठ बोलकर अन्य वस्तुओ के नाम लिए। वैद्य बोला—नाडी तो इस वस्तु के खाने को नही बताती है। उसने कहा—महाराज, यदि जीवित रहना है, तो सच बताओ कि क्या खाया है, तब तो मैं आपका इलाज करके ठीक कर दू गा। अन्यथा बैकुण्ठी तैयार है। "साधु सोचने लगा कि मेरे इतने भक्त यहाँ पर बैठे है। मैं इनके सामने सच बात कैसे कहू। मगर जब वैद्य ने मरने का नाम लिया, तो उसने सब बात सच कह दी। वैद्य ने उसका उपचार करके उसे ठीक कर दिया। भाई, वह साधु कब शुद्ध और स्वस्थ हुआ, जब उसने अपना पाप चिकित्सक से कह दिया तब।

भाइयो, जो भी पुरुष व्रत-नियम लेकर के दुष्कर्म करता है और उनको छिपाता है, अथवा अन्य प्रकार से कहता है, वह किल्विषी देव होता है, वह भव-पार नही होता है। किन्तु जो किये हुए पापो की ठीक रीति से आलोचना करता है शुद्ध हृदय से निश्छल होकर गुरु के सम्मुख अपने दुष्कृतो को खोलता है और उनसे प्रायश्चित्त लेता है, वह शुद्ध हो जाता है।

भगवान ने जीवन के अन्त मे जो सथारे का—समाधि मरण स्वीकार करने का उपदेश दिया है, वह जीवन भर की तपस्या का फल कहा है। यथा—

अन्त क्रियाधिकरण तप. फल सकलदर्शिन स्तुवते।
तस्माद् यावद् विभव समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥

सकलदर्शी सर्वज्ञ देव अन्तिम समय सर्वपापो की आलोचना करके सथारे को जीवन भरके तप का फल कहते हैं। इसलिए जब तक होश-हवाश दुरुस्त रहे, तब तक ज्ञानियो को समाधिमरण मे प्रयत्न करना चाहिए। उसके लिए कहा गया है कि—

आलोच्य सर्वमेन· कृत-कारितमनुमत च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत मारणस्थायि नि शेषम् ॥

सथारा को स्वीकार करते हुए सर्वप्रथम निर्व्याज रूप से छल-कपट-रहित होकर कृत-कारित और अनुमोदना से किये हुए अपने सर्वपापो की आलोचना करे। पुन मरण पर्यन्त स्थायीरूप से पाचो पापो का त्याग करके महाव्रतो को धारण करे।

जब मनुष्य बेहोश हो जाय, तब सथारा कराने से कोई लाभ नही है। स्वस्थ दशा मे आलोचना करके सथारा स्वीकार करना ही सच्चा सथारा ग्रहण कहलाता है। यही पडितमरण या समाधिमरण कहलाता है। वैसे जब भी मनुष्य सभले और जितना कुछ भी भगवान का नाम-स्मरण कर लेवे, वह भी अच्छा ही है।

मैने आलोचना के लिए पहिला उदाहरण राजा का और दूसरा साधु का दिया है। इनसे आप समझ गये होगे कि अपने पाप को कहने पर ही मनुष्य शुद्ध होता है। जिसने व्रत लिया, उसी से भूल होती है। जिसने व्रत लिया ही नही, वह क्या व्रत भग करेगा? साहूकार ही नुकसान उठाता है। दिवालिया को क्या नुकसान होगा? भाई, जैनमार्ग का यही सार है कि आलोचना-पूर्वक सथारा लेकर अपने जीवन को सफल करो। जो समाधिपूर्वक मरण करता है, वह नियम से परभव मे सद्गति को प्राप्त करता है।

वि०स० २०२७ असोजसुदि ६
जोधपुर

६ | आत्म-विजेता का मार्ग

विजय के चार रूप :

आज विजयादशमी का दिन है। विजय का अर्थ है जीतना। जीत दो प्रकार की होती है—एक जीत और जीत के साथ हार होती है । एक हार के साथ जीत। एक जीत के साथ जीत । और एक हार के साथ हार। ये चार बाते हुई । जीत के साथ हार क्या है ? जीवन मे बाजी जीते पाच सौ, हजार, लाख, दस लाख की। परन्तु आपको पता है कि हजार की जीत के साथ दो हजार और लाख की जीत के साथ दो लाख उसको देने पडेगे। आपने सट्टे मे कमा लिए, परन्तु दूसरी पूनम को देने पडे तो यह हार के साथ जीत है। एक चोर ने चोरी की और धन का झोला भर लाया। परन्तु पकडा गया। मार पडी और जेल जाने की नौबत आ गई तो यह जीत के साथ हार है। युद्ध मे जिन्होने विजय प्राप्त की, हजारो-लाखो को खपाया। पीछे उसे उससे भी बलवान मिल गया तो यह जीत के साथ हार है। हार के साथ जीत—कभी ऐसा ही अवसर आ जाता है, जब बुद्धिमान् पुरुप को भी कुछ समय के लिए धैर्य धारण करके चुप बैठना पडता है कि अभी बोलने का समय नही है। भाई, बुद्धिमान् पुरुप समय की प्रतीक्षा करते हैं। कहा भी है '**विद्वान् समय प्रतीक्षते**'। अर्थात् जो विद्वान पुरुप होता है, वह योग्य अवसर की प्रतीक्षा करता है और जब उचित अवसर देखता है, तभी बोलता है। ऐसे धैर्य धारण करनेवाले के लिए दुनिया कहती है, कि यह हार गया, किसी कार्य के योग्य

नही है। परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य कोई उत्तर नही देता है। परन्तु उचित अवसर आते ही वह ऐसा पराक्रम दिखाता है कि कोई फिर उसे जीत नही सकता। अब जीत के साथ जीत—जो महान् पुरुष आध्यात्मिक है—जिन्होने अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है, वे उत्तरोत्तर विजय पर विजय प्राप्त करते जाते हैं। अब हार के साथ हार कहते हैं—ससार के सभी प्राणी दिन पर दिन हारते ही जाते हैं। उनके जीवन मे कभी विजय का नाम ही नही है, क्योकि वे मिथ्यात्व, असयम, कषायादि के द्वारा उत्तरोत्तर पाप कर्मो का बन्ध करते ही रहते हैं। इस प्रकार जैसे विजय के साथ हार का और हार के साथ विजय का सम्बन्ध है उसी प्रकार विजय के साथ विजय का और हार के साथ हार का भी सम्बन्ध चलता रहता है।

आज विजयादशमी है। तिथिया पाच प्रकार की होती हैं—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा। एक पक्ष मे पन्द्रह तिथिया होती है। उनमे से एकम, षष्ठी, एकादशी ये तीन नन्दा तिथि हैं। द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी ये तीन भद्रा तिथि है। तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी ये तीन जया तिथि हैं। चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी ये तीन रिक्ता तिथि है। और पचमी, दशमी, पूर्णमासी ये तीन पूर्णा तिथि है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रिक्ता तिथियो मे किया हुआ कार्य सफल नही होता। शेष तिथियो मे किया गया कार्य उनके नाम के अनुसार आनन्द-कारक, कल्याण-कारक, विजय-प्रदाता और पूरा मन चिंतित करनेवाला होता है।

विजयादशमी के विषय मे वैदिक सम्प्रदाय के अनुसार ऐसा उल्लेख मिलता है कि महिषासुर नामका एक बड़ा अत्याचारी राजा था। उसके अत्याचार से सारे देश मे हाहाकार मच गया था और प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। तब आज के दिन चामुण्डा देवी ने उसका मर्दन किया था। इसलिए आज का दिन विजयादशमी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। अर्वाचीन पुराणो के अनुसार आज के दिन भी राम ने रावण पर विजय प्राप्त करके सीता को प्राप्त किया था, इसलिए भी यह तिथि विजयादशमी कहलाने लगी।

सच्ची विजय

परन्तु जैन सिद्धान्त कहता है कि जो पाच इन्द्रिय, चार कषाय और मन इन दश के ऊपर विजय प्राप्त करता है, उस व्यक्ति की दशमी तिथि ही विजयादशमी है। जिन्होने अपने एक मन को जीत लिया, उन्होने चारो कषायो को जीत लिया। और जिन्होने इन पाचो को जीत लिया उन्होने पाचो इन्द्रियो को जीत लिया। केशी कुमार ने जब गौतम स्वामी से पूछा—कि तुम

सहस्रो शत्रुओ के बीच मे रह करके भी उन्हे कैसे जीतते हो ? तब गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—

एगे जिए जिया पंच पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ता ण सव्वसत्तू जिणामहं ॥

अर्थात्—एक मनरूपी शत्रु के जीत लेने पर मन और चार कषाय ये पाच जीत लिये जाते हैं। और इन पाचो के जीत लेने पर इनके साथ पाच इन्द्रिया भी जीत ली जाती है। इन दशो को जीत लेने पर मैं सर्व शत्रुओ को जीत लेता हू।

एक महापुरुष की स्मृति

आज मैं आपके सामने एक ऐसे महापुरुष का चरित वर्णन कर रहा हू जिन्होने कि दश पर विजय प्राप्त की और जैनधर्म का झडा चारो ओर फहराया। उन महापुरुष का जन्म वि० स० १७१२ के आसोज सुदी दशमी को इसी मारवाड के नागौर नगर मे हुआ। उनके पूर्वज मुणोत थे और जोधपुर के रहनेवाले थे। परन्तु नागौर चले गये थे।

मुणोत महाराज आसथान जी जैसलमेर शादी करने गये और भटियानी जी के साथ शादी की। भाग्य से मंत्री सपतसेण की लडकी का भी इनके साथ अनुराग हो गया और उसने प्रण कर लिया कि मैं तो इनके साथ ही शादी करूगी। मारवाड के महाराज आसथान जी इसे करने को तैयार नही हो रहे थे, तब जेसलमेर महाराज ने कहा—इस सम्बन्ध के स्वीकार करने मे क्या है ? आप क्षत्रिय हो और यह जैन-क्षत्रिय हैं। उस समय ब्राह्मणो का बोलबाला था। उन्होने कहा—महाराज, इनकी जो सन्तान होगी, वह राज्य की उत्तराधिकारी नही हो सकेगी, क्योकि आप तो जाति के क्षत्रिय हैं और ये तो जैन है। उनके लडके मोहनजी हुए उन्होने राज्य की दीवानगिरी की और उनके वशज मुणोत कहलाये। यह वि० स० १३८३ की बात है जब इन्होने जैनधर्म को स्वीकार किया। सब जातिया वनने के बाद मुणोत जाति बनी है। उस समय अनेक क्षत्रिय जैनधर्म मे आ गये। कितने ही लोग—जो इस तथ्य से अजानकार हैं—वे कहते हैं कि हम तो राजपूतो मे से निकले हैं। अरे भाई, दूसरी जाति से निकले हुए तो दरोगा कहलाते है। जैसे नारियल मे से गोला निकलता है। यद्यपि ये लोग क्षत्रियो मे से ही आये है और आहार-विहार और खान-पान की प्रवृत्ति और थी। परन्तु जैन धर्म स्वीकार करने के पश्चात् उनके आचार-विचार मे भारी परिवर्तन आगया। आचार्यो ने जैन धर्म का महत्व बताकर उनको ऐसी मोड दी कि आज वे कट्टर जैनधर्मी

है। यह बड़ी वीर जाति है। उनमे जन्म लेनेवाले अनेक महापुरुषो ने मारवाड की बडी सेवाए की हैं। उनके वशज सुदरसी, नेनसी मेडता चले गये। और एक भाई का परिवार नागौर चला गया। इनमे नेनसी के पुत्र थे मुलोजी, उनके पुत्र माणकसीजी उनकी स्त्री का नाम रूपाजी था। उनकी कुक्षि से आसोज सुदी दशमी को एक पुत्र का जन्म हुआ। वह बडा होनहार, अद्भुत पराक्रमी और रूपवान था। उसके नेत्र बडे विशाल थे। अत उसके पूर्वजो ने उसका नाम भूधर रखा। भूधर कहते हैं पहाड को। दुनिया कहती है कि यदि ये पहाड इस भूमि को नही रोके होते, तो यहा उथल-पुथल हो जाती। पर्वतो के कारण ही यह स्थिर है। जो भूमि को धारण करे, उसे भूधर कहते हैं। उस पुत्र के माता-पिता ने भी अनुभव किया कि यह पुत्र भविष्य मे धर्म के भारी बोझ को उठानेवाला होगा, अत उसका नाम भूधर रखा। भूधर क्रमश बढने लगे और उनकी पढाई होने लगी। आपके बचपन मे ही माणकसीजी का और माता जी का स्वर्गवास हो गया। ये बडे तेजस्वी और उदात्त वीर थे। उस समय जोधपुर के महाराजा अपने सरदारो का बडा ध्यान रखते थे। उन्होंने भूधर को भी होनहार और होशियार देखकर अपने पास मे रखा और उनकी निशानेबाजी को और तेजस्विता को देखकर उन्हे फौज का अफसर बना दिया। ये ज्यो-ज्यो बडे हुए, त्यो-त्यो इनका साहस और पराक्रम भी बढता गया। इन्होंने अनेक युद्धो मे विजय प्राप्त की। परन्तु इधर सोजत का जो इलाका अरावली पहाड के पास आया हुआ है, वहा पर बहुत डाकू रहते थे। उनकी डाकेजनी से सारा इलाका उन दिनो सकट मे पड गया था। तब महाराज ने भूधर जी को हुक्म दिया की आप पाच सौ घुडसवारो के साथ वहा रहे। जब भूधर जी वहाँ पहुचे, तो कुछ दिनो मे ही चोरो और डाकुओ का नामोनिशान भी न रहा।

बहादुर भूधर

अब कोई कहे कि वे तो महाजन थे, फिर उनसे यह काम कैसे हुआ? परन्तु भाई, जैन सिद्धान्त यह बतलाता है कि जब तक कोई दूसरा व्यक्ति अपने को नही सताता है और देश, जाति और धर्म मे खलल नही पहुचाता है, तब तक उसे सताने की आवश्यकता नही है। परन्तु जब आक्रमणकारी सताने के लिए उद्यत हो जाये और सताने लगे, तब दया का ढोग करके बैठे रहना, यह दया नही कायरता है—बुजदिली है। उस वीर-बहादुर भूधर ने सारे इलाके को डाकुओ के भय से रहित कर दिया और शान्ति का वातावरण फैला दिया। उनका सम्बन्ध रातडिया मेहता के यहा हो गया, तब वे नागौर छोडकर सोजत मे रहने लगे।

कुछ समय के बाद एक दिन ऐसा मौका आया कि चौरासी ऊ ंटो की धाड कटालिए के ऊपर आई। वीरमणि ग्रासिया बडा खूख्वार था। लोगो से ज्ञात हुआ कि आज कटालिया लुटनेवाला हैं, तो ठाकुर की ओर से सन्देश मिलते ही भूधरजी वहा पहुचे। उनके साथ घमासान युद्ध किया और कितने ही डाकुओ को इन्होने मार दिया। जब धाड देनेवाले भागने लगे तो भूधर जी ने उनके पीछे अपने घुडसवारो को लगा दिया। जब इस प्रकार भगाते-मारते जा रहे थे, तब एक ऊ ट के तलवार लगी और उसका आधा सिर कट गया। उसका धड और सिर लडखडाते देख उनके हृदय से इस मार-काट से घृणा पैदा हो गई। वे विचारने लगे अरे, मैं प्रतिदिन कितने प्राणियो को मारकर उनका खून बहाता हू ? मैंने आज तक कितने मनुष्यो और पशुओ को मारा है ? क्या मुझे इसी प्रकार से अपना हिंसक जीवन बिताना है ? फिर इन बेचारे दीन पशुओ ने हमारा क्या बिगाड किया है ? इस प्रकार के युद्धो मे तो ये भी मारे जाते हैं ! बस, यह दृश्य ही उनके वैराग्य का निमित्तकारण बन गया।

इस घटना के पश्चात् भूधर जी सोजत पहुचे और वहा से फिर जोधपुर गये। वहा पर उन्होने महाराज से निवेदन किया—महाराज, सेवक से आज तक जितनी सेवा बन सकी, उतनी हृदय से सहर्ष की। अब मैं आगे सेवा करने मे असमर्थ हू। महाराज ने बहुत आग्रह किया। मगर ये आगे सेवा करने के लिए तैयार नही हुए। और महाराज से आज्ञा लेकर नौकरी से अलग हो गये। इतना वचन अवश्य देते आये कि यदि कभी मेरी आवश्यकता प्रतीत हो तो मैं आपकी सेवा मे अवश्य उपस्थित हो जाऊ गा।

घर आकर बहुत समय तक यह विचार करते रहे कि आगे अपने जीवन को कैसे सुधारना चाहिए ? इसी विचार से आप एक अच्छे मार्ग-दर्शक की खोज मे निकले कि कोई सन्त-महात्मा मार्ग-दर्शक मिल जाय, तो उसकी सेवा मे रहकर आत्म-कल्याण करू ! उस समय यहा पर एक पोतियाबध (एक पात्री) धर्म चल पडा था। उसके अनुयायी केश-लु चन करते और साधु की सब क्रिया भी करते थे। परन्तु कहते यह थे पचमकाल मे साधु हो ही नही सकता है। उनका यह कथन आगम-विरुद्ध था। उस सम्प्रदाय के एक शिष्य कल्याण जी थे। वे घूमते हुए साचोर पहुचे। अनेक लोग उनका व्याख्यान सुनने के लिए पहुचे। भाई, जब कोई नई बात लोगो के सामने आती है, तब लोग विना आमत्रण के ही वहा पहुच जाते हैं। भले ही कोई किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का अनुयायी क्यो न हो ? लोग पहुँचे और उनके

वचन सुने। चूंकि उनकी बात नई थी, अपूर्व थी—अत. लोगो को उसे सुनने मे बड़ा आनन्द आया। भूधरजी भी उनसे प्रभावित हुए और उन्होंने सासारिक धन-दौलत और स्त्री-पुत्रादि को छोड़कर पोतियावध एकपात्री धर्म मे दीक्षित हो गये। उनसे पहिले पोरवाल जाति के धन्ना जी भी इस धर्म मे दीक्षित हो चुके थे। भूधर जी घूमते हुए मालवे मे उनसे मिले। वही पर धर्मदास जी महाराज से भी आपका मिलना हुआ। और उनके साथ चर्चा हुई। धर्मदासजी महाराज उससे नया परिवर्तन लाये और वि० स० १७२१ की कार्तिकवदी पचमी के दिन इक्कीस लोगो के साथ आपने अपना नया धर्म परिवर्तन किया। इस प्रकार धर्मदासजी महाराज के शिष्य बने धन्नाजी और उनके शिष्य बने भूधरजी। वे धर्मदासजी महाराज शिष्य के स्थान पर सथारा करके स्वर्ग पधार गये। तत्पश्चात् यह धन्नाजी की सम्प्रदाय कहलाने लगी। इन्होंने ग्रामानुग्राम विचरते हुए धर्म का खूब प्रचार किया। उस समय वे अपने विहार से मालव की भूमि को पवित्र कर रहे थे।

उस समय इधर जोधपुर महाराज के पास दीवान भडारी खीवसी, रघुनाथ सिंह जी और दीपसी थे। भडारी खीवसी जी जोधपुर के दीवान होते हुए भी दिल्ली चले गये। बादशाह का उन पर पूर्ण विश्वास था। खीवसी जो कुछ भी कहते थे, बादशाह उसे पूर्ण सत्य मानता था।

बादशाह के कई हुरमाए थी। उनमे एक बडी मर्जी की थी, बादशाह उस पर बहुत खुश थे। दूसरी कम मर्जी की थी, उसका उन्होंने निरादर कर दिया। बडी मर्जीवाली हुरमा के ऊपर कम मर्जीवाली हुरमा की दृष्टि जमी हुई थी कि किसी प्रकार इसको नीचे गिराया जाय। बदकिस्मती से उसकी शहजादी के गर्भ रह गया। इसका पता कम मर्जीवाली बेगम को चल गया। वह मनमे बहुत खुश हुई कि अब मैं उसे नीचे गिरा सकूगी। अवसर पाकर एक दिन वह बादशाह की सेवा मे हाजिर हुई और बोली—हुजूर, मैं कैसी भी हू, परन्तु आपको अपने खानदान का ख्याल तो रखना चाहिए। जिस हुरमा के ऊपर आपकी बेहद मिहरबानी है उसकी शहजादी ने कारनामे क्या है, इसका भी तो आप कुछ ख्याल करें। यह सुनते ही बादशाह शहजादी के महल मे गया और सख्त नाराज होते हुए उससे कहा—अरी नीच, तूने यह दुराचार क्या किया? शहजादी बोली—खुदावन्द, मैंने कोई दुराचार नही किया है। बादशाह और भी खफा होकर बोला—अरी, पाप करके भी सिरजोरी करती है और झूठ बोलती है? यह कहकर उसने दो चार हटर उसे लगाये। परन्तु वह बराबर यही कहती रही कि मैंने कोई पाप नही किया

है। तब बादशाह दरबार मे जाकर तख्त पर जा विराजे और सभी औलिया, फकीर, मौलवी और पडितो को बुलवाया। उनके आने पर बादशाह ने उन सबसे पूछा कि क्या विना हराम किये भी किसी को गर्भ रह सकता है? यह बात सुनकर सब लोग आश्चर्य-चकित होकर बोले—हुजूर, कही विना हराम के भी गर्भ रह सकता है? यह सब जानते हैं कि विना हराम के गर्भ नही रहता। तब बादशाह ने हुक्म दिया कि शहजादी का सिर काटकर उसे खदक मे डाल दिया जाय। जैसे ही बादशाह ने यह हुक्म दिया, वैसे ही खीवसीजी का आना हो गया। वे बोले—जहापनाह, आपने यह क्या हुक्म दिया है? बादशाह ने कहा—इस दुराचारिणी शहजादी ने मेरे खानदान को बदनाम कर दिया है। अब खीवसीजी बोले—जहापनाह, आप थोडी सी खामोशी रखिये। शहजादी से भूल हो सकती है। परन्तु उसे छिपाने की भी कोशिश करनी चाहिए। बादशाह बोले—ऐसा नही हो सकता। तब खीवसीजी ने कहा—हुजूर, मेरी प्रार्थना है कि एक बार मुझे उसे देखने का मौका दिया जाय। पहिले तो बादशाह ने कहा—उस नापाक का क्या मुह देखते हो? परन्तु अधिक आग्रह करने पर मिलने के लिए इजाजत दे दी। वे शहजादी के महल मे गये और उन्होने उसके सब अगो के ऊपर नजर डाली तो देखा कि किसी भी अग मे कोई विकार नही है। अगो की जाच से उन्हे विश्वास हो गया, कि इसके गर्भ किसी के साथ हराम करने से नही रहा है किन्तु किसी दूसरे ढग से रहा है। उन्होने इसके वाबत शहजादी से भी पूछताछ की। मगर उसने कसम खाकर कहा कि मैंने कोई दुराचार नही किया है। तब भडारीजी ने आकर बादशाह से कहा—हुजूर, उसने कोई अनाचार नही किया है। बादशाह ने कहा—यह तुम कैसे कहते हो? भडारी जी ने कहा—मैंने उसके सर्व-अगो की परीक्षा करके देख लिया है कि यह हराम का गर्भ नही है, किन्तु किसी अन्य कारण से रहा हुआ गर्भ है। जब वादशाह ने इसका प्रमाण मागा तो उन्होने कहा—हुजूर, मैं इसका शास्त्रीय प्रमाण सेवा मे पेश करूगा।

इसी बीच मालवा की ओर जाने का कोई जरूरी काम आगया तो खीवसीजी दो हजार सवार लेकर उधर जा रहे थे। रास्ते मे पादरुल नाम का गाव आया। वहा पूज्य धन्नाजी महाराज विराजे हुए थे और भूधरजी भी उनकी सेवा मे थे। खीवसीजी ने वहा डेरा डलवा दिया और उसी फौजी वेप मे कुछ जवानो के साथ उनके दर्शन-वन्दन के लिए गये। भूधरजी महाराज की दृष्टि उन पर पडी। उन्होने कहा—अरे, भडारी जी, आप यहा कैसे?

उन्होंने कहा महाराज, आप मुझे कैसे पहिचानते हैं ? उन्होंने कहा—भडारी जी आप मुझे पहिचानते है और मैं आपको पहिचानता हू । परन्तु वेष का परिवर्तन होने से आपने मुझ नही पहिचाना । तब खीवसीजी बोले—महाराज, आपका परिचय ? तब भूधरजी महाराज बोले—जब साधु हो गया, तब क्या परिचय देना ? मेरा भी जन्म मारवाड का है । तब खीवसीजी बोले—महाराज, परिचय तो पीछे लूगा । परन्तु पहिले मुझे यह बतलाइये कि क्या पुरुष के योग के बिना भी स्त्री के गर्भ रह सकता है ? उन्होंने कहा—हा भडारीजी, पाच कारणो से गर्भ रहता है । यह सुनते ही उनकी आखो मे रोशनी आगई । उन्होंने पूछा—वे पाच कारण कौन से हैं ? तब धन्नाजी महाराज ने कहा —

पहिला यह कि जिस तालाब, नदी, हौज आदि के स्थान पर पुरुष स्नान करते हो, उस स्थान पर स्त्री के स्नान करने से स्त्री के गर्भ रह जाता है । क्योकि उस स्थान के जल मे यदि पुरुष के वीर्य-कण मिले हुए हो और यदि स्त्री वहा पर नग्न होकरके स्नान करे तो वे वीर्य-कण योनिमे प्रवेश कर जाते है और उससे उसे गर्भ रह सकता है ।

दूसरा यह कि स्त्री को खुली छत पर नही सोना चाहिए । क्योकि वायु से उडकर आये हुये वीर्य-कण यदि अन्दर प्रवेश कर जावे तो गर्भ रह सकता है ।

तीसरा यह कि किसी स्थान पर पुरुष का वीर्य पडा हो और उसी स्थान पर ऋतुमती स्त्री बैठ जाय, तो भी गर्भ रह सकता है ।

चौथा यह कि दैवयोग से भी गर्भ रह सकता है । और पाचवा कारण तो सभी जानते हैं कि पुरुष के साथ सयोग होने पर गर्भ रहता है ।

ये सब बाते बिलकुल नवीन थी । इससे पहिले कभी उन्होंने ऐसी बातें नही सुनी थी । अत खीवसीजी बोले—महाराज, इन बातो का कोई शास्त्रीय आधार भी है, या केवल सुनी-सुनाई कह रहे हैं । तब भूधरजी ने कहा—स्थानाङ्ग सूत्रजी के पाचवे ठाणे मे यह वर्णन आया है । और वेद-स्मृति के पाचवे श्लोक मे भी यह वर्णन है । तब आनन्द से विभोर होकर खीवसीजी बोले—महाराज यह बात तो आपने बडे मार्के की बताई । मेरी जो शका थी, वह आपने दूर कर दी । परन्तु प्रमाण पक्का होना चाहिए । भूधरजी महाराज बोले – प्रमाण पक्का ही है इसमे आप किसी प्रकार की शका नही करे । उन्होंने आगे बताया कि प्रारम्भ के तीन कारणो से यदि गर्भ रहता है, तो उसके शरीर मे हड्डिया नही होती है । अन्तिम दो कारणो से गर्भ रहने पर हड्डियां होती हैं । यह सुन कर खीवसी जी बोले—यह बात आपने

और भी अधिक मार्के की बताई है। इससे मैं अब शहजादी के गर्भ का यथार्थ निर्णय कर सकू गा। फिर कहा—महाराज, आप भक्तो के साथ प्रतिदिन माथापच्ची करते हैं फिर भी इने-गिने चेले बनते हैं। किन्तु यदि आपकी उक्त बात सत्य सिद्ध हो गई, तो मैं आपके हजारो चेले बनवा दू गा।

इसके पश्चात् खीवसीजी सरकारी काम करके सीधे दिल्ली पहुचे और काम का सारा ब्योरा सुना दिया। तत्पश्चात् कहा—जहापनाह—मैंने कहा था कि पाच कारणो से गर्भ रहता है। यह सुनकर बादशाह बोला—तुम चाहे कुछ भी कहो, मगर मुझे तुम्हारी यह बात नही जचती है। फिर तू जोधपुर का मुसद्दी है। कही से घड करके यह बात कह रहा है। तब खीवसीजी बोले—जहापनाह, बिना भोग के जो गर्भ रहता है, उसमे हड्डिया नही होती हैं, केवल रुई के थैले के समान मास का पिण्ड होता है। तब बादशाह बोला —यदि वह बात है, तो मैं शहजादी को नही मारूँगा। इसके पश्चात् बादशाह ने शहजादी के महल के चारो ओर सगीन पहरा लगवा दिया। यथा समय प्रसूति होने पर जब उसे बादशाह के हाथ पर रखा गया तो वह उन्हे वह रुई के थैले के समान हलका प्रतीत हुआ। बादशाह यह देखते ही बोल उठे गजब !! यदि भडारी खीवसी नही होता, तो मैं खुदा के घर मे गुनहगार हो जाता। और बेचारी शहजादी बेकसूर ही मारी जाती। तब खीवसीजी को बुलाकर कहा - तू तो बडी अजीब बात लाया है। अरे, बता, यह कहा से लाया ? तब उन्होने कहा -- हुजूर, मैं अपने गुरु के पास से लाया हू। बादशाह बोला — तेरे गुरु ऐसे आलिम-फाजिल हैं जो ऐसी भी बाते बता देते हैं। ऐसे गुरु के तो हम भी दर्शन करना चाहते हैं। तब खीवसीजी ने कहा—जहापनाह, आप बादशाह हैं और वे बादशाहो के भी बादशाह हैं। वे किसी के बुलाये नही आते है। और यदि उनके जच जावे तो स्वय आ भी जाते हैं। तब बादशाह बोले—एक बार तू उनके पास जाकर के कह तो सही। अन्यथा हम चलेगे। तब भडारीजी उनके पास गये। उन्हे वन्दन नमस्कार करके बैठ गये और कि मैं आपका श्रावक हू, अत मुझे श्रावकधर्म सुनाओ। तब गुरु महाराज ने गुरु मत्र सुनाकर श्रावक-धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् भडारीजी ने प्रार्थना की कि महाराज, आप दिल्ली पधारो। बादशाह आपका इन्तजार कर रहा है। तब उन्होने कहा-जब जैसा अवसर होगा, वैसा हो जायगा। परन्तु फरसने का भाव है। तब भडारीजी वहा पर ठहर गये और विहार मे उनके साथ हो लिये। तब गुरु महाराज ने कहा — 'नो कप्पइ' अर्थात् गृहस्थ के साथ विहार नही कल्पता है। तब भडारीजी ने सोचा कि गुरु महाराज के साथ मे नही रहना। किन्तु तीन

लोग आगे या पीछे रहना ठीक होगा। क्योंकि ठौर-ठौर पर धर्म के द्वेषी भी पाये जाते है। उन्हे कोई कष्ट न हो, इसलिए उनके आगे या पीछे चलना ठीक रहेगा।

रास्ते मे जाते हुए सन्तो को अनेक कष्ट भी सहन करने पडे। जाते हुए जब भरतपुर पहुचे तो वहा पर गुरु महाराज ने पालीवाल जैनी नारायणदासजी को दीक्षा दी। आगे चलते हुए जब तीन मुकाम ही दिल्ली पहुचने के रह तब भडारीजी चले गये और जाकर बादशाह से निवेदन किया कि मेरे गुरु आ रहे है। तब बादशाह ने कहा—उनके स्वागत के लिए खूब जोरदार तैयारी करो और धूम-धाम से उन्हे लेकर आओ। बडे लोगो के मन मे कोई बात जचनी चाहिए। ये मोटापना नही रखते है। बादशाह के हुक्म से सब प्रकार की तैयारी की गई और लवाजमे के साथ खीवसीजी गुरु महाराज को लेने के लिए सामने गये। जब कोस भर गुरु महाराज दूर थे तब भडारीजी सवारी से उतर कर पैदल ही उनके पास पहुचे और उन्हे नमस्कार किया। सामने आये हुए लवाजमे को देखकर गुरु महाराज बोले—भडारीजी, यह क्या फितूर है? हमे ऐसे आडम्बर की आवश्यकता नही है। हम तेरे साथ नही आवेगे। तब उन्होने जाकर बादशाह को इत्तिला कर दी। तब बादशाह भी पेशवाई को गये। गुरु महाराज ने वही चौमासा कर दिया—जहा पर कि बारहदरी वाला मकान है। चौमासे भर खूब धर्म को दिपाया।

एक दिन अवसर पाकर भडारीजी ने कहा—गुरु महाराज, आपने बाहिर प्रकाश किया। परन्तु जन्मभूमि मारवाड मे अधेरा क्यो? तब उन्होने कहा—वहा पर जती लोग बहुत तकलीफ देते है। फिर वहा जाकर क्यो व्यर्थ क्लेश मे पडा जाय। जब भडारीजी के आग्रह पर चौमासे के बाद उन्होंने दिल्ली से मारवाड की ओर विहार किया तो बादशाह का फरमान बाईस रजवाडो मे चला गया कि आपके उधर पूज्य महाराज विहार करते हुए आ रहे हैं, अत उनकी सर्व प्रकार से सभाल रखी जावे। यदि किसी प्रकार की कोई शिकायत आई तो राज्य जब्त कर लिया जावेगा। बादशाह की ओर से शाही फरमान के निकल जाने पर भी गुरु महाराज ने कोई फैलाव नही कराया। उन्हे मारवाड जाते हुए अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पडे। परन्तु वे सबको सहन करते हुए सवत् १७८१ मे मेडते पधारे। धन्नाजी को कई कष्ट उठाने पडे। वे एक चादर ओढते थे और निरन्तर एकान्तर करते थे। जब शारीरिक शिथिलता अधिक आ गई तो वहा विराजना पडा। वह कालीवाला उपासरा कहलाता है, वहा पर १७८४ की साल अ... पान हो गया। उनके दिवगत होने के पश्चात् भूधरजी महाराज

और अनेक गावो को फरसते हुये कालू पधारे। वहा पर सैकडो घर दिगम्बरियो के और ओसवालो के थे। वहा पर पाटनियो की एक हताई थी, वे वहा पर आतापना लेते थे। कालू के चारो ओर नदी और तीन चौक हैं। एकबार आप लीलडिये चौक की ओर पधारे और नदी मे आतापना ले रहे थे। उनके त्याग और तपश्चरण का वर्णन नही किया जा सकता है। जब वे आतापना ले रहे थे तब रामा नाम का जाट अपने बेरे पर जा रहा था। उसके हाथ मे रस्सी थी और देवला कधे पर था। उसने इन्हे नदी मे लौटते हुये देखा तो सोचा कि ये नदी मे तपस्या कर रहे है और महाजनो के पास धन है तो ये उनका ही भला करते हैं। ये तपस्या करते हैं, तो हमारे किस काम के हैं ? ऐसा विचार कर उन्हे रस्सी से पीटा और देबले से टाग पकड कर घसीट कर-काटो मे डाल दिया। परन्तु वे तो समता के सागर और दया के पुज थे। तभी तो कहा है—

राख सके तो राख, क्षमा सुखकारी।
ये पाप तापकर दग्ध देख शिवपुर सुखकारी॥

जो ऐसे फौजी अफसर थे और जान को जोखम मे डाल सकते थे तो वे ही ऐसे दुख को सहन करते थे। ढीली धोती के बनिये नही सहन कर सकते हैं।

उधर से जाते हुए एक पुरोहितजी की दृष्टि उन पर पडी, तो उसने गाव मे जाकर महाजनो से कहा—अरे महाजनो, तुम लोग यहा दुकानो पर आराम से बैठे हो और रामा जाट तुम्हारे गुरु को मार रहा है। सुनते ही सब महाजन वहा पहुचे, तब तक रामा जाट वहा से चला गया था। गुरु महाराज के शरीर से खून बह रहा था और वे काटो पडे थे। लोगो ने पास जाकर कहा—अन्नदाता, यह क्या हुआ ? गुरु महाराज ने कुछ उत्तर नही दिया। तब हवलदार आया। उसने रामा जाट को बुलाया और उसे जूतो से पीटा। लोग गुरु महाराज को उठाकर के हताई मे ले गये और उनकी मलहम पट्टी की। लोग बोले कि उसने गुरु महाराज को बडा कष्ट पहुचाया, तो वह भी सुख मे नही है, उसके जूते पड रहे है। तब पूज्यजी ने कहा—मेरे अन्न-जल का त्याग है। तब जाकर लोगो ने हवालदार से उसे छुडवाया। वह रामा जाट आकर के पूज्यजी के पैरो मे पडा और कहने लगा—मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। मुझे आप माफ करे। तब पूज्यजी ने कहा—तू दारू पीने और मास को खाने का त्याग कर दे, तो तेरे सब प्रकार से आनन्द हो जायगा। इस प्रकार उसे नियम दिलाकर पीछे उन्होने अन्न-जल ग्रहण किया।

वि० स० १७८७ मे आपने आगे विहार किया और रघुनाथजी को अपना शिष्य बनाया। जेठवदी दोज की दीक्षा रघुनाथजी की थी और १७८७ मे ही जतसीजी की दीक्षा थी। स० १७८३ के मगसिर वदी दोज को जयमलजी उनके शिष्य बने। श्रीभूधरजी के नौ चेले हुए। ये नवो ही नौ निधान के समान थे। उन्होने दीक्षा स० १७५४ मे ली थी। सवत् १८०४ की साल विजयादशमी के दिन ही वीर थुई की सज्झाय करते हुये ये स्वर्गवासी हुए। जब ये सज्झाय कर रहे थे तब सन्तो ने आकर कहा कि पारणा करेंगे? तब आपने कहा—पारणा नही करूँगा। हमारे तो सथारा है। अन्तिम समय सज्झाय करते-करते ही खडे हो गये और भीत का सहारा लेते ही प्राण-पखेरू उड गये। वे नीचे बैठे नही।

भाइयो, उनका जन्म भी आज के ही दिन स० १७१२ की विजयादशमी को हुआ था और स० १८०४ मे आज के ही दिन उनका स्वर्गवास हुआ था। उन महापुरुष के जीवन का यह दिग्दर्शन आप लोगो को सक्षेप मे कराया है। हमे आज के दिन से ऐसे ही वीर बनकर कर्म शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

वि० स० २०२७ आसोजसुदि १०
जोधपुर

●

७ | मन भी धवल रखिए !

भाइयो, अभी आप लोगो के सामने श्रीपाल का कथानक चल रहा था। उसी जमाने मे धवल सेठ हुआ। उसकी छल-प्रपच भरी कुटिलनीति से आज दिन तक उसकी अपयश-भरी बाते आप लोगो के सामने आ रही है। विचारने की बात यह है कि उस जमाने मे धवल सेठ तो एक ही हुआ था। परन्तु आज उस धवल सेठ के दुर्गुणो के धारक यदि हम टटोले और छान-बीन करे तो क्या कम मिलेंगे ? नही; किन्तु बहुत मिलेंगे। उस धवल सेठ को हम बुरा कहते है। परन्तु आज छिपे और चौडे हमको अनेक धवल सेठ मिल रहे हैं। क्यो मिल रहे हैं ? क्या कारण है कि उस जमाने मे एक ही वह इतना प्रख्यात हो गया ? भाई, बात यह है कि जब शान्ति का वातावरण होता है, धर्म का प्रसारण होता है और भले आदमी हमे दृष्टिगोचर होते है, तब यदि एक-आध इस प्रकार का दुराचारी मिल जाय तो वह सर्वत्र प्रख्यात हुए विना नही रहता है। जैसे यह सुन्दर मकान है, उत्तम-उत्तम वस्तुए यथास्थान रखी हुई हैं और चारो ओर से सौरभमय वातावरण का प्रसार हो रहा है। अब यदि यहा पर किसी कोने मे किसी जानवर का मृत कलेवर पडा हो और उसकी दुर्गन्ध आती हो तो क्या वह सहन होगी ? कभी नही होगी। दुनिया तुरन्त कहेगी कि यह दुर्गन्ध कहा से आरही है। यह सुरम्य स्थान तो दुर्गन्ध योग्य नही है। अत उस दुर्गन्ध फैलाने वाले कलेवर को वहा से निकाल कर तुरन्त बाहिर फेक देते हैं। परन्तु जहा सारा मकान ही दुर्गन्ध से भरा हुआ

हो, तो क्या कभी किसी को उस विषय में कहने का मौका आता है ? नहीं आता। उस जमाने में धवल सेठ जैसे बहुत कम पैदा होते थे। उस समय को लोग सतयुग या सुषम-सुषमा काल कहते थे। परन्तु आज मनुष्य की प्रकृति और उसका जीवन लोभ-लालच में इतना ओत-प्रोत है कि जिसका कोई पार नहीं है। मनुष्य की ज्यों ज्यों तृष्णा बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उसमें अन्याचार-अनाचार आकर के समाविष्ट होते जाते हैं। किन्तु जिसकी तृष्णा कम है, जिसने अपने ममत्व भाव पर अधिकार कर लिया है और यह समझता है कि अब मुझे और अधिक की क्या आवश्यकता है ? इस मिट्टी के पुतले को पालना है—इसे भाड़ा देना है, तथा इस पुतले के साथ जिस-जिसका सम्बन्ध है और जिन-जिनका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर आकर पड़ा है, तो मुझे उनका पालन-पोषण करना है। इसके लिए मुझे भोजन और वस्त्रों की आवश्यकता है। जितने से इनकी पूर्ति हो जाती है, उतने से अधिक मुझे धन की तृष्णा नहीं है। यदि मैं अधिक धन की तृष्णा करता हूं तो यह मेरे लिए बेकार ही नहीं है, अपितु बखेड़ा है और धन अशान्ति-कारक है। आप बताइये कि ऐसे विचारों का आदमी क्या अनावश्यक धन को बढ़ाने के लिए घोर दुष्कर्म करेगा ? कभी नहीं करेगा। किन्तु जिसकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ रही है और जिसकी यह कामना है कि मुझे तो अरावली के पहाड़ और आबू के पहाड़ जैसा धन का ढेर करना है, तो क्या वह दुर्योधन की नीति नहीं अपनायेगा और क्या वह धवल सेठ जैसा नहीं बनेगा ? उसके लिए तो कोई मरे, या जिये, या बर्बाद हो जाय, इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं है। जिसे तृष्णा का भूत लगा हुआ है, वह इन बातों का कोई विचार नहीं करेगा। यदि लोग उससे कुछ कहते भी हैं, तो भी क्या उसे कुछ लाज-शर्म आती है ? नहीं आती है। क्योंकि उसके सिर पर तृष्णा का भूत सवार है। नीतिकार कहते हैं कि—

> अति लोभो न कर्तव्यो लोभेन परित्यज्यते ।
> अति लोभप्रसंगेन सागर सागर गत ॥

अधिक लोभ नहीं करना चाहिए, क्योंकि लोभ का फल बहुत ही खराब होता है। देखो—पूर्व काल में सागर नामका सेठ सागर (समुद्र) में डूब कर मरा। [illegible] सेठ जिसके पास ९९ करोड़ की पूंजी थी और रत्नों के भरे हुए [illegible] थे। परन्तु वह लोभ के कारण [illegible] ही तेल के साथ खाता था। [illegible] के लिए [illegible] का [illegible]—वह भी आधा [illegible] और [illegible] था। इतनी अधिक पूंजी होने पर भी वह इतना अधिक [illegible] था कि [illegible] भी वह खर्च नहीं कर सकता था। [illegible]

पडौसी उसकी पूजी का आनन्द ले सकते थे ? नही। तब क्या ऐसा लोभी मनुष्य ४८ मिनिट की सामायिक करेगा ? क्या वह धर्मस्थान मे बैठ कर स्थिरता से व्याख्यान सुन सकेगा ? और क्या सवर-पौषध आदि कर सकेगा ? नही। उसके तो केवल एक ही धुन है कि यदि एक भी मिनिट इन धर्म-कार्यों मे लगा दिया तो धन कमाने मे कमी रह जायगी। उसे रात-दिन, चौबीसो घटे ही धन कमाने का भूत सवार रहता है। स्वप्न भी वह ऐसे ही देखता है। यदि भाग्यवश कोई अडचन पैदा हो गई, या कोई रुकावट आगई तो उसकी पूर्त्ति मे ही लगा रहता है। उसे एक क्षण को भी सुख-शान्ति नसीब नही है। जो धन के लिए स्वय दु ख उठाता है वह दूसरो के दु खो की क्या परवाह करेगा ? उसे दूसरो से क्या लेना देना है ?

अनीति का बोलबाला

भाइयो, आज आपके सामने देश की माली हालत का यथार्थ चित्र उपस्थित है। एक भाई जिस पर किसी ने मुकद्दमा दायर किया हुआ है, वह घर के सब काम छोड कर मुकद्दमे की पैरवी करने के लिये सर्दी, गर्मी, वर्षा के होते हुए भी अदालत जाता है और हाजिर होता है। जज कहता है— आज मुझे अवकाश नही है, अत आगे पेशी बढा दो। यह सुनकर उसे कितना दु ख होता है। इस प्रकार वह एक-दो वार नही, अनेक वार तारीखो पर हाजिर होता है, मगर उसका मुकद्दमा पुकारा ही नही जाता है और उसे अपना बयान देने का अवसर ही नही प्राप्त होता है। अन्त मे वह अत्यन्त दु खी होकर लोगो से पूछता है कि अब मैं क्या करूँ ? कुछ लोग जज के मुर्गे बने हुये घूमते रहते है, वे कहते है कि क्या करो। अरे, कुछ भेंट-पूजा करो। जब वह भेंट-पूजा कर आता है तब कही मुकद्दमे की कार्यवाही शुरू होती है। कार्यवाही शुरू होने पर भी अनेक तारीखे रखी जाती है। क्योकि अभी पूजा मे कमी रह गई है, अतः पेशिया बढा-बढा करके परेशान किया जाता है। यदि निर्लोभी जज हो तो एक-दो पेशी मे ही फैसला सुना देता है। परन्तु जहा रिश्वत खाने की आदत पडी हुई है वहा जल्दी फैसलाकर देना कहा सभव है ? भाई ऐसे जजो को भी धवल सेठ के भाई-बन्धु ही समझना चाहिये, जो नाना प्रकार के अनीति मार्गों से धन-सचय करने मे सलग्न रहते हैं।

धवल सेठ के सामने थे श्रीपाल जैसे उपकारी, दयालु और सरल स्वभावी व्यक्ति। परन्तु लोभ के वशीभूत होकर वह उनको भी मारने के लिए तैयार हो गया। फिर वह दूसरो की तो क्या दया पालेगा ? आज लोगो मे धवल

पाताल जैसा अन्तर दृष्टिगोचर होगा। फिर कैसे उनका मिलान और समन्वय किया जाय ? उस काल मे जो लोग कोयले से भी अधिक काले थे, रग-रग मे जिनके दुराचार भरा हुआ था और जो किसी भी सत पुरुष की सगति मे जाने को तैयार नही थे और न किसी महापुरुष के वचन ही सुनना चाहते थे, ऐसे लोग भी अवसर मिलने पर और महापुरुषो का जरा सा प्रसाद पाने पर कोयले से एक दम हीरा बन गए। आज के वैज्ञानिक कहते है कि कोयला ही एक निश्चित ताप मान पाकर के हीरा रूप से परिणत हो जाता है। भाई, मनुष्य काले से उज्ज्वल बने कब ? जब कि उनके बनने की हार्दिक भावना हो। जब तक स्वय को उज्ज्वल बनाने की हार्दिक भावना नही हो, तब तक कोई भी व्यक्ति उज्ज्वल नही बन सकता है।

दस्युराज रौहिणेय

भाइयो हमारे सामने ऐसा पौराणिक उदाहरण (रौहिणेय का) उपस्थित है कि पिता पुत्र से कहता है —बेटा, अपन लोग जन्म-जात चोर हैं और अपना जीवन-निर्वाह चोरी से ही होता है। यदि चोरी न करेंगे तो चोर कुल के कलक कहे जायेंगे। अत मेरे बाद तुम अपने घराने की परम्परा को भली प्रकार निभाना। पुत्र कहता है—पिताजी, मुझे आपके वचन शिरोधार्य हैं, मैं कुल-परम्परागत धर्म का भली भाति से निर्वाह करूँगा। पुत्र से बाप कहता है कि देख, यदि कभी आते-जाते निर्ग्रन्थ ज्ञातृ पुत्र भगवान् महावीर मार्ग मे मिल जायें तो भूल करके भी उनके दर्शन कभी मत करना। न उनके वचन ही सुनना। यदि तू सचमुच मे मेरा पुत्र है तो मेरी इस शिक्षा को सदा ध्यान मे रखना और उस पर सदा अमल करना। पुत्र कहता है—पिताजी, मुझे आपकी ये सब शिक्षाएँ और आज्ञाएँ मान्य है। मैं कभी भी इनके प्रतिकूल नही चलूँगा। इस प्रकार वह चोर अपने पुत्र को शिक्षा देकर मर गया। आप लोग बतायें कि उसकी इन शिक्षाओ को भली कहा जाय, या बुरी ? ये पुण्योपार्जक हैं या पापास्रवकी कारण हैं ? ये बुरी है और पापास्रव की कारण है। परन्तु जिन्हे पर-भव का भय ही नही है, तो उनको कहने का कुछ अवसर भी नही है।

बाप के मरने के बाद उसका लडका चोरो का सरदार बन गया। और अपने बाप से भी बढकर खूँख्वार डाकू हो गया। उसके पास ऐसी तरकीबें और विद्यायें थी कि उसे कोई पकड नही पाता था। वह प्रति दिन राजगृह नगर मे डाके डालता और लोगो को लूट कर चला जाता था। सारे नगर मे खलबली ही मच गई। जहाँ राजा श्रेणिक जैसे प्रतापी, तेजस्वी और न्यायमूर्ति

नगर हो और बुद्धि के निधान और परमकुशल अभयकुमार जैसे मंत्री हों, फिर भी आये दिन उस नगर में चोरियाँ हों और डाके पड़े, और फिर भी चोर पकड़ा न जाये ? यह सर्वत्र चर्चा होने लगी। और धीरे-धीरे यह बात श्रेणिक के कान तक जा पहुँची। श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाकर कहा — कुमार, नगर में एक लम्बे समय से चोरियाँ हो रही हैं और डाके पड़ रहे हैं। फिर भी तुमने अब तक चोर को नहीं पकड़ा ! सारे राज्य में मेरी बदनामी हो रही है। अब तुम उसे पकड़ कर शीघ्र मेरे सामने हाजिर करो। अपराध के अनुसार उसके साथ भी न्यायोचित व्यवहार किया जायगा। भाई, राजा न्यायमूर्ति होता है। वह न्याय की तुला पर पुत्र, मित्र और शत्रु सबको समान रूप से तोलता है वह किसी का लिहाज नहीं करता है। श्रेणिक का आदेश सुनते ही अभयकुमार उसे शिरोधार्य करके अपने स्थान पर आये और उन्होंने नगर के सब कोतवालों और अधिकारियों को बुलाकर के आज्ञा दी कि प्रतिदिन चोरी करने वाले और डाका डालने वाले डाकू का तलाश कर पता लगाया जाय। [illegible] न होगा। यह कह कर अभयकुमार ने सबको विसर्जित किया और स्वयं भी उसका पता लगाने के लिए सन्नद्ध हो गये।

नगर-रक्षकों ने सब ओर से नाकाबन्दी कर दी और प्रत्येक दरवाजे और खिड़की पर पहरेदार बैठा दिये गये। रात-भर गुप्तचर नगर में गुप्त वेष में घूमते रहे। इस प्रकार अनेक दिन बीत जाने पर भी चोर का कोई पता नहीं चला। तब अभयकुमार बड़े चिन्तित हुए और गुप्तवेष में स्वयं ही रात भर नगर के चक्कर काटने लगे। पर भाई, वह चोर भी बड़ा सतर्क और चालाक था। उसका नाम रोहिणिया था, क्योंकि उसका जन्म रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। यदि रोहिणी नक्षत्र हो और साथ में मंगलवार का दिन हो, तो उस दिन का जन्मा हुआ पुरुष अवश्य चोर होता है। भले ही वह किसी भी बड़े घराने में क्यों न उत्पन्न हुआ हो, पर उसमें चोरी की आदत आए बिना नहीं रहेगी। श्री कृष्णचन्द्र भी रोहिणी नक्षत्र में जन्मे हुए थे, तो उन्होंने भी बचपन में गोपालों के घरों में दूध दही की चोरियाँ की हैं। चोरी [illegible] की हो, चाहे [illegible] की, वह तो चोरी ही है। कहावत भी है कि 'तृण चोर सो वणिक चोर' अर्थात् जो तिनके की भी चोरी करता है, वह [illegible] के समान ही चोर है। इसी प्रकार जिसके जन्म [illegible] और केतु आ जावें और फिर दृष्टि लग्न में [illegible] होता। उसके [illegible] बुद्धिमानों के लिए भी सम्भव नहीं है। भाई, [illegible]

तो ग्रहो की बातें हैं। दुनिया कहती है कि आज ज्योतिष का जमाना लद गया। अब तो वैज्ञानिक चन्द्रमा तक जा पहुचे हैं। परन्तु मैं कहता हू कि वे भले ही कही पहुच जावें, पर जन्म-समय के पडे ग्रहमानो को कोई भी अन्यथा नही कर सकता है। ये ग्रह-नक्षत्र किसी को भला या बुरा कोई फल नही देते हैं ? वे तो मनुष्य के प्रारब्ध के सूचक हैं और जो व्यक्ति जैसा प्रारब्ध सचित करके आता है, वह वैसे फल को भोगता ही है।

प्रभु के वचन कानो में

हाँ, तो एक बार वह रोहिणिया चोर कही जा रहा था। मार्ग मे भगवान् महावीर का समवसरण आ गया। प्रभु की वाणी विना लाउडस्पीकर के ही चार-चार कोस तक चारो ओर बराबर सुनाई दे रही थी। अत. वह रोहिणिया चोर के कानो तक भी पहुची। उसने किसी आने-जाने वाले व्यक्ति से पूछा कि यह किसकी आवाज सुनाई दे रही है ? उसने उत्तर दिया—यह भगवान महावीर की आवाज है। वे समवसरण मे उपदेश दे रहे हैं। यह सुनते ही उसे याद आया कि मरते समय मेरे पिता ने इनकी वाणी को नही सुनने की प्रतिज्ञा कराई थी। अत उसने तुरन्त अपने दोनो कानो मे अगु-लियाँ डाल दी। इस प्रकार कानो मे अगुली डाले हुये कुछ दूर आगे चला कि एक ऐसा तेज काटा लगा कि उसके जूते को चीर कर वह पैर के भीतर घुस गया। भाई, काटा भी एक भारी बला है। मारवाडी मे कहावत है कि चोर की माँ ने चोर से कहा—तेरे शरीर में कही घाव लग जाये तो कोई बात नही, परन्तु पैर मे काटा नही लगना चाहिये। पैर मे काटा लगते उसे बैठना पडा। वह कान मे से एक हाथ को हटा कर काटे को खीचने लगा। मगर वह इतना गहरा घुस गया था कि प्रयत्न करने पर भी काटा नही निकला। तब दूसरे हाथ को भी कान के पास से हटा कर दोनो हाथो से जोर लगाकर उसे खीचा। इस समय उसके दोनो कान खुल गये थे, अत भगवान की देशना नही चाहते हुए भी उसके कानो मे पड गई। उस समय भगवान् कह रहे थे कि देवताओ की पहिचान के चार चिन्ह हैं— एक तो उनके शरीर की प्रतिच्छाया नही पडती है, दूसरे वे भूमि का स्पर्श नही करते हैं, तीसरे उनके नेत्रो की पलकें नही झपती है और चौथे उनकी पहिनी हुई माला कभी मुरझाती नही है। यदि ये चारो चिन्ह दृष्टिगोचर हो तो उसे देव मानो। अन्यथा पाखडी समझो। ये चारो ही वाते उसके हृदय मे उतर गई। वह काटा निकालकर वहा से चल दिया और मन मे सोचने लगा कि आज तो बहुत बुरा हुआ जो वाप की शिक्षा मे विपरीत

पाप हो गया। यद्यपि मैंने अपनी इच्छा से उनकी वाणी नहीं सुनी, अनिच्छा पूर्वक परवश सुनने में आ गई। पर हुआ तो यह कार्य पिता की आज्ञा के प्रतिकूल ही है। अब वह ज्यों-ज्यों उन सुनी बातों को भूलने का प्रयत्न करने लगा, त्यों-त्यों वे हृदय में और भी अधिक घर करने लगीं। भाई, मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है कि वह जिस बात को याद करना चाहे, वह याद नहीं होती। और वह जिसे भूलना चाहे, तो उसे भूल नहीं सकता। अतः उसे वे सारी बातें याद हो गईं।

इस प्रकार वह रोहिणिया चोर जब दुविधा में पड़ा हुआ जा रहा था, तभी अभयकुमार घोड़े पर चढ़े हुए भगवान के दर्शन को आये। उनकी दृष्टि सहसा रोहिणिया चोर पर पड़ गई, मानो परिन्दों को दाना दृष्टि गोचर हो गया हो। उसे देखते ही उन्हें विश्वास हो गया कि नगर-भर में तहलका मचानेवाला चोर यही है। अतः वे तुरन्त घोड़े पर से उतरे और उसका हाथ पकड़ लिया। और उससे पूछा—तेरा नाम क्या है? कहां रहता है और क्या धंधा करता है? रोहिणिया मन में विचारने लगा कि आज तो मैं चक्कर में आ गया हूं। मेरे बापने मुझे शिक्षा दी थी कि भगवान महावीर की वाणी मत सुनना। परन्तु नहीं चाहते हुए भी वह मेरे कानों में पड़ गई है, अतः आज मैं अभयकुमार के हाथ पकड़ा गया! अरे, अन्य पुरुष तो दूध में से मक्खन निकालते हैं। परन्तु ये तो पानी में से भी मक्खन निकालते हैं। अब वह संभला और उसने कहा कि मैं गांव में रहता हूं। इसी प्रकार उसने अपना नाम, बाप का नाम और धंधा भी बता दिया। अभयकुमार उसे पकड़ कर अपने स्थान पर ले आये। और उन्होंने गुप्त रीति से आदमी भेजकर तपास कराया, तो जैसा उसने बतलाया था, सब बातें वैसी की वैसी मिल गईं। अब अभयकुमार बड़े विचार में पड़ गये। वे सोचने लगे कि चोर तो यही है। परन्तु जांच करने पर तो यह साहूकार सिद्ध हो रहा है। क्योंकि इसने जैसा अपना परिचय दिया, वह तपासने पर बिलकुल सही पाया गया है। परन्तु [illegible] नहीं है। तब रोहिणिया ने कहा—कि आपने मेरे विषय में सब पूछ-ताछ कर लिया है, तब मुझे तंग क्यों करते हैं और छोड़ते क्यों नहीं हैं? अभयकुमार ने कहा—भाई, तुम खूब होशियार आदमी हो। अतः मैं तुम्हें राज्य का कोई ऊंचा विभाग सौंपना चाहता हूं। इसके पहिले तुम्हें थोड़ी शिक्षा (ट्रेनिंग) लेनी पड़ेगी। इसलिए तुम्हें रोक रहा हूं। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। इस बीच में अभयकुमार ने उसकी और भी उपायों से आजमाइश की। परन्तु वह इनमें भी सच्चा निकल गया। तब अभयकुमार ने [illegible] बनवाया। उसकी सजावट बहुत सुन्दर देवलोक जैसी कराई।

महल के मध्य वाले बडे कमरे मे बढिया गादी-ताकी लगवा दिये गये। उन्होने उस चोर को एक दिन बढिया भोजन कराके चन्द्रहास नाम की मदिरा पिलाई और उस महल मे सोने के लिए भेज दिया। वहा पर उसकी सेवा मे चार वारागनाए जो सर्वांग सुन्दरी और नवयौवना थी—भेज दी। वह रोहिणिया चोर उस महल मे जाते ही मदिरा के नशे मे सो गया। अभयकुमार उसका भेद जानने के लिए महल के बाहिर बैठ गये।

रोहिणिया को गहरी नीद मे सोते हुए रात्रि के तीन पहर बीत गये। चौथे पहर मे उसकी नीद खुली, और उसका नशा उतरा, तो क्या देखता है कि ओह, यह तो बडा सुन्दर महल है और देवागनाए जैसी रूपवती चार नवयौवनाए मेरे चारो ओर खडी है? उन्हे देखकर यह कुछ विस्मित हुआ और सोचने लगा कि मैं कहा हू और ये स्त्रिया कौन है? तभी उन स्त्रियो ने पूछा कि आपने पूर्वभव मे क्या दान दिया है? अथवा शील का पालन किया है, अथवा तपस्या की है अथवा किस धर्म की आराधना की है, जिससे कि आप इस स्वर्ग लोक मे आये है? और हमारे स्वामी बने हैं? यह सुनकर रोहिणिया सोचने लगा कि क्या मैं मरकर स्वर्ग लोक मे उत्पन्न हुआ हू और ये अप्सरायें मेरी सेवा के लिए उपस्थित हैं? इतने मे उसका नशा बिलकुल उतर गया और वह पूरे होश मे आगया। तब उसने अपने दिमाग को स्थिर करके सोचा कि यह स्वर्ग नही है और न ये अप्सराए ही हैं किन्तु यह तो अभयकुमार का षड्यत्र सा ज्ञात होता है। तभी उसे भगवान महावीर की देशना से सुनी हुई वे चारो बाते याद आई कि देवता भूमि का स्पर्श नही करते। सो ये तो चारो ही भूमि पर खडी हुई है। देवता नेत्र नही टिमकारते, सो ये तो नेत्रो को टिमकार रही है। देवताओ के शरीर की प्रतिच्छाया नही पडती है, सो इनके शरीर की प्रतिच्छाया भी पड रही है और इनके गले की मालाए भी मुरझा रही हैं। अत निश्चय से ये देविया नही हैं, किन्तु मनुष्यनी ही है। मैंने लोगो से सुना है कि भगवान महावीर के वचन अन्यथा नही होते है। इसलिए न मैं मरा हू, नही यह स्वर्ग है और न ये देविया ही है। मै वही रोहिणिया चोर ही हू। न मैंने कभी दान दिया है, न शील पाला है और नही धर्म की आराधना ही की है। तब निश्चय ही मेरा भेद लेने के लिए अभयकुमार ने यह कपट जाल रचा है। यह सोचकर वह प्रकट मे उन देवियो से बोला—मैंने हजारो व्यक्तियो की सेवा की है, तब यह स्वर्ग मिला है और आप लोगो को पाया है। तब उन स्त्रियो ने पूछा—स्वामिन्, आपने पूर्वभव मे कभी कोई भूल भी तो की होगी? रोहिणिया बोला—देवियो, मुझे कभी ऐसा अवसर ही नही आया कि मैं उत्तम कार्य को छोड़कर जघन्य कार्य करता। इस प्रकार

मुख से अपराध को स्वीकार नही कर लेते हो, तब तक तुम्हे दड कैसे दे सकता हूँ। मेरा मन अवश्य कहता है कि तुम चोर हो। तब रोहिणिया बोला—कुमार आपका विचार बिलकुल सत्य है। आप जिस चोर को पकडने के लिए इतने दिनो से परिश्रम उठा रहे हैं और दौड-धूप कर रहे है, वह रोहिणिया चोर मैं ही हूँ। राजगृह नगर मे और सारे मगध देश मे जितनी चोरियाँ हुई हैं और डाके पडे हैं उन सब मे मेरा पूरा-पूरा हाथ है। मैं दड का पात्र हूँ। आप मुझे नि संकोच अवश्य दंड दीजिए। अभयकुमार बोले—भाई, मैं तुम्हे चोर सिद्ध नही कर पाया हूँ। तुमने चोरी को स्वीकार किया, यह देख मुझे बडा आश्चर्य है। वह बोला —मैंने आप जैसे अनेक चतुरो को चक्कर मे डाला है और अच्छे होशियारो की आँखो मे धूल झोकी है। परन्तु आज तक कोई भी मुझे पकड नही सका है। अब आज मैं स्वय ही आपको आत्म-समर्पण कर रहा हूँ और अपने को अपराधी घोपित करता हूँ। यह कार्य मैं किसी के आतंक या भय से नही, किन्तु स्वेच्छा से कर रहा हूँ। यह भगवान् महावीर की वाणी का ही प्रताप है। भाई, देखो—भगवान् की वाणी की प्रशंसा एक महापापी डाकू और चोर भी कर रहा है। तब अभय कुमार ने कहा—तुमने भगवान् की वाणी कब सुनी तब उसने कहा—मैंने हृदय से, श्रद्धा या भक्ति से नही सुनी। किन्तु पैर का काटा निकालते हुए अकस्मात् उनकी वाणी कानो मे पड गई। मैंने उसे भूलने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु भूल नही सका। आज उसी के प्रताप से मैं आप जैसे बुद्धिमानो के चक्कर से बच गया हू। अब आप मुझे सहर्ष महाराज श्रेणिक के समीप ले चलिये। वे जो दड देंगे, उसे लेने के लिए मै तैयार हू।

अब अभयकुमार उसे लेकर राज-सभा मे गये। श्रेणिक महाराज को नमस्कार करके बोले—महाराज आपके सामने एक विशिष्ट व्यक्ति को उपस्थित कर रहा हू। भाईयो, देखो अभयकुमार के हृदय की महत्ता। उसे चोर नही कहकर एक विशिष्ट व्यक्ति कहा। श्रेणिक ने उससे पूछा—भाई, तुम कौन हो ? उसने कहा—महाराज, मैं रोहिणिया चोर हू, जिसने आपके राज्य मे और सारे नगर मे अशान्ति मचा रखी है। राजा श्रेणिक उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए बोले - अच्छा, तू ही रोहिणिया चोर है ? तूने ही हमारे सारे राज्य मे आतक फैला रखा है। वह बोला—हा महाराज, मैं वही रोहिणिया चोर हू। तब श्रेणिक ने अभयकुमार से पूछा—तुमने इसे विशिष्ट व्यक्ति कैसे कहा ? उन्होने उत्तर दिया—महाराज, मैंने इसे चोरी करते हुए नही पकडा है। यह स्वय ही अपने मुख से अपने को चोर कह रहा है।

पुरुप रत्न बना, या नही बना ? वह धवल जैसा नही था। धवल सेठ तो ऊपर से ही धोला था, परन्तु अन्दर से काला था। यहा पर उपस्थित आप लोगो मे से तो किसी ने धवल सेठ की विद्या नही सीखी है ? या सीखना तो नही चाहते है ? अथवा श्रीपाल के समान बनना चाहते हैं ? बनने को तो सब लोग ही श्रीपाल बनना चाहेगे। धवल कोई नही बनना चाहेगा। मुख से तो यही कहेगे। परन्तु दिल तो यही कह रहा होगा कि मजा तो धवल सेठ बनने मे है ! श्रीपाल तो अपना माल गवाता था। किन्तु धवल सेठ तो माल जमा करता था। मैंने तो दोनो बाते आपके सामने रख दी हैं। अब आप लोग जैसा बनना चाहे, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। जो बात आपको अच्छी लगे उसे स्वीकार कर लेना। परन्तु थोड़ी सी शिक्षा हमारी भी मानना कि यदि श्रीपाल न बन सको तो दो-एक गुण उन जैसे अवश्य सीख लेना। किन्तु धवल सेठ का एक भी दुर्गुण मत सीखना। यदि सीख लिये हो तो उन्हें छोड देना। उसके गुण आप लोगो की जाति, समाज और खानदान के योग्य नही हैं। कहना और उचित सलाह देना हमारा काम है और मानना या न मानना आपका काम है। यदि मानोगे तो आपका ही भला होगा और हमे भी प्रसन्नता होगी।

आप लोग कहेंगे कि महाराज, आपका कथन सर्वथा सत्य है और मानने के योग्य है। तथा हम मानने को भी तैयार है। परन्तु आज का जमाना तो ऐसा नही है। यदि आज धवल सेठ के गुण नही सीखे तो हमारा जीवन निर्वाह होना भी कठिन हैं। एक भाई आया और कहने लगा—मुझे अपना मकान बेचना है। दूसरा बोला—मैं लेने को तैयार हू। परन्तु मै तो रजिस्ट्री पूरी कराऊँगा। तब वह कहता है कि मुझे क्यो डुबोता है। मेरे घर मे तो उसकी आधी कीमत भी घर मे नही रहेगी। सरकार आधी ले लेगी। भाई, बात यह है कि जिधर भी देखते है, उधर धवल ही धवल सेठ नजर आते है। अरे, धवल की विद्या सीखना छोड दो। नीति धर्म तो यह कहता हैं कि ये अन्याय और छलबल से जो धन कमाया जाता है, यह अधिक दिन नही ठहरता है। नीतिकार कहते हैं—

> **अन्यायोपार्जित वित्त दशवर्षाणि तिष्ठति।**
> **प्राप्ते त्वकादशे वर्षे समूल च विनश्यति॥**

अर्थात् अन्याय से-छलबल से कमाया हुआ धन अधिक से अधिक दस वर्ष तक ठहरता है। किन्तु ग्यारहवा वर्ष लगते ही अपनी मूल पूजी को भी साथ मे लेकर के विनष्ट हो जायगा।

बटका भर लेने की बात कही थी। तब ऊट बोला—ठीक है भाई, मैं भूल गया होऊ। जब तू गवाही देता है, तब यह जीभ के बटका भर लेवे। यह कह कर ऊटने अपना थोडा सा मुख खोला। उसमे बन्दर का मुख जीभ को पकडने के लिए नही जा सकता था। अत वह बोला—अरे इसमे तो मेरा मुख नही जाता है। ऊट बोला—इसके लिए मैं क्या करू ? तब सियाल ने बन्दर से कहा—तू अलग हो। मैं बटका भरता हू। तब ऊटने कहा—चाहे तू बटका भर चाहे यह बटका भरे मुझे इसमे कोई इनकार नही है। तब जैसे ही ऊट के मुख मे अपना मुख डाला वैसे ही ऊट ने अपने ओठ बन्द कर लिये। अब सियाल का शरीर अधर लटकता रह गया। बन्दर बोला—भगवान्, खूब सुनी। इसे झूठी गवाही का फल आपने तुरन्त ही दे दिया।

भाइयो, याद रखो—झूठी गवाहिया देना, झूठे लेख, दस्तावेज लिखना और दूसरे के साथ छल-कपट कर उसे अपने जाल मे फसाना बहुत भारी पाप है। आखिर मे सच, सच ही रहता है और झूठ, झूठ ही रहता है। कहा है कि—

> **जो जाके मारे छुरी, उसके ही लगता है छुरा।**
> **जो औरो को चिंते बुरा, उसका ही होता है बुरा॥**

देखो, धवल सेठ ने श्रीपाल का बुरा चाहा, तो अन्त मे उसका क्या हाल हुआ, यह बात मुनिजी आगे आपको सुनावेगे ही और आप लोग सुनेगे भी कि अन्त मे श्रीपाल का मनचाहा होता है, अथवा धवल का मनचाहा होता है ? वहा तो अपने आप दूध का दूध और पानी का पानी हो जायगा। आप लोग सोच लो, विचार लो, खूब विचार लो। मैं जो कहता हू, वह आप सुनते हैं। परन्तु जब उसे मजूर कर ग्रहण करो, तभी लाभ है।

मैंने सवत्सरी के दिन एक बात आप लोगो से कही थी सघ के हित मे। वह आप लोगो ने सुनी और आपने कहा था—महाराज, करेगे। परन्तु पीछे आप लोगो ने उस पर ध्यान नही दिया है। और ध्यान भी क्यो रखेंगे ? भाई, जो बात सघ के लिए हितकर है, उसे तो याद रखना चाहिए। अब भी आप लोग उस पर विचार करना और ध्यान देना कि मैंने क्या कहा था ? और हमे क्या करना है ? सभवत उस दिन आप के श्री सघ के अध्यक्षजी भी यहा उपस्थित थे। आप लोग उनसे भी पूछ लेना और उस पर ध्यान देना। अच्छी बात को सदा याद रखने और बुरी बात को भूलने मे ही मनुष्य का कल्याण है। मेरा तो आप लोगो से यही कहना है कि लोभ को छोड़ो और

८ स्वच्छ मन : उदार विचार

नवीनता मे रस

सज्जनो, हमारे विचारो मे सदा नवीनता आनी चाहिए। संसार का यह अटल नियम है कि कोई वस्तु कितनी ही उत्तम से उत्तम क्यो न हो, परन्तु कुछ दिनो के पश्चात् उसका आकर्षण समाप्त हो जाता है और यदि कोई नवीन वस्तु दृष्टिगोचर होती है तो उस ओर आकर्षण हो जाता है। सस्कृत की एक उक्ति है कि **'लोको ह्यभिनवप्रिय'** अर्थात् ससार को नयी वस्तु प्रिय होती है। आप लोग प्रति दिन गर्म फुलके और बढिया शाक खाते हैं। यदि किसी दिन आपकी थाली मे थूली या बाजरे-मक्की की रोटी आती है, तो पहले आप उसे खाते है, क्योकि वह नवीन है। इसी प्रकार नवीन वस्त्र पहनने मे भी अधिक आकर्षण होता है। नया मकान, नया मित्र, नया शस्त्र और नया शास्त्र भी हस्तगत होने पर आनन्द प्राप्त होता है। इसी प्रकार हमारे भीतर आध्यात्मिकता के भी नये-नये भाव आने चाहिए। आप प्रतिदिन सामायिक करते हैं, नवकारसी-पोरसी करते हैं और उपवास-आयविल भी करते है, परन्तु यदि इनमे नित्य नवीनता नही आवे तो उनके करने मे आकर्षण नही रहता है। अब एक विशेष ज्ञानी ने आपसे कहा—भाई, आप सामायिक करते हैं, यह तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु **यदि** एक आसन लगाके बैठकर या खडे होकर करोगे तो आनन्द आयेगा। आपने उसकी बात को स्वीकार करके तदनुसार सामायिक करनी प्रारम्भ कर दी, तो आपको अवश्य आनन्द आयेगा,

कोई मनुष्य कुछ नवीनता के साथ सुनाता है, तो आपको सुनने मे आनन्द आता है, क्योकि सुनने मे नवीन बात मिल रही है। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य का हृदय सदा नवीनता की खोज मे रहता है और नवीनता मे वह आनन्द या रस का अनुभव करता है।

योग्यता की परीक्षा

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र मे एक ऐसा अध्ययन आया है जो कहानी के रूप मे नही है, बल्कि शास्त्र का अग है। एक सेठजी के चार लडके थे। जवान और पढ लिखकर होशियार होने पर सेठजी ने उनका यथासमय विवाह कर दिया। सभी बहुए अच्छे ठिकानो की थी। पहिले जमाने के मनुष्य स्त्री को साक्षात् लक्ष्मी समझते थे और अपने पुत्र के योग्य लडकी से ही उसका विवाह सम्बन्ध करते थे। आज तो लोग गुणो को नही देखकर धन और रूप को देखते है। फिर भले ही वह आकर अपने घर को तीन-तेरह क्यो न कर देवे। हा तो सेठजी ने बहुत सोच-विचार करके अच्छे घरानो की योग्य लडकियो के साथ ही अपने पुत्रो का विवाह कर दिया और घर मे सर्व प्रकार से आनन्द छा गया।

जब सेठ का बुढापा आया तो उसके मन मे विचार आया कि लडके तो मेरे ही जाये हुये है और सर्वप्रकार से हैं योग्य अत इनकी ओर से तो मुझे कोई खतरा नही है। परन्तु ये जो चारो बहुए हैं, ये भिन्न-भिन्न घरानो से और भिन्न-भिन्न देशो से आई हैं, अत ये मेरे और सेठानी जी के पीछे घर को कैसा चलावेगी, इसका पता नही है। अत इनकी परीक्षा करके गृहस्थी की व्यवस्था तदनुसार ही करना उचित होगा। क्योकि घर की इज्जत-आवरु, मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा स्त्रियो के ऊपर ही निर्भर रहती है। यह विचार करके उसने एक दिन सारी समाज को भोजन के लिए निमत्रण दिया। जब सब लोग खा-पी चुके तो कुछ प्रमुख पचो को सेठ ने अपनी बैठक मे बैठाया। तभी उसने सभी बहुओ को बुलाया। वे हर्षित होती हुई आई कि आज तो ससुरजी कोई आभूपण देने वाले दिखते हैं। सेठ ने उन्हे शालि-धान्य के पाच-पाच दाने देकर कहा—वहूरानियो, देखो-मैं तुम लोगो को ये धान्य के दाने अमानत के रूप मे देता हूं। तुम लोग इन्हे सभाल करके रखना और जब मैं मांगू, तब मुझे वापिस दे देना। वे चारो वहुए उन दानो को लेकर अपने-अपने कमरो मे चली गई।

अब वडी वहू ने विचार किया कि इन दानो को कहा रखू और कहा सभालू? और ससुरजी ने कहा ऐसे—जैसे कोई वडी कीमती वस्तु हो?

जाति की धान्य के दाने होगे, आपके माँगने पर वैसी ही जाति के दाने आपको दे दूंगी, सो भडार मे से निकाल करके ला रही हू। सेठ ने उसे भी एक ओर बैठा दिया। तीसरी बहु ने तिजोडी मे से डिबिया निकाल कर दाने निकाले और लाकर ससुर को दिये। जब उससे ईश्वर की साक्षीपूर्वक पूछा गया तो उसने कहा कि मैं ईश्वर की साक्षी से कहती हू कि ये वे ही दाने हैं। मैंने उनको इस प्रकार से तिजोडी मे अभी तक सुरक्षित रखा है। सेठ ने उसे भी एक ओर बैठा दिया। जब चौथी—सबसे छोटी बहू को अमानत देने के लिए बुलाया गया तो उसने आकर के सेठजी से कहा—उस अमानत को लाने के लिए गाडियाँ भिजवाइये। सेठजी ने कहा—अरी बहू रानी, मैंने तो पाच दाने दिये थे, फिर उनको लाने के लिए गाडियो की क्या आवश्यकता है? उसने कहा—मैंने वे दाने अपने पीहर बोने के लिए भिजवा दिये थे। पाच वर्ष मे वे बढकर एक कोठा भर हो गये हैं अत वे गाडियो के बिना नही आ सकते हैं। सेठ ने उसे भी बैठ जाने को कहा।

अब सेठ ने सब पचो को सम्बोधित करते हुए कहा—भाइयो, आप लोगो को याद होगा कि आज से पाँच वर्ष पूर्व जीमनवार के पश्चात् आप लोगो के सामने इन बहूरानियो को धान्य के पाच दाने देकर सुरक्षित रखने को कहा था। आज मैंने अपनी अमानत सबसे वापिस माँगी है। और आप लोग सुन ही चुके है कि किसने किस प्रकार अपनी अमानत वापिस की है। यह कार्य मैंने इतनी परीक्षा के लिए किया था कि कौन कितनी कुशल है और कौन घर वार को सभालने मे योग्य है। अब हम दोनो वृद्ध हो गये है। अत घर का भार इन लोगो को सौप करके नि शल्य हो धर्मसाधन करना चाहते है। कोई यह न समझे कि मैंने बहुओ के साथ कोई अन्याय किया। इसलिए ही मैंने इनकी परीक्षा ली है। सबसे छोटी बहू ने मेरी अमानत को वढाया है, अत मुझे विश्वास है कि यह हमारे पीछे घर-वार को वढाती रहेगी। इसलिए मैं इसका नाम रोहिणी (वड्डिया) रखता हू और इसे घर की मालकिन वनाता हू। जिस वहू ने अपने दानो को तिजोडी मे सुरक्षित रखा है उसका नाम रक्षिता रखता हू और घर के आभूपण और रोकडवाली तिजोडी की और खजाने की चावी इसे सोपता हू। मुझे विश्वास है कि यह सौंपी हुई सम्पत्ति को सुरक्षित रखेगी। जिस वहू ने मेरी अमानत को खाकर देखा है वह खान-पान मे चतुर मालूम पडती है, अत उसका नाम भक्षिता रखता हू और आज से रसोई का काम इसे सौंपता हू। सवसे वडी वहू ने मेरी अमानत के दाने इधर-उधर फेंक दिये हैं, अत इसका नाम उज्झिता रखता हू और चूँकि यह

जीमने के लिए बैठा दिया। जब परोसगारी हो गई और उन्होने जीमना प्रारम्भ किया, तभी राजा ने शिकारी कुत्ते लाकर छुडवा दिये। जैसे ही कुत्ते भोजन खाने को झपटे, वैसे ही ९९ भाई तो उनके डर से भोजन छोडकर भाग गये। किन्तु श्रेणिक कुमार भोजन पर जमे रहे। उन्होने दूसरे भाइयो की थालियो को अपने समीप खीच लिया और उनमे का भोजन कुत्तो को फेंकते हुए स्वय अपनी थाली का भोजन खाते रहे। यह देखकर राजा ने निश्चय कर लिया कि यह श्रेणिक कुमार ही राज्य करने के योग्य है। भाई, पहिले राजा लोग इस प्रकार से परीक्षा करके ही राज्य के उत्तराधिकारी का निर्णय करते थे और उत्तीर्ण होनेवाले को राज्य-पाट सभलवाते थे। यदि हमे भी समाज मे मान-सम्मान प्राप्त करना है और ऊचा पद पाने की इच्छा है तो उसके योग्य त्याग करना चाहिए और उत्तम गुणो को धारण करना चाहिए। जो विना गुणो के ही पद पाना चाहते है, ऐसे पद के भूखो को पदवी नही मिलती है। जो समाज और धर्म का कार्य करते हैं उनका मूल्याकन समाज करती है और उन्हे उच्च पदो पर आसीन करती है।

आप लोगो ने कल के समाचार-पत्र मे पढा है कि राष्ट्रपति ने तीन व्यक्तियो को बुलाकर उन्हे 'प्राणि-मित्र' की पदवी से विभूपित किया है। उनमे से एक तो आपके ही शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति सेठ आनन्दराज जी सुराना है, जिन्हे यह पदवी प्राप्त हुई है। ये बूचडखानो से जीवो को वचाने के लिए तन, मन और धन से लगे हुए है। नये खुलने वाले कसाई खानो को नही खोलने के लिए सरकार के विरुद्ध आन्दोलन का सचालन करने मे सलग्न हैं। तभी उन्हे यह पदवी मिली। लोग धर्म और समाज की सेवा तो कुछ करना नही चाहे और पदवी लेना चाहे तो कैसे मिल सकती है? हम देखते हैं कि आज हमारे लोगो मे से कितने ही व्यक्तियो मे ऐसी आदतें पडी हुई हैं कि बाहिर से आनेवाले नये व्यक्ति के जूते और चप्पले ही पहिनकर चले जाते हैं। कोई भाई थैला नीचे रखकर आता है और थोडी देर मे वापिस जाकर देखता है, तो थैला ही गायव पाता है। तो क्या यहा थानक मे मीणे, भील, वाभी, भगी या चमार आते हैं? अव आप वतावे कि जिन लोगो की नीयत ऐसी खराव है, वे क्या उच्च पदवी पाने के योग्य हैं? ऐसे लोग यदि यहा आकर सामायिक पोपध करले और भक्त वनकर वैठ जाये तो क्या उनको धर्मात्मा कह सकते है? और क्या उनको महाजन और ओसवाल कह सकते हैं? कभी नही कह सकते। शास्त्रकार कहते हैं कि—

अन्यस्थाने कृतं पापं धर्मस्थाने विनश्यति।
धर्मस्थाने कृत पापं वज्रलेपो भविप्यति॥

पर चढ गया, पर माफी नही मागी। अन्त मे सत्य की विजय हुई और शूली का सिहासन हो गया। आज आप जो अमरसिंह और वीरसिंह की कथा सुन रहे हैं उसमे भी आया कि वे माफी माग ले। परन्तु उन्होने कहा कि माफी कैसे माग लेवे ? यद्यपि उन्हे बाप से ही मागनी थी। पर बाप हो या और कोई हो। जब गलती की ही नही तो माफी क्यो मागे। परन्तु जिसने गलती की, तभी तो हजारो के सामने उसे मजूर किया। इस प्रकार से माफी मागने वाला तो सारी रामायणकार का गुनहगार हो गया। आज जैसे उस जब्त हुई पुस्तक को लेकर उनके लिए सवाल खडा हुआ है, वैसे ही कल दूसरो के लिए क्यो नही खडा होगा ? इस प्रकार से तो इतिहास के पन्ने ही खराब हो गये। जो इतिहास की बाते है उनके विषय मे हमे कुछ भी कहने का हक नही है। ऐसे समय तो यही कहना चाहिए कि विवाद-ग्रस्त पुस्तक विद्वानो के सामने रख दो। वे जो निर्णय देगे, वही मान्य करेगे। जिसके भीतर धार्मिक द्वेष नही होगा और निष्कपट भाव होगा वही सत्य निर्णय होगा।

आज का विषय यह है कि हमे सदा शुद्ध, पवित्र और उदार विचार रखना चाहिए, क्योकि उत्तम व उदार विचारवाले ही ससार मे कुछ काम कर सकते है।

वि० स० २०२७ कार्तिक वदी ४
जोधपुर

●

चार-पाच दिन निकल गये। एक दिन जब स्थानक के किवाड खुले नही थे—प्रात काल चार-साढे चार बजे एक भाई आकर बाहिर सामायिक करने को बैठ गये। सन्त भीतर पाटिये पर सो रहे थे। जब वे जागे, तो बोलते है—'अरी, तू कहा चली गई ? (तू कठे चली गई ?) यह शब्द सुनते ही सामायिक करनेवाला भाई सोचता है—अरे, महाराज यह क्या बोल रहे हैं ? हम तो इन्हे क्रियावान् समझ रहे थे। पर ये महाराज क्या बोल रहे है ? इनके पास कौन है ? उस भाई के हृदय पर उक्त वचनो का बहुत गहरा असर पडा। वह सामायिक करके वहा से उठा और उसने दूसरो से जाकर कहा—महाराज तो 'जाणवा जोगा हैं' बाकी कुछ नही है। थोडी देर मे यह बात चारो ओर फैल गई। और श्रावक लोग सबेरे स्थानक मे सामायिक करने को नही आये। वे सन्त प्रात काल का प्रतिलेखन करके पानी के लिए निकले। उन्होने सामने मिलने वालो से कहा—श्रावकजी, आज सामायिक करने को भी नही आये ? पर लोगो ने न कुछ उत्तर ही दिया और न हाथ ही जोडे। महाराज यह देखकर बडे चकित हुए कि रात भर मे ही यह क्या रचना हो गई हैं ? वे धोवन लेकर और बाहिर से निवट जब स्थानक मे आये तो लोगो से फिर पूछा कि भाई, क्या बात है ? लोगो ने उत्तर दिया महाराज, पूजा वेष की ही होती, किन्तु गुणो की होती है। तब उन्होने पूछा– कि आप लोगो ने रे मे क्या कमी देखी है ? लोगो ने कहा—महाराज, कमी देखी है, तभी ो यह बात है। कुछ देर के बाद पाच-सात श्रावक लोग उक्त बात का निर्णय रने के लिए आये। उन लोगो ने भी वन्दना नही की और आकर बैठ गये। ब महाराज ने उन लोगो से पूछा कि क्या बात है ? उन्होने कहा —महाराज, वेरे उठते समय क्या बोल रहे थे ? 'अरी, रात को थें कठे गई ? महाराज कहा भाई, पूजनी थी और वह कही पड गई थी। पूजनी स्त्री लिंग शब्द , उसके लिए मैंने कहा—'अरी थे कठे गई'। सब लोग सुनकर हस पडे और मा-याचना करके अपने-अपने घर चले गये) भाई, यह भाषा का प्रयोग ठीक ही करने का उदाहरण है। जिनको बोलने का विवेक नही होता, वे समय र इस प्रकार अपमानित होते हैं। किन्तु जिन को भाषा बोलने का विवेक ोता है, अनेक प्रकार के पाप और कलह आदि से बचे रहते हैं। वचन की द्धि एक बहुत बडी बात है। इसलिए मनुष्य को वचनो के विषय मे सदा ावधानी बरतनी चाहिए। क्योकि छह बातो से मनुष्य का मान-सन्मान टता है। कहा है—

> बालसखित्वमकारणहास्यं, स्त्रीषु विवादमसज्जनसेवा।
> गर्दभयानमसंस्कृतवाणी षट्सुनरो लघुतामुपयाति ॥

कह देते है। भगवान् की भाषा अर्धमागधी है वह कितनी महत्त्वपूर्ण होती है कि सर्व श्रोताओ के सशय दूर हो जाते है और हृदय कमल खिल जाते है। कहा भी है—

भाषा तो बड़ी बड़ो अर्धमागधी अक्षर मेल है छन्द के।
संशय ना रहे बोलतां उठे पर छन्द के॥
अरिहता दीपंता ए।

भगवान की अर्धमागधी भाषा का यह महत्व है कि पढते हुए ही उनका सार तुरन्त हृदयगम हो जाता है। जो उस भाषा मे प्रवीण बन जाय, तब तो किसी प्रकार की शका को स्थान ही नही रहता है। भगवान की वाणी को सुनते ही सबको आनन्द प्राप्त होता है जैसे कि पनिहारी को सुनते ही साप मस्त हो जाता है।

मन से निकली वाणी का असर

आप लोग कहेगे कि महाराज, आप हमको प्रतिदिन इतना सुनाते हैं, फिर भी हम लोगो के ऊपर असर क्यो नही होता है ? भाई, हम भी वैराग्य उधार मागा हुआ लेते हैं। यदि हमारे भीतर वैराग्य होवे तो अवश्य असर पडेगा। हा, पहिले के सन्तो की वाणी का अवश्य असर पडता था। ज्ञानी पुरुषो के वचनो मे बडी ध्वनि निकलती है। उनकी वाणी सुनकर अनेक बडे से बडे दुराचारी, पापी भी पार हो गये। जिनके उद्धार की लोग कल्पना भी नही करते थे, उनका भी कल्याण हो गया।

पूज्य अजरामरजी स्वामी हो गये है। उनके शिष्य थे मूलचन्दजी स्वामी और धनराजजी स्वामी। धनराजजी का परिवार तो मारवाड मे है और मूलचन्दजी का गुजरात मे हैं। एक वार लीवडी मे मूलचन्दजी महाराज ने भगवती सूत्र सुनाना प्रारम्भ किया। वहा के राजा ने दीवान से पूछा कि तेरे गुरु ने यहा पर चौमासा किया है। उसने उत्तर दिया—हा महाराज, किया है। राजा ने पूछा कि वे व्याख्यान मे क्या वाचते हैं ? दीवान ने कहा—महाराज, भगवती वाचते हैं। राजा ने कहा—हमारे गुरु तो भागवत वाचते हैं। इन दोनो मे क्या फर्क है ? दीवान ने कहा—भगवती सर्वज्ञ देव की वाणी है। राजा बोला—क्या भगवती मे ऐसी शक्ति है कि मैं ठूठा रोपू तो उसमे फल लग जाये ? यदि ठूठे के फल लग जावें तब तो भागवत से भगवती वडी है। अन्यथा नही। अब दीवान साहब क्या उत्तर देवे। जिसके आश्रित आजीविका हो उसे यद्वा-तद्वा उत्तर भी तो नही दिया जा सकता। अत.

आप लोगो को ज्ञात होगा कि जब लीवडी मे जैन कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हुआ और सेठ चादमलजी अध्यक्ष बनकर के वहा गये, तब वहां के नरेश ने उनका स्वागत-सत्कार किया। इससे वहा जैनधर्म का महत्व बढा। जिन्हे जैनधर्म पर और भगवान की वाणी पर श्रद्धा और भक्ति होती है, वे बडी भक्ति और विनय के साथ आगमसूत्रो का अध्ययन, श्रवण और मनन करते है। पहिले बडे विधान के साथ भगवती सूत्र का वाचन होता था। इसके वाचन के प्रारम्भ मे, मध्य मे और अन्त मे सब मिलाकर १२३ आयबिल करने पडते है। जप-तप भी चलता है और महापुरुपो का आशीर्वाद भी रहता है। तब सिद्धि और चमत्कार दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु आज तो इन बातो की ओर किसी का ध्यान ही नही है। और हर कोई कहता है कि हम भगवती या अन्य सूत्र बाँचते हैं।

अर्थज्ञान शून्यता से अनर्थ

एक स्थान पर एक सतीजी मोक्षमार्ग बाच रही थी। उसमे पाठ आया—**'कयरे मग्गे अक्खाए'** इसका उन्होने अर्थ किया कि 'कए भु जते कहता केर, मूग आखा नही खाना'। यह अर्थ सुनकर एक श्रावक ने कहा—आप यह कैसा अर्थ कर रही हैं ? इसका अर्थ तो यह है कि 'मोक्ष का मार्ग कौन सा है ? भाई, अर्थ तो यह था और उन्होने अर्थ कर दिया कि आखे कैर और मूग नही खाना। इस प्रकार से यदि कोई शब्द बाच भी लेवे और गुरु-मुख से उसके अर्थ की वाचना नही लेवे तो ऐसे लोग अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। परन्तु जिन्होने गुरु-मुख से अर्थ की वाचना ली है, और जिनमे साधुपना है, वे इस बात को भली-भाति जानते है कि शास्त्र के किस वचन का क्या अर्थ कहना अपेक्षित है। वक्ता का लक्षण कहते हुये शास्त्रकारो ने कहा है कि **'प्राप्त समस्तशास्त्रहृदय.'** अर्थात् वक्ता को समस्त शास्त्रो के हृदय का—रहस्य का बोध होना चाहिए। ऐसा कुशल वक्ता क्षेत्र-काल के अनुसार कथन का सक्षेप और विस्तार से व्याख्यान करता है। इसलिए एक नीतिकार कहते हैं—

पोथी तीन प्रकार की, छोटी बडी मझोल।
जहा जैसा अवसर दिखे, तहा तैसी को खोल ॥

भाई, वक्तापने का यह चातुर्य गुरु-मुख से सुने विना और भाषा की शुद्धि का ज्ञान हुए विना नहीं प्राप्त होता। वचन-शुद्धि के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अकारण हसे नही। साधु के लिए और श्रावक के लिए हसने का निषेध किया गया है, फिर अनवसर

निकालना चाहिए। कर्मो की गति को कोई नही जानता। यदि भाग्यवश जैसा कहा और वैसा ही हो गया तो पीछे कितना दुःख होता है।

अनेक पुरुष और स्त्रियो के वचनो मे इतना विष भरा होता है कि उनके वचन सुनने से कितने ही आत्मघात तक कर बैठते हैं। इसलिए मनुष्य को सदा विचार पूर्वक प्रिय वचन ही बोलना चाहिए और भाषा के जानकार होते है, वे सदा हित-मित और प्रिय वचन ही बोलते हैं। इसलिए बुद्धिमान पुरुषो को वाणी का विवेक सदा रखना चाहिए।

वि० स० २०१७ कार्तिकवदी ६
जोधपुर

करने के लिए कितने ही मनुष्यो ने अनेक प्रकार के छल-प्रपच किए और अनेक प्रकार के वितण्डावाद भी उसके सामने रखे, परन्तु वे अपनी दृढता से डिगे नही और अपने सहनशील स्वभाव मे स्थिर रहे। आप लोगो ने देखा होगा कि बडी-बडी आन्धियो के अधड आने पर अनेक मकान गिर जाते हैं। छप्पर उड जाते है, और पोले दीमक-भक्षित वृक्ष उखड जाते है। परन्तु जो वृक्ष सारवान् है और जिनके भीतर सहनशीलता है, वे ज्यो के त्यो खडे रहते हैं। हवा के वेग के अनुसार वे झुक जाते हैं। जो झुकना नही चाहता है और जिसमे सहन करने की शक्ति भी नही है, उसे तो नष्ट ही होना पडता है। कौन सा वृक्ष गिरता है? जिसके मूल मे पोल है—जिसकी जड ठोस और गहरी नही है, वह वृक्ष हवा का झोका लगते ही गिर जाता है। परन्तु जो वृक्ष मजबूत और निगोट है, वह नही गिरता है। उसे गिरने की आवश्यकता भी नही है।

अभी यह प्रकरण चल रहा है कि सहनशील पुरुष की आप कितनी भी हसी कर लेवें, वह उसे शान्ति से सहन कर लेगा। वह सोचता है, यदि इससे इनका मनोरजन होता है और इससे आनन्द लेते हैं तो लेवे, इसमे मेरी क्या हानि है? कितने ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो दूसरो की तो हंसी-मजाक उडायेगे। परन्तु यदि कोई उनसे हसी-मजाक करे, तो उन्हे वह सहन नही होता। कहावत है कि **'एक हसी की सौ गाल'**। इतनी सहन करने की शक्ति होवे तो हसी करो। अन्यथा नही।

हसी मे विगासी

कभी-कभी मनोविनोद के लिए की गई हसी के भयकर परिणाम देखने मे आते हैं। जैतारन पट्टी मे एक खराडी नाम का गाव है। वहा के एक ब्राह्मण के घर उसका जवाई आया। भाई, जब चार-छह महीने का विवाहित जवाई अपनी ससुराल जाता है, तब वहा के लोग प्राय हसी-मजाक करते है। जब वह ढोलिया पर सो रहा था, तब चार मसखरो ने उसे ढोलिया समेत और रस्सी से बाधकर तालाब मे डाल दिया। वे चारो व्यक्ति तमाशा देखने के लिए किनारे पर खडे हो गये। जब उसकी नीद खुली, पर अपने को बधा और पानी मे पडा देखा तो निरुपाय होने से दम घुटकर भय मे उसके प्राण-पखेरू उड गये। अब की तो उन लोगो ने हसी थी मगर बेचारे के प्राण चले गये! जब बहुत देर तक उन लोगो को कोई हलचल नही दिखाई दी, तो उसे मरा पाया। यह देखकर वे लोग घबडाये। जैसे ही यह समाचार गाव मे पहुचा तो अनेक लोग जोश मे आगये और पुलिस को बुलाने लगे। तब उस मरे हुए व्यक्ति के सुसर ने आकर कहा—भाई, अब पुलिस को बुलाने

खाते रहते हैं। परन्तु आपने कभी यह प्रयत्न नही किया कि हम अपनी समाज के बालको मे चेतना लावे, जागृति उत्पन्न करें और उन्हें बलवान् बनावें। उन्हे आपने कभी यह पाठ पढाया ही नही कि वे डट कर शैतानो का सामना कर सके। कभी क्षणिक जोश आता है, मगर वह दूध के उफान के समान जरा सी देर मे ठडा हो जाता है। आप लोगो के यहाँ पर हजारो घर होते हुए भी कोई अखाडा या व्यायामशाला तक नही है। यदि आपके लडके अखाडे के पहलवान होते, तो क्या किसी की मजाल थी जो वह आपके लडके को हाथ लगा देता। यही पर देखो—आर्यसमाज के लडको को कोई हाथ भी लगाने का साहस नही करता है। कभी अवसर आने पर उनके दस-पाच नौजवान चले जाते है तो अनेको को पछाड कर आते हैं। परन्तु आपके बच्चे तो मार खाकर ही आते हैं और आप लोगो से अपना दुख कहते हैं। यदि आपके भी अखाडे होते और यहा जाकर आपके लडके व्यायाम करते तो बलवान होते और उनके भी हौसले दूसरो के साथ मुकाबिला करने के होते तो किसी की हिम्मत नही थी—जो उन्हे कोई छेड सकता। परन्तु इस ओर आप लोगो का कुछ भी ध्यान नही है। जब ये बालक इस उम्र मे बलवान और हिम्मतदार नही बनेंगे तो भविष्य मे उनसे धर्म और समाज पर सकट आने के समय रक्षा की क्या आशा की जा सकती है। जैसे आप कमजोर है, किसी का मुकाबिला नही कर सकते, वैसा ही आप अपनी सन्तान को बना रहे है। जब आपको लडको के ही बलवान बनने की चिन्ता नही है तब लडकियो की तो बात ही बहुत दूर है। इनमे तो आपने कायरता ही प्रारम्भ से भर दी है कि ये तो चूडिया पहिनने वाली है। जब जन्म से ही आपने कायरता की जन्म घुटी पिलाई है तब ये बेचारी आततायी का क्या सामना कर सकती है और कैसे अपने शील और धर्म को बचा सकती है। जब आप लोगो मे ही साहस नही है और कायर बने हुए हैं, तब सन्तान के बलवान् और साहसी बनने की आशा ही कैसे की जा सकती है। आप लोगो मे यह कायरता आई क्यो? क्या कभी आपने इसका भी विचार किया है? भाई, बात यह है कि आप लोगो की शक्ति पडौसियो से लडने और बाल-बच्चो के साथ चिडचिड करने मे ही नष्ट हो जाती है। परन्तु जो पुरुष सहनशील होते हैं तो उनमे रोग बढते ही नही है और अवसर आने पर वे कुछ करके भी दिखा देते हैं। यह शक्ति मनुष्य के भीतर होना आवयश्क है।

प्रथम तो वैश्य वर्ग यो ही भीरू है। फिर दूसरे हमे पाठ पढानेवाले गुरु भी ऐसे मिले है कि हर बात मे पाप का भय बताकर उन्हे और भी कायर बना देते है। अरे, क्या क्रोध करने मे और अनीति का धन ग्रहण करने मे

निकाल लो। जैसे ही एक डाकू ने कुल्हाडी उठाई, वैसे ही स्त्री को गुस्सा आ गया उसके खून मे जोश दौड गया। उसने अपने धणी से कहा—अरे मोलिए, तेरे होते हुए ये मेरे पैर काटते है? स्त्री के शब्द सुनते ही आदमी को भी जोश आगया तो उसने अपने दोनो हाथो से दो डाकूओ को दबा लिया। स्त्री ने शोर मचाया और उसकी आवाज सुनकर इधर-उधर से लोग आगये। तब वे डाकू किसी प्रकार से उससे अपने को छुडाकर के भाग गये। भाई, उस मनुष्य मे जोश कब आया? जब स्त्री ने ताना मारा। पर जिनके चलते हुए ही धोती खुल जाती है, उन्हे एक क्या, दस ताने भी सुना दो, तो भी वे क्या कर सकेंगे। सारे कथन का अभिप्राय यह है कि आपको अपने बच्चो को निर्भय बनाना है। इसके लिए उनकी शारीरिक शक्ति का विकास करना होगा। इसके लिए आपको अखाडे और व्यायामशाला खोलना चाहिए और उनमे अपने बच्चो को भेज कर शारीरिक सामर्थ्य से सम्पन्न बनाना चाहिए। जो गरीब बालक हैं, उन्हे प्रोत्साहन देना चाहिए और उनको दूध पिलाने का भी प्रबन्ध करना चाहिए। आज अखबारो मे पढते हैं कि कही कोई शिव-सेना बना रहा है और कही कोई वानर-सेना बना रहा है। जो ऐसा पौरुष दिखाते हैं तो सरकार को भी उनके सामने झुकना पडता है और उनकी मांगो को स्वीकार करना पडता है। परन्तु क्या आप लोगो ने कही ऐसा भी सुना है कि ओसवालो ने, या अग्रवाल ने या माहेश्वरियो ने ऐसी कोई सेना बनाई हो! अरे, सेना बनाना तो दूर की बात है, परन्तु हमारे समाज का हृदय तो सेना को देखते ही धक-धक करने लगता है। यो तो आप लोग एक पैसा भी निकाल करके नही देगे। परन्तु जब ऊपर से मार पडती है, तो निजोरी की चाबियां भी चुपचाप दे देते है। भाई, जब तक आपमे शारीरिक बल नही आयगा, तब तक आपमे पौरुष और साहस भी नही आ सकता और सहनशीलता भी नही आ सकती है। सहनशीलता के आये बिना न मनुष्य अपने विचारो पर दृढ रह सकता है और न व्रत सयम और तप मे ही स्थिर रह सकता है।

शक्तिशाली ही समझा सकता है

सोजत की एक लडकी पाली मे अच्छे ठिकाने विवाही हुई थी। उसका पति कुसगत से शराब पीने लगा। स्त्री के बार-बार मना करने पर उसने उसे मारना शुरू कर दिया। जब उसके बाप को पता चला तो वह उसे लिवा ले गया। उसके ससुर ने उसके साथ ऐसा कठोर व्यवहार किया और कहा कि यदि तू शराब पीना नही छोडेगा तो मै तुझे जान से मार दूगा। तब वह [illegible] गया, सब पीना तक भूल गया।

भाइयो, व्रत, नियम और तपादिक का परिपालन तभी ठीक रीति से हो सकता है, जबकि शरीर मे शक्ति हो। शास्त्रकारो ने कहा है कि **शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम्'** । अर्थात् धर्म का सबसे प्रधान और पहिला साधन शरीर ही है। जिनका शरीर निर्वल है, उनका मन भी निर्बल होता है। ऐसे निर्बल मनुष्य क्या धर्म साधन कर सकते हैं ? जिनके शरीर मे जान होती है, वे ही नियम के पावन्द रह सकते हैं। वे अपने नियम की रक्षा के लिए मरने की भी परवाह नही करते हैं। सहनशीलता बहुत उच्चकोटि की वस्तु है। सहनशील व्यक्ति कभी आपे से वाहर नही होता। वह समुद्र के समान गम्भीर और सुमेरू के समान स्थिर वना रहता है। वह अपनी शक्ति को व्यर्थ के कार्यों मे नष्ट नही करता है। हाँ, जिस समय धर्म, जाति और देश पर सकट आता है उस समय वह अपनी शक्ति का उपयोग करता है। हमारे पूर्वज महा-पुरुप अपनी शक्ति को वहुत सावधानी से सचित रखते थे। उन्हे अनेक ऋद्धि सिद्धियां प्राप्त होने पर भी वे अनावश्यक व्यय नही करते थे। उन्हें प्राप्त हुई लब्धियो का उनको स्वय भी पता नही होता था। किन्तु जब धर्म पर सकट आ जाता था, तो विष्णु कुमार मुनि के समान वे उसका उपयोग कर धर्म और समाज के ऊपर आये सकट को उस लब्धि के द्वारा दूर करते थे। ऐसे महा पुरुपो के गौरव की गाथाएँ आज तक गाई जाती हैं।

सहन करो, पर पुरुषार्थ के साथ

आज हमारी समाज मे जो वडे-वडे आचार्य कहलाते हैं और सघ के स्वामी माने जाते हैं, वे भी सघ के सकट के समय सहन करने की तो कहते हैं, परन्तु पुरुषार्थ द्वारा उसे दूर करने की नही कहते है। कहावत है कि 'आप वलै वलवन्त कहावे'। भाई, मनुष्य अपने बल के भरोसे पर ही बलवान कहा जाता है। समय पर अपना वल ही काम देता है। इससे अन्य मतावलम्बियो पर प्रभाव भी पडता है और अपना भी कार्य सिद्ध हो जाता है।

एकवार श्री रूपचन्द जी स्वामी एकलिंगजी पधारे। ठडी हवा के झोखे से उन्हे नीद आ गई और नीद मे उनका पैर नादिया के ऊपर पड गया। इतने मे पडे लोग आये और कहने लगे नादिया को खराव कर दिया। स्वामी जी ने कहा—क्या वोलते हो ? मुझे नीद लेने दो। पडे वोले—हमारा नादिया है। स्वामी जी ने कहा—यह तुम्हारा नादिया कब से आया ? हम अपनी वस्तु पर कुछ भी कर सकते हैं। तुमको इससे क्या प्रयोजन है। यह सुनकर पडे लोग उन्हे धक्के देकर निकालने लगे। तव उन्होने खडे होकर कहा—चल भाई, मेरे नादिये ! यह सुनते ही वह पत्थर का नादिया चलने लगा। यह

चमत्कार देख वे पडे उनके पैरो मे गिर पडे और बोले स्वामी जी, हमने आपको पहचाना नही था, हमे क्षमा करो। भाई, समय आने पर वे सत महात्मा लब्धि को प्रकट भी कर देते थे और पीछे प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि भी कर लेते थे। सहनशील पुरुष अपने को और समाज को भी बचाता है और धर्म का गौरव भी बढाता है। अत हम सबको सहनशील होना चाहिए।

वि० म० २०२७ कार्तिक वदि ७
जोधपुर

११ | उत्साह ही जीवन है

भाइयो, जिनेश्वर देव की वाणी मे अभी आप क्या सुन रहे थे ? क्या वात आई है ? भगवान् ने कहा है कि भव्य जीवो, अपना उत्थान स्वय करो। उत्थान का अर्थ है मन, वचन और कायर से अपनी आत्मा का उद्धार करना। आत्म-उद्धार के लिए आवश्यक है कि अपने भीतर उत्साह प्रकट किया जाय और स्फूर्ति जागृत की जाय। जिसके मन मे उत्साह प्रकट हो जाता है उसके वचन मे भी उत्साह आ जाता है और काया मे भी उत्साह आ जाता है। यदि मन मे उत्साह नही होगा शरीर मे भी उत्साह नही होगा।

जिन मनुष्यो के हृदय मे लौकिक या सासारिक कार्यो के करने मे उत्साह होता है, समय आने और निमित्त मिलने पर उनके हृदय मे पारलौकिक, आध्यात्मिक और धार्मिक कार्यो मे भी उत्साह प्रकट हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि **'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'**। अर्थात् जो कर्म करने मे शूरवीर होते हैं। जिस व्यक्ति के हृदय मे स्वाभिमान होता है वह कहता है कि मैं कौन हू, मेरा कुल, जाति और वश कौन सा है ? फिर मैं आज क्यो पतन की ओर जा रहा हू ? भाई, भगवान् महावीर के वचन तो उत्साहवर्धक ही हैं। निरुत्साही होना, निरुद्यमी होना और भाग्य के भरोसे वैठे रहना, ये महावीर के वचन नही, किन्तु कायरो के वचन है।

दया करना वीर

कितने ही लोग कहते हैं कि यदि मनुष्य मे उत्साह अधिक

बस दया कैसे पालेगा ? नही पाल सकेगा ? अरे भाई, तुम लोगो ने दया का मतलब ही नही समझा है ! तुम लोगो की दया तो ओठो तक ही सीमित है। अभी आपके सामने कोई बदमाश किसी स्त्री को उडा ले जाता है और उसके साथ बलात्कार करके उसे खराब करता है, तो तुम क्या करोगे ? बैठे रहोगे, भाग जाओगे, या आँखे बन्द कर लोगे ? क्या यह वीरता है ? अथवा मैं मर मिटूंगा, पर उस स्त्री के सतीत्व की रक्षा करूँगा, ऐसा कहने वाला वीर है ? जब तक मनुष्यो मे धर्म, देश, जाति और समाज की रक्षा का भाव जागृत नही होगा, तब तक वीरपने का भाव आ नही सकता। अरे कायर बन कर और दया-दया का नाम लेकर तो आप लोगो ने दया का अर्थ ही बिगाड दिया है। हाँ, दया पाली राजा मेघरथ ने। वे कायर थे क्या ? नही ? वे शूरवीर थे। उन्होने तुरन्त छुरी से अपने शरीर का मास काट कर उसे दे दिया और दीन पक्षी की रक्षा की। क्या आप ऐसा कर सकते है ? क्या आप मे ऐसी शक्ति है। आप लोगो के हाथ मे तो अगुली को चीरा देना भी सभव नही है, तो अपने शरीर का मास काट कर देना कैसे सम्भव है ? देने-लेने की बात छोड दो। अरे, एक भूख से मरता भिखारी आया और चालीस दिन के भूखे हरिश्चन्द्र ने जिन्होने दातुन तक नही की थी कहा कि मैं भूखा हू, मुझे खाना दो। तो वे स्वय भूखे रह गये, परन्तु उसे उन्होने अपने लिए आये हुए भोजन को दे दिया। पर आपकी आखो से आँसू आ रहे हो, भूखे मर रहे हो यदि कोई आकर के कहे कि हमको दो, तो क्या दे दोगे ? अरे, जैसे तुम, वैसे ही तुम्हारे गुरु भाई। वीर की सोहबत (सगति) वीर पुरुष ही करेगा और कायर की सगति कायर ही करेगा।

देखो—धर्मरुचि नामक अनगार हलाहल विष पी गये। पर आज यदि हमारे यहाँ अलना आगया, तो कहते है कि नमक लाओ। भाई, महावीर स्वामी कहते है कि सयोग दोष लगता है। पर आज कहते है कि यदि दोष लगता है, तो लगने दो। भाई, वीरो के गुरु वीर होते है और कायरो के गुरु कायर होते है। किन्तु जिसके भीतर काम करने का साहस ही न हो, वे लोग ससार मे क्या काम कर सकते है ? परन्तु मनुष्य को अपने उत्कर्ष और उत्थान की भावना तो होनी ही चाहिए ताकि अवसर आने पर हृदय मे स्फूर्ति आ जाय। पर भाई, यदि देने का काम पडे तो—है, बावजी ! ढाई लाख रुपये, पाच लाख रुपये दिये जावे ? देखो - शिवाने मे अभी मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई। उसके अवसर पे बोली हुआ करती है। उसकी बोली प्रारम्भ हुई। एक भाई वहा बैठे है कुबेर-सरीखे। उन्होने ढाई लाख की बोली बोली। वे सबर मे आगे

हैं। दया का वडा वृक्ष है। उन्होंने पाच के सामने ढाई लाख की वोली वोली तो यह नही कि दु नही दूगा। मनुष्य को देने की हिम्मत चाहिए। हिम्मत हो तो मनुष्य सब कुछ कर सकता है। किसी ने कहा—अमुक भाई पहिले लिख देवें, लाखो की कमाई है। लोग उनको लक्ष्य करके कहते है–सेठ साहब ! इधर आइये। वे कहते हैं—नाडा छोड करके अभी आता हू। लोग मुख से कहते हैं कि पैसा हाथ का मैल है और फिर भी देते नही हैं। जब देने की भावना नही है, तो भाई, झूठ क्यो वोलते हो ?

भाइयो, जोधपुर पीछे नही और सिवाना भी पीछे नही। सब महावीर की सन्तान कहलाते हो ? परन्तु हृदय के भीतर उत्साह की कमी है। जिस व्यक्ति में उत्साह भरा हुआ है वह सब कुछ कर सकता है। मैं पूछता हू कि हाथी वडा है या सिंह ? हाथी से वडा कोई जानवर नही है। और सिंह कैसा ? तीन-चार फुट ऊँचा गधेडे जैसा। परन्तु जब वह दहाडता है, तो सैकडो हाथी भयभीत होकर इधर-उधर भागते नजर आते है। इसलिए किसी को देखकर ऐसा विचार नही करना चाहिए कि यह दुवला-पतला है। पुराने आदमी कहा करते थे कि दुवला देखकर के लडना नही।' भाई, मन उत्साह से भरा होना चाहिए और भीतर वीरता होनी चाहिए। पहिले के लोग उत्तम श्रेणी के भद्र भी होते थे और शूर-वीर भी होते थे। उनमे सर्व प्रकार की योग्यता होती थी। उनमे अटूट उत्साह होता था। इसलिए वे जो भी काम करना चाहते थे, उसे सहज मे ही कर लेते थे। शूरवीर पुरुष जव तक नीद मे रहते और ध्यान नही देते हैं, तब तक घोटाला हो जाता। परन्तु जव वे आखें खोल देते है तो फिर सब घोटाला साफ हो जाता है।

धन्नाजी की वत्तीस स्त्रिया थी। अपार वैभव था। उनके सुख का क्या कहना ? जिनको यह भी पता नही था कि सूर्य का उदय कव और किधर से होता है, तथा वह अस्त कव और किधर होता है। इसी प्रकार शालिभद्रजी भी परम सुखी थे कि जिन्हे अपने घर की अपार सम्पत्ति का पता तक भी नही था। उन्हे घर का कुछ काम नही करना पडता था। उनकी मा ही घर का सारा कारोवार सभालती थी। एक समय उन्होंने नगर के जन-समुदाय को वाहिर जाते हुए देखा तो पूछा कि आज यह जन-समुदाय कहां जा रहा है। लोगो ने वताया कि उद्यान मे भगवान महावीर पधारे हैं और सब लोग उनके दर्शनार्थ जा रहे हैं। उन्होंने देखा कि सपरिवार राजा और सारा नगर जा रहा है तो विचारने लगे कि मैं कैसा पुण्यहीन और मन्द-भागी हू कि मैंने आज तक उन महाप्रभु के दर्शन तक नही किये ? आज तो

हमको भी दर्शन करना चाहिये। वे अभी तक ऐसे सुकुमार बने हुए थे कि कभी उन्होंने गादी से नीचे भूमि पर पैर ही नही रखे थे। परन्तु आज उनमे नयी स्फूर्त्ति उत्पन्न हुई, नया जोश आया और चलने का ऐसा उत्साह जागा कि विना सवारी के और घर के नौकर-चाकरो के विना ही अकेले नगे पैर भगवान के दर्शनार्थ चल दिये। लोग देखकर चकित हुए।

भाइयो, आज यदि कोई धन्ना सेठ जैसा व्यक्ति नगे पैर बाहिर निकले तो क्या लोगो को आश्चर्य नही होगा। आज राजाओ के राज्य चले गये, प्रिवीपर्स वन्द हो गये। परन्तु महाराज गजसिंहजी जैसे व्यक्ति यदि बाजार मे नगे पैरो आवे तो क्या लोगो को आश्चर्य नही होगा? भाई, नर है तो घर वसाते भी देर नही लगती है। वह भी अपने समय का सबसे वडा धनी सेठ था। वत्तीस करोड सुवर्ण दीनार उसके घर मे थी। उसके पिता के नाम से एक टकसाल भी थी। राजा-महाराजा लोग उनसे मिलने के लिए उनके ही घर पर आते थे, पर धन्ना सेठ किसी के यहा नही जाते थे। वे सदा अपने महल मे ही रहते थे और उसके चारो ओर के उद्यान मे ही घूमते-फिरते थे। कभी उससे बाहिर जाने का काम ही नही था। किन्तु जव धर्म भावना जागी तो धूल-धूसरित पदो से ही भगवान के समवसरण मे पहुचे। वहा की दिव्य छटा और अलौकिक वैभव देखकर, तथा भगवान की परम अमृतमयी वाणी को सुनकर दग रह गये। वे विचारने लगे—ओ हो, मैं तो समझता था कि मेरे वरावर अतुल वैभव किसी के पास नही है। परन्तु यहा के वैभव की छटा तो निराली ही है। इसके सामने मेरा महल तो कुछ भी नही है। जिसके समवसरण मे सोने और रत्नो के कगूरे और कोट है, तो उनके वैभव और ऋद्धि का क्या कहना है? भगवान को स्फटिक-रत्नमय सिंहासन पर विराजमान देखकर धन्ना सेठ ने तीन प्रदक्षिणाए देकर नमस्कार किया और भगवान के सामने जाकर बैठ गये।

भाइयो, कौन सिखाता है नम्रता? और जडता भी कौन सिखाती है। आत्मा ही सिखाती है। भगवान के समवसरण मे बारह सभाए थी। चतुर्निकाय देवो की चार सभाए, मुनियो की, आर्याओ की, श्रावको की और पशुओ की। भगवान की देशना चालू थी। धन्ना के पहुचते ही उनकी देशना उनको लक्ष्य करके होने लगी। क्योकि वह हुडी सिकारने-वाला आया था। भाइयो, आप लोगो को भी तो कमाई देने वाला ग्राहक अच्छा लगता है यदि आप दस आदमियो से बाते कर रहे हो और इतने मे ही यदि कोई ग्राहक आ जाय, तो आप भी तुरन्त उससे पहिले बात करेंगे। आपकी गाये और भैंसे

सब वाडे मे आगई, परन्तु हाथ की थपकी सबसे पहिले दूध देने वाली गाय को देंगे। कही भी जाओ—धर्म पक्ष मे या ससार पक्ष मे, सर्वत्र यही बात है।

भगवान की दिव्य-देशना सुनने और अनुपम वचनामृत पान करने मे ऐसे मग्न हुए कि वे वाहिरी ससार को भूल गये। उन्हे लगा कि हाय, मनुष्य भव की इतनी वहु मूल्य घडियो को मैंने आज तक इन विपय-भोगो मे फस कर व्यर्थ गवा दिया। ये ससार के भोग स्वय तो क्षण भगुर है, किन्तु जीव को अनन्त काल के लिए दु खो के समुद्र मे डालनेवाले हैं। फिर इस मनुष्य भव का पाना भी सरल नही है। अव जो हो गया, सो तो लौटनेवाला नही है, किन्तु अव जितना जीवन शेप है, उसे व्यर्थ नही गवाना चाहिए। यदि अव चूक गया तो मनुष्यभव का पाना वैसा ही कठिन हैं, जैसा कि अगाध समुद्र मे गिरी हुई मणि की कणी का पाना वहुत कठिन है। इस प्रकार विचार करते करते उनके हृदय मे आत्म-ज्योति जग गई। भगवान की दिव्य देशना समाप्त होते ही प्रसादिये भक्त तो 'मत्थएण वदामि' कहकर रवाना होने लगे कि महाराज आप सुख-शान्ति से विराजे, हम तो जाते हैं। किन्तु धन्नाजी वही चित्र-लिखित से वैठे रह गये, लोगो ने और साथ मे आये स्व-जन-परिजनो ने देखा कि धन्नाजी नही उठ रहे है, क्या वात है ? यह सोच विचार कर कोई उनके समीप खडे रहे और कुछ लोग कुछ दूर पर आपस मे वाते करते उनके उठने की प्रतीक्षा करने लगे। जव सारी सभा के लोग उठ गये और वातावरण शान्त हो गया तव धन्नाजी उठकर खडे हुए और भगवान से कहने लगे—

> **सरद्धघा अरु परतीतिया सरे, रुच्या तुम्हारा वैण।**
> **अनुमति ले अम्मा तणी, सजम ले स्यू सैण॥**
> **जिमि सुख होवे तिम करो सरे, या भगवतरी कैण।**
> **काकदी का धन्ना, वलिहारी जाऊं थांरा नाजरी॥**

हे भगवन, मैंने आपके वचनो पर श्रद्धा की है, रुचि आई है और है और प्रतीति हुई है। आपके वचन सर्वथा सत्य है, तथ्य है और अवितथ हैं। इनमे लेशमात्र भी झूठ नही है। यह मेरी आत्मा गवाही दे रही है। अव अन्तरग दृष्टि के पलक खुल गये हैं, हृदय के वन्द कपाट उद्घाटित हो गये हैं। अत हे भगवन्, अव मैं माता की आज्ञा लेकर के सयम लू गा।

भाइयो, वताओ—आप लोगो ने भी कितने ही वार व्याख्यान सुने हैं और यह भगवद् वाणी कर्णगोचर हुई हैं—श्रवण की है। पर क्या कभी आप मे से

किसी ने धन्नाजी के समान यह कहा है कि मैं घरवालो की आज्ञा लेकर सयम ग्रहण करूगा ? आप कहेगे कि हम क्या, हमारे पडौसी भी नही कहते है।

धन्नाजी की वात सुनकर भगवान ने कहा—**जहा सुह देवाणुप्पिया, मा पडिवघ करेह**' जैसा तुमको सुख हो, आनन्द हो और जो मार्ग तुमको अच्छा दीखे, वैसा करो।

भाइयो, देखो—भगवान ने पहिले तो कह दिया कि तुमको जैसा सुख हो, वैसा करो। परन्तु पीछे से कह दिया कि '**मा पडिबध करेह**' अर्थात् हे धन्ना, उत्तम काम मे प्रमाद मत करो। भगवान ने इधर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को भी साध लिया और उधर प्रेरणा भी दे दी। भाई स्याद्वाद का मार्ग तो यही है।

भगवान के वचन सुनकर धन्नाजी को वडी खुशी हुई। उनके आनन्द की सीमा नही रही। वे सोचने लगे कि आज मेरे लिए कितना सुन्दर समय आया हैं। ऐसा सुअवसर तो आज तक कभी नही आया है। वे भगवान को 'मत्थएण वदामि' करके जैसे आये थे, उससे लाखो गुणित हर्ष के साथ घर को चल दिये। उस समय उनके मनमे अपार आनन्द हिलोरें ले रहा था। उन्हे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो मैंने ससार-समुद्र को पार ही कर लिया है। वापिस जाते समय तक धूप तेज हो गई थी और भूमि तप गई थी। जव वे वाजार मे होकर नगे पैर जा रहे थे, तव लोग बोले—सेठ साहव, धूप से आपका शरीर और पैर जल रहे है, तव उन्होने कहा—भाई, मेरा कुछ नही जल रहा है।

धन्नाजी सीधे घर पहुचे और माता को नमस्कार किया। माता ने कहा—प्रिय पुत्र, आज तो तेरे चेहरे पर वहुत प्रसन्नता दीख रही है ? वेटा, आज आनन्द की ऐसी क्या वात है ? धन्नाजी वोले—माताजी, आज मैने भगवान के दर्शन किये है, आज मेरे नेत्र सफल हो गये है, भगवान का उपदेश सुनकर मेरे कान पवित्र हो गये है, उनके चरण-वन्दन करके मेरा मस्तक पवित्र हो गया है। हे माता, अव तो मैं भगवान की सेवामे ही रहना चाहता हू। अव मैं इन दुखो से भरे ससार मे नही रहना चाहता हू। यह सुनते ही माता के ऊपर क्या वीती ?

'वज्रपात-सम लागियो सरे धरणी परी मुरझाय'

बूढी है उनके जीवन का सीमा करीव-करीव समाप्त हो चुका है। परन्तु मा की ममता धनी मे, वेटे-वेटी मे है, घरवार मे और धन-धाम मे लग रही

है। वह सोचने लगी– हाय, हाय ! ये भगवान् कहा से आगये ? हाय, आज मेरे बेटे ने उनकी वाणी कहा से सुन ली ? हाय, मेरे बेटे को—मेरे लाडले एक मात्र पुत्र को उन्होंने मोह लिया । यह कहती हुई वह मूर्च्छित हो गई। जब होश मे आई तो कहने लगी—

'हियडो लागो फाटवा सरे, ते दुःख सह्यो ना जाय।
नीर झरे नयना थकी सरे मुक्ताहार तुडाय॥
सुन पुत्र हमारा सजम मत लीजे मा ने छोड़के॥

जैसे मोतियो के हार मे से एक-एक मोती गिरता है वैसे ही उनकी आखो से आसू टपकने लगे। रुदन करती हुई माता बोली—बेटा, यह साधुपना कोई खाने का लड्डू नही है, और खेलने का खिलौना नही है। यह तो भारी कठिन तपस्या है। वे कहने लगी—

सयम नहीं छे सोयलो सरे, खड्ग धार सी चाल।
घर घर करनी गोचरी सरे, दूषण सगला टाल॥
बाईस परीषह आकरा सहे, किम सहसी सुकुमाल रे।
सुन पुत्र हमारा, सजम मत लीजे माने छोड़के॥

हे बेटा, तू साधुपना-साधुपना की क्या बात कर रहा है? यह तो तलवार की तेज धार के ऊपर चलने के समान है। अलूनी शिला चाटने के समान है, आराम छोडना और अपमान को सहना है, सारी ऋद्धि-सिद्ध छोड कर दरिद्रता को अगीकार करना है। बेटा, तेरे क्या कमी है ? एक से एक बढकर और देवागनाओ से भी सुन्दर बत्तीस कन्याओ के साथ तेरा विवाह किया है। यदि इनसे मन उतर गया हो, तो इनसे बढकर बत्तीस और परणा दू ? घर मे क्या कमी है ? फिर तू क्यो यह सब छोडकर और मेरे से मुख मोड कर साधुपना लेने की सोच रहा है ?

भाइयो, मा ने तो कहने मे कोई कसर नही रखी। पर धन्नाजी ने कहा— माता जी, आप कहती हैं कि साधुपना दोरा (कठिन) है। परन्तु मैं कहता हू कि सोरा (सरल) है। सुनो माताजी—

नरक वेदनो सही अनन्ती, कहू कहा लग माय !
परमाधामी वश पड्यो मरे मेरी करवत वेरी काय॥
जन्म जरा दुख मरणना सरे, सुणता जी थर्राय हो।
मा जी म्हारा आज्ञा देवो तो सजम आदरू॥

माता, मैंने नरक के भाव सुने है, नारकी एक दूसरे को कैसे-कैसे दुख देते है, यह याद करके मेरा जी थर्र-थर्र कापने लगता है। वे लकडी के समान करवत से शरीर को चीर डालते हैं, और अथाने मे जैसे मसाला भरते हैं, वैसे ही उस चिरे हुए शरीर मे नमक-मिर्च भरते हैं। मा, उस नरक के दुखो के सामने साधुपने का दुख क्या है ? कुछ भी नही है। इस जीव ने जन्म जरा, मरण के अनन्त दुःखो से भरे इस ससार मे महा भयकर कष्टो को भोगते हुए अनन्ता काल विता दिया है। इसलिए हे मेरी प्यारी माता ! उन दुखो से छूटने के लिए आप मुझे सयम लेने की आज्ञा दीजिए। यह सुनकर माता बोली—बेटा, साधुपन मे तुझे कौन कलेवा करायेगा और बीमार पड़ने पर कौन तेरी परिचर्या करेगा ? तब धन्नाजी ने कहा—माताजी, इनकी क्या आवश्यकता है ?

> **वन मे छै इक मिरगलो जी रे, कुण करे उणरी सार।**
> **मृगनी परै विचरस्यूं जी एकलडो अनगार ॥**

हे माता, तुम मेरे लिए पूछती हो कि वहा तेरी सार-सभाल कौन करेगा ? परन्तु देखो—जगल मे बेचारा एक अकेला हिरण रहता है, वह भूखा-प्यासा है, सर्दी-गर्मी लगती है और रहने का भी ठिकाना नही है, सो उसकी भी कोई सार-सभाल करता है ? कोई नही पूछता है। फिर वह मरता है, या जीता है ? कोई उससे सुख-दुख की बात पूछता है ? कोई भी नही पूछता। फिर भी वह जीवित रहता है, या नही ? तब फिर मेरे लिए इतनी चिन्ता क्यों करती हो? उसकी जैसी आत्मा है, वैसी ही मेरी है। जैसे वह हरिण सुख-दुख की परवाह नही करता है। वैसे ही अब मुझे भी अपने सुख दुख की परवाह नही है। निर्ग्रन्थ अनगार तो इस दुखो से भरे ससार से और उसके अनीति-पलीते से अलग होकर स्वतन्त्र और निराकुल रहने मे ही सुख मानते है। इस प्रकार समझा करके धन्नाजी ने मा को निरुत्तर कर दिया।

धन्नाजी के वैराग्य की चर्चा धीरे-धीरे सारे नगर मे फैल गई। जब वहा के राजा को इसका पता लगा तब वे भी आये और कहने लगे—धन्नाजी, तुम्हारे से ही हमारे सारे राज्य का काम-काज चलता है और तुम्हारे द्वारा ही हमारे राज्य की शोभा है। फिर तुम्हें घर छोडकर साधुपना लेना शोभा नही देता। नगर के अन्य भी प्रमुख सेठ लोग आये और उन लोगो ने भी कहा कि सेठ साहब, यह क्या विचार कर रहे हो ? तब धन्नाजी ने सब से कहा—बस, जो कुछ धारना था, सो धार लिया। यदि आप लोग घर मे ही रहने का

आग्रह करते हैं, तो एक प्रवन्ध कर दीजिए कि मेरे पास बुढापा न आवे, रोग न आवे, और मौत न आवे। वस, आप इन तीनों के नही आने की व्यवस्था कर देवे, तो मैं घर को छोडकर नही जाऊँगा। राजा साहव भी मौजूद हैं और आप सब पच लोग भी उपस्थित है। कहावत है कि पचो मे परमेश्वर रहता है और राजा साहव तो परमेश्वर हैं ही। जब दो-दो परमेश्वर मेरे सामने उपस्थित है, तो दोनो जने ही मिलकर जरा, रोग और मौत से वचने का प्रवन्ध कर दो। फिर मैं घर छोडकर कभी नही जाऊगा। धन्नाजी की यह वात सुनकर राजा ने शिर नीचा कर लिया और पच लोग भी अवनत-मुख रह गये। धन्नाजी वोले—आप लोग चुप क्यो रह गये है? तव सव लोग एक साथ वोले– धन्नाजी, उन तीन वातो के नही आने का प्रवन्ध करने मे हम लोग असमर्थ है। तव धन्नाजी ने कहा—यदि ऐसी वात है, तो फिर आप लोग मुझे उन तीनो दुखो से छूटने के लिए क्यो रोकते है? मैंने तो इन तीनो को जड-मूल से नाश करने का निश्चय किया है। अन्त मे सवने उनकी माता से कहा—अव आप के ये लाडले वेटे घर मे रहने वाले नही है। इसलिए अव इन्हे सहर्ष साधु वनने की आज्ञा प्रदान करो। भाई, जिसके हृदय मे उत्साह प्रकट हो जाता है, फिर उसे ससार का त्याग करते देर नही लगती है।

भाइयो, परिग्गह किसको माना है? शास्त्रकार कहते है कि 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' अर्थात् भगवान् ने मूर्च्छा को ममता भाव को परिग्रह कहा हैं। रत्नो से जडे हुए सोने के महलो मे रहते हुए भी यदि उनमे ममता नही है तो उसे अपरिग्रही कहा है। और जिसके झोपडी रहने को भी नही है, केवल फूटे ठीकरे और फटे पुराने चीथडे ही पहिनने को है, यदि ऐसे भिखारी की उन पर मूर्च्छा और ममता है, तो उसे परिग्रही कहा है।

एक सन्त गोचरी के लिए किसी घर मे प्रविष्ट हुए। उसकी जर्जरित दशा देखकर करुणा से द्रवित हो उठे।

टूटा तो छप्पर घर, विल हैं अनेक ठौर,
नौल फौल मूसा जाणो जीवा हो समेत है।
खाट एक पायो ऊणो, गूदडो विछायो जूनो,
चाचड माकड़ जूंघा लीखा ही समेत है।
काणी सी कुरूपा, देह ऐसी प्रिया सेती नेह,
खाडो हाडो वांडो चाट् मौजा मान लेत है।
ताही मे अनूस रह्यो, मानें ना गुरु को कह्यो,
मान को मरोर्यो जीव विदा को न देत है ॥

भाइयो, पाप का फल ऐसा है कि सोते हुए तारे दिखते हैं। और ईस कैसी कि आकडे की और सोते भी कूदे। फिर उसकी झोपडी कैसी कि बर-सात बरसे एक घटी, छाण चवैं बारा घडी'। कभी इधर से काला साप निकल पडता है, तो कभी उधर से विच्छू निकल रहे हैं। खाट का एक पाया टूटा हुआ है, बिछाने को एक पुराना गूदडा है, जिसमे चाचड, माकड, जूवा और लीखें भरी हुई है। जिन के कारण एक क्षण को भी रात मे नीद नही ले सकते। फिर स्त्री कैसी ? काली-कलौटी और कर्कशा। बोले तो बिजली सी कडके। रसोडा कैसा कि एक भी साबित हडी तक भी उसमे नही है। ऐसी घर की दशा को देखकर सन्त ने कहा अरे भाई, अब तो धर्म साधन करो। पूर्व बुरी करनी के फल से तुम्हे ऐसी सामग्री मिली है। अब कुछ दिन भली करनी कर लो तो इससे छुटकारा मिल जाय। और अगले जन्म मे सब सुख-मयी सामग्री मिल जाय। यह सुनकर वह बोला--मेरे घर मे क्या कमी है ? सब प्रकार की सुख-सामग्री है। आप किसी और को उपदेश दीजिए और मेरे ऊपर कृपा कीजिए। यह सुनकर वे सन्त चुपचाप वापिस चले आये।

भाइयो, जिनकी होनहार बुरी है उन अभागियो के लिए मुनि जन भी क्या कर सकते है ? उनसे भली बात भी कही जाय, तो वे बुरा मानते हैं। अमृत तुल्य भी शिक्षा उन्हे विप-तुल्य प्रतीत होती है। ऐसे लोगो के लिए समझना चाहिए कि अभी तक इन के दिन अच्छे नही है। जिन की होनहार अच्छी होती है, वे राजसी वैभव को भी छोडकर धन्नाजी के समान घर-बार छोडकर आत्म-कल्याण मे लग जाते है। इसलिए हमको अपने भीतर उत्साह जागृत करने की आवश्यकता है।

वि० स० २०२७ कार्तिक वदी ८
जोधपुर

१२ सर्वज्ञवचनों पर आस्था

चार औषधियां

भाइयो, ससार मे अनन्त वस्तुए हैं, उनमे जो वस्तु किसी रोग का विनाश करती है, उसे औषधि कहते हैं। उनमे कोई औषधि ऐसी भी होती है कि जिसके रोग हो उसका तो रोग मिटा दे और जिसके रोग नही हो, उसके रोग की उत्पत्ति कर दे। एक औषधि ऐसी होती है कि उसे लगातार सेवन करने पर भी न कुछ लाभ पहुचाती है और न हानि ही करती है। तीसरी औषधि केवल हानि ही पहुचाती है, परन्तु लाभ कुछ भी नही करती है। और चौथी औषधि ऐसी है कि यदि रोग हो तो उसे मिटा दे और नही हो तो शरीर मे शक्ति बढावे। अब मैं पूछता हू कि इन चार प्रकार की औषधियो मे से अपने लिए लाभकारी औषधि कौन सी है? वही है जो कि रोग मिटाने वाली हो और यदि रोग नही है तो बल देनेवाली हो। यही मगलमयी सर्वौषधि है। शेष तीनो प्रकार की औषधिया तो निरर्थक हैं—बेकार है।

उक्त औषधियो के समान ही, ससार मे चार गतिया है—नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति। इनमे तीन गतिया तो तीन जाति की औषधियो के समान है। वे है- नरकगति, तिर्यचगति और और देवगति। परन्तु चौथी मनुष्य गति सर्वरोगापहारी औषधि के समान है। मानव का जीवन ही ऐसा जीवन है कि जिसके द्वारा भव-रोग मिट सकता है और नया बल एव नव जीवन प्राप्त हो सकता है। परन्तु इस प्रकार की औषधि को देनेवाले और रोगी

के रोग का ठीक-ठीक निदान करनेवाला चिकित्सक भी चतुर एवं कुशल होगा। औपधि उत्तम है, लेते ही रोग मिटाने की सामर्थ्य रखती है। परन्तु वह यदि रोग को भले प्रकार समझे विना और रोग का ठीक निदान किये विना रोगी को दी जाय तो क्या लाभ करेगी ? नही करेगी। अरे, रोगी को आवश्यकता है पथ्य भोजन की और पिलाया जाय पानी ? तो क्या वह शक्ति प्राप्त करेगा ? और यदि रोगी अजीर्ण रोग से ग्रस्त है, तो उसे आवश्यकता है भोजन वन्द करके पानी पिलाने की। किन्तु उसे भोजन कराया जाय, तो अपने जीवन से ही हाथ धोवेगा। इस सर्व कथन का सार यह है कि सर्वप्रथम भव रोग का निदान करने वाला उत्तम वैद्य के समान योग्य गुरु होना चाहिए। फिर औपधि रोग-हर और वल-वर्धक होना चाहिए। और रोगी को पथ्य-सेवी, श्रद्धालु और दृढ विश्वासी होना चाहिए। आप देखेंगे कि यदि भव-रोग का चिकित्सक गुरु योग्य है—विद्वान् है, औपधि भी उत्तम है और रोगी भी पथ्य सेवी है, तव क्या वह नीरोग नही होगा ? लाभ नही करेगा ? अवश्य ही स्वास्थ्य-लाभ करेगा, इसमे रत्तीभर भी शका को लाने की आवश्यकता नही है। इसलिए आवश्यकता है उक्त तीनो योगो के मिलाने की। यदि गुरु रूपी वैद्य योग्य है, किन्तु रोगी अपथ्य-सेवी है, अथवा रोगी तो पथ्य-सेवी है, किन्तु वैद्य योग्य नही है अथवा दोनो ही ठीक हैं, परन्तु औपधि ठीक नही है तो बताओ रोगी कैसे नीरोग हो सकता है। इसलिए उक्त तीनो के ही योग्य होने की आवश्यकता है, तभी भवरूपी रोग दूर होगा।

आज हम लोगो को सर्वगतियो मे श्रेष्ठ मानव जीवन मिला है, सद्गुरु का भी सुयोग मिला है और भगवान की वाणी रूपी सर्वरोगापहारी औपधि भी प्राप्त है। ऐसे उत्तम सयोगो के मिलने पर हमारा भव-रोग मिट सकता है, जीवन मगलमय हो सकता है और आत्मा का कल्याण हो सकता है। उक्त तीनो सयोग कितने मूल्यवान है, इसका क्या कोई अनुमान लगाया जा सकता है ? मारवाडी मे कहावत है कि 'मैदा लकडी का क्या भाव कि पीडा जाने है' ? ऐसे तो वह घर-घर मे पडी हुई है, परन्तु कौन पूछता है। परन्तु जब चोट लगती है, तभी मैदा लकडी याद आती है। औपधि का मूल्य कब है ? जब कि रोग हो और उसे दूर करने की इच्छा हो।

त्रिरोग नाशिनी-जिनवाणी :

संसार के प्रत्येक प्राणी को अनादि काल से जन्म, जरा और मृत्यु ये तीन रोग लगे हुये है। जब कोई प्राणी अपने इन रोगो को मिटाना चाहे, तभी प्रभु की वाणी की कीमत है। जो प्राणी अपने रोगो को नही मिटाना चाहे, उसके लिए उसका क्या मूल्य है ?

यहा पर कोई पूछे कि भगवान् तो कभी के मोक्ष मे चले गये है और उनकी वाणी तो बहुत समय के पश्चात् शास्त्र-निबद्ध हुई है। तब इन्हे भगवान के वचन कैसे माना जा सकता है? भाई, मैं आप लोगो से पूछता हू कि किसी व्यक्ति का जन्म बाप की मृत्यु के छह मास बाद हो तो वह पुत्र किसका कहलायगा? वह उस बाप का ही तो कहलायगा न? क्या वह उसके घर का मालिक नही बनेगा? वह अपने बाप का है, तभी तो उसका अधिकारी है। आप लोग फिर कह सकते हैं कि शास्त्र तो भगवान् के मोक्ष मे जाने के कई शताब्दी बाद ही लिखे गये हैं, फिर उनको कैसे प्रमाण माना जाय? भाई, यह बात ठीक है कि शास्त्र कई शताब्दी बाद लिखे गये है मगर जब और जिसने लिखे, तब तक भगवान् के वीतरागी ज्ञानी शिष्यो की परम्परा तो अविच्छिन्न रूप से चलती। भगवान महावीर के मोक्ष मे जाने के पश्चात् अनेक धुरन्धर महापुरुष हुए हैं। भगवान महावीर के बाद गौतमस्वामी केवली हुए, उनके मोक्ष मे जाते ही सुधर्मास्वामी केवली हुए और उनके मोक्ष मे जाते ही जम्बूस्वामी केवली हुए। इस प्रकार कितने ही वर्षों तक केवल ज्ञान के द्वारा भगवान महावीर के समान ही यथावत् उपदेश होता रहा। तत्पश्चात द्वादशाग वाणी के वेत्ता पाच श्रुतकेवली हुए, जिनमे अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी थे। पश्चात् ग्यारह अग और दश पूर्वो के वेत्ता स्थूलभद्रादि अनेक आचार्य हुए है, जिनके क्रमवार नामो का उल्लेख नन्दीसूत्र के प्रारम्भ मे किया गया है। इस प्रकार निर्दोष आचार्यो की परम्परा मे आया हुआ श्रुत ही पुस्तकारूढ किया गया है। अत उसमे किसी भी प्रकार के मिलावट होने की शका करना निर्मूल है भले शास्त्र पीछे लिखे गये है, परन्तु उनमे वे ही उपदेश सग्रहीत किये गये हैं, जो भगवान महावीर ने दिये थे और जो गुरु-शिष्य रूप आचार्यो की परम्परा से लिखने के समय तक अनवच्छिन्न रूप मे आ रहे थे। उस समय के आचार्यो ने जब यह अनुभव किया कि काल के दोष से लोगो की स्मरणशक्ति उत्तरोत्तर कम होती जा रही है, भगवान की वाणी का लोप न हो जाय, इस श्रुत-वात्सल्य से प्रेरित होकर समस्त सघ ने एकत्र हो उनका सकलन कर उन्हे लिपि-बद्ध कर दिया, जो आज तक उसी रूप मे चले आ रहे है।

कोई तलवार राजा के शस्त्रागार मे पाच सौ वर्ष से पड़ी हुई चली आ रही है। अब कोई कहे कि उसका बनानेवाला तो पाच सौ वर्ष पहिले मर गया है। तो क्या वह तलवार उसकी बनाई हुई नही कहलायगी? फिर भाई, उसके नयी पुरानी होने के गीत गाते हो, या तलवार की धार देखते हो कि वह धार रखती है, या नही? भगवान् के वचन तो वही के वही है। भले ही

वे नौ सौ वर्ष के बाद लिखे गये हो, परन्तु वे असत्य नही है। भगवान महावीर भी कहते है कि ये ज्ञानियो के वचन हैं। उन्होने कहा—'मृषावाद मत बोलो, चोरी मत करो, तो क्या ये वचन नये है ? कुशील सेवन मत करो, या ममता को कम करो, तो क्या ये वचन नये हैं ? ये तो उनके समय मे भी थे और आज भी वही है। कोई उन्हे झूठा नही कह सकता है। अब रहा सवाल कि छह काया कि हिंसा नही करना। भगवान् ने कहा—हे साधु, छह काया का आरम्भ-समारभ मतकर। खडी, गेरु, हरताल, सोना, चादी, हीरा, पन्ना ये सब पृथ्वीकाय मे है, उनका तू सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ हिंसा मत करना। नदी, तालाब, झरना, कुआ आदि के समारभ-आरम्भ मे भी जल काया के जीवो की विराधना होती है। अब यदि कोई कहे कि बरसात के पानी मे जीव है, परन्तु झरने के पानी मे जीव नही है। ऐसे कहनेवालो से पूछो कि उस पानी से प्यास बुझती है और इससे नही बुझती है क्या ? प्यास तो दोनो मे बुझती है। फिर यह कैसे कहते हो कि झरने के पानी मे जीव नही है ? प्रतिक्रमण पाठ मे सब बाते आई हुई हैं। सब प्रकार की अग्नि सचित्त है। फिर भी आज अपने को ज्ञानी मानने वाले कहते है कि बिजली सचित्त नही है। अरे, जैसे चूल्हे की लकडी-छाने वाली अग्नि से आग लगती है वैसे ही भट्टी और बिजली के करेण्ट से भी आग लगती है। फिर कैसे कहते हो कि बिजली मे अग्नि काया के जीव नही है ? कारखानो मे जितनी भी मशीनरी चल रही है, वह सब अग्नि, पानी और हवा से ही चल रही है।

अब दवाओ को लीजिए लोग कहते है कि हम तो इजेक्शन लेंगे, गोली लेंगे, काढा, रस और चटनी लेंगे। परन्तु कहिये कि ये सब दवाए है, या नही ? किसी ने सरलता से निगली जा सकने वाली गोली बना ली, किसी ने मीठी बना ली और किसी ने चरकी-कडवी बना दी। परन्तु मूल भूत वस्तुएं तो वही की वही है। आप ऐसा नही कह सकते कि अमुक ही दवा है और अमुक नही है। थोडी देर के लिए मान भी लिया जाय कि बिजली मे जीव नही है, परन्तु उससे चलने वाले पखे मे तो वायुकाया के जीव मरते है, या नही ? भगवान के ये वचन है कि जहा एक काय की हिंसा हो रही है, वहा छह काय की हिंसा हो रही है। इस प्रकार भगवान के वचन तो पृथ्वी, जल, अग्नि आदि एक-एक काया की हिंसा मे छहो काया की हिंसा को पुष्ट कर रहे है। फिर भी यदि कोई कहे कि हम तो नही मानेंगे, तो उनके कहने से क्या भगवान के वचन असत्य हो जावेंगे ?

भगवान की वाणी तो त्रिकाल मे वही की वही है जो पहिले थी, वही आज है। यह कहना व्यर्थ है कि आज केवली नही हैं, पूर्वधर नही हैं। अरे भाई, भगवान के वचन अबाधित हैं त्रिकालसत्य है। परन्तु मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितने अनर्थ कर रहे हैं? आपके सामने मे सैकडो आदमी निकल रहे हैं एक व्यक्ति ने दूसरे को मारा है और सब जानते है कि मारा है। वह पकडा भी जाता है तो अदालत यह कहकर छोड देती है कि प्रत्यक्षदर्शी गवाह नही है। अब उसे छोड तो दिया, परन्तु हृदय तो भीतर यही कह रहा है कि मारा है। इसीप्रकार जो अपने स्वार्थ-साधन के लिए उत्सूत्र-प्ररूपणा करते है और श्रद्धा से भ्रष्ट होकर अपनी मनमानी बात कहते हैं और समझते हैं कि ससार को हमारा काम अच्छा लग रहा है। ऐसे लोग सीधा ही क्यो नही कह देते कि वर्तमान के आगम-शास्त्र सूत्र ही नही है। फिर घर-घर क्यो गोचरी के लिए फिरते हो? घर पर जाकर बैठो। समाज पर यह भार क्यो? समाज का खर्च कराना और ऊपर से राजशाही ठाठ-बाट दिखाना क्यो? कहा तो यह है कि—

> गृहस्थी केरा टूकडा, चार चार आगुल दांत।
> ज्ञान-ध्यान मे ऊबरे, नहि तो काढे आत॥
> पूज कही पूजावियो, नित को खायो आछो।
> परभव होसी पोठियो, वह वे देसी पाछो॥

भाई, वहा तो सारी बातो का हिसाब होता है—माप-दड होता है। वहा मनमानी बात नही चलती है, किन्तु न्याय ही की बात चलती है। यदि भव-रोग से छूटना है और जन्म, जरामरण से मुक्त होना है तो भगवान की बतलायी हुई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी परम औषधि का सेवन करना होगा। और यह रत्नमय परमौषधि भी उस सद्-गुरु रूपी वैद्य से लेनी होगी, जो स्वय निर्मल आचार-विचारवाला हो, जिनके चारित्र मे किसी प्रकार का कोई दोष नही लगा हो। यदि कदाचित् लगा हो तो जिसने उसकी शुद्धि करली हो, जो धर्म के लिए सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो। अन्यथा आप डूबन्ते पाडे, ले डूबन्ते जजमान' वाली कहावत सत्य सिद्ध होगी। लोभी और स्वार्थी गुरु शुद्ध को अशुद्ध और अशुद्ध को शुद्ध कर देते है, जैसा कि आज प्राय देखा जाता है।

देखो—एक मुनिराज तपस्या करने के लिए ज्येष्ठमास की प्रचण्ड गर्मी के समय जगल मे पधारे। उन्होने अपने वस्त्र खोलकर एक वृक्ष के नीचे रख दिये, शरीर पर केवल लज्जा ढकने का वस्त्र रहने दिया। पानी के पात्र

ऊपर भी कपडा बाधकर छाया मे रख दिया और अपनी आखो पर पट्टी बाधकर और धूप मे बैठकर आतापना लेने लगे। इसी समय शिकार के लिए निकला हुआ एक राजा प्यास से व्याकुल होकर पानी की खोज मे घोडे को दौडाता हुआ वहा पहुचा, जहा पर कि मुनिराज आतापना ले रहे थे। उसने वृक्ष के नीचे वस्त्र मे ढके जल के पात्र को देखा—और तुरन्त वस्त्र हटाकर जल को पी लिया। उसने यह भी विचार नही किया कि यह किसका पानी है और पीने योग्य भी है या नही। भाई, भूख-प्यास की वेदना ही ऐसी तीव्र होती है, कि फिर उस समय उसे कुछ विचार नही रहता है। इसीलिए कहा गया है कि

'भूखा गिने न जूठा भात, प्यासा गिने न धोबी-घाट'

राजा को पानी पीने पर शान्ति मिली और वह वही छाया मे बैठ गया। थोडी देर मे उसके दूसरे साथी भी घोडे दौडाते हुए वहा आ गये। राजा ने उन लोगो से कहा—प्यास से पीडित होकर मैंने इस पात्र का पानी पिया है, अब अपने साथ जो पानी है उसमे से पात्र को भरकर और कपडे मे ढककर रख दो। राजा की आज्ञानुसार पात्र मे पानी डाल कर उसे ढक दिया गया और सबके साथ राजा अपने नगर को चला गया। मुनिराज तो आतापना लेने मे मग्न थे, उनको इस घटना का कोई पता नही था। जब वे आतापना लेकर उठे और वृक्ष के नीचे गये तो उन्होने अपना पसीना पोछा और वस्त्र पहिने। जब पात्र की ओर दृष्टि गई तो देखा कि जैसा मैंने कपडा बाधा था, वह वैसा बधा हुआ नही है। फिर सोचा—सभव है—हवा से खुल गया होगा, ऐसा विचार कर उन्होने वह पानी पी लिया। और पात्र लेकर नगर की ओर चल दिये। चलते-चलते उनके मन मे यह विचार आने लगा कि स्वर्ग और नरक कहा है? मैं किस चक्कर मे पड गया? लोगो के कहने से लोगो मे आकर व्यर्थ ही माथा मुडा लिया है। मैंने घर को वर्बाद किया और बाप दादो का नाम भी डुबा दिया है। अब तो मुझे यह साधुपना नही पालना है। इस प्रकार विचारो मे तूफान आगया। सयम से परिणाम विचलित हो गये। जब वे बाजार मे होकर उपाश्रय को जा रहे थे, तो ईर्या समिति का भी ध्यान नही था, लोगो ने सामने आकर वन्दन किया तो 'दया पालो' भी नही कहा। लोग विचारने लगे कि आज इनकी गति-मति कैसी हो रही है। कुछ लोग उनके पीछे हो लिये। जब वे उपाश्रय मे पहुचे तो लोगो ने पूछा—महाराज, क्या आज आपका जीव मोरा नही है? उन्होने उत्तर दिया—मेरा नहीं है? मोरा ही है। फिर बोले—देखो, यह साधुपना कुछ नही है, सब ढोग है। हम तो अब इस वेष का परित्याग करके जाना चाहते है। ये

सभालो अपने ओघा-पात्र । श्रावक लोग विचारने लगे—'अहो कर्म्मे' कर्मों की लीला पर आश्चर्य है ? हजारो को तारनेवाला यह जहाज डूब रहा है, साधु अपने मार्ग से गिर रहा है । तब लोगो ने हाथ जोड कर बडी विनय के साथ कहा—महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं । साधु बोले मै ठीक कह रहा हू । मैं अभी तक धर्म का घोटक था—अगला ठिकाना नही था । अब कुछ सुध बुध आई है, इसलिए इस बाने को छोडकर जारहा हू । लोगो ने सोचा—ये महात्मा तो पहुचे हुए है, शास्त्रो के ज्ञाता हैं । परन्तु ज्ञात होता है कि आज अग्राह्य-अकल्प्य-आहार-पानी इनके खाने-पीने मे आगया है जिससे इनकी बुद्धि आज चल-विचल हो रही है ठिकाने नही है । क्योकि कहावत है कि—

जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन ।
जैसा पिये पानी, वैसी बोले वानी ॥

यह सोचकर उन लोगो मे से एक मुखिया उठकर वैद्यराज जी के पास गया और लोगो से कह गया कि इनको बाहिर कही जाने मत देना । यदि ये चले गये, तो धर्म का बडा भारी मकान ढह जावेगा ।

मुखियाजी वैद्यराजजी को लेकर आये । उन्होने साधुजी की नाडी और बोले—नाडी तो ठीक चल रही है शरीर मे तो कोई रोग नही है । तब वहा उपस्थित कुछ लोगो ने कहा—इनका रोग हम जानते हैं । यह आपको ज्ञात नही हो सकता । आप तो इन्हे ऐसी दवा दीजिए कि वमन-विरेचन के द्वारा सारा खाया-पिया निकल जावे, पेट मे उसका जरासा अश भी न रहे । वैद्यराजजी ने भी सारी स्थिति समझकर एक विरेचक चूर्ण बनाकर दिया और महात्माजी ने भी उसे ले लिया । थोडी देर के बाद ही उनके पेट मे उथल-पुथल मची और तीन-चार बार बडी नीति के द्वारा उनका पेट साफ हो गया । उनके वस्त्र मल मे लिप्त हो गये । श्रावको ने उनका शरीर साफ किया, दूसरे वस्त्र पहिनाये । उनका शरीर एकदम शिथिल हो गया था, अत उन्हे पाटे पर सुला दिया ।

इधर तो महात्माजी का यह हाल हुआ और उधर राजा जगत ने महात्माजी का पानी पीकर जब नगर को आ रहा था, तब उनके मन मे ये विचार उठने लगे, कि मैं प्रजा का रक्षक होकर भी आज तक उनका मारक और भक्षक बना रहा । मैंने कितने निरपराधी लोगो को जेल मे डाला है कितनो का धन लूटा है और न जाने कितनी बहिन-बेटियो की [illegible] को नष्ट किया है । पता नही, मुझे मेरे इन दुराचारो का क्या [illegible]

फल भोगना पडेगा। यह मानव देह वार-वार नही मिलती है। अब यह अवसर हाथ लगा है, तो मुझे इसका सदुपयोग करना चाहिये, इत्यादि विचार करते हुए वे राज-महल मे पहुचे और जिन निरपराधी लोगो को जेलखाने मे डाल रखा था, उनको छोड देने की आज्ञा दी। जो सदा खोटी सलाह देने वाले हाकिम-हुक्काम थे, उनको तुरन्त नौकरी से अलग कर दिया और उनके स्थान पर भले आदमियो को नियुक्त किया। नगर के लोगो को बुलाकर कहा—भाइयो, आज तक मैंने आप लोगो के साथ जो जोर-जुल्म किये है, उनके लिए मैं आप लोगो से क्षमा याचना करता हू। लोग आश्चर्य से चकित होकर सोचने लगे —आज राजाजी मे यह परिवर्तन अचानक कैसे हो गया जो पापी से एक धर्मात्मा बन गये। तत्पश्चात् वे रनवास मे पहुचे और रानी को भी सम्बोधन करके ज्ञान-वैराग्य की वाते सुनाने लगे। रानी भी विस्मित होकर सोचने लगी —आज महाराज को यह क्या हो गया है ? आज तक तो उन्होने कभी ज्ञान ध्यान की वाते नही की है। फिर यह परिवर्तन सहसा क्यो हो रहा है। जब रानी इस प्रकार के विचारो मे निमग्न हो रही थी, तभी राजा बोले—रानी जी, आज तो मै विना मौत के ही प्यास से मर जाता। जगल मे चारो ओर घोडा दौडाने पर भी कही पानी नही मिला। जब मैं निराश होकर एकदम मरणोन्मुख हो रहा था, तभी एक स्थान पर एक साधु को ध्यान करते देखा और उनके समीप ही वृक्ष की शीतल छाया मे उनका पात्र जल से भरा दिखा तब उसे पिया और मेरी जान मे जान आई। यदि जगल मे उनका पानी पीने को न मिलता तो आज मैं जीवित नही लौट सकता था। कल तुम भी उनके दर्शनो के लिए चलना।

भाइयो, इधर तो राजाजी की यह परिणति हो रही है और उधर जब साधुजी के शरीर मे विरेचन द्वारा सारा रस-कस निकल गया, तब बोले—अरे, मुझे आज यह क्या हो गया और मैं क्या बकने लगा था! वे श्रावको को सम्बोधित करते हुए बोले—आज जब मैं जगल मे आतापना लेकर उठा, तब अपने पात्र मे पानी को जैसा बाधकर रखा था, वैसा नही पाया। ज्ञात होता है कि कोई उसका पानी पीकर पीछे से मेरे लिए अकल्पनीय पानी उसमे डाल कर चला गया है। यह कह कर उन्होने अपने आप की आलोचना, निन्दा और गर्हा की, अपनी आत्मा को बार बार धिक्कारा। लोग महात्माजी की बात सुनकर धन्य-धन्य करने लगे। ठीक इसी समय राजा साहब भी अपने दल-बल के साथ उपाश्रय मे पधारे और महात्माजी को नमस्कार करके बोले—भगवन्, आज आपकी कृपा से मुझे नया जीवन मिला है। महात्माजी ने पूछा—कैसे? राजा ने जगल की सारी घटना सुनाकर कहा—महाराज, आज

१३ समता और विषमता

भाइयो, आपके सामने दो धाराएँ वह रही है - एक है सरल धारा और दूसरी है विषम धारा। सरल धारा मे आनन्द है और विषम धारा मे कष्ट और दुख है। देखो—जो सीधा राजमार्ग जा रहा है, उस पर चलने मे आप को कष्ट नहीं होता है। परन्तु जो विषम मार्ग है, टेडा-मेडा, ऊचा-नीचा और काटे वाली झाडियो से व्याप्त हैं, उस पर चलने मे निरन्तर शका वनी रहती है कि कही ठोकर न लग जाय, डाकू और लुटेरे न आ जाये, अथवा हिंसक जन्तु न मिल जाय। इसलिए हमे विषम धारा से दूर रहना और सम-धारा मे प्रवेश करना चाहिए। व्याख्यान सुनने और शास्त्र-स्वाध्याय करने का भी खास उद्देश्य यही है कि हम पूर्ण आध्यात्मिक वने और परम धाम को प्राप्त करे। परम धाम (मोक्ष) कव प्राप्त होगा, यह हमारे ध्यान मे नही, वह तो सर्वज्ञ के ध्यान मे है और किस व्यक्ति का कल्याण होगा, यह उनसे छिपा हुआ नहीं है। हाँ, अपन से छिपा हुआ है। परन्तु परम धाम का जो मार्ग और उसको प्राप्त करने के जो कर्त्तव्य भगवान ने बताये है और जो महापुरुष उस पर चल रहे है, वे उत्तम है, क्योकि वे समधारा मे चल रहे है।

समता की वृत्ति

आज तक अनादिकाल से कर्मों का प्रसग बन रहा है और उनके उदय-वश क्रोध आ गया, तब उसके आते ही हमे विचार करना चाहिए कि हे आत्मन्, तूने न कहने योग्य वचन क्या कहे, इतनी अनर्गल बात क्या कही ? हमे

किसी से कुछ लेना नही और देना नही। उनका भाग्य उनके साथ है और तेरा भाग्य तेरे साथ है। तू उनका बुरा नही कर सकता है और वे तेरा बुरा नही कर सकते है। सबका भला-बुरा अपने-अपने उदय के अधीन है, दूसरे व्यक्ति तो उसके निमित्त मात्र बनते है। मुझे ऐसे अनर्गल कटुक वचन कहने की क्या आवश्यकता थी। ऐसा विचार कर सरल हृदयवाला उस व्यक्ति के पास जायगा और उससे कहेगा कि भाई साहब, मुझे क्षमा कीजिए, मैंने क्रोध मे ऐसा कह दिया जो मुझे नही कहना चाहिए था। आपके ये वचन सुनकर उस व्यक्ति के भी हृदय मे बडा असर पैदा होगा और वह सोचेगा कि इसने मुझसे जो कहा, वह उचित ही कहा है, मेरे हित के लिए ही कहा है। फिर भी ये स्वय मेरे पास आकर क्षमा-याचना कर रहे है, यह इनका कितना बडप्पन है, ये कितनी उच्च श्रेणी के व्यक्ति है। इनका सत्सग तो हमे निरन्तर ही करना चाहिए। इनके सत्सग मे मेरे मे जो त्रुटिया है, वे बाहिर निकल जायेगी। इस प्रकार आपके सरल व्यवहार मे उस व्यक्ति पर उत्तम प्रभाव पडा। इससे दोनो को लाभ हुआ, आपकी आत्मा मे भी शान्ति आई और उसकी आत्मा को भी शान्ति मिली। दोनो के हृदय मे जो अशान्ति की आग जल रही थी, वह शान्त हो गई।

इसके विपरीत यदि कोई विषम प्रकृति का मनुष्य है तो वह कहेगा कि मैंने उससे जो कहा है वह ठीक ही कहा है, बुरा नही कहा है। यदि वह बुरा मानता है तो मान ले। और बुरा मानेगा तो उसे दड देने का उपाय भी मेरे पास है। मै उससे किसी प्रकार भी दबनेवाला व्यक्ति नही हूँ। मैं उसे ऐसा फसाऊगा कि वह अपने आप पछाड खा जायगा। इस प्रकार से विचार करने वाला विषम धारा का व्यक्ति है। अरे, वह पछाड खा जायगा, ऐसा तू पहिले से ही निश्चय करके कैसे बैठ गया? इस प्रकृति का व्यक्ति अपनी विषम धारा मे ऐसा फसा हुआ है कि वह स्वतन्त्र विचार और सरल व्यवहार नहीं कर सकता है। इस प्रकार की विषम धारा वाले व्यक्ति दूसरो को लडाकर अपना स्वार्थ-साधन करने मे कुशल होते है। क्योकि वे लोग जानते है कि जब तक दूसरो को लडाया नहीं जायगा, तब तक हमारा स्वार्थ-साधन नही होगा। और जब यह दूसरो से लडेगा, तब मैं उसे मार्ग दिखाऊगा और इससे मुझे लाभ उठाने का अवसर प्राप्त होगा। जब यह फन्दे मे फस जायगा तब आकर कहेगा कि साहब, मेरा यह मामला सुलझाओ। उस समय मैं इससे [illegible] [illegible] कर ही लूगा। इस प्रकार मनुष्य अपनी कुटिल प्रवृत्तियो से [illegible] ही [illegible] करता है। मारवाडी मे कहते है कि 'मन के लिए (मार [illegible]

निए)—गैस को मार देता है और एक तृण के लिए महल को गिरा देता है।' कितना बड़ा अज्ञान है और कितनी तीव्र कषाय है कि मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ-साधन के लिए बड़े से बड़ा अनर्थ करने के लिए उद्यत हो जाता है। परन्तु नीचवृत्ति वाले लोगों को कुटिल प्रवृत्ति मे ही आनन्द आता है। कहा भी है कि—

'न हि नीचमनोवृत्ति रेकरूपा स्थिरा भवेत्'।

अर्थात् नीच मनुष्य की मनोवृत्ति कभी एक रूप नही रहती। वह सदा चचल बनी रहती है।

आचार्यों ने सममनोवृत्ति और विषममनोवृत्ति वाले मनुष्यो के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहा है कि—

'मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्धि पापिनाम्॥

अर्थात् जो सम मनोवृत्ति के धारक महात्मा होते है उनके मन मे, वचन मे और कर्म मे एक बात होती है। किन्तु विषम मनोवृत्ति वाले पापियो के मन मे कुछ और होता है, वचन से कुछ और कहते है और कर्म मे कुछ और ही होता है।

इस विषम मनोवृत्ति वाला अपने एक रुपये के लिए दूसरे को पाच रुपयो का नुकसान पहुचा देगा। अपने पाच सौ रुपये वसूल करने के लिए दूसरे को हजार रुपये की हानि पहुचायगा। किन्तु जो सममनोवृत्ति के धारक होते है, वे जब देखते है कि मेरे पचास रुपयो के पीछे दूसरे का यदि सौ रुपयो का नुकसान हो रहा है, तो वे अपने पचास रुपये ही छोड देते है। वे सोचते है कि यदि उसके पास से मेरे पचास रुपये नही आयेगे तो मेरे क्या कमी हो जायगी। पर यदि उसके सौ रुपयो का नुकसान हो जायगा तो बेचारे के बाल-बच्चे भूखो मर जावेगे। इस प्रकार समधारा वाले के हृदय मे करुणा की धारा सदा प्रवाहित रहती है। ऐसे पुरुष स्वय हानि उठाकर के भी दूसरो को लाभ पहुचाते रहते है। उनकी सदा यही भावना रहती है—

अहंकार का भाव न रक्खू, नहीं किसी पर क्रोध करू,
देख दूसरो की बढती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरू।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहा तक इस जीवन मे औरो का उपकार करू॥

सज्जनो की तो भावना ही सदा ऐसी रहती है कि भले ही मुझे दुःख उठाना पड़े तो उठा लूगा, परन्तु मेरे निमित्त से किसी दूसरे व्यक्ति को रच

मात्र भी दुःख न पहुंचे। किन्तु जो दुर्जन होते हैं, उनकी प्रवृत्ति विषम और कुटिल ही होती है। यदि कोई मनुष्य अपना मकान बेच रहा है और दूसरा व्यक्ति खरीद रहा है तो सम प्रकृति का व्यक्ति सोचेगा कि अपने को ऐसा चलना चाहिए कि अगले व्यक्ति को लाभ हो। किन्तु विषम प्रकृतिवाले को मकान लेना नही है फिर भी वह बोली बढा-चढा करके बोलेगा, जिससे कि लेने वाले को अधिक दाम देना पडे। इस प्रकार सम प्रकृति और विषम प्रकृति वाले मनुष्य संसार मे सदा से होते आये है और होते आवेगे। सम प्रकृति वाले थोडे ही होते हैं भगवान की वाणी का असर सम प्रकृति वाले मनुष्यो पर ही पडता है, विषम प्रकृति वालो पर नही पडता है बल्कि उनको जितनी भी अधिक भगवद् वाणी सुनाई जायगी, उतना ही उलटा असर होगा, क्योकि उनकी प्रकृति ही विषम है। पिता ने पढा-लिखा करके होशियार बनाया तो उसका उत्तम फल निकलना चाहिए था, किन्तु बुरा निकलता है। वह पढी हुई पुस्तको मे से भली बातो को ग्रहण नही करेगा, किन्तु चोरी-जारी और जासूसी की घटनाओ को पढकर उन्हे ही अपनायेगा। वह यदि सन्तो के व्याख्यान भी सुनेगा, तो उसमे से आत्म-कल्याणकारी बात को ग्रहण नही करेगा, किन्तु यदि कोई कलह-कथा का प्रसग सुनने मे आ गया तो उसे ही ग्रहण करेगा। सम-प्रकृति वाला व्याख्यान सुनते समय सामायिक को स्वीकार करेगा। यदि लाज-शर्म वश दिखाऊ-सामायिक भी करने बैठेगा, तो भी मन की कुटिल प्रवृत्ति उस समय भी चालू रखेगा। भाई, ऐसी सामायिक मे क्या रखा है ? कहा भी है कि—

> धर्म कमावे भारी, काम करे दुराचारी,
> नयननिसो करे यारी, नाम से समाई को।
> भूखते मजारी जैसे, चोट-करे दृष्टिधारी,
> फंसे अविचारी, काम करत अन्यायी को॥
> ऊपर से धर्म धारी, माहि पाप की कटारी,
> पीछे होयगी खुवारी, लेखो लेत राई-राई को।
> घट मे करत जारी, कहे सजो जनगारी,
> ऐसा हित होत नाहीं, राज पोपा बाई को॥

सामायिक मे समता ...

भाई, विषम प्रकृति वाले करने को धर्म की करनी है और धर्म करते है। [illegible] और नाम [illegible] से [illegible] सामायिक करने को देती। इन

(जीभ) वश मे नही रहती है सो सामायिक मे बैठते ही बातो का चर्खा चालू हो गया। एक ने दूसरी से कहा कि तेरी बीदणी ने ऐसा कर दिया। अब दोनो मे वाक्-युद्ध आरम्भ हुआ और लडाई चली। पास मे बैठी स्त्री के घर के चाबियो का गुच्छा समीप मे रखा था, वह उठा कर एक ने दूसरी स्त्री के शिर मे दे मारा और उसके शिर से खून निकलने लगा। अब तो स्थानक मे धूम मच गई। समीप ही थाना था। समाचार मिलते ही पुलिस के जवान आये और सामायिक मे ही लडने वाली स्त्रियो को गिरफ्तार करने लगे। सारे शहर मे समाचार फैल गया कि सामायिक करते हुए स्त्रियाँ लडी। भाई, यह सामायिक की, या कर्मो की कमाई ? भगवान् ने सामायिक तो समभाव मे बतलाई है। पूछा जाता है कि सामायिक करते समय कपडे क्यो खोले जाते हैं। भाई, ये सामायिक के परिकर्म है—ऊपरी काम हैं। जैसे दुकान खोलते हो, तो पाल भी बाधना पडता है, गादी लगानी पडती है और तकिये भी रखने पडते है। तभी दुकानदार कहलाता है। यदि दुकान नही है और कपडो की गठरी बाधकर घर-घर और गली-गली फिर कर वेचते हो, तो वह फेरी वाला कहलाता है। भाई, व्यापार तो दो पैसे कमाने के लिये किया जाता है। यदि कोई दुकान लगाकर बैठे और दिन भर मे पाच रुपये का घाटा पडा, तो वह घाटे मे रहा। और यदि फेरी लगाने पर पाच रुपये कमावे तो वह मुनाफे मे रहा। इसी प्रकार कपडे खोलकर सामायिक करने को बैठे और लडाई-झगडा कर आर्त्त-रौद्रध्यान किया, तो क्या वह सामायिक कही जायगी ? नही कही जायगी। आप सामायिक करने को बैठे, कपडे खोल दिये और बैठका बिछा दिया। इतने मे एक ग्राहक आ गया और कहने लगा कि माल लेना है। उसकी बात को सुनते ही आप दुपट्टा ओढ कर चल दिये, तो बताओ आपकी भावना सामायिक मे रही, या कमाई मे रही ? इसके विपरीत एक व्यक्ति सामायिक करने को बैठ गया और इतने मे ही आडतिया आया और बोला कि दुकान पर चलो। वह कहता है कि मैं तो यहा से व्याख्यान सुनकर और सामायिक-काल पूरा होने पर ही उठूगा। तब तक ठहर सकते हो तो ठीक है, अन्यथा फिर दूसरे से ले लेना। इसी का नाम सामायिक है। आचार्यो ने तो कहा है कि—

> सामायिके सारम्भा परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
> चेलोपसृष्ट मुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम्॥

अर्थात्—सामायिक करते समय गृहस्थ सभी आरम्भ और परिग्रह का त्याग करता है, इसलिए वह सामायिक के काल मे चेल (वाह्य) से लिपटे हुए

मुनि के समान यति भाव (साधुपना) को प्राप्त होता है। भाई, इसीका नाम सामायिक है।

जो नियमवाले श्रावक होते हैं वे तो प्रातः दस बजे से पहिले दुकान खोलते ही नहीं हैं। और शाम को चार बजे दुकान उठा देते हैं, क्योंकि, रात्रि में भोजन नहीं करना है। जिसके ऐसा दृढ नियम होता है, उसके ग्राहक भी दुकान खुलने के समय पर ही आते हैं। जो मनुष्य अपने नियम पर स्थिर रहते हैं, वे ही सामायिक आदि व्रतों के पालने का यथार्थ लाभ उठाते हैं। वे सोचते हैं कि यदि इस समय हम व्याख्यान सुनना छोड़कर चले जावेंगे तो फिर गुरु के ये अनमोल वचन सुनने को नहीं मिलेंगे। अतः हमें ऐसा अमूल्य अवसर नहीं खोना है। ग्राहक फिर भी मिल जायगा, किन्तु गया हुआ अवसर फिर हाथ नहीं आयगा। सच्ची सामायिक करनेवाले की तो ऐसी भावना रहती है। किन्तु जो लोग सामायिक का भेष धारण करके पोल में पड़े बूटों और जूतों पर दृष्टि रखते हैं और जाते समय अच्छे से बूट, चप्पल आदि को पहिन कर या थैली में डालकर ले जाने की भावना रखते हैं और अवसर मिलने पर ले भी जाते हैं, तो क्या ऐसी चोरी करने की भावना रखने वालों को कपड़े खोलकर और मुख-पट्टी बांधकर बैठने को सामायिक कहा जायगा? कभी नहीं? ऐसा व्यक्ति तो धर्म का द्वेषी और वैरी है। जो कपड़े खोलकर और सामायिक नहीं ले करके भी व्याख्यान सुनने को बैठता है, उस समय यदि किसी के गले-से सोने की चैन खुलकर नीचे गिर जाती है, तो वह उस व्यक्ति को इशारा करता है कि भाई जी, आपकी है क्या? जरा ध्यान कर लेना। भाइयो, बताओ—कपड़े खोलकर भी जूता और चप्पलों को ले जाने वाले की सामायिक कही जायगी? अथवा कपड़े नहीं खोल करके भी सोने और पाषाण में, तृण और मणि में समभाव रखने वाले के सामायिक कही जायगी? समभाव सदा सर्वदा उत्तम है, चाहे वह कपड़े पहिने हो और चाहे खोलकर बैठा हो? और यदि समभाव नहीं है, परिणामों में विषमभाव है, आर्त्त-रौद्रध्यान है, पापमय मनोवृत्ति है, तो चाहे वह साधु हो और चाहे वह श्रावक हो सदा सर्वदा बुरा ही है। आचार्यों ने सामायिक का स्वरूप बतलाते हुये कहा है—

समता सर्वभूतेषु, संयमे शुभभावना।
आर्त्त रौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकव्रतम्॥

अर्थात्—सब प्राणियों पर समभाव हो, संयम में शुभ भावना हो और आर्त्त-रौद्र भावों का परित्याग हो, यही सामायिक व्रत है।

मैं एक गांव मे पारकर फाउन्टेन पेन से लिख रहा था। प्रसग-वश श्री हजारीमल जी स्वामी से बात करने के लिए उस पेन को वही छोडकर चला गया। जब वापिस आया तो देखा, पारकर तो पार होगया। छान-बीन की,तो पता चला कि एक बावरी जाति का व्यक्ति साधु बना लिया गया था। किसी सत ने अपनी शिष्य-सख्या बढाने के लिए विना कोई परीक्षा किये उसे मूड लिया, चादर उढा दी और ओघा-पात्रा दे दिया। एक-दो दिन तक उस पर दृष्टि रखी तो ज्ञात हुआ कि इसी ने वह पारकर फाउन्टेन पेन पार कर दिया है। मैंने कहा—अरे बावरी अभी तक भी तेरी जाति का असर नही गया है? वह बोला - हा, महाराज, मैं तो बावरी हू। भाई, कोई व्यक्ति किसी भी वेष को धारण कर ले, परन्तु जाति का असर मिटना कठिन है। अरे, जिसने मन को शुद्ध नही किया, उसको कोरे घर छोडने से क्या लाभ हो सकता है। वैसे त्याग उत्तम वस्तु है, उस पर जब शुद्ध मन से अमल किया जाय अन्यथा सब व्यर्थ है। आपके पास केशर की पुडिया है, किन्तु वह कीचड मे गिर पडी तो वह लेने के योग्य नही रही इस प्रकार केशर की बर्बादी हुई। उसी प्रकार त्याग, व्रत आदि उत्तम है, परन्तु वे जब कुपात्रो के पास पहुचे तो त्यागी व्रतो लोगो की महिमा घट गई। वे ही त्याग व्रत जब सुपात्र के पास पहुचते है, तो उनका महत्व बढ जाता है। सूत्र (धागा) साधारण वस्तु है, किन्तु वही फूलो मे पिरोया जाकर राजा-महाराजाओ का गले का हार बन कर शोभा पाता है। छोटी भी वस्तु सुपात्र के ससर्ग से महत्त्व को प्राप्त कर लेती है। योग्य स्थान से व्यक्ति का महत्व बढता है और स्थान का उल्लघन करने से उसका महत्व घट जाता है।

समभावी-गुणानुरागी

समभाव मे रहने वाला व्यक्ति अपनी श्रद्धा से अलग नही होता है। वह जहा भी जाता है, वहा पर नवीन वस्तु को देखता है और उस पर विचार करता है उसके गुण-दोषो की छान-बीन करता है और निर्णय करता है कि मेरी जो वीतराग देव पर, निर्ग्रन्थ साधु पर और अहिसामयी दया धर्म पर जो श्रद्धा है, वह सर्वथा योग्य है। अब मुझे अन्यत्र जाने की क्या आवश्यकता है। मेरे सभी उद्देश्य की पूर्ति इन देव, गुरु और धर्म के प्रसाद से हो जाती, ऐसा उसके हृदय मे दृढश्रद्धान होता है अत उसका चित्त किसी भी पर वस्तु के बाह्य प्रलोभन से प्रलोभित नही होता है। यह ससार का स्वभाव है कि मनुष्य को नवीन वस्तु प्रिय लगती है। कहा भी है कि 'लोको ह्यभिनवप्रिय' अर्थात् लोगो को नवीन वस्तु प्यारी लगती है। परन्तु पर

वस्तु कितनी प्यारी लगती ? जो कि बाल स्वभाव के होते है। जैसे बालक किसी भी वस्तु को देखते ही उसे पाने के लिए मचल जाते है। इसी प्रकार जिन्हें आत्म-बोध नही, वे ही पर वस्तु की अभिलाषा करते है। किन्तु जिन्हे आत्म-ज्ञान हो जाता है, उन्हे अपनी आत्मा के सिवाय कोई दूसरी वस्तु प्रिय नही लगती है। समभावी व्यक्ति दूसरो के विशिष्ट गुण देखकर उन्हे अपनाने का प्रयत्न करता है और अपनी कमियो को दूर करने का प्रयत्न करता है। इसके विपरीत विषमभावी व्यक्ति सोचता है कि यदि मैं विषम दृष्टि हू-काना हू—तो औरो की भी एक-एक आख फूट जाय तो अच्छा हो—सब मेरे समान ही हो जायें तो फिर कोई मुझे काना नही कह सकेगा। विषमभावी सदा पराया अपकार करने की सोचता है, तो समभावी पर-उपकार करने की भावना रखता है।

आप लाखो का व्यापार करते है और महलो मे रहते है। परन्तु दूसरी ओर एक गरीब व्यक्ति है झोपडी या झुग्गी मे रहता है और दो आना के रगीन कागज खरीद करके उनसे चिडिया, हार, फूल आदि और नाना प्रकार की आकर्षक सुन्दर वस्तुएँ बना करके बाजार मे बेचता है तो उन्हे देखते ही बच्चे दौडकर उन्हे लेते है। वह सुन्दर बनाकर लाना और अपने परिश्रम और बुद्धिचातुर्य से दो आने के रुपये बनाकर वापिस अपनी झोपडी पर लौटता है। वह चोरी करके नही ले जाता है किन्तु अपने परिश्रम से कमाकर ले जाता है और इस प्रकार वह अपनी बुद्धि का विकास करते-करते एक बहुत बडा कलाकार हो जाता है और एक दिन ऐसे ऐसे यत्रो का आविष्कार करने लगता है कि यत्रोत्पादक और यत्र-निर्माता भी उन्हे देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते है। तब वह कलाकार यश के साथ धन भी कमाता है और लखपति बन जाता है। परन्तु कोई विषमभावी मनुष्य आज लखपति है और उसकी अच्छी चलती हुई दुकान है अथवा उसके पास कोई बहुमूल्य वस्तु है। यदि वह उसकी ठीक प्रकार से सार-सभाल नही करता है और दूसरो के छिद्रान्वेषण और दोष-दर्शन करने मे ही अपना समय बिताता है, तो एक दिन उसका व्यापार चौपट हो जाता है और निर्धन बन जाता है—दूसरो का मोहताज हो जाता है और फिर अवैध उपायो से धन कमाने की सोचता है। इसी प्रकार किसी अल्पज्ञानी किन्तु समभावी व्यक्ति को [illegible] प्राप्त होता है, तो वह उत्तरोत्तर अपनी उन्नति करता हुआ एक दिन महान् ज्ञानी और [illegible] पुरुष बन जाता है और ससार मे [illegible] जाता है। किन्तु यदि विषमभावी व्यक्ति [illegible] और [illegible] को इधर उधर करके [illegible]

शास्त्र-स्वाध्याय करता है, तो वह छह काया के जीवो की हिंसा करता है, या नही ? भाई, धर्म मे तो हिंसा का काम नही है। इस प्रकार दीपक-बिजली आदि की रोशनी मे बैठकर स्वाध्याय नही कर रहा है किन्तु अनाध्याय कर रहा है। यदि उसे धर्म से रुचि है, तो दिन मे इधर-उधर गप्पे मारना छोडे, प्रमाद छोडे और-शास्त्र-स्वाध्याय करने मे लगे तभी उसे वास्तविक लाभ होगा और वह स्वात्मोन्नति कर सकेगा। दिन मे—सूर्य के प्रकाश मे—छोटे-छोटे जन्तु अधकार वाले स्थानो मे जाकर छिप जाते है, अत उस समय स्वाध्याय करने मे किसी प्रकार की हिंसा नही होती है। रात मे वे छोटे-छोटे जन्तु दीपक-बिजली आदि के प्रकाश से आकर्षित होकर उस पर झपटते है और मरते है। इस प्रकार उस प्रकाश का उपयोग करनेवाला व्यक्ति उस होनेवाली जीव-हिंसा के पाप का भागी होता है। परन्तु धन के लोलुपी मनुष्य दिन मे तो स्वार्थ त्याग करके शास्त्र-स्वाध्याय नही करेंगे और धनोपार्जन मे लगे रहेंगे। और रात्रि मे रोशनी के सामने बैठकर शास्त्र स्वाध्याय करके पाप का उपार्जन करते हुए समझेंगे कि हम धर्म और ज्ञान का उपार्जन कर रहे है।

आज संसार मे अन्धभक्ति और मूढताएँ इतनी अधिक बढ गई है कि लोग काली-दुर्गा आदि के ऊपर अपने पुत्र तक को मार कर चढा देते है। ऐसा व्यक्ति क्या उसका भक्त कहा जायगा ? यदि वह उसका सच्चा भक्त है तो अपने शरीर को क्यो नही चढाया ? यदि वह अपना बलिदान करता तो सच्चा भक्त कहा जाता और संसार मे उसकी प्रशंसा भी होती। परन्तु दूसरे का शिर काट कर चढाना तो भक्ति नही, किन्तु राक्षसी वृत्ति है। भक्ति तो हृदय की वस्तु है। 'भ' नाम भय का है जो उससे सर्वथा मुक्त हो, वही सच्चा भक्त कहलाता है। भक्ति कोई बाहिर दिखाने की वस्तु नही है। हा उसकी ईश्वर मे तन्मयता और धर्म-परायणता को देख कर दुनिया उसे भक्त कहे, तो कह सकती है। भक्ति के लिए तो कहा है कि 'चित्त प्रसन्ने रे पूजा करे'। जब चित्त मे प्रसन्नता है, स्वस्थता है, निर्विकारीपना और निष्कषायता है, तभी प्रभु की सच्ची भक्ति हो सकती है और तभी वह सच्चा भक्त कहा जा सकता है। भाई, समभावी व्यक्ति के हृदय मे ही सच्ची भक्ति आती है, विषमभावी के हृदय मे वह नही आ सकती है। समभावी अपने कार्य को करते हुए सदा यह विचार करेगा कि मेरे इस कार्य को करते हुए किसी भी प्राणी को कष्ट तो नही पहुच रहा है। भाई, जब इस प्रकार समभाव मे रहते हुए प्रभु की भक्ति करोगे, तभी आत्मा का कल्याण हो सकेगा, अन्यथा नही।

वि० स० २०२७, कार्तिक कृष्णा १०

जोधपुर,

१४ धनतेरस का धर्मोपदेश

तुभ्यं नमः सकलदोषविवर्जिताय, तुभ्यं नमः सकलमर्मप्रदर्शकाय ।
तुभ्यं नमः परमसेवक तारकाय, तुभ्यं नमो रतिपतेर्मदनाशकाय ॥

बन्धुओ, आज धनतेरस है। धन दो प्रकार का है—एक वह जिसे संसार रुपये-पैसे आदि के रूप में मानता है और दूसरा है ज्ञानधन। पहिला धन भौतिकवादी, अज्ञानी और मिथ्या-दृष्टियों को प्रिय होता है और वे लोग सदा उसकी प्राप्ति के लिए संलग्न रहते हैं। किन्तु दूसरा धन आत्मानन्दी, सद्ज्ञानी और सम्यग्दृष्टि जीवों को प्रिय होता है। लौकिक जन आज के दिन भौतिक धन की पूजा—उपासना करते हैं। किन्तु पारलौकिक सुख के इच्छुक आत्मानन्दी पुरुष आज के दिन अपने ज्ञानधन की उपासना और आराधना करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि—

धन समाज गज बाजि राज तो काज न आवै,
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै।
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन,
इह परमामृत जन्म जरा मृति रोग-निवारन ॥

भाइयो, यह हाथी घोड़े वाला राज-पाट और दुनिया का ठाट-बाट [illegible]

पर स्थिर और अचल रहता है, फिर उसका कभी विनाश नही होता है। इसलिए ज्ञान के समान अन्य कोई भी लौकिक धन जीव को सुख का कारण नही है। यह ज्ञानरूपी धन परम अमृत है जो कि अनादिकाल से लगे हुए जन्म, जरा और मरणरूप रोगो को नाश करने वाला है। इसीलिए ज्ञानी जन और आध्यात्मिक पुरुष अनादिकाल से बधे हुए कर्मों को दूर करके शुद्ध ज्ञानस्वरूप को पाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते है। आज का दिन हमे उसी अभीष्ट धन को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देता है।

ज्ञानधन की वर्षा

यहा पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि प्रत्येक मास के दोनो पक्षो मे तेरस का दिन आता है, फिर आज के दिन को ही 'धनतेरस' क्यो कहा? इसका उत्तर यह है कि इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के अन्त मे जैन-शासन के उन्नायक और महान् प्रवर्तक भगवान महावीर स्वामी हुए हैं। उन्होंने आत्मा के परम धन केवलज्ञान को प्राप्त कर तीस वर्ष तक धर्म की दिव्य देशना दी और साधु-साध्वी, श्रावक श्राविकाओ के भीतर धर्म का सचार करते रहे। उस समय सारे ससार मे जो अज्ञान और मिथ्यात्व का प्रचार हो रहा था, लोग पाखडो मे फंस रहे थे, दीन-निरपराध प्राणियो को यज्ञो मे होम रहे थे और देवी-देवताओ की वलि चढा रहे थे तव भगवान महावीर ने अपनी सहज मधुर वाणी से लोगो को धर्म का सत्य और सुख-कारक मार्ग वताया जिस पर चल करके अनेक प्राणियो ने अपना उद्धार किया। उनकी दिव्य देशना रूप वचन-गगा मे अवगाहन कर महा मिथ्यात्वी गौतम जैसे पुरुष भी उनकी धर्म-ध्वजा को फहराने वाले वन गये। जब भगवान ने देखा कि अब हमारे आयुष्य के केवल दो दिन ही शेष रह गये है, तब आज के दिन उन्होने अपने आज तक के उपदेशो मे उपसहार रूप अपृष्ट व्याकरणा प्रारम्भ की। इसके पूर्व तो जब कोई जिज्ञासु व्यक्ति पूछता था, तब भगवान उत्तर देते थे। किन्तु आज अपने आयुष्य का अन्तिम समय समीप आया जान कर उन्होने विना किसी के पूछे ही उपदेश देना उचित समझा। और ज्ञानधन की अपूर्व वर्षा की। उन्होने कार्त्तिककृष्णा अमावस्या के प्रभातकाल से निर्वाण होने तक जो दिव्य देशना दी, वह उत्तराध्ययन के नाम से प्रसिद्ध हुई। भगवान ने अपने तीस वर्ष के देशनाकाल मे चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोगरूप चार अनुयोगो के द्वारा उपदेश दिया था। जिसका सारा विस्तार द्वादशागवाणी के रूप मे आज भी उपलब्ध है। आज के दिन भगवान ने उन चारो अनुयोगो के उपसहार रूप

रक्षा की जाय, भले ही हमे कितना ही कष्ट क्यो न उठाना पडे। परन्तु मेरे निमित्त से किसी भी प्राणी को कोई कष्ट न पहुचे। भगवान ने कहा है कि—

जे भिक्खू सोच्चा नच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयतो पुट्ठो नो विहन्नेजा।

अर्थात्—इन क्षुधा, तृषा आदि परीषहो को जानकर अभ्यास के द्वारा परिचित होकर भिक्षाचर्या के लिए पर्यटन करता हुआ साधु उनसे स्पृष्ट होने पर धर्म-मार्ग से विचलित नही होता है। जिन महापुरुषो से सर्वप्रकार के परीषहो को, कष्टो को, सहन किया है, वे ससार से तिर गये।

तीसरे अध्ययन का नाम 'चतुरङ्गीय' है। इसमे बताया गया है कि ससार की नाना योनियो मे परिभ्रमण करते हुए जीव को ये चार पद मिलना बहुत कठिन है—

> **चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो।**
> **माणुसत्त सुई सद्धा सजमम्मि य वीरिय॥**

अर्थात् इस ससार मे प्राणियो के लिए ये चार अग पाना परम दुर्लभ है—मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा और सयम मे पराक्रम प्रकट करना।

कितने ही प्राणियो को मनुष्य जन्म प्राप्त भी हो जाता है तो धर्म का सुनना नही मिलता। यदि धर्म सुनने का अवसर भी मिल जाता है तो उस पर श्रद्धा नही रखता। और यदि श्रद्धा भी करले तो तदनुकूल आचरण रूप सयम को नही धारण करता है। भगवान ने कहा—

> **माणुसत्तम्मि आयाओ जो धम्म सोच्च सद्दहे।**
> **तवस्सी वीरिय लद्धु सवुडे निद्धुणे रय॥**

अर्थात्—मनुष्यत्व को प्राप्त कर जो धर्म को सुनता है, उसमे श्रद्धा रखता है और वीर्य शक्ति को प्रकट करता है, वह तपस्वी कर्मरज को धो डालता है।

चौथे अध्ययन का नाम 'असस्कृत' है। भगवान ने कहा है कि—

> असखय जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताण।
> एव वियाणाहि जणे पमत्ते, कण्णु विहिसा अजया गहिन्ति॥

हे भव्यो, यह जीवन असस्कृत है अर्थात् बडा चचल है—साधा नही जा सकता, इसलिए प्रमाद मत करो। बुढापा आने पर कोई शरण नही होता।

एक ठाकुर के पास एक गाय और उसका एक बछडा और एक मेढा था। वह मेढे को खूब बढिया खाना खिलाता-पिलाता और उसे प्रतिदिन नहलाता-धुलाता था। बछडा प्रतिदिन यह देखता और मन ही मन मे सोचता कि मालिक उस मेढे को तो बढिया खाना देता है और मुझे यह सूखी घास खाने को देता है। एक दिन उस बछडे ने अपनी माता से कहा—तब माता ने कहा—वत्स, तू नही जानता, इसे मार कर खाने के लिए मोटा-ताजा किया जा रहा है, किसी दिन इसके गले पर छुरी चलेगी और यह ठाकुर के मेहमानो का भक्ष्य बन जायगा। कुछ दिन बाद ठाकुर के घर कुछ मेहमान आये और वह ठाकुर छुरी लेकर उसे मारने आया। यह देखकर बछडा बहुत भयभीत हुआ। तब उसकी मा ने कहा—"बेटा, तू मत डर। जिसने माल खाये हैं, वही मारा जायगा।' थोडी देर मे बछडे के देखते-देखते ठाकुर ने उसके गले पर छुरी चलाकर उसे मार डाला और उसका मास पका कर मेहमानो को परोस दिया।

इस दृष्टान्त का अभिप्राय यह है कि जो साधु रस का लोलुपी होता है भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार न करके अपने शरीर को पुष्ट करता रहता, उसे भी एक दिन दुर्गति मे जाकर दूसरो का भक्ष्य बनना पडता है। भगवान् ने कहा—

जहा खलु से उरब्भे आएसाए समीहिए।
एव वाले अहम्मिट्ठं ईहई नरयाउय ॥

अर्थात्—जैसे मेहमानो के लिए माल खानेवाला मेढा मारा जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव अभक्ष्य-भक्षण कर और शरीर को पुष्ट कर नरक के आयुष्य की इच्छा करता है। इसलिए हे भव्य पुरुषो, तुम्हे रसका लोलुपी, और परिग्रह सचय करने वाला नही होना चाहिए।

जहा लाभ वहां लोभ

आठवा कापिलीय अध्ययन है। उसमे बतलाया गया है कि कपिल नामक एक ब्राह्मण दो मासा सोना प्राप्त करने के निमित्त राजा के पास सर्व प्रथम पहुच कर आशीर्वाद देने के लिए रात को ही राज महल की ओर चल दिया और राज पुरुषो के द्वारा पकडा जाकर राजा के सामने उपस्थित किया गया। राजा ने उससे रात्रि मे राजमहल की ओर आने का कारण पूछा। कपिल ने सरल व सत्य भाव से सारा वृत्तान्त सुना दिया। राजा उसकी सत्यवादिता पर बडा प्रसन्न हुआ और बोला—ब्राह्मण, मैं तेरे सत्य बोलने पर बहुत प्रसन्न हूँ, तू जो कुछ मागेगा, वह तुझे मिलेगा। कपिल ने कहा—राजन, सोचने के

लिए कुछ समय दिया जाय। राजा ने कहा—अच्छा। कपिल ब्राह्मण सोचता है—दो मासा सोने से क्या होगा? क्यों न मैं सौ मोहरें मांगूं? चिन्तन-धारा आगे बढ़ी और हजार मांगने की सोचने लगा। धीरे-धीरे लोभ की मात्रा और बढ़ी और सोचने लगा—हजार से भी क्या होगा? लाख मोहरें मांगना चाहिए? फिर सोचने लगा—लाख से भी क्या होगा? करोड़ मोहरें मांगना चाहिए। इसी समय उसे पूर्वभव का जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया और उसका लोभ शान्त हो गया। वह राजा से बोला—महाराज, मुझे अब कुछ भी नहीं चाहिए। अब मेरी तृष्णा शान्त हो गई है। मेरे भीतर करोड़ से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु प्रकट हो गई है। उस अवसर पर भगवान् ने कहा है—

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं॥

मनुष्य को जैसे-जैसे लाभ होता जाता है, वैसे-वैसे ही लोभ बढ़ता जाता है। देखा, कपिल ब्राह्मण का दो मासा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ मोहरें से भी पूरा नहीं हुआ।

जो पुरुष कपिल के समान उस लोभ का परित्याग करता है, वह अपना और धर्म का नाम दिपाता है।

लिए कुछ समय दिया जाय। राजा ने कहा—अच्छा। कपिल एकान्त में सोचता है—दो माशा सोने से क्या होगा? क्यों न सौ मोहरें मांगू? चिन्तन-धारा आगे बढ़ी और हजार मांगने की सोचने लगा। फिर आगे सोने की मात्रा और बढ़ी और सोचने लगा—हजार से भी क्या होगा? लाख मोहरें मागना चाहिए? फिर सोचने लगा लाख से भी क्या होगा? करोड़ मोहरें मागना चाहिए। इसी समय उसे पूर्वभव का जातिस्मरण ज्ञान प्रकट हो गया और उसका लोभ शान्त हो गया। वह राजा से बोला—महाराज, मुझे अब कुछ भी नहीं चाहिए। अब मेरी तृष्णा शान्त हो गई है। मुझे करोड़ से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु प्राप्त हो गई है। इस अवसर पर भगवान ने कहा है—

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मासकय कज्ज कोडीए वि न निट्ठिय॥

मनुष्य को जैसे जैसे लाभ होता जाता है, वैसे-वैसे ही लोभ बढ़ता जाता है। देखो, कपिल ब्राह्मण का दो माशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ मोहरें से भी पूरा नहीं हुआ।

जो पुरुष कपिल के समान उस लोभ का परित्याग करता है, वह अपना और धर्म का नाम दिपाता है।

नमिप्रव्रज्या नाम का नवम अध्ययन है। नमिराज मिथिला नगरी के राजा थे। उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वे पुत्र को राज्य-भार सौंप कर प्रव्रज्या के लिए निकले। उनकी परीक्षा के लिए इन्द्र ब्राह्मण का वेष बनाकर आया और बोला—राजन्! हस्तगत रमणीय प्रत्यक्ष उपलब्ध भोगों को छोड़कर परोक्ष काम भोगों की इच्छा करना क्या उचित है? नमिराज बोले—ब्राह्मण, ये काम-भोग त्याज्य है, वे शल्य के समान दुःखदायी है, विष के समान मारक और आशीविष सर्प के समान भयकर हैं। तब ब्राह्मण वेषी इन्द्र कहता है—राजन्, तुम्हारे अनेक राजा शत्रु है, पहिले उन्हें वश में करो, पीछे मुनि बनना। नमि ने कहा—जो संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो केवल अपनी आत्मा को जीतता है वह श्रेष्ठ विजेता है। इसलिए दूसरों के साथ युद्ध करने से क्या लाभ है? अपने आपको जीतने वाला मनुष्य ही सुख पाता है। पाच इन्द्रिया क्रोध, मान, माया, लोभ और मन ये दुर्जय हैं। जो अपनी आत्मा को जीत लेता है, वह इन दुर्जय शत्रुओं पर सहज में ही विजय पा लेता है। इस सन्दर्भ की ये गाथायें स्मरणीय हैं।

लिए कुछ समय दिया जाय। राजा ने कहा—अच्छा। कपिल उठा-उठा सोचता है—दो माशा सोने से क्या होगा? क्यो न मैं सौ मोहरे मागू? चिन्तन-धारा आगे बढी और हजार मांगने की सोचने लगा। धीरे-धीरे लोभ की मात्रा और बढी और सोचने लगा—हजार से भी क्या होगा? लाख मोहरें मागना चाहिए? फिर सोचने लगा लाख से भी क्या होगा? करोड मोहरें मागना चाहिए। इसी समय उसे पूर्वभव का जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया और उसका लोभ शान्त हो गया: वह राजा से बोला—महाराज, मुझे अव कुछ भी नही चाहिए। अव मेरी तृष्णा शान्त हो गई है। मेरे भीतर करोड से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु प्रकट हो गई है। इस अवसर पर भगवान् ने कहा है—

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवढ्ढई।
दो मासकय कज्ज कोडीए वि न निट्ठिय ॥

मनुष्य को जैसे-जैसे लाभ होता जाता है, वैसे-वैसे ही लोभ बढता जाता है। देखो, कपिल ब्राह्मण का दो माशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड मोहरें से भी पूरा नही हुआ।

जो पुरुष कपिल के समान उस लोभ का परित्याग करता है, वह अपना और धर्म का नाम दिपाता है।

नमिप्रव्रज्या नाम का नवम अध्ययन है। नमिराज मिथिला नगरी के राजा थे। उन्हे जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वे पुत्र को राज्य-भार सौंप कर प्रव्रज्या के लिए निकले। उनकी परीक्षा के लिए इन्द्र ब्राह्मण का वेप वनाकर आया और वोला—राजन्! हस्तगत रमणीय प्रत्यक्ष उपलब्ध भागो को छोडकर परोक्ष काम भोगो की इच्छा करना क्या उचित है? नमिराज वोले—ब्राह्मण, ये काम-भोग त्याज्य हैं, वे शल्य के समान दुखदायी है, विप के समान मारक और आशीविप सर्प के समान भयकर हैं! तव ब्राह्मण वेषी इन्द्र कहता है—राजन्, तुम्हारे अनेक राजा शत्रु हैं, पहिले उन्हे वश मे करो, पीछे मुनि वनना। नमि ने कहा—जो सग्राम में लाखो योद्धाओ को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो केवल अपनी आत्मा को जीतता है वह श्रेष्ठ विजेता है। इसलिए दूसरो के साथ युद्ध करने से क्या लाभ है? अपने आपको जीतने वाला मनुष्य ही सुख पाता है। पाच इन्द्रिया क्रोध, मान, माया, लोभ और मन ये दुर्जेय हैं। जो अपनी आत्मा को जीत लेता है, वह इन दुर्जेय शत्रुओ पर सहज में ही विजय पा लेता है। इस सन्दर्भ की ये गाथायें स्मरणीय हैं।

लिए कुछ समय दिया जाय। राजा ने कहा—अच्छा। कपिल पड़ा-पड़ा सोचता है—दो माशा सोने से क्या होगा? क्यो न मैं सौ मोहरें मागूं? चिन्तन-धारा आगे बढी और हजार मागने की सोचने लगा। धीरे-धीरे लोभ की मात्रा और बढी और सोचने लगा—हजार से भी क्या होगा? लाख मोहरें मागना चाहिए? फिर सोचने लगा लाख से भी क्या होगा? करोड मोहरें मागना चाहिए। इसी समय उसे पूर्वभव का जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया और उसका लोभ शान्त हो गया। वह राजा से बोला—महाराज, मुझे अब कुछ भी नही चाहिए। अब मेरी तृष्णा शान्त हो गई है। मेरे भीतर करोड से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु प्रकट हो गई है। इस अवसर पर भगवान् ने कहा है—

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मासकय कज्ज कोडीए वि न निट्ठिय॥

मनुष्य को जैसे-जैसे लाभ होता जाता है, वैसे-वैसे ही लोभ बढता जाता है। देखो, कपिल ब्राह्मण का दो माशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड मोहरे से भी पूरा नही हुआ।

जो पुरुष कपिल के समान उस लोभ का परित्याग करता है, वह अपना और धर्म का नाम दिपाता है।

नमिप्रव्रज्या नाम का नवम अध्ययन है। नमिराज मिथिला नगरी के राजा थे। उन्हे जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वे पुत्र को राज्य-भार सौंप कर प्रव्रज्या के लिए निकले। उनकी परीक्षा के लिए इन्द्र ब्राह्मण का वेप बनाकर आया और बोला—राजन्! हस्तगत रमणीय प्रत्यक्ष उपलब्ध भोगो को छोडकर परोक्ष काम भोगो की इच्छा करना क्या उचित है? नमिराज बोले—ब्राह्मण, ये काम-भोग त्याज्य है, वे शल्य के समान दुखदायी है, विप के समान मारक और आशीविप सर्प के समान भयकर हैं। तब ब्राह्मण वेषी इन्द्र कहता है—राजन्, तुम्हारे अनेक राजा शत्रु हैं, पहिले उन्हे वश में करो, पीछे मुनि बनना। नमि ने कहा— जो सग्राम में लाखो योद्धाओ को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो केवल अपनी आत्मा को जीतता है वह श्रेष्ठ विजेता है। इसलिए दूसरो के साथ युद्ध करने से क्या लाभ है? अपने आपको जीतने वाला मनुष्य ही सुख पाता है। पाच इन्द्रिया क्रोध, मान, माया, लोभ और मन ये दुर्जेय हैं। जो अपनी आत्मा को जीत लेता है, वह इन दुर्जेय शत्रुओ पर सहज में ही विजय पा लेता है। इस सन्दर्भ की ये गाथायें स्मरणीय हैं।

तिण्णो हु सि अण्णव महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पार गमित्तए, समय गोयम, मा पमायए ।।

हे गौतम, तू महासमुद्र को तैर गया, अब किनारे के पास पहुच कर क्यो खडा है ? उसको पार करने के लिए जल्दी कर और एक क्षण का भी प्रमाद मत कर ।

भगवान् की ऐसी सुललित वाणी को सुनकर ही गौतम राग द्वेप का छेदन करके सिद्धि को प्राप्त हुए है ।

ग्यारहवे अध्ययन का नाम 'वहुश्रुत पूजा' है । इसमे वताया गया है कि जो बहुश्रुती—द्वादशाङ्गवाणी का वेत्ता और चतुर्दश पूर्वधर होता है, वह कम्बोज देश के घोडे के समान शील से श्रेष्ठ होता है, पराक्रमी योद्धा के समान अजेय होता है, साठ वर्षीय हस्ती के समान अपराजेय होता है, यूथाधिपति वृपभ के समान गण का प्रमुख होता है, सिंह के समान अन्य तीर्थिको मे दुप्रधर्ष होता है, वासुदेव के समान अवाधित पराक्रमी होता है, चतुर्दश रत्नो के स्वामी चक्रवर्ती के समान चतुर्दश पूर्वो का धारक होता है, उदीयमान सूर्य के समान तप के तेज से प्रज्वलित होता है, पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान सकल कलाओ से परिपूर्ण होता है, धान्य से भरे कोठो के समान श्रुत से भरा होता है, जम्बूवृक्ष के समान श्रेष्ठ होता है, विदेह-वाहिनी सीता नदी के समान निर्मल एव अगाध पाडित्य वाला होता है, मन्दर (सुमेरु) के समान उन्नत होता है और स्वयम्भूरमण समुद्र के समान अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण होता है ।

वहुश्रुतता का प्रधान कारण विनय है । जो व्यक्ति विनीत होता है उसका श्रुत सफल होता है और जो अविनीत होता है, उसका श्रुत फलवान् नही होता । इसलिए भगवान ने सर्व प्रथम कहा—

अह पचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई ।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणा ऽ लस्सएण य ।।

मनुष्य पाच स्थानो के कारण शिक्षा को प्राप्त नही कर सकता है—मान से, क्रोध से, प्रमाद से, रोग से और आलस्य से ।

शिक्षा-प्राप्ति के लिए बतलाया गया है कि वह हास्य का त्याग करे, इन्द्रिय और मन को वश मे रखे, किसी की मर्म की वात को प्रकट न करे, चरित्र से हीन न हो, कुशीली न हो, रस-लोलुपी न हो, क्रोधी न हो और सत्यवादी हो । इस प्रकार इस अध्ययन मे अविनय के दोप बताकर उसके छोडने का और विनय के गुण वता कर उसके धारण करने का उपदेश देकर कहा गया है कि विनय गुण के द्वारा ही साधु बहुश्रुतधर वनकर जगत्पूज्य

तुम लोगो ने बहुत बुरा काम किया है। जाओ, इनसे क्षमा मागो। अन्यथा कुपित होने पर ये समस्त ससार को भस्म कर सकते हैं। तब उन लोगो ने जाकर मुनि से क्षमा-याचना की। यक्ष ने उन ब्राह्मण कुमारो को स्वस्थ कर दिया। अन्त मे मुनि ने उन ब्राह्मणो को सत्यार्थ धर्म का उपदेश दिया और कहा—

छज्जीवकाए असमारभता, मोस अदत्त च असेवमाणा।
परिग्गह इत्थिओ माणमाय, एय परिन्नाय चरति दता॥
सुसवुडो पचहि सवरेहि, इहजीविय अणवकखमाणो।
वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजय जमई जन्नसिट्ठ॥

जो छह कायावाले जीवो की हिंसा नही करते हैं, झूठ नही बोलते, अदत्त वस्तु नही लेते, स्त्री के और परिग्रह के त्यागी हैं, क्रोध, मान, माया आदि को जीतते हैं, जिनेन्द्रिय है, पाचो सवरो से सुसवृत है, काय से भी ममत्व-रहित हैं, वे ही सच्चा महान् यज्ञ करते हैं।

उन्होने बतलाया कि उस सत्यार्थ यज्ञ मे तप ही अग्नि है, जीव ही उसका हवनकुण्ड है, योग ही शुचिस्रवा घी डालने की करछिया है, शरीर ही समिधा है, कर्म ही ईंधन हैं और सयम ही शान्ति पाठ है इस प्रकार के यज्ञ को जो करते हैं, वे ही परम पद को प्राप्त करते हैं। इसलिए तुम लोग इस पाप यज्ञ को छोडकर धर्मयज्ञ को करो। इस प्रकार वे हरिकेशबल मुनि ब्राह्मणो को धर्मोपदेश देकर चले गये और उन ब्राह्मणो ने सत्यधर्म स्वीकार कर लिया।

तेरहवें अध्ययन का नाम चित्तसम्भूतीय है। इसमे बताया गया है कि चित्त और सम्भूत ये दो भाई थे। दोनो साधु बनकर साधना करने लगे। सम्भूत ने एक चक्रवर्ती की विभूति को देखकर निदान किया कि तप के फल से मुझे भी ऐसी ही विभूति प्राप्त हो। चित्र ने उसे ऐसा निदान करने से रोका। परन्तु वह नही माना। मरण करके दोनो स्वर्ग गये। वहा से चव कर सम्भूत का जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुआ और चित्त का जीव स्वर्ग से आकर एक सेठ का पुत्र हुआ। पूर्व भव का स्मरण हो जाने से वह युवावस्था मे ही साधु बन गया। ग्रामानुग्राम विचरते हुए वे काम्पिल्य पुर आये। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती उनकी वन्दना को गया। चक्रवर्ती को भी जातिस्मरण हो गया। अत उसने चित्त साधु से दोनो के पूर्वभव कहे। तत्पश्चात् पूर्वभव के भ्रातृ-स्नेह से उसने चित्त साधु से कहा—तू क्यो प्रव्रज्या के कष्ट भोगता है ? अत इसे छोडकर और मेरे पास आकर सर्व प्रकार के सासारिक सुखो को भोग।

सच्चा यज्ञ

बारहवां हरिकेशीय अध्ययन है। इसमे चाण्डाल के कुल मे उत्पन्न हुए हरिकेश बल नामक एक महान् तपस्वी साधु का वर्णन किया गया है। मास श्रमण की तपस्या के पश्चात् पारणा के लिए वे नगर मे आये। एक स्थान पर ब्राह्मण लोग यज्ञ कर रहे थे। भिक्षा लेने के लिए वे यज्ञमण्डप मे पहुचे। उनके मलिन एव कृश शरीर को देखकर जातिमद से उन्मत्त, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी और अज्ञानी ब्राह्मण उनकी हसी उडाते हुए बोले—अरे, यह बीभत्स रूपवाला, काला कलूटा और बडी नाकवाला, अधनगा पिशाच-सा कौन आ रहा है? जब हरिकेशबल समीप पहुचे तो ब्राह्मण बोले—यहा क्यो आये हो? तुम पिशाच जैसे दिख रहे हो, यहा से चले जाओ। तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष से साधु का यह अपमान नही देखा गया और वह उनके शरीर मे प्रवेश कर बोला—मै श्रमण हू, सयमी हू, ब्रह्मचारी हूँ, धान-पान के पचन-पाचन से और परिग्रह से रहित हू अत भिक्षा के लिए यहा आया हू। तब यज्ञ करने वाले ब्राह्मण बोले—यहा जो भोजन बना है, वह केवल ब्राह्मणो के लिए है अब्राह्मणो के लिए नही? अत हम तुम्हे नही देगे। दोनो ओर से वर्ग पात्र दान है और दान नही, इस पर वार्तालाप होता है और साधु के शरीर मे प्रविष्ट यक्ष उन ब्राह्मणो से कहता है—

तुब्भेत्थ भो भारधरा गिराण, अट्ठं ण जाणाह अहिज्जवेए ।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥

हे ब्राह्मणो, तुम लोग इस ससार मे वाणी का केवल भार ढो रहे हो? वेदो को पढकर भी उनका अर्थ नही जानते हो? जो मुनि भिक्षा के लिए ऊच और नीच सभी प्रकार के घरो मे जाते है, वे ही पुण्य क्षेत्र और दान के पात्र है अतएव हमे आहार दो।

इस पर क्रोधित होकर यज्ञ करने वाला ब्राह्मण बोला—अरे, यहा कौन है? इसे डडे मारकर और गलहत्था देकर यहा से बाहिर निकाल दो। यह सुनकर [illegible] ब्राह्मणकुमार मुनि की ओर दौडे और डडो, बेतो और चाबुको से [illegible]। [illegible] इस दृश्य ने सभी ब्राह्मण कुमारो को अपनी [illegible] किया [illegible] और उनके मुख से खून निकलने लगा। [illegible] ब्राह्मणो से कहा [illegible] -सम्पन्न है। इनका अपमान [illegible]

तुम लोगो ने बहुत बुरा काम किया है। जाओ, इनसे क्षमा मागो। अन्यथा कुपित होने पर ये समस्त ससार को भस्म कर सकते हैं। तव उन लोगो ने जाकर मुनि से क्षमा-याचना की। यक्ष ने उन ब्राह्मण कुमारो को स्वस्थ कर दिया। अन्त मे मुनि ने उन ब्राह्मणो को सत्यार्थ धर्म का उपदेश दिया और कहा—

छज्जीवकाए असमारभता, मोस अदत्त च असेवमाणा।
परिग्गह इत्थिओ माणमाय, एय परिन्नाय चरति दता॥
सुसवुडो पचहिं सवरेहिं, इहजीविय अणवकखमाणो।
वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजय जमई जन्नसिट्ठ॥

जो छह कायावाले जीवो की हिंसा नही करते हैं, झूठ नही बोलते, अदत्त वस्तु नही लेते, स्त्री के और परिग्रह के त्यागी हैं, क्रोध, मान, माया आदि को जीतते हैं, जितेन्द्रिय हैं, पाचो सवरो से सुसवृत हैं, काय से भी ममत्व-रहित हैं, वे ही सच्चा महान् यज्ञ करते हैं।

उन्होने वतलाया कि उस सत्यार्थ यज्ञ मे तप ही अग्नि है, जीव ही उसका हवनकुण्ड है, योग ही शुचिस्रवा घी डालने की करछिया हैं, शरीर ही समिधा है, कर्म ही ईंधन हैं और सयम ही शान्ति पाठ है इस प्रकार के यज्ञ को जो करते हैं, वे ही परम पद को प्राप्त करते हैं। इसलिए तुम लोग इस पाप यज्ञ को छोडकर धर्मयज्ञ को करो। इस प्रकार वे हरिकेशवल मुनि ब्राह्मणो को धर्मोपदेश देकर चले गये और उन ब्राह्मणो ने सत्यधर्म स्वीकार कर लिया।

तेरहवें अध्ययन का नाम चित्तसम्भूतीय है। इसमे बताया गया है कि चित्त और सम्भूत ये दो भाई थे। दोनो साधु वनकर साधना करने लगे। सम्भूत ने एक चक्रवर्ती की विभूति को देखकर निदान किया कि तप के फल से मुझे भी ऐसी ही विभूति प्राप्त हो। चित्र ने उसे ऐसा निदान करने से रोका। परन्तु वह नही माना। मरण करके दोनो स्वर्ग गये। वहा से चव कर सम्भूत का जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुआ और चित्त का जीव स्वर्ग से आकर एक सेठ का पुत्र हुआ। पूर्व भव का स्मरण हो जाने से वह युवावस्था मे ही साधु बन गया। ग्रामानुग्राम विचरते हुए वे काम्पिल्य पुर आये। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती उनकी वन्दना को गया। चक्रवर्ती को भी जातिस्मरण हो गया। अत उसने चित्त साधु से दोनो के पूर्वभव कहे। तत्पश्चात् पूर्वभव के भ्रातृ-स्नेह से उसने चित्त साधु से कहा—तू क्यो प्रव्रज्या के कष्ट भोगता है ? अत इसे छोडकर और मेरे पास आकर सर्व प्रकार के सासारिक सुखो को भोग।

ससार की असारता और अनित्यता का वर्णन कर साधु बनने की इच्छा प्रकट की। उन्होने कहा—

असासय दट्ठु इम विहार, बहु अंतराय न य दीहमाउ।
तम्हा गिहंसि न रइ लहामो, आमतयामो चरिस्सामु मोण ॥

हमने देख लिया कि यह मनुष्य जीवन अनित्य है, उसमे भी विघ्न बहुत हैं और आयु अल्प है इसलिए हमे घर मे कोई आनन्द नही है। हम मुनि बनने के लिए आपकी अनुमति चाहते है।

पुत्रो की यह बात सुनकर पिता ने बहुत कुछ समझाया और कहा—

अहिज्ज वेए परिविस्सविप्पे, पुत्ते पडिट्ठुप्प गिहंसि जाया।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥

हे पुत्रो, पहिले वेदो को पढो, ब्रह्मणो को भोजन कराओ, स्त्रियो के साथ भोग करो, पुत्रो को उत्पन्न करो। उनका विवाह कर और उन पर घर का भार सौंपकर फिर अरण्यवासी उत्तम मुनि बन जाना।

इस प्रकार उनको समझाने और वैदिक धर्मानुसार गृहस्थ बनकर घर मे रहने के लिए बहुत कुछ कहा। पर उन दोनो पुत्रो ने अपने अकाट्य उत्तरो से माता-पिता को निरुत्तर कर दिया और उनको सबोधित करते हुए कहा—

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जति राइयो ॥

अर्थात् जो जो रात बीत रही है, वह लौटकर नही आती है। अत धर्म की आराधना करनी चाहिए। क्योकि धर्म करनेवाले की ही रात्रिया सफल होती हैं।

अन्त मे पुत्रो के उपदेश से प्रभावित होकर भृगुपुरोहित ने अपनी स्त्री को समझाया और दोनो पुत्रो के साथ उनके माता-पिता ने भी दीक्षा ले ली। उनकी सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी नही था, अत जब इषुकार राजा उनके धन को अपने खजाने मे भिजवा रहा था, तब उसकी रानी ने कहा—

वन्तासी पुरिसो राय, न सो होइ पससिओ।
माहणेण परिच्चत्त धण आदाउमिच्छसि ॥

हे राजन्, वमन की हुई वस्तु को खाने वाला पुरुष प्रशसा को नही पाता। तुम ब्राह्मण के द्वारा छोडे गये इस धन को लेने की इच्छा करते हो ?

रानी के द्वारा इस प्रकार सबोधित किये जाने पर राजा का मन भी ससार से विरक्त हो गया और वह भी अपनी रानी के साथ ही गुरु के पास

और दीक्षित हो गया। अन्त में उस पुरोहित-परिवार के साथ राजा-रानी भी तपस्या करते हुए मुक्त हो गये। इषुकार राजा के नाम से ही इस अध्ययन का नाम 'इषुकारीय' प्रसिद्ध हुआ है।

पन्द्रहवाँ 'सभिक्षुक' अध्ययन है। इसमें बतलाया गया है कि भिक्षु (साधु) वह है जो धर्म को स्वीकार कर काम-वासना का छेदन करता है, रात्रि में भोजन और विहार नहीं करता है, परीषहों को जीतता है, आत्मा को सदा संयत रखता है, हर्ष और विषाद से दूर रहता है, कुतूहलों से दूर रहता है, छिन्न, स्वर, भौम, अन्तरिक्ष, स्वप्न, लक्षण दंड वास्तु विद्या, अंग विकार आदि सामुद्रिक विद्या का उपयोग नहीं करता है, वमन, विरेचन और धूमने आदि का प्रयोग नहीं करता है, जो लाभ-अलाभ में समभावी रहता है, देव, मनुष्य और तिर्यक्-कृत उपसर्गों को शान्ति से निर्भय होकर सहन करता है, जो सबको अपने समान समझता है और जो राग-द्वेष से रहित है, वही भिक्षु है।

ब्रह्मचर्य की सुरक्षा

सोलहवें अध्ययन का नाम 'ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान है'। इसमें ब्रह्मचर्य की साधना के लिए अति आवश्यक दश स्थानों का वर्णन किया गया है—१ निर्ग्रन्थ साधु स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त स्थान पर शयन और आसन न करे। २ स्त्रियों के बीच में बैठकर कथा न करे। ३ स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे। ४ स्त्रियों के सुन्दर अंगों को न देखे। ५ स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, विलास और विलाप आदि को न सुने। ६ पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण न करे। ७ गरिष्ठ रसों वाला आहार न करे। ८ मात्रा से अधिक न खाये-पीये। ९ शरीर का शृंगार न करे। और १० मनोज्ञ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द में आसक्त न हो। अन्त में कहा गया है कि—

> देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा।
> बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं॥

जो इस दुष्कर ब्रह्मचर्य का उक्त प्रकार से पालन करते हैं, उन ब्रह्मचारियों को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और किन्नर नमस्कार करते हैं।

[illegible] कि—

> एस धम्मे धुवे निअए, सासए जिणदेसिए।
> सिद्धा सिज्झंति चाणेण, सिज्झिस्संति तहावरे॥

यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव, नित्य, शाश्वत और जिनोपदिष्ट है। इसका पालन कर अनेक जीव भूतकाल मे सिद्ध हुए हैं, वर्तमान मे सिद्ध हो रहे हैं और भविष्य काल मे सिद्ध होगे।

सत्तरहवे अध्ययन का नाम 'पापश्रमण' है। श्रमण अर्थात् साधु दो प्रकार के होते हैं—धर्मश्रमण पापश्रमण। जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य इन पाच आचारो का विधिवत् पालन करता है वह धर्मश्रमण है। इसका विस्तृत स्वरूप पन्द्रहवें अध्ययन मे बताया गया है। जो ज्ञानादि आचारो का सम्यक्प्रकार से पालन नही करता है वह पापक्षमण कहलाता है। जो प्रव्रजित होकर अधिक नीद लेता है, रख-पीकर सुख से सोता है, जो गुरुजनो की निन्दा करता है, उनकी सेवा नही करता है, जो अभिमानी है, जो द्वीन्द्रि-यादि प्राणियो का तथा हरित बीज और दूर्वा आदि का मर्दन करता है, जो सस्तर, फलक, पीठ, आदि का प्रमार्जन किये बिना उन पर बैठता है, जो द्रुति गति से चलता है, असावधानी से प्रतिलेखन करता है, गुरु का तिर-स्कार करता है, छल-कपट करता है, वाचाल एव लालची है, विवादी एव कदाग्रही है, स्थिर आसनवाला नही है, जो दूध, दही आदि विकृतियो का निरन्तर आहार करता है, जो सूर्योदय से लेकर के सूर्यास्त तक बार-बार खाता रहता है, जो जल्दी-जल्दी गणपरिवर्तन करता है, पाखडियो की सेवा करता है, जो गृहस्थ की शय्या पर बैठता है, जो पार्श्वस्थ कुशील आदि साधुओ के समान असवृत है और हीनाचारी है, वह 'पापश्रमण' कहलाता है। अन्त मे बताया गया है कि—

जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
अयसि लोए अमय व पूइए, आराहए दुहओ लोगमिण ॥

जो उपर्युक्त दोषो का सदा वर्जन करता है, वह मुनियो के मध्य मे सुव्रती कहलाता है। वह इस लोक मे अमृत के समान पूजित होता है और इहलोक-परलोक का आराधक होता है।

अठारहवा 'सजयीय' अध्ययन है। इसमे बताया गया है कि कापिल्य नगर का राजा सजय एक बार सेना के साथ शिकार खेलने को जगल मे गया और उसने वहा पर मृगो को मारा। इधर-उधर देखते हुये उसे गर्द-भाली मुनि दिखायी दिये। उन्हे देखकर राजा के मन मे विचार आया कि यहां पर हरिणो को मारकर मैंने मुनि की आशातना की है। वह उनके पास गया और वन्दना करके बोला—'भगवन्', मुझे क्षमा करे। मुनि ध्यान-लीन थे, अत कुछ नही बोले। पुन उसने कहा—'भन्ते, मैं राजा सजय हू, आप

मौन छोड़कर मुझ से बोले। मुनि ने ध्यान पारा और अभयदान देते हुये बोले—

> अभओ पत्थिवा तुब्भ अभयदाया भवाहि य।
> अणिच्चे जीव लोगम्मि किं हिंसाए पसज्जसि॥
> जया सव्व परिच्चज्ज, गतव्वमवसस्स ते।
> अणिच्चे जीव लोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि॥

हे राजन्, तुझे अभय है और तू भी अभयदाता बन। इस अनित्य जीव लोक में तू क्यों हिंसा में आसक्त हो रहा है? तू पराधीन है और एक दिन सब कुछ छोड़कर तुझे अवश्य चले जाना है, तब तू इस अनित्य राज्य में क्यों आसक्त हो रहा है।

इस प्रकार से उन मुनि ने राजा को सम्बोधित किया और जीवन की अस्थिरता, ज्ञाति-कुटुम्बादि की असारता और कर्म-भोग की अटलता का उपदेश दिया। राजा का वैराग्य उभर आया और वह राज-पाट छोड़कर मुनि बन गया। राजा संजय की जीवन-दिशा के परिवर्तित होने के कारण ही इस अध्ययन का नाम 'संजयीय' प्रसिद्ध हुआ है।

मृगापुत्र का उद्बोधन

उन्नीसवें अध्ययन का नाम 'मृगापुत्रीय' है। इसमें मृगावती रानी के पुत्र के वैराग्य का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है। जब मृगापुत्र युवा था तो अनेक राजकुमारियों के साथ उनकी शादी कर दी गई। एक बार वे महल में अपनी पत्नियों के साथ मनोविनोद कर रहे थे तब झरोखे से उन्हें मार्ग पर जाते हुए एक साधु दिखे। उनके तेजस्वी रूप को देखते हुए मृगापुत्र को जातिस्मरण हो गया और साधु बनने का भाव जागृत हुआ। उन्होंने अपने माता-पिता के पास जाकर कहा—

> सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्खजोणिसु।
> निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो॥

> अम्मताय मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
> पच्छा कडुयविवागा, अणुबन्धदुहावहा॥

[illegible] मैंने सुना है। जो उन्हें धारण नहीं करते [illegible] उन्हें नरकों में और तिर्यंच योनियों में [illegible]। भोग संसार के उन किंपाक फल के सदृश कटुक [illegible] होता है। [illegible] ने संसार-सागर से विरक्त [illegible] मुझे [illegible] है।

पुत्र के इन वचनों को सुनकर माता-पिता मृगापुत्र की कोमलता का वर्णन करते हैं और कहते हैं मृगापुत्र बहुत सुकुमार है, संयम पालना कठिन है। जब माता-पिता ने उन्हें सब प्रकार से घर में रखने का प्रयत्न करने का उपक्रम किया तब मृगापुत्र ने संसार के दुःखों का वर्णन करते हुए, संसार के नरकों के दारुण दुःखों का वर्णन कर उनको दुःसह वेदना को बताया। जब माता-पिता ने कहा कि वन में रोग होगा तब कौन चिकित्सा करेगा? कौन तेरा इलाज करेगा और कौन तेरे खाने-पीने की व्यवस्था करेगा? तब मृगापुत्र ने उत्तर दिया—

> जहा मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई।
> अच्छंतं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छई॥
> को वा से ओसहं देई, को वा से पुच्छई सुहं।
> को से भत्तं च पाणं च, आहरित्तु पणामए॥

जब महावन में हिरन के कोई रोग उत्पन्न होता है तब वृक्ष के नीचे अकेले बैठे उसकी कौन चिकित्सा करता है? कौन उसे औषधि देता है? कौन उससे सुख की बात पूछता है और कौन उसे खान-पान लाकर देता है?

इसीप्रकार मैं भी मृग की चर्या का आचरण करूंगा। अन्त में जब मृगापुत्र का दृढ आग्रह देखा तब माता-पिता ने प्रव्रजित होने की अनुज्ञा दे दी। और मृगापुत्र ने दीक्षित होकर आनन्द का पालन कर सिद्धि प्राप्त की। इस अध्ययन में वर्णित नरक के दुःखों को पढ़-सुनकर महा मोही पुरुष का भी मोह गले बिना नहीं रहेगा, ऐसा मार्मिक चित्रण इसमें किया गया है।

अनाथी अपने नाथ

बीसवें अध्ययन का नाम 'महानिर्ग्रन्थीय' है। इसी का दूसरा नाम अनाथी मुनि चरित्र भी है। इसमें बतलाया गया है कि एकबार श्रेणिक राजा उद्यान में घूम रहे थे, तब उनकी दृष्टि एक ध्यानस्थ मुनि पर गई। वे उनके पास गये और वन्दना की। उनके रूप—लावण्य को देखकर श्रेणिक बहुत विस्मित हुए। मुनि से पूछा—आपने इस भरी जवानी में दीक्षा क्यों ले ली? मुनि ने कहा—राजन्, मैं अनाथ हूं, इसीलिए मुनि बना हूं। श्रेणिक ने कहा—आप रूप-सम्पदा से तो ऐश्वर्यशाली प्रतीत होते हैं, फिर अनाथ कैसे? फिर कहा—आप मेरे साथ चलें, मैं आपका नाथ बनता हू और आप को सब सुखों के साधन देता हू। मुनि बोले—राजन्! तुम स्वयं अनाथ हो? फिर मेरे नाथ कैसे बन सकते हो? श्रेणिक को यह बात बहुत खटकी और बोले—मेरे पास अपार सम्पत्ति है, हाथी, घोडे रथ और पैदल सेना है और मैं लाखो व्यक्तियो

[illegible] हूं। आप मुझे अनाथ कैसे कहते हो? तब मुनि ने कहा – आप अनाथ का मतलब नहीं जानते हैं। सुनिये—मैं कौशाम्बी नगरी में रहता था। मेरे पिता अपार धन के स्वामी थे। एक बार मेरी आंख में भयंकर दर्द हुआ। उसे दूर करने के लिए पिता ने बहुतेरे उपाय किये और धन को पानी के समान बहाया। परन्तु मेरी आंख का दर्द नहीं मिटा। सभी सगे सम्बन्धियों ने भी बहुत प्रयत्न किये और आंसू बहाये। मगर कोई भी मेरी पीड़ा को हटा नहीं सका। तब मुझे ध्यान आया कि मैं अनाथ हूं। पीड़ा से पीड़ित होकर एक दिन रात्रि के समय मैंने विचार किया कि यदि मैं इस रोग से मुक्त हो जाऊंगा तो मुनि बन जाऊंगा। पुण्योदय से जैसे-जैसे रात्रि व्यतीत होती गई वैसे-वैसे ही मेरी पीड़ा भी शान्त होती गई। सवेरा होते-होते मैं बिलकुल स्वस्थ हो गया। अतः मैं साधु बन गया। अब मैं अपना नाथ हूं और अपना तथा त्रस-स्थावर जीवों का रक्षक भी हूं। मैं अपनी आत्मा पर शासन कर रहा हूं, अतः मैं सनाथ हूं। मुनि के ये वचन स्मरणीय हैं -

तओ हं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाणं थावराणं य॥

श्रेणिक राजा सनाथ और अनाथ की यह परिभाषा सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उनके ज्ञान नेत्र खुल गये और मुनि से बोले—भगवन्, आप सच्चे सनाथ हैं। पुनः राजा ने धर्म-देशना के लिए प्रार्थना की। तब मुनिराज ने उनको धार्मिक उपदेश दिया और साधु कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन किया। जिसे सुनकर श्रेणिक बोले

तंसि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया।
खामेमि ते महाभाग, इच्छामि अणुसासणं॥

आप अनाथों के नाथ हो, सब जीवों के नाथ हो। हे महाभाग, मैं आपसे क्षमा मांगता हूं और आपसे अनुशासन चाहता हूं। यह कह कर और उनकी वन्दना करके श्रेणिक अपने स्थान को चले गये।

[illegible] है। इसमें समुद्रपाल नामके एक श्रेष्ठि [illegible] कि एक बार जब वह अपने महल [illegible] उसने देखा कि एक पुरुष को बांध कर [illegible] है। उसे देखकर सहसा उसके हृदय में [illegible]

[illegible] संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
[illegible] निज्जाणं पावगं इमं॥

उसके मुख से ये वचन निकले—अहा, किये हुए अशुभकर्मों का यह दुःखद अन्त है। इस घटना से वह बोधि को प्राप्त हुआ और माता-पिता से अनुज्ञा लेकर साधु बन गया। इस स्थल पर बतलाया गया है कि साधु को किस प्रकार परीषह और उपसर्गों को शान्तिपूर्वक सहन करना चाहिए। देश-देशो मे विचरण करते हुए किस प्रकार सिंह वृत्ति रखे और आत्म-निग्रह करे। कहा गया है कि—

पहाय राग च तहेव दोस, मोह च भिक्खू सयय वियक्खणो।
मेरुव्ववाएण अकपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा॥

अर्थात्—विचक्षण भिक्षुराग द्वेष और मोह का त्याग करके आत्म-गुप्त बनकर परीषहो को इस प्रकार अविचल भाव से सहे और अकम्प बना रहे, जैसे कि वायु के प्रबल वेग से सुमेरु पर्वत अकम्प बना रहता है।

इस प्रकार बडे मनोयोग के साथ परीषह और उपसर्गों को सहन करते हुए कर्मों का क्षयकर वे भवसागर से पार हो गये।

वमन को मत पीओ!

बाईसवें अध्ययन मे 'रथनेमि' और राजमती के उद्बोधक सवाद का चित्रण है। इसमे बताया गया है कि जब भगवान् अरिष्टनेमि ने भय से सत्रस्त, बाडो और पिंजरो मे निरुद्ध दीन-दुखी प्राणियो को देखा, तब सारथी से पूछा कि ये पशु-पक्षी यहा क्यो रोके गये हैं। सारथी बोला—

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि, भोयावेउ बहु जण॥

नाथ, ये भद्र प्राणी आपके विवाह मे आये हुए मेहमानो को खिलाने के लिए यहा रोके गये हैं।

सारथी के ये वचन सुनकर भगवान अरिष्टनेमि सोचने लगे—

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मिहिंति बहू जिया।
न मे एय तु निस्सेस, परलोगे भविस्सई॥

यदि मेरे निमित्त से ये बहुत से जीव मारे जायेंगे तो यह परलोक मे मेरे लिए श्रेयस्कर न होगा।

यह विचार आते ही उन्होने सर्व वस्त्राभूषण सारथी को दे दिये और आपने रैवतपर्वत (गिरिनार) पर जाकर जिन दीक्षा ले ली। जब राजमती ने यह समाचार सुना तो वह मूर्च्छित होकर गिर पडी। परिजनो के

[illegible] किये जाने पर जब वह होश मे आई, तो अपने जीवन को धिक्कारने लगी, अन्त मे उसने भी प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

एक बार जब वह रैवतक पर्वत पर जा रही थी तब पानी बरसने से वह भीग गई। वह वस्त्र सुखाने के लिए एक गुफा मे जा पहुंची और यथा जात होकर वस्त्र सुखाने लगी। अंधेरे के कारण उसे यह पता नही चला कि यहा पर कोई बैठा हुआ है। रथनेमि जो कि अरिष्टनेमि का छोटा भाई था, वह साधु बन गया था और उसी गुफा मे ध्यान कर रहा था। जब उसने नग्न रूप मे राजमती को देखा तो कामान्ध होकर और अपना परिचय देकर बोला—

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्सिमो॥

आओ, हम भोगो को भोगे। निश्चय ही मनुष्य जीवन अति दुर्लभ है। भोगो को भोगने के पश्चात् फिर हम लोग जिनमार्ग पर चलेंगे।

रथनेमि का यह प्रस्ताव सुनकर राजमती ने उसे डाटते हुए कहा—

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वन्तं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥

हे अयशःकामिन्, तुझे धिक्कार है जो तू भोगी जीवन के लिए वमन की हुई वस्तु को पीने की इच्छा करता है। इससे तो तेरा मरना ही अच्छा है।

राजमती ने कहा— तू गन्धन सर्प के समान वमित भोगो को भोगने की इच्छा करके अपने [illegible] को कलंकित मत कर। अन्त मे जैसे मदोन्मत्त हाथी महावत के अंकुश-प्रहार से वश मे आ जाता है, उसी प्रकार राजमती के सुभाषित [illegible] वचनो से रथनेमि धर्म मे स्थिर हो गए और उत्तम संयम का पालन कर अनुत्तर पद को प्राप्त हुए।

[illegible] अध्ययन केशी और गौतम के संवाद का है। केशी मुनि पार्श्व परम्परा के साधु थे और गौतम भगवान महावीर के प्रधान शिष्य थे। एक बार [illegible] अपने शिष्य परिवार के साथ श्रावस्ती नगरी [illegible] और गौतम स्वामी कोष्ठक उद्यान [illegible] आगमन किया। और पारस्परिक भेदो की [illegible] गौतम अपने शिष्य-परिवार [illegible] के साथ उनका सत्कार [illegible]

पूछा—अहो गौतम, भगवान पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की और भगवान महावीर ने पंचयाम धर्म की। जब दोनो का लक्ष्य एक है, तब यह प्ररूपणा भेद क्यो ? गौतम ने कहा—भन्ते, प्रथम तीर्थंकर के श्रमण ऋजु जड अन्तिम तीर्थंकर के वक्र जड और मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो के श्रमण ऋजु प्राज्ञ होते हैं। प्रथम तीर्थंकर के लिये मुनि के आचार को यथावत् ग्रहण करना कठिन है, अन्तिम तीर्थंकर के श्रमणो के लिये आचार का पालन करना कठिन है और मध्यवर्ती तीर्थंकरो के मुनि उसे यथावत् ग्रहण करते हैं, तथा सरलता से उसका पालन भी करते हैं। इस कारण यह प्ररूपणा-भेद हैं। यह सयुक्तिक उत्तर सुनकर केशी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।
अन्नो वि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ॥

हे गौतम, तुम्हारी प्रज्ञा बहुत उत्तम है। तुमने मेरा यह सशय नष्ट कर दिया। मुझे एक और भी सशय है, उसे भी दूर करो। ऐसा कह कर केशी ने एक-एक करके अनेक प्रश्न गौतम के सम्मुख उपस्थित किये और गौतम ने सबका सयुक्तिक समुचित समाधान किया। जिसे सुनकर केशी बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने गौतम का अभिवन्दन करके सुखावह पचयामरूप धर्म को स्वीकार कर लिया।

प्रवचनमाता

चौबीसवा अध्ययन 'प्रवचन-माता' का है। इसमे बतलाया गया है कि अहिसा की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप रत्नत्रय-धर्म का और साधुत्व की रक्षा करने वाली पाच समिति और तीन गुप्ति माता के समान रक्षा करती है अत इन्हे प्रवचन माता कहा जाता है। समिति का अर्थ है– सम्यक् प्रवर्तन। जीवो की रक्षा करने वाली अहिसक एव सावधान प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। समितिया पाच होती हैं –

१ ईर्यासमिति—गमनागमन के समय जीव-सरक्षण का विवेक।
२ भाषा समिति बातचीत के समय अहिसक वचनो का उपयोग।
३ एषणासमिति—निर्दोष आहार पात्रादि का अन्वेषण।
४ आदानसमिति—पुस्तक-पात्रादि के उठाने-रखने मे सावधानी।
५ उत्सर्गसमिति—मल-मूत्रादि के विसर्जन मे सावधानी।

इन पाच समितियो का पालन करनेवाला साधु जीवो से भरे हुए इस ससार मे रहने पर भी पापो से लिप्त नही होता है।

योग-निग्रह को गुप्ति कहते है। गुप्तिया तीन है—

१ मनोगुप्ति— मन के असद् प्रवर्तन का निग्रह।

२ वचनगुप्ति— वचन के असद्-व्यवहार का निवर्तन।

३ कायगुप्ति— शरीर की असद् चेष्टाओ का नियत्रण।

जिस प्रकार हरे-भरे खेत की रक्षा के लिए बाड की, नगर की रक्षा के लिए कोट और खाई की आवश्यकता होती है उसी प्रकार श्रामण्य की सुरक्षा के लिए एव कर्मास्रव—निरोध के लिए उक्त तीनो गुप्तियो का परिपालन अत्यन्त आवश्यक है। इस अध्ययन मे उक्त आठो प्रवचन माताओ का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है और अन्त मे कहा गया है कि

एया पवयणमाया, जे सम्म आयरे मुणी।
से खिप्प सव्वससारा विप्पमुच्चइ पडिए॥

जो विद्वान् मुनि इन प्रवचन माताओ का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही ससार से मुक्त हो जाता है।

पच्चीसवा 'यज्ञीय' अध्ययन है। इसमे बतलाया गया है कि एक बार जयघोष मुनि मासक्षमण का पारणा के लिए वाराणसी नगरी मे गये। वहा पर विजयघोष ब्राह्मण ने यज्ञ का प्रारम्भ किया हुआ था अत वे मुनि वहा पहुचे। विजयघोष ने कहा— जो वेदो को जानते है, तदनुसार यज्ञादि करते है और जो अपने या दूसरो के उद्धार करने मे समर्थ है, मै उन्ही को भिक्षा दूगा, तुम [illegible] नही। इस बात को सुनकर मुनि रुष्ट नही हुए, प्रत्युत उसको समझाने के लिए बोले—

न वि जाणसि वेयमुह, न वि जन्नाण ज मुह।
नक्खत्ताण मुह ज च, ज च धम्माण वा मुह॥

[illegible] नही जानते, यज्ञो के मुख को भी नही जानते हो।

[illegible] ब्राह्मण बोला—आप ही बतलाइये कि [illegible] का मुख [illegible] का और धर्म का मुख क्या है? उसके [illegible] मुनि ने [illegible] बडा ही सुन्दर उत्तर देते [illegible] ब्राह्मण हो सकता है जो कि इष्ट वस्तु [illegible] सयोग मे [illegible] नही करता, जो [illegible] है, त्रस-स्थावर जीवो का [illegible] का नही लेता, ब्रह्मचर्य का [illegible]

जो रसोका लोलुपी नही है, गृहत्यागी है, अकिंचन है, अनासक्त है और सर्व कर्मों से रहित है, मैं उसी को ब्राह्मण कहता हू। अन्त मे उन्होने कहा—

न वि मु डिएण समणो, न ओकारेण बभणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो॥
समयाए समणो होइ, बभचेरेण बभणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥

अर्थात्—केवल सिर मु डा लेने से कोई श्रमण नही होता, 'ओ' का उच्चारण करने से ब्राह्मण नही होता, अरण्य मे रहने से कोई मुनि नही होता और कुशा का चीवर पहिनने मात्र से कोई तापस नही होता। किन्तु समभाव की साधना करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है, ज्ञान की आराधना से-मनन करने से मुनि होता है और तप करने से तापस कहलाता है।

एव गुण समाउत्ता जे भवति दिउत्तमा।
ते समत्था उ उद्धतु पर अप्पाणमेव य॥

इस प्रकार के गुणो से सम्पन्न जो द्विजोत्तम होते है, वे ही अपना और पराया उद्धार करने मे समर्थ होते हैं।

साधु के ऐसे मार्मिक वचनो को सुनकर वह विजयघोप ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भी जिन-प्रवज्या स्वीकार करली और वे जयघोष विजयघोष मुनि सयम और तप के द्वारा सचितकर्मों का क्षय करके अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुए।

छव्वीसवा अध्ययन 'समाचारी' का है। साधुओ के आचार-व्यवहार को समाचारी कहते हैं। यह समाचारी दश प्रकार की होती है। उनके नाम और स्वरूप सक्षेप मे इस प्रकार है—

१ आवश्यकी – अपने स्थान से बाहिर जाते समय की जाती है।
२ नैषेधिकी अपने स्थान मे प्रवेश करते समय की जाती है।
३ आपृच्छना कार्य करने से पूर्व गुरु से पूछना।
४ प्रतिपृच्छना – कार्य करने के लिए पुन पूछना।
५. छन्दना—पूर्व गृहीत द्रव्यो से गुरु आदि को निमत्रण करना।
६. इच्छाकार—साधुओ के कार्य करने या कराने के लिए इच्छा प्रकट करना।

योग-निग्रह को गुप्ति कहते है। गुप्तिया तीन हैं—

१ मनोगुप्ति—मन के असद् प्रवर्तन का निग्रह।

२ वचनगुप्ति—वचन के असद्-व्यवहार का निर्वतन।

३ कायगुप्ति—शरीर की असद् चेष्टाओ का नियत्रण।

जिस प्रकार हरे-भरे खेत की रक्षा के लिए बाड की, नगर की रक्षा के लिए कोट और खाई की आवश्यकता होती है उसी प्रकार श्रामण्य की सुरक्षा के लिए एव कर्मास्रव—निरोध के लिए उक्त तीनो गुप्तियो का परिपालन अत्यन्त आवश्यक है। इस अध्ययन मे उक्त आठो प्रवचन माताओ का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है और अन्त मे कहा गया है कि –

एया पवयणमाया, जे सम्म आयरे मुणी।
से खिप्प सव्वससारा विप्पमुच्चइ पडिए॥

जो विद्वान् मुनि इन प्रवचन माताओ का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही ससार से मुक्त हो जाता है।

पच्चीसवा 'यज्ञीय' अध्ययन है। इसमे बतलाया गया है कि एक बार जयघोप मुनि मासक्षमण का पारणा के लिए वाराणसी नगरी मे गये। वहा पर विजयघोप ब्राह्मण ने यज्ञ का प्रारम्भ किया हुआ था अत वे मुनि वहा पहुचे। विजयघोप ने कहा—जो वेदो को जानते है, तदनुसार यज्ञादि करते है और जो अपने वा दूसरो के उद्धार करने मे समर्थ हैं, मै उन्ही को भिक्षा दूगा, तुम जैसे व्यक्तियो को नही। इस बात को सुनकर मुनि रुष्ट नही हुए, प्रत्युत उसको समझाने के लिए बोले—

न वि जाणसि वेयमुह, न वि जन्नाण ज मुह।
नक्खत्ताण मुह ज च, ज च धम्माण वा मुह॥

तुम वेद के मुख को नही जानते, यज्ञो के मुख को भी नही जानते हो।

मुनि के ऐसा कहने पर यज्ञकर्ता ब्राह्मण बोला—आप ही बतलाइये कि वेदो का मुख क्या है, यज्ञ का, नक्षत्रो का और धर्म का मुख क्या है? उसके ऐसा पूछने पर मुनि ने उक्त प्रश्नो का अध्यात्म-परक बडा ही सुन्दर उत्तर देते हुए बताया कि ऐसे यज्ञ का कर्ता वही ब्राह्मण हो सकता है जो कि इष्ट वस्तु की प्राप्ति मे राग नही करता, अनिष्ट सयोग मे द्वेष नही करता, जो सर्वप्रकार के भय से रहित है, शान्त है, जितेन्द्रिय है, त्रस-स्थावर जीवो का रक्षक है, असत्य नही बोलता, अदत्त वस्तु को नही लेता, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करता है, सासारिक परिग्रह से लिप्त नही होता है,

जो रसोका लोलुपी नहीं है, गृहत्यागी है, अकिंचन है, अनासक्त है और सर्व कर्मों से रहित है मैं उसी को ब्राह्मण कहता हूं। अन्त मे उन्होने कहा—

न वि मुंडिएग समणो, न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो॥
समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥

अर्थात्—केवल सिर मुडा लेने से कोई श्रमण नही होता, ओं' का उच्चारण करने से ब्राह्मण नहीं होता, अरण्य मे रहने से कोई मुनि नही होता और कुशा का चीवर पहिनने मात्र से कोई तापस नही होता। किन्तु समभाव की साधना करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है, ज्ञान की आराधना से-मनन करने से मुनि होता हैं और तप करने से तापस कहलाता है।

एवं गुण समाउत्ता जे भवति दिउत्तमा।
ते समत्था उ उद्धतु पर अप्पाणमेव य॥

इस प्रकार के गुणो से सम्पन्न जो द्विजोत्तम होते है, वे ही अपना और पराया उद्धार करने मे समर्थ होते हैं।

साधु के ऐसे मार्मिक वचनो को सुनकर वह विजयघोष ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भी जिन-प्रवज्या स्वीकार करली और वे जयघोष विजयघोप मुनि सयम और तप के द्वारा सचितकर्मों का क्षय करके अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुए।

छब्बीसवा अध्ययन 'समाचारी' का है। साधुओ के आचार-व्यवहार को समाचारी कहते हैं। यह समाचारी दश प्रकार की होती है। उनके नाम और स्वरूप सक्षेप मे इस प्रकार है—

१ आवश्यकी—अपने स्थान से बाहिर जाते समय की जाती है।
२ नैषेधिकी अपने स्थान मे प्रवेश करते समय की जाती है।
३ आपृच्छना कार्य करने से पूर्व गुरु से पूछना।
४ प्रतिपृच्छना—कार्य करने के लिए पुन. पूछना।
५. छन्दना—पूर्व गृहीत द्रव्यो से गुरु आदि को निमंत्रण करना।
६. इच्छाकार—साधुओ के कार्य करने या कराने के लिए प्रार्थना करना।

७, मिथ्याकार—अपने दुष्कृत की निन्दा करना।
८ तथाकार—गुरु-प्रदत्त उपदेश के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान करना।
९ अभ्युत्थान—गुरुजनो के आने पर खडा होना।
१०. उपसम्पदा—दूसरे गण वाले आचार्य के समीप रहने के लिए उनका शिष्यत्व स्वीकार करना।

इस दश विध समाचारी के अतिरिक्त साधुओ के दैवसिक और रात्रिक कर्त्तव्यो का भी इस अध्ययन मे बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

सत्तावीसवा खलुकीय' अध्ययन है। खलुकीय नाम दुष्ट बैल का है। जैसे दुष्ट बैल गाडी और गाडीवान दोनो का नाश कर देता है, कभी जुए को तोड़कर भाग जाता है, कभी भूमि पर पडकर गाडी वान को परेशान करता है, कभी कूदता है, कभी उछलता है और कभी गाय को देखकर उसके पीछे भागता है, उसी प्रकार अविनीत एव दुष्ट शिष्य भी अनेक प्रकार से अपने गुरु को परेशान करता है, कभी भिक्षा लाने मे आलस्य करता है, कभी अहकार प्रकट करता है, कभी बीच मे ही अकारण बोल उठता है और कभी किसी कार्य के लिए भेजे जाने पर उसे विना किये ही लौट आता है। तब धर्माचार्य विचार करते हैं कि ऐसे अविनीत शिष्यो से तो शिष्यो के विना रहना ही अच्छा है और इसी कारण वे दुष्ट शिष्यो का सग छोडकर एकाकी ही तपश्चरणादि मे सलग्न रहते हैं।

अट्ठाईसवे अध्ययन का नाम 'मोक्षमार्ग-गति' है। इसमे बतलाया गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चारो के समायोग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए इन चारो को विधिवत् धारण करना चाहिए। इस अध्ययन मे सम्यग्दर्शन के निसर्गरुचि आदि दश भेदो का विस्तार से विवेचन किया गया है। सम्यग्ज्ञान के मतिज्ञानादि पाच भेदो का, सम्यक् चारित्र के सामायिक आदि पाच भेदो का और सम्यक्तप के बारह भेदो का वर्णन करके अन्त मे कहा गया है कि—

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाई, तवेण परिसुज्झई॥

जीव ज्ञान से पदार्थो को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारित्र से नवीन कर्मो का निग्रह करता है और तप से पूर्व सचित कर्मो का क्षय करके परिशुद्ध हो जाता है। इसलिए महर्षिगण सदा ही इन चारो को धारण कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

उनतीसवें अध्ययन का नाम 'सम्यक्त्व पराक्रम' है। इसमें वर्णित ७३ प्रश्नों के उत्तरों-द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करने की दिशा मिलती है और साधक उसे प्राप्त करने के लिए पराक्रम करता है। यह प्रश्नोत्तर रूप एक विस्तृत अध्ययन है, जिसके पठन-पाठन से जिज्ञासु जनों को मुक्तिमार्ग का सम्यक् बोध प्राप्त होता है।

तपोमार्ग

तीसवें अध्ययन का नाम 'तपोमार्ग-गति' है। इसमें बतलाया गया है कि राग-द्वेष से उपार्जित कर्म का क्षय तप से ही होता है। जिस प्रकार सरोवर का जल सूर्य के तीव्र ताप से सूख जाता है, इसी प्रकार आत्मा कर्मरूप जल भी तपस्या की अग्नि से सूख जाता है। तप दो प्रकार का होता है—बहिरंग तप और अन्तरंग तप। बहिरंग तप के छह भेद हैं—अनशन, ऊनोदरिका, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायक्लेश और संलीनता (विविक्त शय्यासनता)। अन्तरंग तप के भी छह भेद हैं—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग। इन दोनों प्रकार के तपों का वर्णन करके अन्त में कहा गया है कि—

एवं तवं तु दुविहं जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए॥

जो पंडित मुनि दोनों प्रकार के तपों का सम्यक् प्रकार से आचरण करता है वह शीघ्र ही समस्त संसार से मुक्त हो जाता है।

इकतीसवें अध्ययन का नाम 'चरणविधि' है। इसमें बतलाया गया है कि—

की साधना मे विघ्न करता है। अत प्रमाद का त्याग करने के लिए गुरुजनो एव वृद्ध साधुओ की सेवा करना, अज्ञानीजनो से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और उसके अर्थ का चिन्तन करना तथा सदा सावधान रहना आवश्यक है। प्रमाद के स्थान मद्य मास, मदिरा का सेवन, इन्द्रियो के विपयो मे प्रवृत्ति, कषायरूप परिणित, निद्रा-विकथा, द्यूत और राग-द्वेषादि है। अत साधु को इन सर्व प्रमाद स्थानो से बचना चाहिए।

कर्मविज्ञान

तेतीसवे अध्ययन का नाम 'कर्मप्रकृति' है। इसमे ज्ञानावरणादि आठो कर्मो का, उनके १४८ उत्तर भेदो का, उनकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध का वर्णन किया गया है। अन्त मे बताया गया है कि इन कर्मो के अनुभागो को जानकर ज्ञानी पुरुषो को इनके निरोध और क्षय करने मे प्रयत्न करना चाहिए।

चौतीसवा 'लेश्याध्ययन' है। कपायो से अनुरजित योगो की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हे। लेश्या के छह भेद है—कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्या। इनमे आदि की तीन लेश्याए अशुभ है और अन्तिम तीन लेश्याए शुभ हैं। इस अध्ययन मे इन सब लेश्याओ का वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य के द्वारा विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्त मे कहा गया है कि अशुभ लेश्याओ से जीव दुर्गति को जाता है और शुभ लेश्याओ से जीव शुभगति को प्राप्त करता है।

पैतीसवे अध्ययन का नाम 'अनगार-मार्गगति' है। इसमे बतलाया गया है कि अनगार साधु हिंसादि पाचो पापो का त्याग करे, काम-राग बढ़ाने वाले मकानो मे रहने की इच्छा न करे, दूसरो से मकान न बनवाए न स्वय बनाए, भोजन भी न स्वय बनावे और न दूसरो से बनवावे, क्योकि इन कार्यो मे त्रस और स्थावर कायिक जीवो की हिंसा होती है। साधु को एकान्त, निराबाध, पशु-सभी से असंसक्त और निरवद्य स्थान मे रहना चाहिए। सदा उत्तम ध्यान को शुक्लध्यान को ध्यावे और वीतरागता को धारण करे। क्योंकि शुक्लध्यानी वीतरागी साधु ही कर्मो से विमुक्त होकर शाश्वत पद को प्राप्त करता है।

छत्तीसवे अध्ययन का नाम 'जीवाजीव-विभक्ति' है। इसमे जीव और अजीव द्रव्य के भेद-प्रभेदो का- उनकी सवस्थिति और कायस्थिति का बड़े विस्तार से विवेचन किया गया है। सिद्धजीवो का वर्णन अवगाहन, लिंग, क्षेत्र,

वेपादि की अपेक्षा से सिद्धिस्थान का भी विवेचन किया गया है। एकेन्द्रिय पृथ्वीकायादि के अनेक भेदो का तथा द्वीन्द्रियादि त्रसकायो के भी अनेक भेदो का विस्तृत विवेचन इस अध्ययन मे किया गया है। साराश यह है कि जीव और अजीव द्रव्य सम्वन्धी प्राय सभी ज्ञातव्य बातो का इस अध्ययन मे वर्णन है। अन्त मे कान्दर्पी, आभियोगी, किल्विषिकी आदि भावनाओ का वर्णन कर उनके त्याग का उपदेश दिया गया है।

आगम-ज्ञान की थाती

इस प्रकार उत्तराध्ययन के रूप मे भ० महावीरस्वामी ने ज्ञान का यह विशाल भण्डार चतुर्विध सघ को आज के दिन सभलाया था। ज्ञान ही सच्चा धन है, इसी से आज का दिन 'धनतेरस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस उत्तराध्ययन सूत्र के स्वाध्याय से कर्मों की निर्जरा होती है और महान् गुणो की प्राप्ति होती है। महापुरुषो के मुख-कमल से निकले हुए इन वचनो का हम सबको आदर करना चाहिए।

भगवान महावीर के ये दिव्य वचन उनके निर्वाण के पश्चात् ९८० वर्ष तक आचार्य-परम्परा मे मौखिक रूप से चलते रहते। जब तात्कालिक महान् आचार्यों ने देखा कि काल के दोष से मनुष्यो की बुद्धि उत्तरोत्तर हीन होती जा रही है, तब उन्होने तात्कालिक साधुओ का एक सम्मेलन किया और मौखिक वाचनाओ का सकलन कर उन्हे लिपिवद्ध करके पुस्तकारूढ किया। अब यदि कोई कहे कि लिखने और लिखाने की बात तो शास्त्रो मे कही भी नही आई है। तो भाई, इसका उत्तर यह है कि उत्तमकार्य के लिए कही मनाई नही हैं। आपके पिता ने आपसे कहा कि बेटा, यदि सौ रुपये का मुनाफा मिल जाय तो व्यापार कर लेना। अब यदि आपको सौ के स्थान पर हजार रुपये मुनाफे मे मिल रहे है तो इसके लिए पिता की आज्ञा ही है, उसके लिये पूछने की क्या आवश्यकता है? उत्तम कार्य के लिए पूछने की आयश्कता नही है। परन्तु यदि सौ रुपयो के ९५ होते हैं, या ७५ हो रहे हैं, तब पूछने की आवश्यकता है। इसी प्रकार जिस कार्य मे धर्म की और ज्ञान की बढवारी हो, उसके लिए भगवान की आज्ञा ही है। जिन महापुरुषो ने भगवान के वचनो को पुस्तको के रूप मे लिखकर उन्हे सुरक्षित किया है, उन्होंने हम सबका महान् उपकार किया है। यदि आज ये शास्त्र न होते तो हमे किस प्रकार श्रावक और साधु के धर्म का बोध होता? और कैसे हम उनके बतलाये मार्ग पर चलते? कैसे हमे पुण्य-पाप का, हेय-उपादेय का और

भले-बुरे का ज्ञान होता। इसलिए हमे उन आचार्यों का सदा ही उपकार मान-कर कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। भगवान महावीर का निर्वाण हुए आज लगभग २५०० वर्ष हो रहे है और उनके निर्वाण के ९८० वर्ष बाद ये शास्त्र लिखे गये है, अत १५०० वर्षों से ज्ञान की धारा इन शास्त्रो के प्रसाद से ही बहती चली आ रही है। लेखक छद्मस्थ रहे है, अत लिखते समय अक्षर-मात्रा की चूक सभव है, उसे पूर्वापर अनुसधान से शुद्ध किया जा सकता है और उसे शुद्ध करने का ज्ञानी जनो को अधिकार भी है। परन्तु भगवान के वचनो को इधर-उधर करने का हमे कोई अधिकार नही है। आप रोकड मिलाते है और रोज-नामचे मे कच्ची रोकड मे जोड की कोई भूल मालूम पडती है, तो उसे सुधार देते है। इसीप्रकार यदि कही पर लेखक के दोष से कोई अशुद्धि या भूल हो गई हो, तो उसे शुद्ध किया जा सकता है, परन्तु जो मामला सही है, उस पर कलम चलाने का अधिकार नही है। यदि सही तत्त्व-निरूपण को भी छिन्न-भिन्न किया जायगा तो फिर सारी प्रामाणिकता नष्ट हो जायगी। अत जो आगम-निबद्ध तत्त्व है उनको यथावत् ही अवधारण करना भगवान् के प्रति सच्ची श्रद्धा वा भक्ति प्रकट करना है और यही उनकी आज्ञा का पालन करना है। आगम मे अगणित जो अनमोल रत्न बिखरे पडे है, हम अपनी शक्ति के अनुसार ग्रहण कर लेना चाहिये। मनुष्य को सदा ज्ञानी की शिक्षा माननी चाहिये, अज्ञानी की नही। अन्यथा दुःख उठाना पडता है।

किसी कुम्हार के एक गधा था। वह उसके ऊपर प्रतिदिन खान से मिट्टी लादकर लाता था। एक दिन गधे ने सोचा कि यह प्रति दिन मुझे लादता भी है और डण्डे भी मारता है। इस झझट से छूटना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने खान पर ही मिट्टी से भरी लादी पटक दी और वही पड गया। इस पर खीज कर कुम्हार ने उसे खूब मारा और कान-पूछ काट कर वही पर छोड कर घर चला आया। गधे ने सोचा—अब मेरी झझट मिट गई और स्वतत्र हो गया हू, अत वह जगल मे चला गया और स्वच्छन्द घूमते-फिरते और घास खाते हुए कुछ दिनो मे मोटा-ताजा हो गया। एक दिन जब वह सडक के किनारे हरी-घास खा रहा था, तभी एक बग्घी आती हुई उसे दिखी, उसमे दो घोडे जुते हुये थे। उनको देखकर गधे ने अपना मुख ऊचा करके कहा—

> रे रे अश्वा गले बद्धा, नित्य भार वहन्ति किं।
> कुटिल किं न कर्तव्य, सुख वने चरन्ति ते॥

अरे घोडो, तुम लोग मेरे जैसा कुटिलता क्यो नही करते? यदि कुटिलता करोगे तो तुम भी स्वतन्त्र हो जाओगे। और मेरे जैसे घास खाकर मस्त रहोगे। क्यो नित्य यह बग्घी का भार ढोते फिरते हो?

बग्घी के दो घोडो मे से एक घोडा कुपात्र था। उसे गधे की बात अच्छी लगी और वह चलते हुये एक स्थान पर अड गया। सईस ने पहिले तो दो-चार चाबुक लगाये। पर जब चलता नहीं देखा तो उसने पिस्तौल से गोली मार दी। वह घोडा मर गया। अब एक घोडे से बग्घी कैसे चले। अत समीप मे ही चरते हुये उस गधे को उसे बग्घी मे जोत दिया और हटर मार कर दौडाता हुआ बग्घी को घर पर ले आया। अब वह प्रतिदिन बग्घी मे जोता जाने लगा और हटरो की मार खाने लगा। तब एक दिन उसके साथ जुतने वाले घोडे ने कहा—

कुट्टकर्ण्ण दुराचारी, मम मातुलघातकः।
कुटिल किं न कर्त्तव्य, सुख वने चरन्ति ते॥

अरे बिना पूछ-कान के गधे, तूने कुटिलता का पाठ पढा कर मेरे मामा को मरवा दिया। अब तू कुटिलता क्यो नही करता है? तब गधा बोला—

कौटिल्य तत्र कर्तव्य, यत्र धर्मो प्रवर्तते।
रथवाहो महापापी, कण्ठच्छेद करिष्यति॥

भाई, कुटिलता वहा करना चाहिए, जहा पर धर्म प्रवर्तता हो। परन्तु यह रथवाहक तो महापापी है। यदि इसके आगे मैं कुटिलता करूगा तो यह अभी मेरा गला ही उडा देगा।

इस दृष्टान्त के कहने का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य अनुशासन मे नही रह कर स्वच्छन्द-विहारी अनर्गलप्रलापी हो जाते है, वे उस गधे के समान दूसरो को भी धोखा देते है और उन्हे भी दुखो का भागी बना देते हैं। जो भगवान का अनुशासन नहीं मानना चाहते और उत्सूत्र प्ररूपणा करके स्वय पाप के गर्त मे पडते हैं, वे दूसरो को भी अपने साथ दुर्गति के गर्त मे ले जाते है। अत सर्वज्ञ, वीतराग भगवान के वचनो मे भी अवगुण निकालने वाले, स्वछन्द विचारवाले और उत्सूत्र-प्ररूपणा करने वाले मनुष्यो के बहकावे मे नही जाना चाहिए। किन्तु परभव मे सुख के इच्छुक भव्यजनों को भगवद्-वचनों पर पूर्ण श्रद्धा और भक्ति रखनी चाहिए। उन्हे सदा यही बात हृदय मे रखनी चाहिए कि 'नान्यथावादिनो जिना.' अर्थात् जिन भगवान अन्यथावादी नहीं होते है। उन्होंने जो और जैसा वस्तु का स्वरूप कहा है, वही सत्य है और हमें उसी का श्रद्धान करना चाहिए।

वि० सं० २०२७ कार्तिक कृष्णा १३
(धनतेरस)
जोधपुर

१५ | रूप-चतुर्दशी अर्थात् स्वरूपदर्शन

भाइयो, जिनेश्वर देव ने हमारे जीवन को सार्थक करने के लिए अनेकानेक उपाय बताये है। सरल उपाय भी बताये है और कठिन उपाय भी बताये है। जिन महापुरुषो मे शक्ति है और जो अपने जीवन को शीघ्र ही सार्थक करना चाहते है, उनके लिए मुनिधर्म का कठिन मार्ग बताया है और जिनमे शक्ति की हीनता है और धीरे धीरे जीवन को सार्थक करना चाहते है, उनके लिए श्रावक धर्म का सरल मार्ग बताया है। अब जिसकी जैसी और जितनी शक्ति हो, वह उसके अनुसार अपने जीवन को सार्थक कर सकता है।

कल धनतेरस के विषय मे आपके सामने प्रकाश डाला गया था। आज रूप चतुर्दशी है। रूप का अर्थ है—आत्म-स्वरूप। भगवान ने अपने स्वरूप को भली भाति से साक्षात्कार किया, देखा और जाना। पुन जनता को दिखाने के लिए उन्होंने ज्ञान का दर्पण रख दिया। भगवान को अपना स्वरूप देखने के लिए सहस्रो कष्ट सहन करना पडे तब कहीं जाकर उनको अपना रूप दिखाई दिया। परन्तु उन्होंने हम सब के उपकार के लिए ज्ञान का उत्तम दर्पण सामने रख दिया और कहा कि आओ और देखो कि तुम्हारा रूप कैसा है? भगवान के इस आमत्रण को सुनकर अनेकानेक लोग उनके पास गये। किन्तु कितने तो समवसरण की शोभा को देखने मे ही मस्त हो गये, कितने ही वहा के वन-उपवनो की सैर करने मे लग गये, कितने ही

यहा होने वाले आनन्द-नाटको के देखने मे ही मग्न हो गये और कितने ही लोग किन्नर-किन्नरियो के नृत्य-सगीत मे ही निरत हो गये। इस प्रकार अनेक लोग भगवान के समीप तक भी पहुच कर आत्म-रूप के दर्शन से वचित रहे। किन्तु जो केवल अपने रूप को निहारने के लिए गये, उनको आत्म-स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ। उन्होने आज तक की अपनी भूल को पहिचाना और उसे दूर कर वे तुरन्त भगवान के बताये मार्ग पर चलने के लिए प्रव्रजित हो गये। मुनि-धर्म अगीकार किया और घोरातिघोर तपश्चरण कर आत्म-साधना मे सलग्न हो गये। जब उन्होने देखा कि अब अपने को यहा से रवाना होना है, तब उन्होंने पडितमरण को स्वीकार कर लिया। इसे अगीकार करने वालो का मरण एक बार ही होता है और वे सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से विमुक्त हो जाते हैं। जिन्हे आत्मसाक्षात्कार हो जाता है और अपने अनन्त गुणो का भान हो जाता है, वे यह अनुभव करने लगते हैं कि जब तक इस शरीर के साथ मेरा राग रहेगा और स्नेह-सम्बन्ध बना रहेगा, तब तक सासारिक दु खो से छुटकारा नही मिल सकता। वे शरीर के निंद्य, जड और बन्धन-कारक यथार्थ स्वरूप को जानकर अपनी आत्मा को उसके बन्धन से मुक्त करने के लिए सदा ही प्रयत्नशील रहते है।

भगवान के द्वारा अपना रूप देखने के लिए ज्ञानरूपी दर्पण को सामने रख देने पर भी आज देखने मे आता है कि जितना शौक हम लोगो को बातें करने का है और विकथा-वाद मे जितना समय नष्ट करते है, उसका शताश भी शास्त्र-स्वाध्याय करने मे समय नही लगाते हैं। फिर भी आप लोग समझते हैं कि हम बहुत होशियार हैं। परन्तु यथार्थ मे वे महामूर्ख हैं, जिन्हे प्रतिक्षण विनष्ट होती हुई अपनी यथार्थ सम्पत्ति के सँभालने की भी सुध-बुध नही है। जैसे सच्चे दुकानदार का ध्यान अपने व्यापार के हानि-लाभ पर रहता है और वह हानि के कारणो से बचता रहता है। उसके सामने कितने ही मेले-ठेले लगें और उत्सव हो, फिर भी वह उनकी ओर ध्यान नही देता, किन्तु अपनी दुकानदारी मे ही दत्त-चित्त रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी और आत्मस्वरूप-दर्शी व्यक्ति का चित्त भी सासारिक बातो की ओर नही जाता है किन्तु वह सदा आत्मा के उत्थान करने वाले कार्यों मे ही सलग्न रहता है।

जो दुकानदार अपने काम से काम रखता है और दुनिया के प्रपचो मे नही पडता है, वही सच्चा दुकानदार और व्यापारी कहलाता है। भले ही उसे कोई कहे कि यह तो कोल्हू के बैल के समान रात-दिन अपने काम मे लगा रहता है। मगर वह इसकी चिन्ता नही करता। इसी प्रकार आत्म-साधना

सलग्न व्यक्ति को भी कोई कुछ भी क्यो न कहे, पर यह भी उसकी चिन्ता नही करता। वह तो यही सोचता है कि—

मुझे है काम ईश्वर से तो दुनिया से हे क्या मतलब।

भाई, जिसे अपना काम करना है, तो वह दुनिया की परवाह नही करेगा। जो आत्म-स्वरूप मे आया हैं, उसे भले ही सारा ससार पागल कहे, पर वह उसकी ओर ध्यान नही देगा। यथार्थ बात यह है कि ससार की दृष्टि मे ज्ञानी पुरुष पागल दिखता हे और ज्ञानी को सारा ससार पागल-सा दिखता है। देखो—यदि कही पर पाच पुरुष भाग छानकर पी रहे हो, उस समय यदि कोई उसका त्यागी व्यक्ति आ जाता है और उसे पीने के लिए कहने पर वह नही पीता है, तो उसे वे पीनेवाले लोग कहते हैं कि यह कैसा खुरडा पग है? भले ही वह दुनिया के लिए पागल प्रतीत हो, पर वह अपने भीतर समझता है कि मैं ठीक मार्ग पर हू। और यही कारण हे कि वह दूसरो के द्वारा कही गई किसी भी बात को बुरा नही मानता हे।

लोग कहते है कि हमे सुख चाहिए। पर भाई, सुख की चाहना करने वालो को दुख सहने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। भर-पेट खाने की इच्छा रखने वालो को कभी भूख सहन करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। ससार की स्थिति ही ऐसी है कि जिस वस्तु की चाहना करोगे वह यदि मिल जायगी तो क्षणिक सुख का अनुभव होगा। और यदि वह नहीं मिली, या मिलकर विनष्ट हो गई तो दीर्घकाल तक दुःख का अनुभव करना पडेगा। किन्तु जो अपनी आत्मिक निधि है, उसकी प्राप्ति होने के पश्चात् वह कभी अपने से विलग नहीं होती है, अत. कभी भी उसके वियोग-जनित दुःख का अनुभव नही करना पडता है। जो आत्म-स्वरूप के दर्शन कर लेता है, वह अपने मे ही मस्त रहता है और अपने मे सन्तुष्ट रहने वाला व्यक्ति सदा सुखी ही रहता है। जो निजस्वरूप मे आया है, उसकी फिर सारे सासारिक पदार्थो पर से इच्छा निवृत्त हो जाती है, अत उनके आने पर न उसे सुख होता है और न जाने पर दुःख ही होता है। वह तो सदा यही विचारता है कि—

सुख-दुख, जीवन-मरण अवस्था, ये दस प्राण सघात रे प्राणी,
इनसे भिन्न विनयचन्द रहियो, ज्यो जल से जलजात रे।
श्री महावीर नमो वर नाणी।

भाइयो, विचार तो करो—ये सुख-दुख, हानि-लाभ, जीवन और मरण आत्मा के साथ है, या शरीर के साथ मे है? जहा तक शरीर का साथ रहता है, वहा तक ही ये सब साथ है। जब यह जीव इन दस प्राणो से [illegible]

जाता है, तब सर्व प्रकार की बाधाओ से रहित निराकुलता मय अव्याबाध सुख ही सुख रहता है। इसलिए विनयचन्द जी कहते है कि हे प्राणी ! तू इन सब से दूर रह।

जब यह आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, तब वह शुद्ध-बुद्ध होकर सिद्ध कहलाने लगता है। तत्पश्चात् वह अनन्तकाल तक अपने स्वरूप मे वर्तमान रहता हुआ आत्मिक सुख को भोगता रहता है। यही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है और उस स्वरूप को प्राप्त व्यक्ति ही सिद्ध परमात्मा कहलाते है। उनके विषय मे कहा गया है कि—

ज्ञान-शरीरी त्रिविध कर्म-मल-वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं अकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता ॥

इस प्रकार के सिद्ध स्वरूप को देखने का उपदेश आज के दिन भगवान महावीर ने दिया और बताया कि हे प्राणियो, तुम सब की आत्मा मे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य रूप अनन्त गुण है, यही तुम्हारा शुद्ध स्वरूप है। आज तक ससार मे बहुत भटके और अपने स्वरूप को भूलकर अनन्त दुःख भोगे। अब तो विषय-कषायो के चक्र मे से निकलो और अपना रूप देखो। यह रूप चतुर्दशी हम सबको भगवान का यह पवित्र सन्देश आज भी सुना रही है।

अपनी पहचान क्या है ?

अब यहा आप पूछेगे कि अपने रूप की पहिचान कैसे हो ? इसका उत्तर एक दृष्टान्त से दिया जाता है— किसी धनाढ्य सेठ के एक फोडा हो गया। उसकी भयकर वेदना से वे रात-दिन कराहते रहते। कितने ही उपचार किये, परन्तु जरा-सा भी कष्ट कम नही हुआ। अन्त मे अति दुखित होकर मुनीम से बोले—मुझ से अब यह कष्ट सहन नही होता है, इसलिए विष का प्याला लाओ जिसे पीकर मैं इस दुःख से सदा के लिये छूट जाऊँ ? मुनीम बोला—सेठ साहब, यह आप गजब की बात कह रहे है ? आप तो मरेंगे ही, और साथ मे मुझ भी मरवायेंगे ? सेठ बोला—क्या करू अब इसका कष्ट नही सहा जाता है। मुनीम ने कहा— सेठ साहब, जो शरीर धारण करता है, उसे उसके कष्ट भी सहन करना पडते है। फिर बीमारी हाथी बनकर आती है और कीडी बनकर जाती है। इसलिए धैर्यपूर्वक आप इसे सहन कीजिए। साता कर्म का उदय शान्ति होने पर यह कष्ट स्वय दूर हो जायगा। जब असाता का उदय मन्द पडता है, तभी औषधि लाभ पहुँचाती है। यह कहकर

मुनीम चला गया। कुटुम्ब-परिवार के लोग भी दवा लगाकर सो गये। मगर सेठजी को कष्ट के मारे नीद कहाँ? तब पीडा से कराहते हुए उन्होने अपने इष्ट देवताओ के नामो का स्मरण कर और मनौती बोलते हुए कष्ट को कम करने की प्रार्थना की। परन्तु एक भी देव ने आकर उनके कष्ट को दूर नही किया। अन्त मे उन्होने कहा यदि मेरा यह फोडा फूट जावे तो मैं सौ गवारो को जिमाऊगा। सौभाग्य से ये शब्द निकलते ही उनका फोडा फूट गया और कष्ट कुछ कम हो गया। तब सेठ मन मे कहता है कि आखिर भगवान भी गवार ही हैं। आराम मिलते ही सेठजी को नीद आगई। दूसरे दिन जागने पर उसकी मलहम-पट्टी कराई और दो-चार दिन मे फोडा बिलकुल ठीक हो गया। स्वस्थ होने पर वे दुकान पर गये और मुनीम से बोले सौ गवारो को इकट्ठा करो—उन्हे भोजन कराना है। मुनीम जी गवारो को ढूढने के लिए नगर मे गये। बाजार मे अनेक कास्तकारो को देखकर सोचने लगे—इनसे बढकर और कौन गवार होगा। अत उन लोगो से कहा—हमारे सेठजी आप लोगो को याद कर रहे है। उन लोगो ने भी सोचा कोई खास काम होगा, अत बुलाया है। यह सोचकर वे सब मुनीमजी के साथ चल दिये। जब वे सब सेठजी के सामने पहुचे, तब सेठजी ने उनका स्वागत करते हुए कहा—आओ पधारो, आप लोग तो जीते-जागते साक्षात् देव है। मैं आप लोगो के चरण पूजूगा। आपकी कृपा से आप लोगो के नाम का स्मरण करते ही मेरा असह्य दुख दूर हो गया। इसलिए मेरे तो आप लोग ही ईश्वर, पीर, पैगम्बर और देवता सब कुछ आप लोग ही हो। अब आप लोग आज्ञा कीजिए कि क्या भोजन बनवाया जाय? उन लोगो ने पूछा—सेठ सा०, क्या बात है? हमारे स्मरण से आपका कौन-सा असह्य दुख दूर हो गया? तब सेठ ने अपने फोडे की कथा सुनाते हुए कहा—जब सब देवताओ की मनौतियां कर लेने पर भी मेरा कष्ट कम नही हुआ, तब अन्त मे मैने मनौती की कि यदि मेरा यह फोडा फूट जाय तो मै सौ गवारो को भोजन कराऊँगा। बस, यह मनौती करते ही मेरा फोडा फूट गया। अत आप लोगो को भोजन के लिए बुलाया है। सेठजी के मुख से अपने लिए गवार शब्द को सुनते ही वे सब लोग नाराज होकर उठ खडे हुए और बोले—आप हमे गवार कहते है! तब सेठ ने पूछा—अच्छा तो बताओ फिर गवार कौन है? तब वे काश्तकार बोले—गवार तो वे लोग है जो कि गादी पर भैंस-पाडे के समान पडे रहते है। यह सुनकर सेठ बोला—अच्छी बात है, उन्हे ही भोजन करायेंगे। आप लोग जा सकते है। यह कहकर सेठ ने उन सबको विदा कर दिया। तत्पश्चात् सेठ के मुनीम ने भी मुनीम-गुमाश्तो को

इकट्ठा किया। जब वे लोग सेठ के सामने उपस्थित हुए, तव उसने उनका स्वागत करते हुए कहा—कहिये गवार-साहबानो, आप लोगो के लिए क्या भोजन वनवाया जाय। यह सुनते ही वे लोग बोले – सेठ सा०, हम लोग कैसे गवार हैं ? सेठ बोला—आप लोग गादी पर पडे रहते हैं, और हजारो रुपया वार्षिक का वेतन पाते हैं, इसलिए गवार ही हैं। मुनीम-गुमासते वोले—आप जितना वेतन देते हैं, उससे कई गुणा धन कमा कर आपको देते हैं। फिर हम लोग गवार कैसे हो सकते हैं। तव सेठ ने पूछा—तो वताओ गवार कौन हैं ? उन्होने कहा—गवार तो दलाल लोग हैं, जो गाठ का एक पैसा भी न लगाकर कमाते हैं और हवेलिया बनवाते है। यह सुनकर सेठ ने उन लोगो को विदा किया और दलालो को वुलवाया। दलालो ने सोचा आज तो कोई वडा सौदा हाथ लगने वाला है, अत वे हर्षित होते हुए सेठ के पास पहुचे और वोले—कहिये सेठ सा०, क्या लेना वेचना है ? सेठ ने कहा – भाई मुझे सौ गवारो को जिमाना है, अत आप लोगो को वुलाया है। कहिए—क्या भोजन बनवाया जाय ? यह सुनकर दलाल वोले—सेठ सा० आप हमे गवार कहते हो ! सेठ वोला—हा-हा आप लोग गवार तो है ही ? क्या सौदा करने मे घर का पैसा लगाते हो ? दलाल वोले सेठजी, पैसा लगाकर तो गेली राड भी कमा लेती है। परन्तु हम लोग तो विना पैसा लगाये ही हजारो कमाते हैं। और कमाने का रुख दिखाकर आप लोगो को हजारो-लाखो दिलाते हैं। यदि हम लोग प्रतिकूल हो जावे तो आपको एक पैसे का भी लाभ नही होने दें। तव सेठ वोला—अच्छा तो वताओ गवार कौन हैं ? दलाल वोले—फौजदार, दीवान आदि जितने सरकारी आफिसर है, वे सव पक्के गवार है। यह सुनकर सेठ ने दलालो को विदा किया और सौ आफिसरो को वुलवाया। मुनीमजी ने उन लोगो ने जाकर कहा सेठ सा० ने आप लोगो को याद किया है। भाई, पैसे वाले के वुलावे पर सव पहुचते हैं अत सभी आफिसर लोग अपनी अपनी सवारियो पर सवार होकर सेठजी के घर पहुँचे। सेठ ने सवका स्वागत किया और उन्हे यथोचित स्थान पर वैठाया। उन्होंने पूछा—कहिये सेठ साहव, कौन सा ऐसा केश आ गया है, जिसके लिए आपने हम लोगो को याद किया है ? सेठ ने कहा—केश तो माथे के ऊपर रखता हू। और यदि कोई नया काम कराना होगा तो राजा साहव से कहकर करा लूगा। तव उन्होने पूछा—फिर आपने हम लोगो को क्यो याद किया है ? सेठ ने कहा—वात यह है कि मुझे एक वडा भारी फोडा हो गया था। उसके ठीक होने के लिए मैंने सौ गवारो को जिमाने की मनौती वोली थी। अव कहिये आप लोगो को जिमाने के लिए क्या वनवाया जाय ! यह सुनते ही रुष्ट हो

आफीसर लोग बोले - अरे वनिये, तू हम लोगो से भी मजाक करता है ? तब सेठ बोला—आप लोग जरा शान्त होकर मेरी बात सुनें। आप लोगो ने अमुक-अमुक व्यक्ति को विना किसी कसूर के फासी पर चढाया है और अमुक-अमुक को जेलखाने मे डाला है। क्या यह झूठ है ? तुम लोगो को ऐसा अन्याय करते हुए शर्म तक नही आई ? फिर गवार नही हो तो क्या हो ? यह सुनते ही सब के मुख नीचे हो गये ? तब सेठ उन्हे शान्त करता हुआ बोला—ऐसी नौकरी से तो मजदूरी करना अच्छा है। तब वे लोग बोले—सेठजी, आपका कहना सत्य है। नौकरी के वश होकर हमे उक्त अनुचित कार्य करने पडे है। तब सेठने हाथ जोडकर सबसे पूछा—कहिये, क्या भोजन बनवाया जाय। उन लोगो ने कहा—जो आपकी इच्छा हो। तब सेठने बढिया मिष्ठान्न बनवा कर उन्हे भोजन कराया और पान-सुपारी से सत्कार करके उन्हे विदा किया।

भाइयो, इस कथा के कहने का भाव यह है कि जब तक मनुष्य अपने रूप को नही देखता है, तब तक वह इधर-उधर गोते खाता-फिरता है। हम लोगो ने भी आज तक अपने रूप को नही देखा है, इसलिए आज ससार मे गोते लगाते फिर रहे है। अत हमे अपना रूप आज देखना चाहिए कि हम तो सिद्धो के समान शुद्ध अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय है और उस स्वरूप को पाने के लिए अब प्रयत्न करना है। यही सन्देश यह रूप चतुर्दशी हम सबको देती है।

वि० स० २०२७ कार्तिक कृष्णा १४
जोधपुर

१६ | महावीर निर्वाण-दिवस

भाइयो, आज भगवान महावीर का निर्वाण-दिवस है। भगवान ने बारह वर्ष की कठिन साधना करने के पश्चात् चार घातिकर्मों का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया था। तत्पश्चात् लगातार ३० वर्ष तक सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर धर्म का उपदेश दिया था। तदनन्तर अपने अन्तिम चौमासे में भगवान् अपापा नगरी पधारे और श्री हस्तिपाल राजा की दानशाला में ठहरे। यहीं पर आपने अपना अन्तिम उपदेश दिया। आज कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि के अन्तिम पहर में स्वातिनक्षत्र के समय योग-निरोधकर चौदहवां गुणस्थान प्राप्त कर और शेष चार अघातिकर्मों का क्षय करते हुए मोक्ष प्राप्त किया और सदा के लिए शिवलोक के निवासी बनकर सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गये।

पुरुषार्थ की पूर्णता

पुरुष के चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। उनमें मोक्ष यह अन्तिम और सर्व श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। जब तक यह प्राप्त नहीं होता है, तब तक मनुष्य का पुरुषार्थ पूर्ण हुआ नहीं समझा जाता है। जैसे कि किसी सुन्दर मन्दिर के बन जाने पर भी जब तक उसकी शिखर पर कलश नहीं चढ़ाया जाता है, तब तक वह पूज्य एवं पूर्ण नहीं माना जाता है। अथवा जैसे किसी राजा के सर्व वस्त्राभरणों से भूषित हो जाने पर भी जब तक वह शिर पर मुकुट नहीं धारण करता है, तब तक शोभा नहीं पाता है। इसी प्रकार भगवान् महा॰

ने जन्म लिया बाल-क्रीडाए की, सयम धारण किया, और घोर तपश्चरण किया और केवल ज्ञान पाकर अरिहन्त पद भी पाया। परन्तु तब तक भी उनकी साधना पूर्ण नही थी। आज के दिन निर्वाण प्राप्त करने पर ही उनकी साधना पूर्ण हुई। क्योकि उन्होने अपने साध्यरूप शिवपद को आज ही प्राप्त किया।

दीपावली-महोत्सव

प्रसिद्ध जिनसेनाचार्य भगवान महावीर के निर्वाण काल का वर्णन करते हुए लिखते है—

> चतुर्थकालेऽर्ध चतुर्थमासकै विहीनताविश्चतुरब्दशेषके।
> स कार्तिके स्वातिषु कृष्णभूत सुप्रभात सन्ध्यासमये स्वभावत ॥
> अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातीन्धनवद्विबन्धनः।
> विबन्धनस्थानमवाप शङ्करो निरन्तरायोरु सुखानुबन्धनम् ॥
> स पञ्च कल्याण महामहेश्वर प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः।
> शरीर पूजा विधिना विधानतः सुरै समभ्यर्च्यत सिद्धशासन ॥
> ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया।
> तदा स्म पावानगरी समन्तत प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥
> ततस्तु लोक. प्रतिवर्षमादरात्प्रसिद्ध दीपालिकयात्र भारते।
> समुद्यतः पूजयितु जिनेश्वर जिनेन्द्र निर्वाण विभूतिभक्तिभाक् ॥
>
> —हरिवशपुराण, सर्ग ६६, श्लोक १६-२०

अर्थात्—जब चतुर्थकाल मे तीन वर्ष साढे आठ मास शेप रहे तब स्वाति नक्षत्र मे कार्तिक अमावस्या के सुप्रभातकाल के समय स्वभाव से ही योग-निरोध कर घातिकर्मरूप ईंधन के समान अघाति कर्मों को भी नष्ट कर बन्धन से रहित हो ससार के प्राणियो को सुख उपजाते हुए निरन्तराय-अव्याबाध-सुख वाले मोक्ष स्थान को भगवान महावीर ने प्राप्त किया। गर्भादि पाच कल्याणको के महान् अधिपति, सिद्धशासन भगवान महावीर के निर्वाण के समय चारो निकायो के देवो ने आकर विधिपूर्वक उनके शरीर की पूजा की। उस समय सुर और असुरो के द्वारा जलायी हुई देदीप्यमान दीपको की भारी मालिका से अपापानगरी का आकाश सर्व ओर से जगमगा उठा। उस समय से लेकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्ति से युक्त ससार के प्राणी इस भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष आदर-पूर्वक इस प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे। अर्थात उनकी स्मृति मे दीपावली का उत्सव मनाते हुए चले आ रहे है।

चउसट्ठि महापुरिसचरिय मे भी कहा है—

एव सुरगण पहामुज्जय तस्सि दिणे सयल महीमडल दट्ठूण तहच्चेव कीरमाणे जणवएण दीवोसवो 'त्ति पासिद्धि गओ'।

—(च० म० पु० च० पृ० ३३४)

अर्थात्—भगवान् महावीर के निर्वाण-समय देवो के द्वारा किये गये उद्योतमय महीमडल को देखकर जनपदवासी लोगो ने भी यह दीपोत्सव किया और तभी से यह दीपोत्सव प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

गौतम को केवलज्ञान

आज के दिन ही गौतमस्वामी ने केवल ज्ञानरूपी अनन्तलक्ष्मी को प्राप्त किया था, अत लोग तभी से आज तक आज के दिन लक्ष्मी का पूजन करते चले आ रहे हैं। हा, इतना परिवर्तन आज अवश्य दिखाई देता है कि लोग ज्ञानरूपी भाव लक्ष्मी को भूलकर अब द्रव्यलक्ष्मी का पूजन करने लगे है।

आज जितने भी सवत् प्रचलित हैं, उनमे भगवान् महावीर के निर्वाण-दिन से प्रचलित यह वीर-निर्वाण सवत् ही सबसे प्राचीन है और सभी भारतवासी और खासकर जैन लोग आज के दिन से ही अपने बहीखातो को प्रारम्भ करते हैं।

भारतवर्ष मे चार वर्ण वाले रहते है और प्रत्येक वर्ण का एक-एक महापर्व प्रसिद्ध है। जैसे - ब्राह्मणो का रक्षाबन्धन, क्षत्रियो का दशहरा (विजयादशमी), वैश्यो की दीपावली और शूद्रो की होली।

बन्धुओ, आज के दिन बाहिरी दीपको के समान आप लोगो को अन्त-रग मे ज्ञान के भी दीपक जलाना चाहिए। बाहिरी दीपको के लिए तो बाहिरी तेल, बत्ती आदि की आवश्यकता होती है। परन्तु अन्तरंग ज्ञान ज्योति को जलाने के लिए किसी बाहिरी साधन की आवश्यकता नही है। इसके लिए केवल राग-द्वेष रहित होकर आत्म-चिन्तन की आवश्यकता है। जिन महापुरुषो ने अपने घट के भीतर इस ज्ञान ज्योति को जलाया, वे कर्म-शत्रुओ को जला कर सदा के लिए अनन्त सुख के धनी बन गये।

वि० स० २०२७ कार्तिक कृष्णा १५

जोधपुर

१७ | विचारों की दृढ़ता

भाइयो, जैनशासन मे विचारो का बडा महत्व है। पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष सब कुछ विचारो पर अपने भावो पर ही अवलम्बित है। शास्त्रो मे प्रश्न उठाया गया है कि—

जलेजन्तु स्थलेजन्तुराकाशे जन्तुरेव च।
जन्तुमालाकुले लोके कथ भिक्षुरहिंसकः।

अर्थात्—जल मे जीव है स्थल मे जीव है और आकाश मे भी जीव है। यह सारा ही लोक जीवो की माला से आकुल है—भरा हुआ है? फिर इसमे विचरता हुआ साधु अहिंसक कैसे रह सकता है? इसका उत्तर देते हुए कहा गया है कि—

विष्वक् जीव चिते लोके क्व चरन् कोऽप्यमोक्ष्यत?
भावैकसाधनौ बन्ध-मोक्षौ चेन्नाभविष्यताम्॥

अर्थात्—हे भाई, तेरा कहना सत्य है। किन्तु कर्मों के बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था भावो के ऊपर अवलम्बित है। यदि मनुष्य के भाव हिंसात्मक है, तो वह अवश्य कर्मों से बधेगा, और कभी भी ससार मे नही छूट सकेगा। किन्तु जिसके भाव शुद्ध है, जीवो की रक्षा के है—यतनापूर्वक उठता है, बैठता है, और यतनापूर्वक ही भोजन, भाषण आदि करता है, तो वह पाप कर्मों से नही बधता है।

अपने विचार उस अभीष्ट पद के पाने का रखना चाहिये और उस पर शक्ति भर दृढ रहना चाहिये।

जो व्यक्ति अपने विचारो पर दृढ नही रहता है और बेपेंदी के लोटे के समान या फुटवाल की गेद के समान जिसके विचार इधर-उधर लुढ़कते-डोलते रहते है, लोग उन्हे शेखचिल्ली कहते है। जैसे मन्दिर के ऊपर लगी हुई ध्वजा हवा के जोर से कभी इधर और कभी उधर उडती रहती है, वैसे ही अस्थिर चित्त वाले व्यक्ति के विचार भी सदा इधर-उधर घूमते रहते है ऐसा व्यक्ति न लौकिक काम ही सिद्ध कर पाता है और न पारलौकिक काम ही सिद्ध कर पाता है। इसलिए मनुष्य को सदा अपने विचारो पर और अपने ध्येय पर सदा दृढ रहना चाहिये। अनेक मानव कार्य करते हुए दीर्घसूत्री हो जाते है, और सोचा करते हे कि यदि यह काम करेगे तो कही ऐसा न हो जाय, वैसा न हो जाय ? पर भाई सस्कृत की एक उक्ति हे कि—

'दीर्घसूत्री विनश्यति' अर्थात् जो विचार किया करते हैं कि हम आगे ऐसा करेगे, वैसा करेगे, परन्तु करते-धरते कुछ भी नही है, वे कभी भी कोई कार्य सम्पन्न नही कर पाते हैं और अन्त मे विनाश को प्राप्त होते है। इसलिए मनुष्य को अपना ध्येय निश्चय करके उस पर दृढता पूर्वक चलते रहना चाहिए, तभी मनुष्य अपने लक्ष्य पर पहुंच सकता है और सफलता प्राप्त कर सकता है।

वन्धुओ, देखो जो मनुष्य अपने पुत्र के उत्पन्न होते ही विचारता है कि मुझे इसको ऐसा सुयोग्य वनाना है कि दुनिया देखती रह जाय और इसी भावना के साथ वह उसका भली भाति से लालन-पालन करता है, सुयोग्य शिक्षाएं देता है और प्रतिदिन उत्तम सस्कारो से सस्कारित करता है, तो वह एक दिन उसकी भावना के अनुरूप वन ही जाता है। हा, यदि कोई कदाचित् अपने इस प्रयत्न मे सफलता न पा सके, तो लोग यही कहेगे कि उस व्यक्ति ने तो इसे सुयोग्य बनाने का बहुत प्रयत्न किया, मगर इसका भाग्य ही खोटा था, जो यथेष्ट सफलता नही मिले, तो मनुष्य का उसमे कोई दोष नही है। इसलिए नीतिकारो ने कहा है कि—

'यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष'

अर्थात्—प्रयत्न करते हुये भी यदि मनुष्य का कार्य सिद्ध नही होता है तो उसमे फिर उसका कोई दोष नही है। यह तो उस पूर्वोपार्जित दुर्दैव का ही फल है, जो कि उसके प्रयत्न करते रहने पर भी उसे सफलता नही मिलती है। परन्तु मनुष्य ही तो अपने इस दुर्दैव या सुदैव का निर्माण करता है, क्योंकि

पूर्वोपार्जित दुर्दैव को शान्ति के साथ भोगते हुए भविष्य के दैव को सुन्दर निर्माण करने के लिए मनुष्य को अपनी शक्ति भर सुन्दर प्रयत्न करते ही रहना चाहिये। उसका यह वर्तमानकालीन प्रयत्न उसको भविष्यकाल मे सफलता दिलाने के लिये सहायक होगा।

आषाढ़भूति को प्रबोध

भाइयो, आप लोगो ने आषाढभूति का नाम सुना होगा। वे किसी देश के राजा के यहा प्रधानमत्री थे और राज्य का सारा कारोबार सभालते थे। एकबार वे जगल मे शिकार खेलने के लिए गये। वहा पर किसी मुनि को ध्यानावस्थित देखा, देखते ही घोडे पर से उतर कर उनके पास गये उनके चरणो मे नमस्कार किया। साधु ने पूछा - अहो भव्य, तूने क्या सोच कर मुझे नमस्कार किया है। आषाढभूति बोले—महात्मन्, आप त्यागी पुरुष हैं, घर-बार छोडकर तपस्या करते हैं और मुझसे बहुत अच्छे हैं, इसलिए आपको नमस्कार किया है। साधु ने फिर पूछा—और तू बुरा कैसे है? आषाढभूति ने कहा—महाराज, मैं अनेक प्रकार के बुरे काम करता हू, इसलिए बुरा हू। महात्मा ने कहा - तू भी बुरे काम छोडकर अच्छा मनुष्य बन सकता है, महात्मा बन सकता है और लोक-पूजित हो सकता है। बता, अब तू क्या त्याग करना चाहता है? आषाढभूति मन मे सोचने लगे—यह क्या बला गले आ पडी। मैं सीधा ही चला जाता तो अच्छा था। फिर साहस करके बोला—महात्मन्, मैं तो ससार मे पडा हू, अत आप जो कहे उसी के त्याग का नियम ले लेता हू। महात्मा बोले—भाई मैं तो कहता हू कि तू सब कुछ त्याग करदे। देख, यह ससार असार है, ये विषय-भोग क्षण-भगुर है किंपाक-फल के समान प्रारम्भ मे खाते समय मिष्ट प्रतीत होते हैं, किन्तु परिपाक के समय अत्यन्त दु खकारी हैं। यह कह कर महात्मा ने एक भजन गाया—

मत कीज्यो जी यारी, ये भोग भुजग सम जानके। मत कीज्योजी यारी।

भुजग डसत इक बार नसत है, ये अनन्त मृत्युकारी।
तिसना तृषा बढ़े इन से यें, ज्यो पीये जल खारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग० ॥ १ ॥

रोग वियोग शोक वन को धन, समता-लता कुठारी।
केहरि करी अरी न देत ज्यो, त्यो ये दें दुख भारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग० ॥ २ ॥

इन मे रचे देव तरु पाये, पाये श्वभ्र मुरारी।
जे विरचे ते सुरपति अरचे, परचे सुख अविकारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग०॥ ३॥

पराधीन छिन माहि क्षीण ह्वै, पाप-बन्ध करतारी।
इन्हे गिन्हे सुख आक माहि जिम, आम तनी बुधि धारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग०॥ ४॥

मीन मतग पतग भ्रग मृग, इन वश भये दुखारी।
सेवत ज्यो किंपाक ललित, परिपाक समय दुखकारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग०॥ ५॥

सुरपति नरपति खगपति हू की, भोग न आस निवारी।
भव्य, त्याग अब, भज विराग-सुख, ज्यो पावै शिव नारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग भुजग सम जानके॥
मत कीज्यो जी यारी॥ ६॥

और इसका अर्थ समझाते हुये कहा—हे भव्य, तू इन पाचो इन्द्रियो के काम-भोगो से यारी (प्रीति) मत कर, इन्हे काले साप के समान समझ। भुजग का डसा पुरुप तो एक बार ही मरता है किन्तु विषय भोग रूपी भुजग से डसा जीव अनन्तभवो तक मरण के दुख पाता है। फिर इन इन्द्रियो के काम-भोगो के सेवन से तृष्णा उत्तरोत्तर बढती जाती है, जैसे कि खारा पानी पीने से प्यास शान्त नही होती, किन्तु और अधिक बढती है। फिर ये भोग रोगो के घर है, इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोग के द्वारा सदा शोक को उत्पन्न करते रहते है। समता रूपी लता को काटने के लिए कुठार के समान है, शेर, सिह और शत्रु आदि भी वैसा दुख नही देते है जैसा कि महादुख ये काम भोग देते है। जो इन काम-भोगो मे रचता है—आसक्त होता है, वह देव भी मर कर वृक्षादि एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होता है। नारायण आदि महापुरुष भी इन काम-भोगो मे रच करके नरक को प्राप्त हुए है और जो इनसे विरक्त हुए है उनकी इन्द्रो ने पूजा की है और निर्विकार निराबाध मोक्ष-सुख को पाया है। ये काम-भोग पराधीन है, क्षण-भगुर है और पाप-बन्ध के करनेवाले है। जो इन मे सुख मानता है, वह उस मनुष्य के समान मूर्ख है जो कि आकडे को आम मानकर उसमे मिष्ट फल पाना चाहता है। हे भव्य, और भी देख—इन पाचो इन्द्रियो मे से [illegible] इन्द्रिय के वश हो कर मरण-जनित दुख पाया है। हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के वश होकर मारा जाता है, मछली रसना इन्द्रिय के वश होकर [illegible]

इच्छा से उसके काटे मे अपना गला फसा कर प्राण गवाती है भौंरा सुगन्ध लोलुपी होकर कमल के भीतर वन्द होके प्राण गवाता है। पतगे रूप के लोलुपी वनकर दीपक की ज्वाला मे जल कर मरते हैं और हरिण वहेलिये का गीत सुनकर क्षोभ इन्द्रिय के वश मारा जाता है। फिर जो मनुष्य नित्य प्रति पाचो ही इन्द्रियो के काम-भोगो को भोगता है, उसकी क्या गति होगी, यह तू विचार कर। ये काम-भोग सेवन करते समय ही किंपाकफल के समान मधुर मालुम पडते हैं, किन्तु परिपाक के समय तो मरण को ही देते हैं। मनुष्य के काम-भोग तो क्या वस्तु है ? राजाओ, विद्याधरो, चक्रवर्तियो और देवेन्द्रो तक की तृष्णा अपने असीम भोगो को चिरकाल तक भोगने पर भी शान्त नही हुई है, तो फिर तेरी तृष्णा इन अल्प भोगो से क्या शान्त हो सकती है। इसलिए हे भव्य, अव तू इन काम-भोगो को तज और सुख देने वाले विराग को भज, जिससे कि शिव लक्ष्मी का अविनाशी सुख पा सके।

महात्मा के इस उपदेश का आपाढभूति पर भारी प्रभाव पडा। वह वोला - महात्मन्, मैं अभी तक भारी अज्ञानान्धकार मे था। आज आपके इस अपूर्व उपदेश से मेरे भीतर ज्ञान की ज्योति जग गई है। अत अव मैं आपके ही चरणो की सेवा मे रहना चाहता हू। कृपा करके आप नगर मे पधारिये। तव महात्माजी ने कहा—अवसर होगा तो आवेंगे। तत्पश्चात् यह आपाढभूति घोडे पर चढ कर नगर मे वापिस लौटा और सीधा राजा के पास पहुच कर वोला—महाराज, अव आप अपना कार्य-भार सम्हालें। राजा ने पूछा— आपाढभूति, क्या वात है ? आज ऐसा क्यो कह रहे हो ? उसने महात्मा के पास पहुचने और उनके उपदेश की सुनने की सारी वात कह सुनाई और कहा—महाराज, मुझे मरने से कौन बचायेगा ? यदि आप मुझे मरने से वचा सकते है, तो मैं आपका काम सभाले रह सकता हू। परन्तु कल यदि अकस्मात् मौत आजाय, तो मुझे कौन वचायगा ? सन्त तो कहते हैं -

दल-वल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
भरतो विरिया जीव को, कोई न राखन हार ॥

और आगम-शास्त्रो मे भी कहा है—

तत्थ भवे किं सरण जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ।
हरि-हर-वभादीया कालेण य कवलिया जत्थ ॥

अर्थात्—जिस ससार मे देवो के स्वामी इन्द्रो का भी विनाश देखा जाता है और जहा पर हरि-हर-ब्रह्मादिक भी काल के ग्रास वन चुके हैं, उस स

मे कौन किसको शरण दे सकता है और मरण से बचा सकता है। इसलिए अव तो मे **'केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि'** अर्थात् केवलि-भगवान के द्वारा प्ररूपित धर्म की शरण को प्राप्त होता हू।

दंसण-णाण-चरित्त सरण सेवेह परम सद्धाए।
अण्ण किं वि ण सरण ससारे ससरताणं॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप जो भगवद्-उपदिष्ट धर्म है, मैं अब परमश्रद्धा से उसका ही सेवन करूगा। क्योकि ससार मे परिभ्रमण करते हुए जीवो को इस धर्म के सिवाय और कुछ भी शरण नही है।

अतएव हे महाराज, जव मरना निश्चित है और इन सासारिक काम-भोगो का वियोग होना भी निश्चित है, तव उनका स्वय त्याग करना ही उत्तम है। क्योकि महर्पियो ने कहा है—

अवश्य यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयाश्चिरम्।
स्वयं त्याज्या स्तथा हि स्यान्मुक्ति संसृतिरन्यथा॥

यदि ये काम-विषय चिरकाल तक रह कर भी अन्त मे अवश्य ही विनष्ट होते है, तव इनका स्वय ही त्याग करना उचित है। क्योकि स्वय त्याग करने पर तो मुक्ति प्राप्त होती है। अन्यथा ससार मे परिभ्रमण करना पडता है।

हे राजन्, अव मैंने ससार छोडने का निश्चय कर लिया है, अत अव मुझे आज्ञा दीजिए, ताकि मैं आत्म-कल्याण कर सकू। राजा ने भी देखा कि अव यह रहनेवाला नही है, तव उसे आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् आषाढभूति घर आया और कुटुम्ब-परिवार को भी समझा-बुझा कर और सवसे अनुज्ञा लेकर महात्माजी के पास जाकर साधु वन गया और उनकी चरण-सेवा मे रहते हुए आत्मसाधना करने लगा। उसकी इस आत्म-साधना और घोर तपस्या को देखकर लोग कहने लगे—अहो, कहा तो यह महा शिकारी था और कहा अब यह साधना के द्वारा अपने ही शरीर को सुखा रहा है। तपस्या के प्रभाव से आषाढभूति को अनेक ऋद्धिया सिद्ध हो गई और वह निस्पृहभाव से अपनी साधना मे सलग्न रहने लगा।

एक समय विहार करते हुए वह अपने गुरु एव सघ के साथ राजगृही नगरी मे आया। अभी तक गुरुदेव कभी किसी शिष्य को गोचरी लाने की आज्ञा देते थे और कभी किसी को। एक दिन उन्होने आषाढभूति को गोचरी लाने की आज्ञा दी। आषाढभूति नगरी मे गये और उत्तम, मध्यम, जघन्य सभी प्रकार के कुलो मे अर्थात् सधन-निर्धन सभी प्रकार के लोगो के घरो मे गोचरी के लिए गये। परन्तु साधुजनो के योग्य एषणीय आहार कही

भी प्राप्त नही हुआ और न निर्दोष जल मिला। ज्येष्ठ मास और मध्याह्न का समय था, गोचरी के लिए भ्रमण करते हुए आपाढभूति का शरीर गर्मी से तिलमिला उठा। आखिर, इतने दिन बीत जाने पर भी अभी तक शरीर की सुकुमारता नही गई थी। अत वे विचारने लगे कि साधुपने के अन्य कार्य तो अच्छे हैं। परन्तु गोचरी के लिए यह घर-घर फिरना ठीक नही है। इधर तो यह विचार आया और उधर सामने ही एक बडी हवेली का प्रवेश द्वार खुला हुआ दीखा। उन्होने उसमे प्रवेश किया। उस हवेली का मालिक एक भरत नामक नट था। उसकी दृष्टि गोचरी के लिए आते हुए साधु पर पडी। उसने साधु से कहा—पधारो महाराज, आज मेरा घर पवित्र हो गया। इसी समय उसकी स्त्री और दोनो जवान लडकिया भी आगई। सबने साधु की अभ्यर्थना की। और घर मे उसी दिन के ताजे बने हुए लड्डुओ मे से एक लड्डू बहरा दिया। आपाढभूति मुनि सोचने लगे—आज मैं तो गोचरी के लिए घूमता हुआ हैरान हो गया। अब तो अन्यत्र जाना सभव नही है। अत वे ड्योढी तक गये और लब्धि के बल से दूसरा रूप बना कर फिर आगये। भरत नट ने एक लड्डू और बहरा दिया। वे फिर ड्योढी तक जाकर और नये युवा मुनि का रूप बना कर फिर आगये। भरत नट ने पुन एक और लड्डू बहरा दिया। अब की बार वे वृद्ध मुनि का रूप बना कर आये और एक लड्डू फिर ले आये। यह देखकर भरत नट विचारता है कि ये ड्योढी तक जाकर ही फिर-फिर आ जाते हैं, घर से बाहिर तो निकलते ही नही है, और हर बार नया रूप बनाकर आ जाते हैं, अत ये करामाती प्रतीत होते हैं। अब जैसे ही चौथी बार वे साधु जब तक लौट कर नही आये, तब तक इसी ही बीच मे वह नट भीतर गया और लडकियो से बोला मैं तुम लोगो की शादी करने के लिए इधर-उधर बहुत फिरा हू। मगर अभी तक कोई उत्तम वर और घर नजर नही आया है। और यह साधु करामाती जान पडता है सो यदि अब यह भीतर आवे, तो तुम लोग उसे अपनी मोहिनी विद्या से मोहित कर लो। मैं उसी के साथ तुम लोगो की शादी कर दूगा। लडकियो ने उसकी बात स्वीकार कर ली। अब की बार जैसे ही वे साधु नया रूप बनाकर आये तो भरत नट की दोनो पुत्रियो ने लड्डू बहराये और बोली, हे स्वामिन्, आप बार-बार क्यो कष्ट उठाते हैं। आपकी सेवा मे हम सब उपस्थित हैं और यह धन धान्य से भरा-पूरा मकान भी आपको समर्पित है। अत आप यही रहिये। उन लडकियो की यह बात सुनकर मुनि बोले—तुम लोग दूर रहो और हमसे ऐसी अनुचित बात मत कहो। तब वे दोनो बोली—अब दूर रहने का काम नही है। हमने आपकी सब करामात देख ली है। आप आये तो एक है अ

चार वार नये नये रूप वनाकर कपटाई करके लड्डू ले जा रहे है, सो क्या यह साधु का काम है ? आप अब जीभ के वशीभूत हो गये है। अत अब आपसे साधुपना पालना कठिन है। क्योकि नीतिकारो ने कहा है—

> बाड़ी बिगाडे बादरा, सभा बिगाड़े कूर।
> भेष बिगाडे लोलुपी, ज्यो केशर मे धूर॥
> दीवा झोलो पवन को, नर नें झोलो नार।
> साधु झोलो जीभ को, डूबा काली धार॥

जो साधु जीभ का चटोकरा हो जाता है, उससे फिर साधुपने का निर्वाह कठिन ही नही, असभव है। ऐसा साधु फिर साधु नही रहता है, किन्तु स्वादु वन जाता है और उसके पीछे फिर घर-घर डोला करता है। अत हम हाथ जोडकर प्रार्थना करते है, सो आप स्वीकार कीजिए और फिर रईसो के समान घर पर रह कर आनन्द के साथ खाइये-पीजिये और हम लोगो के साथ मजा उडाइये। उन लडकियो के हाव-भाव को देखकर और इस बात को सुनकर आषाढभूति का मन विचलित हो गया और विचारने लगा कि इस साधुपने मे रहना और घर-घर मागते फिरना उचित नही है। यह विचार आने पर वे लडकियो से बोले — मै अपने गुरु महाराज के पास जाता हू। यदि उन्होने आज्ञा दे दी तो आजाऊगा, अन्यथा नही आऊगा। यह कह कर वे अपने गुरु के पास गये। गोचरी मे अत्यधिक विलम्ब हो जाने से वे सोच रहे थे कि आज आषाढभूति अभी तक क्यो नही आया ? जब उन्हे [illegible] से और विना ईर्या समिति के आते हुए देखा तो उनसे पूछा— इतनी देर क्यो लगी ? तब वह बोला गुरुजी, मै तो पूछने को आया हू। गुरु ने कहा—अरे, क्या पूछने को आया है ? आषाढभूति बोला—अब आप अपने [illegible] सभालो। मेरे से अब ये साधुपन और घर-घर भीख मागना नही होगा। गुरु बोले—अरे, आज तुझे यह क्या हो गया है ? क्या पागल तो नही हो गया है, जो हाथ मे आये और स्वर्ग-मोक्ष के सुखो को देनेवाले चिन्तामणि रत्न के समान इस सयम को छोडने की बात कहता है। आषाढभूति बोला गुरुजी, इतने दिनो तक आपका उपदेश लग रहा था, परन्तु अब नही लग [illegible]। गुरुजी ने बहुत समझाया और कहा कि देख यदि इस सयम [illegible] तो ससार-सागर मे डूब जायगा।

गुरु की सीख

जब [illegible] कहना मान और साधु मार्ग मे भ्रष्ट बन [illegible] के बहुत कुछ समझाने पर भी जब वह नही माना और बोला [illegible]

सयम नही पलेगा । विना पूछे नही जाना चाहिए, इसलिए मैं तो आपसे पूछने के लिए आया हू । जव गुरु ने देखा कि अव यह साधुपने मे रहनेवाला नही है, तव उससे कहा अच्छा, तो मेरी एक वात तो मानेगा ? वह वोला—और सव मानूगा पर नही जाने और विवाह नही करने की वात को नही मानूगा । यह सुनकर गुरु ने कहा– देख, मास और मदिरा काम मे मत लेना । इनका सेवन मानव को दानव वना देता है । आपाढभूति ने कहा —महाराज, जव इतने दिनो तक आपकी सेवा मे रहा हू, तव यह वात अवश्य मानूगा और मास-मदिरा का सेवन नही करूगा । यदि कदाचित् मेरे घर मे आ भी जायगा, तो मैं घर-वार को ठोकर मार कर वापिस आपके पास आजाऊगा । यह कह कर वह सीध भरत नट के घर गया । वहा सभी लोग उसके आने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे, सो इसे आया हुआ देखकर सव वहुत हर्षित हुए । और स्वागत करते हुए वोले— पधारिये ! आपाढभूति वोला—यदि आप लोग आजन्म मास-मदिरा का सेवन त्याग करना स्वीकार करो तो मैं आ सकता हू, अन्यथा नही । यह सुनकर वे सव वोले —इन दोनो का त्याग हम लोगो से नही हो सकता है । तव आपाढभूति वोला तो हम भी नही आ सकते हैं । यह सुनकर भरत नट ने सोचा— घर मे आया हुआ हीरा वापिस चला जाय, यह ठीक नही । अत उसने लडकियो से कहा– सोचलो, यदि ये दोनो चीजे छोडने को तैयार हो तो ये आ सकते हैं अन्यथा नही । तव दोनो लडकियो ने कहा—हा, हम इन दोनो का त्याग करते हैं । आपाढभूति ने कहा —देखो, आज तुम लोगो का स्वार्थ है अत त्याग की वात स्वीकार कर रही हो । किन्तु यदि किसी दिन तुम लोगो ने भूल से भी इसका सेवन कर लिया तो मैं एक भी क्षण तुम्हारे घर मे नही रहूगा और जहाँ से आया हू वही पर वापिस चला जाऊगा । फिर मैं किसी भी वन्धन से वधा नही रहूगा । दोनो लडकियो ने आपाढभूति की वात स्वीकार करली और भरत नट ने ठाठ-वाट के साथ दोनो लडकियो का विवाह उसके साथ कर दिया और आपाढभूति उनके साथ सर्व प्रकार के काम-भोगो को भोगता हुआ आनन्द के साथ दिन विताने लगा ।

भरत नट के पास अपार सम्पत्ति थी, विशाल महल था और सर्व प्रकार का यश-वैभव प्राप्त था, आपाढभूति इसमे ऐसा मस्त हो गया कि सामायिक, पौषध और नवकार मत्र स्मरण आदि सव भूल गया । यदि उसे ध्यान है तो केवल एक ही वात का कि मेरे घर मे कोई मास-मदिरा का सेवन न करे । नट की दोनो लडकियाँ इधर-उधर सखी-सहेलियो के घर जाती हैं तो वहा पर भी वे सावधान रहती हैं कि कही पर मास-मदिरा खाने-पीने मे न आ जाय । आपाढभूति भी खाने-पीने के विषय मे पूर्ण सतर्क रहता है और सव की ओर

दृष्टि रखता है कि कही कोई उक्त वस्तुओ का सेवन तो नही करता है। इस प्रकार दोनो स्त्रियो के साथ अपने ससुर भरत नट के ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए वहुत समय वीत गया।

एक वार राजगृही नगरी मे एक विदेशी नट आया। वह नृत्य कला मे वडा कुशल था। पैरो मे पुतले वाध करके नृत्य किया करता था। वह राजा श्रेणिक की सभा मे गया और नमस्कार कर श्रेणिक से वोला—महाराज, आपके राज्य मे जो भी कुशल नृत्यकार नट हो उन्हे वुलाइये, यदि वे मुझे जीत लेंगे तो मैं उनका दास वन जाऊगा। अन्यथा आपका पुतला पैरो मे वाधकर सर्वत्र नृत्य दिखाऊगा। उसकी वात सुनकर श्रेणिक ने अपने सभी नामी नटो को वुलाया और उस विदेशी नट के साथ नृत्य करने को कहा। परन्तु सभी नट उससे हार गये। श्रेणिक यह देखकर वडा चिन्तातुर हुआ और उसने भरत नट को वुलाकर कहा—भरत, अव इस विदेशी नट के साथ नृत्य करने की तेरी वारी है। देख, कही ऐसा न हो कि यह तुझे हरा दे, अन्यथा राज्य की शान चली जायगी। श्रेणिक की वात सुनकर भरत वोला—महाराज, मैं इसे नही हरा सकता, कारण कि इसके भीतर अनेक कलाए है और अव मैं वृद्ध हो गया हू। किन्तु यदि आप आज्ञा देवे और मेरे जमाईराज स्वीकार कर लेवें तो वात नही जायगी और शान वनी रहेगी। यह कह कर वह अपने घर आया। उसे चिन्तित देखकर लडकियो ने पूछा—पिताजी, आज उदास क्यो दीख रहे है। भरत नट ने सारी वात लडकियो को वताई। लडकियो ने जाकर अपने पति आषाढभूति से कहा। उसने हसकर कहा—यह कौनसी वडी वात है। तुम जाकर अपने पिताजी से कह दो कि वे कोई चिन्ता न करें, मैं उस विदेशी नृत्यकार के साथ नृत्य करूगा। लडकियो ने जाकर यह वात अपने पिता से कह दी और उसने जाकर राजा श्रेणिक से कह दिया कि उस विदेशी नृत्यकार के साथ मेरे जमाईराज नृत्य करेंगे।

राजा श्रेणिक ने नगर मे घोषणा करा दी कि आज उस विदेशी नृत्यकार के साथ भरत नट के जमाईराज प्रतियोगिता मे खडे होकर नृत्य करेंगे। घोषणा सुनकर नियत समय पर सब सरदार और नगर के प्रधान लोग राज सभा मे एकत्रित हो गये। पहिले विदेशी नृत्यकार ने नृत्य प्रारम्भ किया। उसके नृत्य को देखकर सारी उपस्थित जनता मन्त्र-मुग्ध होकर चित्रलिखित सी स्तब्ध हो गई। तब भरत के सकेत पर आषाढभूति रगभूमि मे उतरे। इन्हे अनेक ऋद्धियां सिद्ध थी। अत उन्होंने सर्व रस और भावों से भरा ऐसा नृत्य किया कि जिसे देखकर सब लोग वाह वाह कह उठे और [illegible]

आकाश गूंज उठा। आपाढभूति के इस अनुपम नृत्य को देखकर विदेशी नृत्यकार उनके चरणो मे आकर गिर पडा और बोला हे कलाकार, ऐसी अनुपम कला आज प्रथम वार ही मेरे देखने मे आई है। मेरे पास ऐसी कोई कला नही है, कि जिससे मैं तुम्हारी वरावरी कर सकू ? फिर भी मैं जानना चाहता हू कि आप कौन-कौन से नाटक कर सकते हैं ? आपाढभूति ने कहा— मैं ससार भर के नाटक कर सकता हू। यह सुनकर वह सोचने लगा कि मैं इसे ऐसे नाटक को करने के लिए कहू कि जिसे यह नही कर सके। तव उसने राजा श्रेणिक से कहा महाराज, मैं इनके द्वारा किया हुआ भरत चक्रवर्ती का नाटक देखना चाहता हू। यदि यह नाटक आप इनके द्वारा दिखवा देवें तो वडी कृपा होगी। श्रेणिक ने भरत नट से कहा— कल आपके जमाईराज को भरतराज का नाटक करना होगा। सारे नगर मे घोपणा करा दी गई। नृत्य स्थल पर विशाल मडप वनाने का आदेश दे दिया गया।

एक झटका :

घोपणा सुनकर भतरनट की लडकियो ने सोचा—इस नाटक के करने मे तो तीन-चार दिन लगेंगे और हमारे पतिदेव नाटक करने मे सलग्न रहेगे। अत मास-मदिरा के सेवन के यह लिए अवसर उपयुक्त है। ऐसा विचार करके उन दोनो ने नौकरो से दोनो चीजे मगाकर उनको खा-पी लिया। जव आपाढ-भूति राजसभा से वापिस आया और घर मे गया तो उसे मास-मदिरा की गन्ध आई। उसे असली वात समझते देर नही लगी और उसने अपनी दोनो ही स्त्रियो को डाटते और धिक्कारते हुए कहा—अरी दुष्टाओ, तुम्हे मास-मदिरा को सेवन करते हुए शर्म नही आई और मेरे से किये हुए अपने वायदे को तोड दिया। अव मैं भी अपने वायदे के अनुसार इस घर मे एक क्षण भी नही रह सकता हू। आपढभूति को वात सुनते ही उनका नशा काफूर हो गया और क्षमा-याचना करती हुई वोली—पतिदेव, हमसे भूल हो गई। अव आगे से हम उन्हे कभी काम मे नही लेंगी। आपाढभूति ने कहा—अव तुम लोग हमारे काम की नही रही हो। और मैं भी अव इस घर मे नही रह सकता हू, यह कहकर आपाढभूति महल से निकल कर वाहिर चले आये। जव भरतनट को यह सव वृतान्त ज्ञात हुआ तो उसने लडकियो से कहा— अरी पापनियो, तुमने यह क्या किया ? ऐसे अनमोल हीरे को तुम लोगो ने हाथ से खो दिया। इसने तो राजसभा मे आज मेरी और राजा की इज्जत वचा ली और विदेशी नृत्यकार को हरा दिया। तुम लोगो ने त्यागी हुई को काम मे ले लिया, यह वहुत भारी पाप किया है। लडकिया लज्जित

दुखित होती हुई बोली—पिताजी, भूल तो हम लोगो से हो गई। अब आगे कभी भी उन वस्तुओ का सेवन नही करेगे। आप किसी प्रकार उन्हे मना करके वापिस लाओ। भरत बोला—हमें तो आशा नही है कि वे वापिस आयेगे। फिर भी मैं लाने का प्रयत्न करूगा।

सच्चा नाटक

आपाढभूति भरत की हवेली से निकलकर रातभर एक एकान्त उद्यान मे रहे। रात भर उनको नीद नही आई और वे अपने पिछले जीवन का विहगावलोकन करते रहे। तथा भरत-चक्रवर्ती के जीवन के चिन्तन मे निमग्न रहे। दूसरे दिन वे यथासमय राज सभा मे गये। देखा कि सब ओर अगणित नर नारी भरत का नाटक देखने की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे है। घटी बजने के साथ ही आषाढभूति ने रगभूमि मे प्रवेश किया और सर्वप्रथम भरत द्वारा की गई दिग्विजय का चित्र प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् नगर मे सुदर्शन-चक्र के प्रवेश नही करने पर और पुरोहित द्वारा अपने भाइयो के आज्ञानुवर्ती नही होने की बात को जानकर उनके पास अधीनता स्वीकार करने के लिए सन्देश भिजवाया। बाहुबली के सिवाय शेष भाई तो उसे सुनते ही दीक्षित हो गये। किन्तु बाहुबली ने उनकी अधीनता को ठुकरा दिया। तब भरत और बाहुबली का ऐसा अद्भुत युद्ध आपाढभूति ने दिखाया कि सारी सभा विस्मित होकर देखती ही रह गई। जब बाहुबली की तपस्या का दृश्य दिखाया तो उनके नाम के जयनाद से आकाश गूज उठा। भाई, जिसके पास शक्ति होती है, ऋद्धि-सिद्धि होती है, उसे अद्भुत कार्य करने मे भी क्या लगता है?

तत्पश्चात् भरत द्वारा ब्राह्मणो की उत्पत्ति का भी अद्भुत दृश्य दिखाया। अन्त मे आरीसा-भवन का दृश्य प्रस्तुत किया। अभी तक तो आषाढभूति भरत का द्रव्य दृश्य दिखा रहे थे, क्योकि भरत की विभूति, नौ निधि, चौदह रत्न और उनके अपार भोगोपभोगो को ही दिखाया गया था। जब भरत के भावनाटक का अवसर आया तो आषाढभूति के भाव भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगे। वह भरत के समान ही सर्व आभरणो से विभूषित होकर आरीसा भवन मे घूमने लगा। सहसा हाथ की अगुली से अगूठी गिर पड़ी। अगुली विरूप प्रतीत हुई तो एक-एक करके सर्व आभूषण उतारना प्रारम्भ कर दिये और शरीर की घटती हुई श्री को देखकर वैराग्य का सागर उमड़ पड़ा। तत्काल संयम को स्वीकार किया और देखते-देखते ही केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया और आषाढभूति त्यागी बन गये।

है कि आज आचार्यों का हर एक व्यक्ति सामना करने को तैयार हो जाता है। अन्यथा तेजस्वी और प्रतापी आचार्यों का मुकाबिला करना क्या आसान था। पूर्व समय के ऋषि-मुनि और आचार्य संघ, समाज और धर्म के ऊपर संकट आने पर मर मिटते थे। और कभी पीछे नही हटते थे।

तप का चमत्कार

पूज्य रघुनाथजी महाराज वि० सं० १८१३ मे सादडी को सर करने के लिए और जयमल जी महाराज बीकानेर को सर करने के लिये पधारे। मार्ग मे दोनो सन्तो को बहुत कष्ट उठाने पडे। जब वे जोजावर से विहार करते हुए आगे बढे तो मार्ग भूल गए। पीरचन्दजी—जो जाति के दरोगा थे और बेले-बेले पारणा करते थे—उनसे गुरुदेव ने कहा—पीरचन्दजी! मार्ग मे प्यास का परीषह अधिक है और मुझे भी प्यास लग रही है तो तुम गाव मे जाओ और पानी लेकर आओ। वे दो बडे पात्र लेकर चले। उस समय वहा पर जतियो का बडा चमत्कार था। उन्होने विचार किया कि ये साधु ज्ञान—और क्रिया से तो परास्त नही किये जा सकते है। अत इन पर कोई लाछन लगा कर इन्हे परास्त किया जावे। जब वे पानी लेने के लिए गाव के पास पहुचे तो समीप मे जो भोमियो की पोल थी, वहा गये। भोमियो ने पूछा—महाराज, क्या चाहिए है? पीरचन्दजी ने कहा—धोवन-पानी की आवश्यकता है। उन्होने कहा—आप रावले मे पधारो। उस समय जतियो ने ठाकुर को मिला लिया। उन्होने एक पात्र मे तो दूध बहरा दिया और दूसरे पात्र मे छाछ बहरा दिया। उस छाछ मे एक मरी कीडी पडी थी, जो बहराते समय पीरचन्दजी को नजर नही आई। जब वे वहा से बाहिर निकले तो अनेक लोग इकट्ठे हो गये और बोले—महाराज, जैनधर्म को क्यो लजाते हो? उन्होने पूछा—हम कैसे जैन धर्म को लजाते है? तो वे लोग बोले—आप इन पात्रो मे मास-मदिरा लेकर आये है! पीरचन्दजी ने कहा—भाई, हम लोग तो इन वस्तुओ का स्पर्श तक भी नही करते है, उनके लाने की बात बहुत दूर है। लोग बोले—पात्र दिखलाओ! पीरचन्दजी ने कहा—मै पात्र तुम लोगो को नही दिखा सकता। गुरु महाराज के सामने दिखाऊगा। लोगो ने वही पात्र देखने का विचार किया, परन्तु उनके तपस्तेजस्वी शरीर के सामने हिम्मत नहीं हुई और अनेक लोग उनके साथ हो लिये। लोगो के कहने से ठाकुर साहब भी आ गये। लोगो ने उनसे कहा—आप इनके पात्र दिखला दो तो हम लोगो की बात रह जावे, क्योकि लोग कहते है कि मास-मदिरा बहराया है और [illegible]

कहते हैं कि नही वहराया है। ठाकुर सा० ने कहा—महाराज, यदि आपका कथन सत्य है, तो पात्र दिखला दीजिए। तव पीरचन्दजी ने कहा—ठाकुर सा० आप गाव के मालिक हैं, आपके लिए सव मत वाले एक से हैं, अत किसी के भी साथ पक्षपात नही होना चाहिए। ठाकुर वोले—महाराज यदि इन लोगो का कथन असत्य निकला तो हम इन लोगो को गाव से वाहिर निकाल देंगे। और हम आपके चरणो मे पडेंगे। पीरचन्दजी वोले—वैसे तो हम गुरु के सिवाय किसी को भी पात्र नही दिखाते हैं। किन्तु जव अवसर आ गया है, तव दिखा देते हैं। यह कहकर उन्होने अपनी झोली नीचे रखी और मुख से कहा इष्ट देव, तार। इसके पश्चात् जो झोली खोल कर पात्र दिखाये तो असली कम्मोदिनी चावलो के भात से भरे हुए दिखे। उन्हे देखते ही सारी जनता अवाक् रह गई और सव जती-मती ठडे पड गये। ठाकुर सा० यह देखकर वडे विस्मित हुए और वोले—ऐसे ऊचे महात्मा यदि एक फूक मार देवे तो मेरा पता भी न चले। उन्होने हाथ जोडकर कहा—महाराज, हमसे भूल हो गई। पीरचन्दजी वोले—नही, तुम्हे इसका दड भोगना पडेगा। ठाकुर के वहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होने कहा—ठाकुर सा०, यहा पर शिलापट्ट पर लिख दिया जावे कि आगे से मुहपत्ती वाले साधु की कोई वेइज्जती नही करेगा। यदि कोई करे तो उसे गाय और कुत्ते की सौगन्ध है। आजतक वहा पर यह शिला लेख मौजूद है।

वन्धुओ, जव अपने भीतर ऐसे महात्मा सन्त थे, तव कोई भी उनका सामना नही कर सकता था और न धर्म का लोप या अपमान ही कर सकता था। किन्तु आज भीतर से सव खोखले हैं, अन्दर दम नही है। जिसके भीतर ऋद्धि-सिद्धि है और चमत्कार है तो चमत्कार को नमस्कार होता है। इन ऋद्धियो की सिद्धि तभी होती, जवकि मनुष्य अपने जप-तप और सिद्धान्त मे सदा एक-सा दृढ वना रहे। विना त्याग और तपस्या के कोई सिद्धि प्राप्त नही हो सकती है।

एक वार माधव मुनिजी महाराज के सामने कुछ द्वेषी लोग आये और वोले कि मुख पर यह कपडे की पट्टी क्यो वाध रखी है ? मुनिजी अधिकतर पल्लीवालो और आर्यसमाजियो मे ही घूमते थे। मुनिजी ने कहा—जीवो की यतना के लिए वाधी हुई है जिससे कि मुख मे जीव नही घुस सके। यह सुनकर द्वेषी लोग वोले—जीव मुख मे कैसे घुस सकता है। इतना कहते ही वोलने वाले द्वेषी के मुख मे एक उडता हुआ जीव घुस गया।

यह देखकर सब लोग कहने लगे—बाबा तेरी बडी करामात है। इसके बाद तो द्वेषी लोग भी मुहपत्ती बांधने लगे।

इस सब के कहने का अभिप्राय यही है कि भगवान् के प्रत्येक वचन में अपूर्व करामात है और जो उन पर दृढ श्रद्धा करके तदनुसार आचरण करते है, अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धिया आज भी प्राप्त होती है। अत हमें अपनी विचार-धारा को दृढ रखनी चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १
जोधपुर

१८ आत्मलक्ष्य की सिद्धि

बन्धुओ, इस विश्व के प्रांगण में अनेक जीव आते हैं और जाते हैं। इसमें चतुर्गति रूप चार बड़े जंक्शन हैं, जिसमें सबसे बड़ा जंक्शन मनुष्यगति का है, जिसमें संसार के कोने-कोने से अनेक रेल गाड़ियाँ आती हैं और जाती हैं। कोई गाड़ी दस मिनिट ठहरती है, तो कोई पन्द्रह, बीस या तीस मिनिट ठहरती है। जिसको उतरना होता है वह उतर जाता है और जिसे जाना होता है, वह चढ़ कर चला जाता है। मनुष्यगति में जन्म लेना उसी व्यक्ति का सार्थक है, जो कि अपना लक्ष्य सिद्ध करके यहाँ से जाता है। आत्मलक्ष्य वही व्यक्ति सिद्ध कर पाता है, जो कि प्रतिदिन यह विचार करता है कि—

कोऽहं कीदृग्गुण क्वत्यः किंप्राप्यः किंनिमित्तकः ।

मैं कौन हूँ, मेरा क्या गुण है, मैं कहाँ से आया हूँ, मुझे क्या प्राप्त करना है और किस निमित्त से मेरा अभीष्ट साधन होगा? इस प्रकार की विचार-धारा जिसके हृदय में सदा प्रवाहित रहती है। वह व्यक्ति आत्म-हित के साधना में सदा सावधान रहता है और अपना कर्तव्य भली भाँति पालन करता रहता है। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का हृदय सदा आनन्द से भरपूर और शान्त रहता है। किन्तु जो व्यक्ति आत्म-साधना में तत्पर नहीं होता है वह स्वयं तो [illegible] रहता ही है, साथ ही जो भी उसके सम्पर्क में आता है, वह भी [illegible] जाता है। किसी प्राचीन कवि ने कहा भी है—

पर-सुख देखी जो जरे, ताको कहा आराम।
पर-दुख देखी दुख लहे, सो है आतमराम॥

यदि अपना हृदय शान्त है—स्थिर है—तो कोई कैसा भी व्यक्ति मिल जाय, तो भी उसका कुछ भी बिगाड नही कर सकता है। परन्तु जिस व्यक्ति का हृदय स्थिर नही है वह जहा भी जायगा, वहा के वातावरण से प्रभावित होकर अपना ध्येय भूल जायगा और दूसरे के तत्त्व को ग्रहण कर लेगा। जैसे कोई साधारण दुकानदार किसी बडी कम्पनी मे गया, वहा पर अनेक व्यक्ति अपना-अपना काम कर रहे है, उत्तम फर्नीचर सजा हुआ है, आने और जाने के मार्ग भी अलग-अलग है। कम्पनी के ऐसे ठाठ-बाट को देखकर वह दुकानदार प्रभावित हुआ और विचारने लगा कि मै भी अपनी दुकान को उठाकर ऐसी ही कम्पनी खोलूगा और ठाठ से कमाई करूगा। पर उसे यह पता ही नही है कि कम्पनी खोलने के लिए कितने साधन इकट्ठे करने पडते है, कितना दिमाग लगाना पडता है और कितनी पूजी की आवश्यकता होती है? तो भाई, बताओ—क्या अपने विचार को सफल कर सकता है? कभी नही? पर यदि वह अपनी दुकानदारी को बढावे, उसे तरक्की दे और दिमाग से काम करे तो एक दिन उसकी वह दुकान ही बडी कम्पनी बन जायगी। जहा बडे पैमाने पर काम होता है, उसे कम्पनी कहते है और जहा छोटे रूप मे काम होता है उसे दुकान कहते है। अपना कारोबार घटाना और बढाना अपने ही हाथ मे है। जब तक मनुष्य इस उन्नति और अवनति के मूल सिद्धान्त को ध्यान मे नही लेता है, तब तक वह अपने उद्देश्य मे सफलता नही पा सकता है। जो दुनिया की बातो को देखकर केवल मनसूबे बाधता रहता है, करता-धरता कुछ नही है और व्यर्थ मे समय व्यतीत करता है, वह कैसे अपनी उन्नति कर सकता है।

एक लक्ष्य निश्चित करो!

भाइयो, मै अपनी ही बात सुनाऊं, चालीस-पैतालीस वर्ष पहिले जब मै संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन कर रहा था, तब मन मे यह उमग उठी कि साथ मे अग्रेजी और उर्दू का भी अभ्यास किया जाय। यह सोचकर मैने उनका भी पढना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन एक पडित जी आये और मुझे चार भाषाओ का एक साथ अभ्यास करते देखकर बोले—महाराज, आप यह क्या कर रहे है? मैने कहा—पढाई कर रहा हू। वे बोले—यद्यपि आपका दिमाग तेज है, तथापि मेरी राय है कि आप एक-एक विषय को लीजिए। एक मे अच्छी गति हो जाने पर दूसरे विषय को लीजिए। यदि एक साथ ही चार

भाषाओं की खिचड़ी बनायेंगे तो किसी मे भी आप पारगत नही हो सकेंगे। उस समय उनकी बात मुझे कुछ बुरी सी लगी और मैंने अपनी पढाई का क्रम पूर्ववत् ही चालू रखा। बीस-पच्चीस दिन के बाद समझ मे आया कि उनका कहना ठीक है। क्योंकि जब मैं एक विषय की ओर अधिक ध्यान देता तो दूसरे विषय मे कच्चावट रह जाती है। तब किसी की यह उक्ति याद आई।

'एक हि साधे सब सधै, सब साधै सब जाय।'

इसलिए हम जो काम रह रहे हो, उसमे ही हमे तन-मन और धन से जुट जाना चाहिए, ताकि चालू काम मे प्रगति हो। आप दुकान पर बैठे बैठे चाहे कि एक साथ मे रोकड भी मिला लू, आने-जाने वालो से बातें भी करता रहू और पुस्तक भी पढता रहू ? तो क्या ये सब काम एक साथ कर सकते है ? नही कर सकते हैं। भले ही आपका दिमाग कितना ही तेज क्यो न हो। यदि दिमाग तेज है तो एक ही विषय की ओर लगाइये, आपको अपूर्व सफलता प्राप्त होगी। मुझे इस समय शतावधानी रत्नचन्द्र जी महाराज की याद आ रही है, उनकी बुद्धि बडी तेज और स्मरणशक्ति बडी प्रबल थी। वे व्याख्यान देते हुए बीच-बीच मे किये जाने वाले प्रश्नो को हृदयगम करते जाते थे और अन्त मे क्रमवार उनका उत्तर देते थे। उनके इस चमत्कार का रहस्य यह था कि वे व्याख्यान देते हुए भी प्रश्नो को अवधारण करने की ओर ही उपयुक्त रहते थे और किये जानेवाले प्रश्नो को अपने मस्तक की पट्टी पर क्रमवार अकित करते जाते थे। व्याख्यान देते हुए भी उनका ध्यान प्रश्नो को अपने भीतर अकित करने की ओर ही लगा रहता था। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का ध्यान सासारिक कार्यों को उदासीनभाव से करते हुए भी आत्मा की ओर रहेगा, वह अवश्य ही आत्म-सिद्धि को प्राप्त कर लेगा। आत्म-सिद्धि की प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए पूज्यपाद स्वामी ने कहा है—

आत्मज्ञानात्पर कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात् किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्पर ॥

अर्थात्—आत्महितैषी पुरुष को चाहिए कि वह आत्मज्ञान के सिवाय अन्य कार्य को अपनी बुद्धि मे अधिक समय तक धारण न करे। यदि कार्य वशात् वचन से बोलना और काय से कुछ कार्य करना भी पडे तो उनमे अतत्पर अनासक्त—रहते हुए ही करे। भाई, आत्मसिद्धि की कूची तो यह है। जब तक मनुष्य सासारिक कार्यों की ओर से अपनी चित्तवृत्ति को नहीं

हटायेगा और आत्मस्वरूप की ओर उन्मुख नही होगा, उसमे तन्मय नही होगा, तब तक आत्म-सिद्धि सभव नही है।

भाइयो, आप लोग जो इस समय व्याख्यान मे बैठे है, सामायिक मे बैठे हैं तो इसमे भी लक्ष्य आत्मस्वरूप की प्राप्ति का ही है। इससे आत्मा को नित्य नयी खुराक मिलती रहती है। हमे प्रत्येक कार्य करते हुए यह मनन करते रहना चाहिए कि यह आत्मा के लिए कहा तक उपयोगी है? यदि उपयोगी प्रतीत हो तो करना चाहिए, अन्यथा छोड देना चाहिए। हम चाहे जैन हो, या वैष्णव, मुसलमान हो या ईसाई, पारसी हो या सिक्ख? किसी भी जाति या सम्प्रदाय के क्यो न हो, किन्तु यदि हमने अपनी आत्मा को जान लिया, तो ऊपर के जो ये सब मत और सम्प्रदायो के खोखे और जामे है, उन्हे उतार कर फेकने ही पडेगे। आप लोगो की दुकानो मे बाहिर से खोखो मे माल आता है, आप लोग उन्हे खोलकर माल को दुकान के भीतर रख लेते है और खाली खोखो को बाहिर रख देते है। खोखे का उपयोग माल को सुरक्षित पहुचाने भर का होता है। इसी प्रकार शरीर से सम्बन्ध रखने वाले ये जाति और सम्प्रदाय भी खोखे से ही समझना चाहिए। इनके भीतर जो आत्माराम रूपी उत्तम माल है, उसे जब हमने जान लिया अर्थात् अपने भीतर जमा कर लिया तो फिर खोखो के मोह से क्या प्रयोजन है? बस, ज्ञानी जीव शरीर और मत, पन्थ या सम्प्रदाय को खोखे के समान समझता है। वह आत्मा को अपनी स्वतन्त्र वस्तु मानता है और शरीर आदि को पर एव परतन्त्र वस्तु मानता है। यही कारण है कि पर-वस्तुओ के प्रति ज्ञानी-पुरुष की मनोवृत्ति उदासीन, अनासक्त या निरपेक्ष हो जाती है और अपनी आत्म-सिद्धि के प्रति उसकी वृत्ति सदा जागरूक रहती है।

प्रमाद को छोड़िए

अभी आपके सामने छोटे मुनि जी ने पाच प्रकार के प्रमादो का वर्णन किया। ये विकथा, कषाय, निद्रा, मद और विषयरूप प्रमाद आत्मा को अपने स्वरूप से दूर करते हैं, अत ये आत्मा के लिए हानि-कारक है। वास्तव मे ये सभी प्रमाद बेकार या निकम्मे पुरुषो के काम है। जो व्यक्ति बेकार या निकम्मा होता है, वह इधर-उधर बैठकर नाना प्रकार की विकथाए करता रहता है। जिसके ऊपर कार्य का भार होता है, वह व्यक्ति कभी भी कही बैठकर विकथा नही करेगा और न बेकार की गप्पे ही हाकेगा। यदि कोई आकर के सुनाने का प्रयत्न भी करेगा तो वह यही कहेगा कि भाई साहब, अभी मुझे सुनने का अवकाश नही है। इसी प्रकार निकम्मा [illegible]

छानता मिलेगा, या निद्रा लेता हुआ मिलेगा। जिसके पास काम है, वह इन दोनो ही के सम्पर्क से दूर रहेगा। विषय और कषाय तो स्पष्ट रूप से ही आत्मा का अहित करनेवाले है। जिनकी दृष्टि आत्मा की ओर नही हैं वे लोग हो पचेन्द्रियो के विषय-सेवन मे मग्न रहते है, उन्हे इसी जन्म मे ही अनेक रोगो की भयकर यातनाएँ भोगनी पडती हैं और परभव मे नरकादि गतियो मे जाकर अनन्त दुःख भोगना पडता है। यही हाल, कषायो के करने का है। कषायो को करने वाला व्यक्ति इसी जन्म मे ही कषायी कहलाता है और निरन्तर सन्तप्त चित्त रहता है। उसे घर के भीतर भी शान्ति नहीं मिलती तथा परभव मे नरकादि दुर्गतियो मे अनन्तकाल तक परिभ्रमण करते हुए असीम दु:ख उठाना पडते हैं। इसलिए ज्ञानी पुरुष तो सदा इनसे बचने का ही प्रयत्न करते है और यह भावना भाते रहते हैं कि—

आतम के अहित विषय-कषाय, इनमे मेरी परिणति न जाय।
मैं रहू आपमे आप लीन, सो करहु, होहु ज्यो निजाधीन ॥

भाइयो, आप लोग व्यापारी है और जब व्यापार जोर से चलता है और जब सवाये-ड्योढे हो रहे हैं, तब यदि ग्राहक किसी वस्तु को दिखाने के लिए दस बार भी कहता है तब भी आप उसे वह वस्तु उठा-उठा करके दिखाते हैं। उस समय भूख-प्यास भी लगी हो तो भी खाना-पीना भूल जाते हैं और यदि नीद भी ले रहे हो तो जागकर ग्राहक की फरमायश पूरी करते हैं। जब लौकिक एव विनश्वर इस लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए ये सब प्रमाद छोडना आवश्यक होते है, तब आत्मिक और अविनश्वर मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए तो और भी अधिक प्रमाद-रहित होने और जागरूक रहने की आवश्यकता है। अनादिकाल से हमारे ऊपर विषय-कषाय की प्रवृत्ति से जो कर्म-जाल लगा हुआ है उससे छूटने के लिए नवीन कर्मोपार्जन से बचना होगा और पुराने कर्मजाल को काटना होगा। और ये दोनो कार्य तभी सभव हैं, जबकि आप प्रमाद को छोडेंगे। आपके सामने बैठे हुए ये लडके अभी गप्पें मारने और खेलने-कूदने मे समय बिताते हैं। किन्तु जब परीक्षा का समय आता है, तब यह भूल जाते हैं और पढाई मे ऐसे सलग्न होते हैं कि फिर खाने-पीने की भी सुध-बुध नही रहती है। क्योकि ये जानते हैं कि यदि परीक्षा के समय भी हम खेल-कूद मे लगे रहेंगे तो कभी भी उत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे। तो भाई, आप लोगो को जो यह मनुष्य भव मिला है, वह एक परीक्षा काल के समान ही है। यदि इसमे पुरुषार्थ करके अपना कर्मजाल काट दिया और इस ससार मे

उत्तीर्णता प्राप्त कर ली तो सदा के लिए अविनश्वर मुक्ति लक्ष्मी प्राप्त हो जायगी। क्योकि ज्ञानियो ने कहा है कि—

यह मानुष-पर्याय, सुकुल, सुनिवो जिनवाणी,
इह विधि गये, न मिलै सुमणि ज्यो उदधि-समानी।

यह मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल और जिनवाणी के सुनने का उत्तम अवसर यदि यो ही खो दिया और आत्म-हित नही किया तो फिर इनका पुनः पाना वैसा ही है जैसा कि समुद्र मे गिरी हुई मणि का पाना दुर्लभ है। इसलिए ज्ञानी जन पुकार-पुकार करके कहते है कि—

तातैं जिनवर—कथित तत्त्व अभ्यास करीजे,
सशय विभ्रम मोह त्यागि आपो लख लीजे॥
ज्ञान-समान न आन जगत मे सुख को कारण,
यह परमामृत, जन्म-जरा-मृति रोग-निवारण॥

हे बन्धुओ, इसलिए अब प्रमाद को छोडकर भगवद्-भाषित तत्त्वो का अभ्यास करो और सशय, विभ्रम, मोह, प्रमाद, विषय और कषाय आदि दुर्गुणो को छोडकर अपने आपका स्वरूप पहिचानो, अपने आपका ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान के समान जगत मे अन्य कोई भी वस्तु सुख का कारण नही है और यह ज्ञान ही अनादि काल से लगे हुए जन्म, जरा और मरणरूपी महारोगो के नाश करने के लिए परम अमृत के समान है। जैसे आप लोग इस लौकिक व्यापार के समय अन्य सब भूल जाते है, उसी प्रकार आत्मिक व्यापार के समय अन्य सबको भी भुलाना पडेगा।

भाइयो, जरा विचार तो करो—जिस धर्म के प्रसाद से, भगवान् के जिन वचनो के प्रताप से आज आप लोग आनन्द भोग रहे है तो कभी-कदा उनको भी तो याद करना चाहिए। यदि घर की उलझनो से निकल कर के यहां घडी-दो घडी को आये हो, तो फिर उतने भी समय मे प्रमाद क्यो? आलस क्यो और नीद क्या? यदि कोई बाते करता भी है तो उधर से उप-योग हटाकर आत्महितैषी अपना उपयोग व्याख्यान सुनने सामायिक करने और आत्म-चिन्तन करने मे ही लगाता है। जो कुशल व्यापारी होता है वह लौकिक कार्यों के साथ पारमार्थिक कार्य को भी साधन मे सावधान रहता है। और अपनी-चर्या ऐसी बनाते है कि जिससे उनकी गाडी ठीक सुचारु रूप से बिना किसी विघ्न-बाधा के चलती रहती है। कहा भी है—

जैसे नाव हलकी चली, पहुचे पार ले जाय।
त्यो ज्ञानी सन्तोष मे, सद्-गति मे पहुचाय॥

जैसे नाव हलकी है, उसमे कोई छिद्र नही है और खेवाटिया कुशल है तो उसमे जितने भी यात्री बैठेगें, वे पार हो जायेंगे। परन्तु जो नाव जर्जरित है, टूटी-फूटी और छिद्र-युक्त है, उसमे जो बैठेगा, तो डूबेगा ही। वह कभी पार नही पहुच सकता। किन्तु जिसकी नाव उत्तम है और खेवटिया भी होशियार है, तो कभी भी डूबने का डर नही रहता है। आप लोगो को जैनधर्मरूपी नाव भी उत्तम और मजबूत मिली है और उसके खेवनहारे आचार्य लोग भी उत्तम मिले हैं। फिर आप लोग उसमे बैठकर के ससार से पार पहुचने का प्रयत्न क्यो नही करते है? इस स्वर्ण अवसर को हाथ से नही जाने देना चाहिए।

सशयशील की दुर्गति

आषाढाचार्य पचास शिष्यो के गुरु थे, महान् विद्वान थे और आठो सम्पदाओ से सम्पन्न थे। माता के वश को जाति कहते हैं, उनका मातृवश अत्यन्त निर्दोष था, अत वे जातिसम्पदा से सम्पन्न थे। पिता के वश को कुल कहते हैं। उनका पितृवश भी निर्मल और पवित्र था, अत वे कुलसम्पदा से भी सम्पन्न थे। वे बलसम्पदा से भी सम्पन्न थे क्योकि उनका आत्मिकबल अद्वितीय था। वे रूपसम्पदा से भी युक्त थे, क्योकि उनका रूप परम सुन्दर था। वे मतिसम्पदा से भी सयुक्त थे, क्योकि वे असाधारण बुद्धिशाली थे। कोई भी-किसी प्रकार की समस्या उनके सामने यदि आ जाती तो वे उसे इस प्रकार से सुलझाते थे कि दुनिया देखती ही रह जाती थी। वे प्रयोग-सम्पदा के भी धनी थे, स्व-मत के विस्तार करने के जितने भी उपाय होते है, उन सब के विस्तार करने मे – प्रयोग करने मे कुशल थे। ज्ञानसम्पदा भी उनकी अद्भुत थी, जो भी प्रश्न उनसे पूछा जाता था, उसका वे तत्काल उत्तर देते थे और सग्रहसम्पदा से भी सम्पन्न थे, क्योकि वे सदा ही उत्तम और आत्मकल्याणकारी वस्तुओ से अपना ज्ञान-भण्डार भरते रहते थे। जिस आचार्य के पास आठ सम्पदाए होती हैं, उनका कोई सामना (मुकाबिला) नही कर सकता है। और यदि कोई करता भी है तो उसे मुह की खानी पडती है।

हा, तो वे आषाढाचार्य उक्त आठो सम्पदाओ से सम्पन्न थे। एक बार उनके एक शिष्य ने सथारा लिया। आचार्य ने उससे कहा—शिष्य, यदि तू स्वर्ग मे जाकर देव बने तो एक बार आ करके मुझसे अवश्य मिलना। शिष्य ने हा भर दी और वह यथासमय काल कर गया। दिन पर दिन बीतने लगे और एक-दो वर्ष भी बीत गये, तब भी वह स्वर्ग से उनके पास नही आया।

कुछ समय के बाद दूसरे शिष्य ने संथारा किया। गुरु ने उससे भी यही बात कही। पर अनेक वर्ष बीतने पर भी वह नहीं आया। इस प्रकार क्रमशः तीसरा, चौथा और पाचवा शिष्य भी संथारा करके काल करता गया। मगर लौट करके कोई भी गुरु के पास मिलने को नहीं आया। तब आचार्य के मन मे विकल्प उठा कि यदि स्वर्गादि होते तो कोई शिष्य तो आ करके मिलता। पर वर्षों तक मेरी आज्ञा मे रहने पर और संथारा के समय हां भर देने पर भी कोई मेरे पास आज तक नही आया है, तो ज्ञात होता है कि कोई न स्वर्ग है और न कोई नरक है। ये तो सब लोगो को प्रलोभन देने और डराने के लिए कल्पित कर लिये गये प्रतीत होते है। इस प्रकार उनके हृदय मे प्रमाद ने—शका ने प्रवेश पा लिया। परन्तु उन्होने अपनी इस बात को भीतर छिपा करके रखा, बाहिर मे किसी से नही कहा। किन्तु भीतर-ही भीतर वह शल्य उन्हे चुभती रहती और श्रद्धा दिन पर दिन गिरती जाती थी। एक बार उनका सबसे छोटा शिष्य बीमार पडा। वह अत्यन्त बुद्धिमान, प्रतिभाशाली और आचार्य के योग्य उक्त आठो सम्पदाओ से सम्पन्न था। आचार्य ने दिल खोलकर उसे सर्वशास्त्र पढाये थे और उस पर उनका स्नेह भी बहुत था। जब इलाज कराने पर भी वह स्वस्थ नही हुआ और उसने अपना अन्तिम समय समीप आया हुआ जाना तो आषाढाचार्य से संथारे के लिए प्रार्थना की। उन्होने भी देखा कि अब यह बच नही सकता है, तब उसे संथारा ग्रहण करा दिया। और उससे कहा—देख, तू तो मेरा परमप्रिय शिष्य रहा है, तू स्वर्ग से आकर एक बार अवश्य मिलना। [illegible] के समान तू भी भूल मत जाना। उसने भी कहा—गुरुदेव, मै अवश्य ही आपसे मिलने के लिए आऊँगा। यथासमय वह भी काल कर गया। पन्द्रह-बीस दिन तक तो गुरु ने उसके आने की प्रतीक्षा की। किंतु जब उसे आया नहीं देखा तो आचार्य के मन की शका और भी पुष्ट हो गई कि न कोई स्वर्ग है और न कोई नरक है। ये सब गपोडे और कल्पित है। अब उनका चित्त न आवश्यक क्रियाओ मे लगे और न शिष्यों की संभाल करने मे ही लगे। [illegible] उद्विग्न रहने लगे। धीरे-धीरे उनका उद्वेग चरम सीमा पर पहुंचा, [illegible] शिष्यों को बुला करके कहा—मैने आज तक तुम लोगो को उपदेश दिया और तुम लोगो ने प्रेम से सुना और तदनुसार आचरण भी किया है। परन्तु अब मै कहता हूँ कि तुम लोग अपने-अपने ठिकाने [illegible] [illegible] मे सिवाय व्यर्थ कष्ट उठाने के और कुछ भी नही है। न कोई स्वर्ग है और न कोई नरक है। ये सब [illegible] और [illegible]

की ऐसी अकल्पित बातें सुनकर सारी शिष्य-मडली विचार मे पड गई कि अब क्या किया जावे ? जब आकाश ही डिग रहा है, तब उसे थोभा देने वाला कौन है ? फिर भी उन लोगो ने विनयपूर्वक विनती करते हुये कहा — गुरु महाराज, आपने उत्तम धर्मोपदेश दे-देकर हमे दृढसम्यक्त्वी बनाया है। अब आप क्या हमारी परीक्षा करने के लिए ऐसा कह रहे हैं, अथवा सचमुच डिग रहे है ? तब आचार्य ने कहा—मैं सत्य ही कह रहा हू। इस साधुपने मे कष्ट करना बेकार है। यदि स्वर्ग होता तो इतने शिष्य काल करके गये हैं, उनमे से कोई तो आकर के मिलता। पर मेरे आग्रह करने पर और तो क्या, यह अन्तिम सथारा करने वाला शिष्य भी नहीं आया है। इससे मुझे निश्चय हो गया है कि स्वर्गादि कुछ नहीं है और उसके पाने की आशा मे ये कष्ट सहन करना व्यर्थ है। यदि तुम लोग फिर भी साधुपना नहीं छोडना चाहते हो तो तुम्हारी तुम लोग जानो। परन्तु मैं तो रवाना होता हू। यह कहकर सबके देखते-देखते ही आषाढाचार्य रवाना हो गये। ज्यो ही आचार्य ने उपाश्रय से बाहिर पैर रखा, त्यो ही उस छोटे शिष्य के जीव का जो कि मर कर देव हुआ था—आसन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से देखा कि गुरुमहाराज मेरे निमित्त से डूब रहे है, क्योकि मैं उनकी सेवा मे नहीं पहुचा हू। यह मेरी भूल का दुष्परिणाम है। यह सोचता हुआ वह देव तत्काल स्वर्ग से चला और इनको बिना ईर्यासमिति के लम्बे-लम्बे डग भरते हुए जाते देखकर जाना कि इनमे श्रद्धा का नाम भी नहीं रहा है अब देखू कि इनके हृदय मे दया और लज्जा भी है, या नहीं ? यदि ये दोनो होगे तो इनके पुन सन्मार्ग पर आने की सभावना की जा सकती है ? ऐसा विचार करके उसने एक साधु का रूप बनाया और कधे पर मछली पकडने का जाल डालकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनकर आषाढाचार्य जाना भूल गये और खडे होकर पीछे की ओर देखने लगे। ज्यो ही उनकी दृष्टि उस साधु पर गई तो उससे कहने लगे—अरे मूर्ख, यह क्या किया ? साधु होकर कन्धे पर जाल रखता है ? क्या यह साधु के योग्य है ? उसने कहा मैं क्या बुरा हू। ऐसा तो सब साधु करते है। मैं तो चौडे और खुले मैदान मे करता हू और दूसरे लोग छिपकर करते हैं। गुरु ने कहा—मैं तेरा कहना मानने को तैयार नहीं हू। तब उसने कहा—जरा अपना ध्यान तो करो ? यह सुनकर भी आषाढाचार्य आगे चल दिये। तब उस देव ने साधु का वेष छोडकर गर्भवती साध्वी का वेष धारण किया और हर दुकान से लाडू-मोद आदि खाद्य वस्तुएं मांगने लगी। जब आचार्य ने उसे ऐसा करते देखा—तो कहा—

अरे पापिनी, तू यह क्या कर रही है ? तू तो धर्म को लजा रही है ? तब उसने कहा—

> **सुनो मुनिवर जी, मत देखो पर-दोष, विचारी बोलो,**
> **अहो गुणीजनजी।**
> **बाहिरपन को भूल, आख निज खोलो . . .**

उस साध्वी ने कहा—महाराज, आप पराये दूषण क्या देखते हो, जरा अपने भीतर भी देखो, वहा क्या चल रहा है और क्या करने को जा रहे हो ? यह सुनते ही आषाढाचार्य चौके और चुपचाप आगे को चल दिये। अब देवता ने विचारा कि शासन-की सेवा के भाव तो अभी इनमे शेष है। अब देखू कि दया भी इनके अन्दर है, अथवा नही ? यह सोच उसने अपना रूप बदला और जिधर आचार्य जा रहे थे, उसी ओर जगल मे आगे जाकर एक तम्बू बनाया, उसमे गाना-बजाना प्रारम्भ किया। जब आचार्य समीप आते दिखे तो उस देवता ने माया मयी छह बालको के रूप बनाये जो रत्न-सुवर्णमयी आभूषण पहिने हुए थे और उनको तम्बू से बाहिर निकाला। आचार्य के सामने आते ही उन सबने 'तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण मत्थएण वदामि' कहा। फिर पूछा—स्वामी, आपके सुख-साता है ? जैसे ही आचार्य ने उन बालको की ओर देखा तो उनके रत्न-जडे आभूषण देखकर उनका मन बिगड गया। उन्होने सोचा—मैं घर-द्वार माडने जा रहा हू, परन्तु पास मे तो एक फूटी कौडी भी नही है और कौडी के बिना गृहस्थ भी कौडी का नही है। बिना टका-पैसा पास हुए बिना मुझे कौन पूछेगा ? अच्छा मौका हाथ लगा है, यहा तो वीरान जगल है, मेरे कार्य को देखने वाला कौन है ? क्यो न इन बालको को मार करके इनके आभूषण ले लू, जिससे गृहस्थी का निर्वाह जीवन-भर आनन्द से होगा ? बस, फिर क्या था, उन्होने एक-एक करके छहो बालको के गले मसोस दिये और आभूषण उतार कर अपने पात्र मे भर लिये।

भाइयो, देखो—कहा तो वे छह काया की प्रतिपालना करते थे और कहा छह लडको के प्राण ले लिए। महापुरुषो ने ठीक ही कहा है—'लोभ पाप का बाप बखाना'। लोभ के पीछे मनुष्य कौन से महापाप नही कर [illegible]। जीवन-भर जिन्होने सयम की साधना और छह काया की प्रतिपालना की, [illegible] आषाढाचार्य ने जब छह बालको के गले घोट दिये, तब [illegible] [illegible] है। प्रतिदिन समाचार पत्रो मे पढते हैं कि लोभ के वशीभूत [illegible] अमुक ने अपने पिता को मार डाला, अमुक ने अपनी माता के प्राण [illegible] और अमुक ने दूसरे के बालको को मार डाला। यह लोभ [illegible] लोभ से अनर्थ नही कराता है ? यद्यपि वे बालक मायामयी थे, परन्तु [illegible]

तो भावहिंसा के भागी वन ही गये, क्योकि उन्होंने तो जान बूझकर और लोभ के वशीभूत होकर मारे हैं ।

अव देव ने देखा कि आचार्य मे दया का भाव तो लेशमात्र भी नही रहा है, तो वह वडा विस्मित हुआ । उसे पूर्वजन्म की वातें याद आने लगी । वह विचारने लगा कि कहा तो गुरु की परिणति कितनी निर्मल, अहिंसक और दयामयी थी, कितना श्रेष्ठ ज्ञान था और कितने उच्च विचार थे । आज इनका इतना अवपतन हो गया कि तुच्छ पुद्‌गलो के लोभ से सृष्टि के सर्व श्रेष्ठ मानव के भोले-भोले वालको को मारते हुए इनका हृदय जरा-सा भी विचलित नही हुआ । अव क्या करना चाहिए ? मैं एक वार और भी प्रयत्न करके देखूँ कि इनकी आखो मे लाज भी शेष है, या नही ? यदि आखो मे लाज होगी, तो फिर भी काम वन जायगा । अन्यथा फिर इनका जैसा भवितव्य होगा, सो उसे कौन रोक सकता है ।। यह सोचकर उस देव ने जिधर आचार्य जा रहे थे, उसी ओर एक ग्राम की माया रची और उसमे से सामने आते हुए श्रावक-श्राविकाओ की भीड दिखाई । वे सव एक स्वर से वोलते हुए आ रहे थे—धन्य घडी आज की है, आज हमारा धन्य भाग है, जो गुरुदेव नगर मे पधारे हैं, यह कहते हुए उन लोगो ने गुरु के चरण-वन्दन किये और प्रार्थना की कि महाराज, नगर मे पधारो और भात-पानी का लाभ दिलाओ । आषाढभूति वोले—मुझे इसकी आवश्यकता नही है । कहो भाई, अव भात-पानी की क्या आवश्यकता है, क्यो पात्र तो रत्न-सुवर्ण से भरे हुए झोली मे हैं । लोग आग्रह करते है और वे इनकार करते है । इतने मे सवके साथ वे नगर के भीतर पहुच गये, तो उनको भात-पानी लेने की अन्य लोगो ने भी प्रार्थना की । और कहा—महाराज, हमारे हाथ फरमाओ और उपदेश देकर हम लोगो को पवित्र करो । लोगो के अत्यधिक अनुनय विनय करने पर भी जव आषाढाचार्य गोचरी लेने को तैयार नही हुए, तव सव ने कहा—पकडो महाराज की झोली और ले जाओ महाराज को । फिर देखे कि कैसे नही लेते है ? ऐसा कहकर लोगो ने झोली को पकड कर जो झटका दिया तो सारे पात्र नीचे गिर गये और आभूषण इधर-उधर विखर गये । यह देखते ही आचार्य तो लज्जा के मारे पानी-पानी हो गए । विचारने लगे—वडा अनर्थ हो गया ? सव लोग मुझे महात्मा और परम सन्त मानते थे, नमस्कार करते थे और दया के सागर कहते थे । अव ये पूछेंगे कि ये आभूषण कहां से लाये, ये तो हमारे वालको के है और हमारे वालक कहा है, तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? हे भगवन्, इतना अपमान तो मेरे से नही सहा जायगा ? ...

माता ! तू फट जा, जिससे कि मैं तेरे भीतर समा जाऊँ ? मैं किस कुल का था, मेरी जाति कितनी उच्च थी और मै एक महान् आचार्य कहलाता था। परन्तु हाय, मैंने सबको लज्जित कर दिया ? लोग क्या अपने मन मे सोच रहे होंगे। आज मेरे ढोंग का पर्दाफाश हो गया और दुनिया ने मेरे गुप्त पाप को देख लिया। अब मैं लोगों को अपना मुख दिखाने के लायक भी नहीं रहा हू ।।

पुन जागरण

इस प्रकार जब आषाढाचार्य अपना नीचा मुख किए अपनी निन्दा और गर्हा कर रहे थे और सोच रहे थे कि ऐसा अपमान देखने की अपेक्षा तो मेरा प्राणान्त हो जाय तो अच्छा है। तब देवता ने सोचा—कि बात अभी भी ठिकाने है। अभी तो ये पौने उगनीस विस्वा ही डूबे है, सवा विस्वा बाकी है, क्योकि इनकी आखो मे लाज शेष है, अत बचने की आशा है। तब उसने तत्काल अपना रूप पूर्वभव के शिष्य के समान छोटा-सा बनाया और उनके आगे जाकर कहा—'गुरुदेव, मत्थएण वदामि' ! आचार्य सोचने लगे, यह कटे पर नमक छिडकने वाला हिया-फोड कौन आगया है ? तभी उस रूपधारी शिष्य ने चरण-वन्दना करके कहा गुरुदेव, मुझे देखो और कृपा करो। जब आचार्य ने आखे खोली तो देखा कि वह छोटा शिष्य सामने खडा है। वे पुन आखे बन्द करके सोचने लगे—फिर यह कौन आ गया है ! तभी उन्हें विचार आया कि हो न हो यह वही शिष्य देव है और मुझे प्रतिबोध देने के लिए रूप बनाकर आया है ! तब आख खोलकर बोले—चेले, 'मत्थएण वदामि' आज घणी आई ? वह बोला भगवन्, आपने बहुत जल्दी की। भाई, देवलोक मे तो दश हजार वर्षो मे एक नाटक पूरा होता है। चेले ने कहा—गुरुदेव, मैंने तो वह नाटक देखा ही नही और मै जल्दी ही यहा पर चला आया हू। परन्तु आपने तो मेरे आने के पहिले ही यह क्या कर लिया है। आचार्य ने पूछा—तू कहा था ? वह बोला देवलोक मे था। गुरु ने फिर पूछा क्या देवलोक है ? शिष्य ने कहा—हा, देवलोक है और मैं वहीं से आ रहा हू। भगवान के वचन बिलकुल सत्य है और स्वर्ग-नरक सब यथार्थ है यह कह कर उसने स्वर्ग और नरक के सब दृश्य दिखाये। फिर कहा—गुरुदेव, आप तो सारी दुनिया की शकाओं का समाधान करते थे। फिर आपके मन में यह शका कैसे पैदा हुई ? आचार्य बोले—तेरे देर से आने के कारण यह शंका हुई। पर अब तेरे आने से क्या होगा ? मन तो नहीं [illegible] कर चुके हू ? छह बालकों की हत्या भी कर दी, [illegible]

लिए और घर माडने जा रहा हू। मैंने तो सभी कार्य कर लिये हैं अब तो मैं पूरा पतित हो गया हू। अब क्या हो सकता है? तब उस शिष्य देव ने कहा—गुरुदेव, मन की सब शकाओ को दूर कीजिए। अभी कुछ नहीं बिगडा है, आप किए हुए दुष्कृत्यो का प्रायश्चित कीजिए और अपने स्वीकृत व्रतो की शुद्धि कीजिए। आपकी नाव डूबी नही है, केवल एक छिद्र ही हुआ है तो उसे बन्द कर दीजिए। आपने सघ मे जाते हुए जो जो दृश्य देखे और बालको की हत्या की, वे सब मेरे द्वारा दिखाए हुए मायामयी दृश्य थे, उनकी चिन्ता छोडिए, और पुन आत्म साधना मे लगिये। आचार्य ने पुन पूछा—क्या स्वर्ग नरक यथार्थ हैं, या तू ही अपनी विक्रिया से दिखा रहा है? देव ने कहा—दोनो यथार्थ है और मैंने दोनो को ही अपनी आखो से देखा है। आप उनके होने मे रचमात्र भी शका नही कीजिए। तब आचार्य विचारने लगे हाय, मैं कैसा पागल हो गया कि सब असत्य मानकर अपने सयम-रत्न को नष्ट करने पर उतारू हो गया। ऐसा विचारते हुए वे अपने आपको धिक्कारने लगे और पाचो महाव्रतो की आलोचना करके उन्हे पुन स्थापित किया। देव ने कहा —गुरुदेव, अब आप वापिस सघ मे पधारिये। मैं वहा पहिले पहुचता हू। यह कह कर वह देव सघ मे पहुचा और पूछा कि आचार्य महाराज कहा है। सघ के साधुओ ने कहा—गुरुदेव तो श्रद्धा के डिग जाने से सघ छोड कर चले गये हैं। तब उसने कहा—वे नही गए हैं। मैंने उनको पुन सम्यक्त्व और सयम मे दृढ कर दिया है। वे आ रहे हैं। अत अब आप सब उनके सामने जाइए और सम्मान-पूर्वक उन्हे सघ मे लिवा लाइये। देव के कहने से सब साधु उनके सामने गए और उन्हे पहिले से भी अधिक मान दिया। तब आचार्य ने कहा—तुम लोग मुझे क्यो मान दे रहे हो? मैं तो पतित हो गया हू, सयम से गिर चुका हू। तब सब साधुओ ने कहा —

'मध्ये मध्ये हि चापल्यमामोहादपि योगिनाम्।'

हे महाराज जब तक यह मोह कर्म नष्ट नही होता है, तब तक बडे-बडे योगियो के भी बीच-बीच मे चलायमानपना आ जाता है, कर्मों की गति विचित्र है। इसलिए आप इसकी चिन्ता मत कीजिए। यदि प्रातःकाल का भूला सायकाल घर आ जाता है तो वह भूला नही कहलाता है। सघ के लोगो के सम्मान भरे वचन सुनकर आषाढाचार्य ने कहा—यह सब इस छोटे शिष्य का प्रभाव है। यह देर से आया। यदि जल्दी आ जाता तो यह अवसर ही नही आता। तब सर्व सघ ने विनय पूर्वक कहा—अब बीती बात भूल जाइए और सघ शासन की डोर पूर्ववत् सभालिए। यह कह कर उन्हे नमस्कार किया और पहिले के समान ही उनकी आज्ञा मे रहने लगे।

१९ | प्रतिसंलीनता तप

प्रतिसलीनता का अर्थ है—अपने ध्येय के प्रति सम्यक् प्रकार से लीन हो जाना। यह तपस्या का एक मुख्य अग है और कर्म-निर्जरा का प्रधान कारण है। इसके पूर्व जो अनशन, ऊनोदरी, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसख्यान और कायक्लेश ये पाच तप बतलाये है, इनमे लीन होने का नाम ही प्रतिसलीनता है। साधक जब आत्म-साधना करते हुए अनशन करता है, तब वह उसमे मग्न रहता है, जब ऊनोदरी करता है, तब उसमे मग्न रहता है और इसी प्रकार शेष तपो को करते हुए भी वह उसमे मग्न रहता है। उक्त तपो को करते हुए यदि बडी से बडी आपत्ति आजावे तो वह उसे सहर्ष सहन करता है, और मन मे रत्ती भर भी विषाद नही लाता। ससारी जीव यदि क्रोधी है तो वह क्रोध मे मग्न रहता है, मानी मान मे, मायावी मायाचार मे और लोभी व्यक्ति लोभ मे मग्न रहता है। यह उनकी लीनता तो है, किन्तु प्रबल कर्मबन्ध का कारण है। किन्तु इनके विपरीत जो क्रोध-मानादि दुर्भावो से आत्म परिणामो को हटाकर अनशनादि तपो को करते हुए आत्मा की शुद्धि करने मे सलग्न रहता उनकी सलीनता ही सच्ची प्रति सलीनता कहलाती है और वह कर्मो का क्षय करके मुक्ति-प्राप्ति कराती है।

प्रतिसलीनता का दूसरा अर्थ शास्त्रो मे यह भी किया गया है कि आचार्य, उपाध्याय, और कुलगणी मे सलीनता। आचार्य [illegible] उनकी भक्ति मे, उनकी आज्ञा पालने मे और उनके द्वारा दि[illegible]

के अनुसार आत्मशुद्धि करने में निमग्न रहना अर्थात् शुद्ध-मन-वचन-काय से पालन करने का नाम आचार्य-सलीनता है। आचार्य के प्रति शिष्य को सदा यही भाव रखना चाहिए कि गुरुदेव जो कुछ भी कहते हैं, वह हमारे ही हित के लिए कहते हैं। हम यदि उनकी आज्ञा और अनुशासन में चलेंगे, उनका गुण गान करेंगे और उनके प्रति सच्ची भक्ति रखेंगे तो हमारा ही कल्याण होगा और जिनशासन की उन्नति होगी। उपाध्याय संघस्थ शिष्यों को पढाते हैं और कर्त्तव्य मार्ग का बोध प्रदान करते हैं। उनके प्रति भक्ति रखना, उनकी सेवा-वैयावृत्य करना और उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान का निरन्तर अभ्यास करना यह उपाध्याय-सलीनता है। एक गुरु की शिष्य-परम्परा को कुल कहते हैं और अनेक कुलों के समुदाय को गण कहते हैं। ऐसे कुल और गण की भक्ति में लीन रहना उनकी वैयावृत्य करना और उनकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करना कुल-गण-सलीनता है। जब हम आचार्य, उपाध्याय और कुल-गण में अपनी सलीनता रखेंगे, तभी उनकी शालीनता और हमारी विनम्रता प्रकट होगी। जब हम अपने इन गुरुजनों को बडा मानेंगे, तभी हमारा शिष्यपना सच्चा समझा जावेगा। यदि हम अपने माता-पिता को पूज्य मान कर उनकी सेवा करेंगे तो हम सच्चे पुत्र कहलावेंगे। और जो उनको पूज्य और उपकारी नहीं मानते हैं और कहते हैं कि यदि मां ने नौ मास पेट में रखा है, तो उसका किराया ले लेवे—तो भाई ऐसे कहनेवालों को क्या आप पुत्र कहेंगे ? नहीं कहेंगे।

पूर्वकाल में राजा को राज्य सिंहासन पर प्रजा धमधाम से राज्याभिषेक करके बैठाती थी और उसे राजा मानती थी तो उसका महत्व था। किन्तु जो बल-पूर्वक दूसरे का राज्य छीनकर स्वयं राज्य सिंहासन पर बैठ जाता है, उसे भी राजा मानना पडता है। इसी प्रकार जो परम्परागत सघ के अधिपति होते चले आते हैं वे तो आचार्य हैं ही। किन्तु जब किसी निमित्त से आचार्य-परम्परा विच्छिन्न हो जाती है, तब जो प्रयत्नपूर्वक शासन का उद्धार करते हैं और उसके सरक्षण की बागडोर अपने हाथ में लेते हैं, वे भी आचार्य कहलाते हैं। श्री धर्मदासजी, लवजीऋषि, धर्मसिंहजी और जीवराजजी को किसने आचार्य बनाया ? वे तो स्वयं उस मिशन के उठाने वाले थे। जब वे लगातार लम्बे समय तक कार्य करते गये और सम्प्रदायें उनमें मिलती गईं, तब वे आचार्य कहलाने लगे।

आज अनेक ग्रुप हैं, पार्टियां हैं, जब इनका प्रारम्भ होता है और वे मजबूत बन जाती हैं तो उनका अध्यक्ष भी निर्वाचित कर दिया जाता है। इसी

प्रकार जो शासन की, समाज की और धर्म की प्रभावना करते है, तो लोग उन्हे आचार्य मान लेते है। जो परम्परा मे आचार्य बनता है और जिसको सेवाए देखकर सघ जिसको आचार्य बनाता है, उन दोनो मे बहुत अन्तर होता है। पहिले को शासन की रक्षा मे प्राप्त होने वाले कष्टो का अनुभव नही होता, जब कि दूसरे को उनका पूर्ण अनुभव होता है। स्वय पुरुषार्थ करके बने हुए आचार्य को इस बात की दिन-रात चिन्ता रहती है कि यह सघ कही मेरे सामने ही नष्ट न हो जाय। परन्तु जिसने सघ को बनाया नही, उसे इस बात की चिन्ता नही रहती है। जो निर्मल बुद्धि वाले शासन के प्रभावक होते है, उनको अपने कर्तव्यो मे सलीन रहना पडता है, तभी वे अपने कर्तव्य और ध्येय को विधिवत् पालन कर सकते है।

भाइयो, आप लोग जानते है कि जो सर्वप्रथम दुकान को जमाता है, उसे सुचारु रूप से चलाने के लिए कितना अधिक परिश्रम करना पडता है और कितने अधिक व्यक्तियो का सहयोग लेना पडता है। किन्तु जो व्यक्ति जमी जमायी दुकान पर आकर के बैठ जाता है, उसे क्या पता कि इस दुकान को जमाने मे किसे कितना कष्ट उठाना पडा है? जिसने अपने हाथ से मकान बनाया है और उसके लिए सैकडो कष्ट सहे और हजारो रुपये खर्च किये है। अब यदि कोई कहे कि यह मकान गिरा दो, तो वह कैसे गिरा देगा? जिस कुम्हार ने बर्तन बडे परिश्रम से बनाये है, यदि उससे कहा जाय कि इन बर्तनो को फोड दो, तो क्या वह फोड देगा? नही। क्योकि उसने बनाने मे कठिन परिश्रम उठाया है। इसी प्रकार जो व्यक्ति आत्मा के गुणो का जानने वाला है और उसने एक-एक आत्मिक गुण को बडी कठिनाई से प्राप्त किया है, उससे कह दो कि वह अपने इन उत्तम गुणो को छोड दे तो वह कैसे छोड देगा? वह तो अपने गुणो मे ही निमग्न रहेगा। जिसने जिस कार्य को मुख्य माना है वह गौण कार्य के पीछे मुख्य कार्य को कैसे छोड देगा? जिस व्यक्ति ने जिस कार्य का निर्माण किया है, वह अपने कार्य का विनाश स्वप्न मे भी नही देख सकता है, उसकी तो सदा यही भावना रहेगी कि मेरा यह निर्माण किया कार्य सदा उत्तम रीति से चालू रहे। अरे भाई, गानेवाला यदि लय-तान के साथ गा रहा हो और उसमे तन्मय हो रहा हो, उस समय यदि उसे रोका जाय, तो उसे भी दर्द होता है। एक नाटक या नृत्यकार को भी नृत्य या नाटक दिखाते हुए यदि बीच मे रोका जावे तो उसे भी अच्छा नही लगता। अपने-अपने कार्य मे सबको सलीनता होती है और बीच मे रोकने पर उस कार्य का आनन्द भी नही आ सकता है। अरे भाई, किसी

की राग की संलीनता प्राप्त करने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है।

साधना की आवश्यकता

एक समय की बात है कि स्वर्ग में दो देव साथ रह रहे थे और उनमें परस्पर प्रीतिभाव भी अधिक था। उनमें से एक का आयुष्य अल्प था। जब उसकी माला मुर्झायी और अन्तिम समय समीप आया देखा तो उसने दूसरे देव से कहा—मैं तो अब यह स्वर्ग छोड़कर मनुष्यलोक में जाने वाला हूं तू मेरा मित्र है, तो यदि मैं मनुष्य के भोगों में आसक्त हो जाऊं तो तुम मुझे सावधान करते रहना, जिससे कि मैं भोगों की कीचड़ में नहीं फंस पाऊं? दूसरे देव ने कहा – मैं अवश्य ही तुम्हें सचेत करने आऊंगा। आयुष्यपूर्ण होने पर वह देव चल कर राजगृह नगर में राजा के भंगी की स्त्री के गर्भ में आया। भंगिन को स्वप्न आया। उसने पति से कहा। वह फल पूछने के लिए ब्राह्मण के घर पर गया और उसने स्त्री के द्वारा देखा हुआ स्वप्न कहकर उसका फल पूछा। ब्राह्मण ने कहा—भाई, तेरे एक पुण्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। उसने आकर के यह बात अपनी स्त्री से कही और क्रमशः गर्भकाल बीतने लगा।

इसी राजगृह नगर में एक जुगमन्दिर सेठ भी रहता था। वह अड़तालीस करोड़ स्वर्ण दीनारों का स्वामी था। उनके कोई सन्तान नहीं थी, अतः पति-पत्नी दोनों ही चिन्तित रहते थे। मंत्र, तंत्र और औषधियों के अनेक प्रयोग करने पर भी उनके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, क्योंकि अन्तराय-कर्म का प्रबल उदय था। भाई, जब अन्तरायकर्म का क्षयोपशम होता है, तभी बाहिरी उपाय सहायक होते हैं। उद्योग करना उत्तम है और उद्योग से ही सारे काम सिद्ध होते हैं, पर तभी, जबकि भाग्य का भी उदय हो। सन्तान का अभाव पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक खटकता है, इसलिए जुगमन्दिर सेठ की सेठानी उम्र बढ़ने के साथ और भी अधिक चिन्तित रहने लगी। वह सोचती रहती कि पुत्र के बिना मेरी यह अपार विभूति और सम्पत्ति किस काम की है? एक दिन की बात है कि जिस भंगिन की कुक्षि में वह स्वर्ग का देव आया था, वह जब सेठजी की पाखाना साफ करने के लिए आई तो उसने सेठानीजी को उदास मुख बैठे देखा। उसने पूछा—सेठानीजी आज इस पर्व के दिन भी आप उदास मुख क्यों बैठी हैं? महत्तरानी के यह पूछते ही सेठानी फफक-फफक कर रोती हुई बोली—महत्तरानीजी, मेरे तो कर्म

चिडी-कमेडी आदि पक्षियो की पुण्यवानी अच्छी है, जो अपनी सन्तान का [illegible] सुख भोगते है। मैं तो सन्तान का मुख देखने की चिन्ता करते करते बूढी हो रही हू। पर सन्तान के मुख को देखने का सुख ही भाग्य मे नहीं है। मैं अपने दु ख की बात तुझे कैसे बताऊ ? नि सन्तान स्त्री ही समझ सकती है। महत्त-रानी बोली— भगवान् भी कैसे उलटे है कि जिनके लिए खाने-पीने की अपार सम्पदा है, उनके तो सन्तान पैदा नही करते और हम गरीबो के यहा [illegible] पर एक देते ही जाते है। मैं तो इस सन्तान से परेशान हो गई [illegible]। सात लडके तो पहिले ही थे और अब यह आठवा फिर पेट मे आगया है। काम करते भी नही बनता। मैं तो भगवान् से नित्य प्रार्थना करती रहती हू कि अब और सन्तान मत दे। परन्तु वे तो मानो ऐसी घोर नींद मे सो रहे है [illegible]। मेरी एक भी नही सुनते है। आप बिना पुत्र के दुखी है। और मैं इन पुत्रो से दुखी हू। ससार की भी कैसी विलक्षण दशा है कि कोई पुत्र के बिना नित्य झूरता रहता है और कोई पुत्रो की भर-मार से काम करते-करते मरा जाता है, फिर भी खाने को नही पूरता है। भाई, इस बात का निर्णय कौन करे कि सन्तान का होना अच्छा है, या नही होना अच्छा है। सन्तान उसे ही प्यारी लगती है, जिसके पास खाने-पीने के सब साधन है। छप्पन के काल मे [illegible] अपनी प्यारी सन्तान को भी भू ज-भू ज कर खा गये।

हा, तो वह महत्तरानी बोली—सेठानीजी, मेरी एक बीनती है—ज्योतिषी ने बताया है कि तेरा यह आठवा पुत्र बडा भाग्यशाली होगा। भगवान् के यहा से तो सब एक रूप मे आते है, पीछे यहा भले-बुरे कर्म करने से [illegible] कहलाने लगते है। सो यदि आप कहे तो मैं अब की बार पुत्र के जन्म लेते ही आपकी सेवा मे हाजिर कर दू ? सेठानी ने कहा—तेरा कहना [illegible] सत्य है। मै सहर्ष उसे लेने को तैयार हू। मगर देख—कही 'बात' [illegible] न हो जाय ? अन्यथा हमारा महाजना मिट्टी मे मिल जायगा। महत्तरानी बोली—सेठानीजी, आप इस बात की बिलकुल भी चिन्ता न करें। [illegible] पुरुष के सिवाय यह बात किसी तीसरे को भी ज्ञात नहीं होने पायेगी। सेठानी ने कहा—यदि बात गुप्त रहेगी तो मै तुझे मालामाल कर दूगी, पर बात किसी तीसरे के कान तक नहीं जानी चाहिए। महत्तरानी बोली [illegible] बिलकुल निश्चिन्त रहे। यह कहकर वह अपने घर चली गई।

एक दिन अवसर पाकर सेठानी ने उक्त बात अपने सेठ [illegible] बोला [illegible], तू तो पुत्र के मोह मे [illegible] और [illegible] उतारू हो गई है ? तब वह बोली—[illegible]

मेतार्य को प्रतिबोध

भाइयो, अब इधर मेतार्यकुमार को आनन्द मे मग्न देख कर उसके स्वर्ग-वासी मित्र देव ने अवधिज्ञान से देखा कि मेरा साथी देव राजगृह नगर मे जुगमन्दिर सेठ के यहा काम-भोगो मे मग्न हो रहा है और उसे अपने पूर्व भव की कुछ भी याद नही आ रही है, तब वह यहा आया और उसे सोते समय स्वप्न मे कहा—मेतार्य, तू पूर्व भव की सब बाते भूल गया है और यहा आकर विषय-भोगो मे निमग्न हो रहा है। अब तू इनको छोड। इनका सग [illegible] दुखदायी होता है। अत अब आत्मकल्याण का मार्ग पकड। मेतार्य ने स्वप्न मे ही कहा—मैं इतनी पुण्यवानी भोगते हुए सर्व प्रकार से आनन्द मे हू। यदि मैं इन्हे छोडकर साधु बन जाऊगा तो मेरे ये मा-बाप अकाल मे ही मर जावेगे। और ये मेरी प्यारी स्त्रिया भी तडफ-तडफ कर मर जावेगी। अत मैं अभी घर-बार नही छोड सकता हू। देवता ने उससे फिर कहा—देख, मेरा कहना मान ले, अन्यथा पीछे पछताना पडेगा। ये स्वजन-सम्बन्धी आदि तेरे साथी नही है। ये तो नदी-नाव के समान क्षणिक मुसाफिरी के साथी है और अपना घाट आते ही उतर कर चले जावेगे। ससार के सब सम्बन्ध मिथ्या है। तू इनमे मत उलझ और अपना कल्याण कर। इस प्रकार देव ने उसे बहुत समझाया। मगर उसके ध्यान मे एक भी बात नही जमी। भाई, आज भी आपके पास ठाठ-बाट है और वर्षों से सासारिक सुख भोग रहे है। फिर भी यदि इधर आने को कहा जाता है तो आप लोगो को बहुत बुरा लगता है। परन्तु आप लोगो की बात ही कितनी-सी है, बडे-बडे बलदेव और चक्रवर्ती भी भोगो से मुख मोडकर चले गये तो उन्होने अमर पद पाया और जिन नारायण-प्रतिनारायणो ने इन्हे नही छोडा, वे ससार मे डूबे और आज भी दुख पा रहे है। निदान हताश होकर वह देव चला गया और मेतार्य भोगो का [illegible] बना हुआ उनमे ही निमग्न रहा।

अब देव ने मेतार्य को सम्बोधन के लिए एक दूसरा ही उपाय [illegible]। उसने मेतार्य के जन्म देने वाले भगी की बुद्धि मे भ्रम उत्पन्न कर दिया कि तू अपने पुत्र को सेठ के यहा से वापिस ले आ। तेरा भी जन्म-जन्म का दारिद्र्य नष्ट हो जायगा। और तू भी सेठ के समान सुख भोगेगा। उसने यह बात अपने साथी अन्य भगियो से कही। तब उसके [illegible] इकट्ठे होकर सेठ के घर पर आये। उस समय मेतार्य [illegible] पर बैठा हुआ दातुन कर रहा था। रास्ते मे भगी [illegible] अपना लडका लेकर ही लौटेगे। लोगो के पूछने पर [illegible]

कल हम लोग नशे मे धुत्त थे, सो आपको पकड लाये। आपने भी तो उस समय कुछ विरोध नही किया। अब चलिये, हम लोग आपको वापिस आपके घर पहुचा आते है। अब सब भगी मेतार्य को लिए जुगनन्दिर सेठ के घर पर पहुचे और बोले—सेठ साहब, अपने कु वर साहब को सभालो। कल हम लोग नशा किये हुए थे, उससे हम अजानपन मे आपके कु वर साहब को पकड ले गये। अब हमे माफी देवे। आप तो हमारे अन्नदाता और प्रतिपालक है। हम लोगो के घर मे क्या ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर और भाग्यशाली पुत्र पैदा हो सकता है? इसने हमारे घर पर कुछ भी नही खाया-पिया है। तभी सेठ के पडौसी और स्वजन-परिजन आ गये और बोले—सेठसाहब, कुवर निर्दोष है, उन्हे किसी ने भी भ्रष्ट नही किया है। चोर-डाकू भी लोगो का अपहरण करके ले जाते है, तो क्या घरवाले उन्हे वापिस स्वीकार नही करते है? अतएव आप इन्हे स्नान कराके और दूसरे वस्त्र पहिना दीजिए। इस प्रकार देव ने सबके हृदयो मे परिवर्तन कर दिया। तब सेठ ने मेतार्य को स्नान कराया कृतिकर्म और मगल-प्रायश्चित्तआदि किये और नये वस्त्राभूषण पहिना दिये। अब मेतार्य घर मे ही रहने लगा। शर्म के मारे वह घर से बाहिर नही निकलता था। उस देव ने जाते समय एक [illegible] रिणी बकरी मेतार्य को भेट की जो दूध भी ढाई सेर देती और सोने की मेगनी (लेडी) करती। अब यह बात चारो ओर फैल गई और दूर-दूर से लोग उसे देखने के लिये आने लगे। चारो ओर अब सेठजी के पुण्य की चर्चा होने लगी। धीरे धीरे यह बात राजा श्रेणिक के कान तक पहुची। उन्होने अभयकुमार से पूछा—क्या सोने की मेगनी देनेवाली बकरी [illegible] है? अभयकुमार ने कहा—हा महाराज सत्य है। पुण्यवानो से और [illegible] देवाज्ञा के बल से कौन सी सिद्धि नही हो सकती है? श्रेणिक ने कहा [illegible] उस बकरी को देखना चाहता हू। अभयकुमार ने सेठ के घर आदमी [illegible]। उन्होने जाकर कहा—सेठ साहब, आपकी उस अद्भुत बकरी को [illegible] देखना चाहते है। मेतार्य ने बकरी देने से इन्कार किया [illegible] बकरी को पकड कर ले गये। जब वह राजाश्रेणिक के सामने [illegible] उसने ऐसी दुर्गन्धित मेगना की कि जिसकी बदबू से राजमहल भर गया और वहा पर ठहरना कठिन हो गया। तब राजा श्रेणिक ने मेतार्य को [illegible] और कहा—अरे, तूने हमारे साथ भी चालबाजी की? मेतार्य [illegible] महाराज, आज तो आपने बकरी पकड मगवायी। कल आगे [illegible] बेटियो को पकड मगवायेगे? [illegible]

अर्थात् जिनमे एक भी गुण नही है, ऐसे निर्गुणी व्यक्ति भी आज [illegible] है, धन के आश्रय से गुणी माने जाते हैं। और भी कहा है—

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि, यस्यार्थस्तस्य बान्धवा।
यस्यार्थः स पुमान् लोके, यस्यार्थ स च पण्डित ॥

अर्थात्—जिसके पास धन है उसके सैकडो लोग मित्र बन जाते है, सैकडो बन्धु-बान्धव हो जाते हैं। वह लोक मे महान् पुरुष कहलाता है और समाज उसे पडित और चतुर भी मानने लगता है।

सर्वेगुणा काचनमाश्रयति

भाइयो, पैसे के पीछे मनुष्य के सब अवगुण ढक जाते है। आज लोग पैसे के ऐसे मोह जाल मे फसे हुए है कि वे न्याय को भी अन्याय और अन्याय को भी न्याय कहते और करते नही चूकते हैं। आज मनुष्य मार कर भी हत्यारा पुरुष अदालत से छूट जाता है। जाति मे यदि कोई गरीब मनुष्य कुछ ओछा काम कर देता है तो आप लोग उसे दड देते हैं। और धनवान् यदि बडे से बडा पाप कर देता है तो उससे कुछ भी नही कहते है। हा, राजा श्रेणिक भी उस मेतार्य के धन के प्रभाव से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होने अपनी पुत्री की शादी उसके साथ कर दी। अब मेतार्य के राजजमाई होते ही उसका यश चारो ओर फैल गया और सब लोग उसका यथेष्ट आदर-सत्कार करने लगे। वह भी कुछ दिनो मे भगियो के द्वारा किये गये अपमान को बिलकुल भूल गया और राजा श्रेणिक की पुत्री के साथ सुख भोग [illegible] आनन्द से काल बिताने लगा।

जब देव ने देखा कि मेतार्य की प्रतिष्ठा पहिले से भी अधिक बढ गई है, तब एक दिन उसने आकर कहा—अरे मेतार्य! अब तो [illegible] मित्र, कुछ दिन और ठहर जा। देव ने देखा कि यह [illegible] अगीकार नही करनेवाला है, तब उसने कहा—देख कल यहा पर भगवान महावीर स्वामी पधारने वाले हैं। तू जाकर के उनकी दिव्य वाणी [illegible] सुनना।

देवत वचनोतें प्रतिबोध्यो, सयम को उर ठानो,
काया माया अथिर अहूको, ज्यो अंजुली को पानो।
इन्द्र धनुष अरु रयण स्वप्न सम, ओपम दीनो जानो
इनमे राचे सो अज्ञानी, विरचे सो गुलतानी ॥

स्वर्ण [illegible]

भाइयो, यह सब किसका प्रताप था ? उस देवता का, जिसने [illegible] स्नेह-वश बार-बार आकर के मेतार्य को संकेत किया। मेतार्य [illegible] अपनी तपस्या बढाने लगे। धीरे-धीरे मासक्षपण का पारणा करने [illegible]। तपस्या के प्रभाव से उनको अनेक ऋद्धिया प्राप्त हो गई। [illegible] होती है, जो महान् तपस्वी होता है। जब भगवान ने वहा से विहार किया तो मेतार्य मुनि ने भी साथ मे ही विहार किया। और बारह वर्ष तक भगवान के साथ विभिन्न देशो और ग्रामो मे विचरते हुए ज्ञान, ध्यान और तप मे लीन रहे। मास-खमण की तपस्या से उनका शरीर सूख कर अस्थि-पंजर [illegible] रह गया। चलते समय उनके शरीर की हड्डिया खडखडाने लगी। शरीर मे यद्यपि चलने की शक्ति नही थी, पर आत्मिकबल के जोर से वे [illegible] रहे थे। कुछ समय के बाद भगवान् फिर राजगृही पधारे। मेतार्य ने मास [illegible] की पारणा के लिए भगवान की अनुज्ञा लेकर नगरी मे प्रवेश किया और उत्तम, मध्यम सभी घरो मे गये, परन्तु कही पर भी निर्दोष आहार नही मिला। इस प्रकार गोचरी के लिए विचरते हुए एक सोनी ने उन्हे पहिचान लिया और वह दुकान से उठकर सामने आया और प्रार्थना की, स्वामिन्, मुझ भिखारी को भी तारो और आहार लेने के लिए भीतर पधारो। [illegible] भावना है कि ये ऋद्धिसम्पन्न, जुगमन्दिर सेठ के पुत्र और राजा श्रेणिक के जमाई मुनिराज है, इनको आहार देने से मुझे धन की प्राप्ति होगी। संसार बडा स्वार्थी है। सामायिक मे बैठना है किन्तु माला [illegible] की फेरता है। पर यदि स्वार्थ की भावना छोडकर भगवान के नाम की माला फेरे तो [illegible]। उसने भीतर ले जाकर उन्हे यथाविधि पारणा कराई। जब वह [illegible] रहा था, तभी एक तीन दिन का भूखा कुकडा उसकी दुकान मे [illegible]। [illegible] पर चेलना रानी के हार के लिए सोने के १०८ जवलिए तैयार रखे हुए थे कुकडे ने उन सबको चुग लिया। सोने की जव पेट मे [illegible] नही सका और घर के भीतर जाकर किसी सुरक्षित स्थान मे बैठ गया। [illegible] मेतार्य मुनि गोचरी लेकर [illegible] और सोनी दुकान पर [illegible]

> [illegible] ने मुनि पाछा फिरिया, सोना जव नहि पाया।
> हाथ जोडकर करे बीनती, स्वर्ण-जव [illegible] गाया॥
> तुम हम दुइ घर मे जन नाहि [illegible]।
> देख्यो होय तो मोहि बताओ, लेगयो [illegible]॥

दुकान मे सोने के [illegible]

सोने के जौ को [illegible]

तडतड-तडतड़ नाड़ी टूटे, अनन्त वेदना व्यापी,
मरण तनो तो भय नहि मनमे, करम जडो ने कापो ॥
काठनी भारी सोनी लीनी, ऊभो हेठी पटके,
वहिल पड़ी पछी ऊधरना, जव वमिया हे झटके ॥

समभाव मे लीनता

मेतार्य मुनि को तीव्र वेदना हो रही है, परन्तु वे समभाव मे लीन है। क्रम-क्रम से एक-एक नस टूटने लगी। भाई, एक भी नस फट जावे तो मनुष्य का मरण हो जाता है। परन्तु उनकी एक पर एक नस टूट रही है और वे अपार वेदना का अनुभव करते भी कर्मो की नसे तोडने मे सलग्न है। इसी समय सुनार ने लकडियो की भारी ली और पीछे के द्वार से उसे नोहरे मे डलवाया। भारी गिरने के साथ ही इधर मुनि का शरीर भूमि पर गिरा और उधर कूकडे के ऊपर लकडी की भारी पडने से उसके पेट मे से वे सोने के एक सौ आठ ही जौ वाहिर निकल आये। सोनी ने भी देखा कि कूकडे की वीट मे वे सोने के जौ पडे हुए है, तव उसने जाना कि इस कूकडे ने वे जौ चुग लिये थे। उसने वे जौ तो उठाकर के दुकान मे रखे और विचारने लगा कि अव तो मैं विना मौत के मारा जाऊगा? क्योकि ये मुनिराज राजा श्रेणिक के जमाई और जुगमन्दिर सेठ के पुत्र है। अव जैसे ही राजा श्रेणिक को मेरे इस दुष्कृत्य का पता चलेगा, वैसे ही वे मुझे मरवाये विना नही छोडेगे। अव क्या करना चाहिए! सहसा उसके मन विचार आया कि अब तो भगवान् की शरण मे जाने से ही परित्राण हो सकता है, अन्यथा नही। यह सोचकर उसने मेतार्य मुनि के कपडे धारण किये। और झोली मे पात्र रखकर तथा हाथ मे रजोहरण लेकर वह सीधा भगवान् के समवसरण मे पहुचा। भाई, जो महापुरुषो का सहारा लेवे तो उसे फिर कोई मारने वाला नही है। उसने जैसे ही समवशरण मे प्रवेश किया कि उसको ईर्या समिति के विना ही आते हुए राजा श्रेणिक ने देखा तो विचार किया कि [illegible] साधु आये है? वह जाकर भगवान् को वन्दन करके साधुओ की [illegible] बैठ गया। राजा श्रेणिक ने पूछा—भगवन्! यहा पर मेतार्य मुनि नही दिखाई दे रहे है? तव भगवान् ने कहा—श्रेणिक, मेतार्य मुनि ने [illegible] कर लिया है। श्रेणिक को इस नवागत साधु पर सन्देह तो हो रहा था और और जब भगवान् से ज्ञात हुआ कि यह नवागत साधु ही इनके [illegible] निमित्त बना है, तब उन्हे उस छद्मवेषी साधु पर भारी रोष आया। [illegible] ने उन्हे सम्बोधन करते हुए कहा—श्रेणिक, इस पर [illegible] नही। इसने तो मुनिराज का उपकार ही किया है। [illegible]

२० | विज्ञान की चुनौती

बन्धुओ, विज्ञान आज हमको चुनौती दे रहा है। जैसे किसी समृद्धिशाली व्यक्ति का पुत्र लापरवाही से अपनी सम्पत्ति को बर्बाद करे और उसके संरक्षण की ओर ध्यान न देवे तो दुनिया उसे उपालम्भ देती है कि अमुक ऋद्धिसम्पन्न व्यक्ति का पुत्र होकर के भी यह क्या कर रहा है। उसी प्रकार से आज के वैज्ञानिक लोग भगवान के विज्ञान-सम्पन्न जैन धर्म के अनुयायी कहे जाने वाले अपन लोगों को चुनौती देकर कह रहे हैं कि तुम्हारा यह ज्ञान उच्च कोटि का है और विज्ञान से परिपूर्ण है। फिर भी तुम लोग उस ज्ञान का उपयोग नहीं कर रहे हो। देखो—भगवान महावीर ने शब्द को मूर्त पुद्गल का गुण कहा था, जब कि प्रायः सभी मतावलम्बियों ने उसे अमूर्त आकाश का गुण माना है। आज टेप-रिकार्डों और ग्रामाफोन के रिकार्डों में भरे जाने से, तथा रेडियो-स्टेशनों से प्रसारित किये जाने और रेडियो के द्वारा सुने जाने से उसका मूर्त्तपना सिद्ध हो गया है। संसार के सभी दर्शन वनस्पति को जड़ या अचेतन मानते थे, किन्तु जैन दर्शन ही उसे सचेतन और उच्छ्वास प्राणादि से युक्त मानता था। सर जगदीशचन्द्र बोस ने यन्त्रों द्वारा उसको श्वासोच्छ्वास लेते हुए प्रत्यक्ष दिखा दिया है। इस प्रकार विज्ञान आज जैन धर्म के एक-एक तत्त्व को विज्ञान की कसौटी पर कस-कर उसकी सत्यता को यथार्थ सिद्ध करते जा रहे हैं और हम जैन धर्मानुयायी कहे जाने वाले धर्म-सम्मत तत्त्वों के प्रकाश के लिए कुछ भी नहीं कर [illegible]

विदेशी वैज्ञानिक एक-एक वस्तु का परीक्षण करने मे लग रहे है और उनके गुण-धर्मों का महत्व ससार के सामने रख रहे है, तभी भौतिक उन्नति मे आज सारा ससार प्रभावित हो रहा है। पहिले यदि किसी प्रसूता स्त्री के दूध की कमी होती थी तो सीपियो के द्वारा बच्चे के मुख मे दूध डालकर बडी कठिनाई से उसका पेट भरते थे। आज उन वैज्ञानिको ने रबर की ऐसी वस्तु तैयार कर दी है कि बच्चा हसते हुए स्तन को चूसते हुए के समान दूध पीता रहता है। भौतिक विज्ञान ने आज भौतिक-सुख के असख्य साधन ससार को तैयार करके दे दिये है और देते जा रहे हैं। फिर भी लोगो के हृदयो मे सुख-शान्ति नही है। सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए हमारे सर्वज्ञो और उनके अनुयायी महर्षियो ने अनेक आध्यात्मिक साधन भी बताये है, पर हम उस ओर से भी उदासीन है। आज सारा ससार उस आध्यात्मिक शान्ति को पाने के लिए लालायित है और ससार को ज्ञान प्रदान करनेवाले भारत की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है। हम ससार को सुख-शान्ति का भी अपूर्व सन्देश दे सकते है, पर हमारा इस ओर भी कोई ध्यान नही है।

कमी साहित्य-की नही, अध्ययन की है

भाइयो, हमारे सन्तो और पूर्वजो ने तो सर्व प्रकार के साधनो का उपदेश दिया और सर्व प्रकार के शास्त्रो का निर्माण किया है। यदि आप शान्तरस का आनन्द लेना चाहते है, तो उसके प्रतिपादक ग्रन्थो को पढिये। यदि आप वैराग्य और अध्यातम रस का आस्वाद लेना चाहते है तो अध्यातम शास्त्रो को पढिये। यदि आप वस्तु स्वरूप का निर्णय करने के इच्छुक है तो न्यायशास्त्रो का अध्ययन कीजिए और यदि सदाचार का पाठ सीखना चाहते है तो आचार-विषयक शास्त्रो का स्वाध्याय कीजिए। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे यहा किसी भी प्रकार के साहित्य की कमी नही है। परन्तु हम उनका अध्ययन ही नही करते है तब उनके लाभ से वचित रहते है और हमारी प्रवृत्तियो को देखकर ससार भी यही समझता है कि यदि इन लोगो के पास कोई उत्कृष्ट साहित्य होता तो ये क्यो नही उसका आनन्द लेते। इस प्रकार हमारी ही अकर्मण्यता और उदासीनता से न हम ही उसका आनन्द ले पाते है और न दूसरो को ही वह प्राप्त हो पाता है। ससार तो अनुकरणशील है। एक व्यक्ति जिस मार्ग से जाता है, दूसरे लोग भी उसका अनुसरण करते है। तभी तो यह उक्ति प्रचलित है कि—गतानुगतिको लोक।

बन्धुओ, जरा विचार तो करो—एक साधारण भोजन बनाने के लिए भी आग, पानी, बर्तन, और भोजन-सामग्री आदि किसी वस्तु की आवश्यकता है

हो जाता है। वे दोनों युगलिया अपना अंगूठा चूसते हुए कुछ दिनों में जवान हो जाते हैं। पुनः वे आपस में स्त्री-पुरुष के रूप में रहने लगते हैं। उस समय वे किसी भी प्रकार का काम-धन्धा नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी आवश्यकताएं उस काल में होने वाले कल्पवृक्षों से पूरी हो जाती हैं। इस आरे का काल-प्रमाण तीन कोडाकोडी सागरोपम है। आयु दो पल्योपम और शरीर उत्सेध दो कोश-प्रमाण होता है। शेष सर्व व्यवस्था प्रथम आरे के समान रहती है। हां, सुख की मात्रा कुछ कम हो जाती है। इसके व्यतीत होने पर सुषम-सुषमा नाम का तीसरा आरा-प्रारम्भ होता है। इसका काल-प्रमाण दो कोडाकोडी सागरोपम है। आयु एक पल्योपम और शरीर-उत्सेध एक कोश प्रमाण है। शेष सर्व व्यवस्था दूसरे आरे के समान रहती है। केवल सुख के अंश में कुछ और कमी हो जाती है और दुख का अंश भी आ जाता है।

कर्म युग का प्रारम्भ

तीसरे आरे के बीतने पर दुषम-सुषमा नाम का चौथा आरा प्रारम्भ होता है। इसमें सुख की मात्रा और कम हो जाती है और दुःख की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। इसी प्रकार आयु घटकर एक पूर्व कोटी वर्ष की रह जाती है और शरीर का उत्सेध भी घटकर पांच सौ धनुष प्रमाण रह जाता है। तीसरे आरे के अन्त में ही भोगभूमि की व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसके पश्चात् कर्मभूमि का प्रारम्भ होता है। भोगभूमि की समाप्ति के साथ ही कल्पवृक्ष भी समाप्त हो जाते हैं। अतः मनुष्य असि, मसी, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। युगलिया व्यवस्था भी बन्द हो जाती है और माता-पिता के सामने ही सन्तान का जन्म होने लगता है। उस समय कुलकर उत्पन्न होते हैं, जो लोगों को रहन-सहन का ढंग सिखाते हैं। विवाह प्रथा, समाज व्यवस्था भी इसी आरे में प्रारम्भ होती है और इसी आरे में चौबीस तीर्थंकर एवं अन्य शलाकापुरुष भी उत्पन्न होते हैं। तीसरे आरे तक के युगलिया जीव मरकर देवों में ही पैदा होते थे।

चौथे आरे में धर्म-कर्म का प्रचार होने से जहां एक ओर मोक्ष का द्वार खुल जाता है, वहां दूसरी ओर नरकादि दुर्गतियों के भी द्वार खुल जाते हैं। अर्थात् इस आरे के जीव अपने पुण्य-पाप के अनुसार मरकर सभी गतियों में उत्पन्न होने लगते हैं। इस आरे की आयु काय आदि उत्तरोत्तर घटती जाती है। घटते-घटते चौथे आरे के अन्त में एक सौ पच्चीस वर्ष की आयु और शरीर की ऊंचाई सात हाथ प्रमाण रह जाती है। इस चौथे आरे के काल का प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपम है। [illegible]

सकेगा, अन्यथा नही। पहिले यदि कोई सन्त कोई एक 'सज्झाय' सुना देते और उसका अर्थ कर देते थे तो लोग उन्हे बहुत बड़ा विद्वान् मानते थे। जबकि आज यदि कोई वैसी सज्झाय सुनावे और अर्थ करे तो आप ही कहते कि यह तो हम ही जानते है।

आज का जमाना नवीनता की ओर जा रहा है अतः युगानुरूप हमे भी नवीनता लानी पडेगी। यह नवीनता कही बाहिर से नही लाना है। किन्तु हमे अपने दिमाग से ही प्रकट करना है। आगमो और शास्त्रो मे आज के लिए उपयोगी पडे ऐसे तत्त्व इधर-उधर बिखरे पडे हुए है, उन्हे एकत्रित करने से और आज की माग के अनुसार उपस्थित करने मे ही उनका प्रकाश होगा और तभी हम आप और दूसरे व्यक्ति उनसे लाभ उठा सकेंगे।

भाइयो, आप लोग व्यापारी है और अपने-अपने व्यापार की कला मे कुशल है। कपडे का व्यापारी जानता है कि आज किस जाति के कपडे की माग है और वह कहा-कहा से आता है, इस बात का पता-ठिकाना याद रखता है। तथा वहाँ-वहा से लाकर अपनी दुकान को सजा करके रखता है, तभी उसकी दुकान चलती है और वह लाभ प्राप्त करता है। जहा जिस कपडे की माग नही हो और वह उसे लाकर के दुकान मे रखे तो न वह बिकेगा ही और न लाभ ही वह प्राप्त कर सकेगा। आपके यहा [illegible] बनाते है और आठ रुपये किलो बिक जाता है। किन्तु यदि वही [illegible] मे ले जाकर के बेचे तो उसे कौन खरीदेगा? जहा पर जिस समय जिस वस्तु की माग होती है, वहा पर और उस समय वही वस्तु बिकती है। [illegible] अन्न की माग है। यदि दो सौ गाडी भी अन्न की आजावे तो [illegible] जावेगी। और यदि ऊनकी दो सौ गाडी आजावें तो नही बिकेगी, [illegible] ऊन की मडी या कारखाने नही है। जैसे कि [illegible] लोग व्यापार करते है, उसीप्रकार आत्मा का भी व्यापार है। [illegible] वस्तु को चाहती है और जिससे आत्मा का उत्थान हो [illegible] अनुरूप ही हमे ज्ञान-प्राप्ति के [illegible] की आवश्यकता है।

[illegible]

वर्तमान मे जो भौतिक विज्ञान की [illegible] आप सहज मे नही हो रही है। उसके पीछे [illegible] साधना है। वे लोग अपना [illegible] नही करते रात-दिन [illegible] [illegible]

२१ | ज्ञान की भक्ति

बन्धुओ, आज ज्ञान पचमी है। ज्ञान की भक्ति हमें कैसी करनी चाहिए और ज्ञान की आराधना कैसे करना चाहिए और क्यों करना चाहिए? ये सब बातें हमारे लिए ज्ञातव्य हैं, इसलिए आज इस विषय पर प्रकाश डाला जाता है।

संसार में सर्व वस्तुओं में और आत्मा के सर्व गुणों में ज्ञान ही सबसे उत्कृष्ट और पवित्र है। कहा भी है—

न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते।

इस संसार में ज्ञान के सदृश और कोई वस्तु पवित्र नहीं है। सन्त पुरुषों ने भी कहा है—

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
यह परमामृत जन्म जरा मृति रोग नशावन॥
तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजै,
संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लखि लीजै॥

भाइयो, ज्ञान के समान इस संसार में सुख का कारण और कोई पदार्थ नहीं है। यह ज्ञान जन्म, जरा और मरण, इन तीन रोगों का नाश करने के लिए परम रसायन के समान है। इसलिए [illegible]
[illegible]

बारहवा दोष है। अस्वाध्याय के दिनो मे स्वाध्याय करना यह तेरहवा दोष है और स्वाध्याय के दिनो मे स्वाध्याय नही करना यह चौदहवा दोष है।

अस्वाध्याय दोष

आजकल अधिकाश लोग अन्तिम चार दोषो की तो कुछ परवाह ही नही करते है और समझते है कि हम तो भगवान की वाणी ही वाचते है, उसे वाचने मे क्या दोष है। परन्तु भाई, भगवान ने जब स्वय इन्हे दोष कहा है, तब इनमे कोई गभीर रहस्य है। वह रहस्य यही है भगवान् की यह आज्ञा है कि 'काले काल समाचरेत्' अर्थात् जो कार्य जिस समय करने का है, उसे उसी समय मे करने पर वह भली भाति से सम्पन्न होता है और उसका जैसा लाभ मिलना चाहिए, वह मिलता है। अकाल मे स्वाध्याय करने पर अनेक दोष उत्पन्न होते है। जैसे तीनो सन्ध्याए, चन्द्र-सूर्यग्रहण आदि के समय को स्वाध्याय का अकाल कहा गया है। इस समय स्वाध्याय करने से बुद्धिमन्दता और दृष्टिमन्दता प्राप्त होती है। रजस्वला स्त्री को भी स्वाध्याय का निषेध किया गया है, क्योकि उस समय उसके शारीरिक अशुद्धि है। पहिले सब स्त्रिया रजस्वला काल मे घर का कोई काम नही करती थी। परन्तु आज इसका कोई विचार नही रहा है। अरे, जिस रजस्वला के देखने और शब्द सुनने मात्र से बडी-पापड तक खराब हो जाते है। तथा रजस्वला स्त्री की नजर यदि पिजारे की तात पर पड जाये तो वह टूट जाती है। कहा भी है—

छाय पडे जो छाण पर, मृतक ही मर जाय।
जीवित नर नारी निकट, ज्ञान कहा ठहराय।

उन्हे तो घर के किसी काम मे हाथ भी नही लगाना चाहिए। तब शास्त्र-स्वाध्याय करना तो बहुत बडी बात है। ऐसे समय स्वाध्याय करने से ज्ञान की आसातना होती है। अतएव ज्ञान सभी दोषो [illegible] स्वाध्याय करना चाहिए।

शास्त्र की अवहेलना

कुछ अज्ञ जन लोग शास्त्रो का पूजन करने और उनके आगे आरती जलाने एव अक्षत-पुष्प चढाना आदि करने को ही ज्ञान भक्ति समझते है। पर स्वाध्याय करने का नाम भी नहीं लेते है। अनेक स्थानो पर देखा जाता है कि जिनमन्दिर [illegible] प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रो [illegible]
[illegible]

एक क्षण मात्र मे सहज ही मे क्षय कर देता है। ज्ञान की महिमा [illegible] हुए और भी कहा है—

जे पूरब शिव गये, जाहि, अरु आगे जैहैं,
सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनिनाथ कहैं ॥

पूर्वकाल मे जितने जीव मोक्ष गये है, वर्तमान मे महाविदेह क्षेत्र से जा रहे है और आगे जावेंगे, सो यह सब ज्ञान की ही महिमा है, इसलिए हम सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए सदा उद्यम करते रहना चाहिए। यह ज्ञान पचमी उक्त पाचो ज्ञानो की प्राप्ति के अपने लक्ष्य को स्मरण कराने के लिए ही प्रति वर्ष आती है और पचमी की तिथि को इसीलिए पर्व माना गया है।

ज्ञान की शोभा-विनय

बन्धुओ, जैसे मनुष्य की शोभा स्वच्छ और पदोचित वस्त्र पहिरने से है, उसी प्रकार आत्मा की शोभा निर्मल ज्ञान से है। निर्मल ज्ञान की प्राप्ति ज्ञान और ज्ञानी की विनयपूर्वक आराधना से होती है। यही कारण है कि भगवान ने अपने अन्तिमकालीन उपदेशो मे अर्थात् उत्तराध्ययन मे सर्वप्रथम विनय का उपदेश दिया है। वहा बताया गया है कि सर्वप्रकार के दुर्भावो को दूर करके सद्भाव पूर्वक गुरु की आज्ञा का पालन करे, गुरु के [illegible] बैठे उनकी बात का उत्तर आसन पर बैठे या लेटे हुए न देवे, किन्तु उठकर, सामने जाकर और हाथ जोड़कर देवे। इसी प्रकार विनयपूर्वक ही किसी बात को पूछे। क्योंकि ज्ञान और ज्ञानी की आसातना या विराधना करने से ज्ञान और चारित्र की विराधना होती है। अज्ञानी और [illegible] ठहरता ही नहीं है शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जैसा कि कहा है—

अभ्रच्छाया खलप्रीतिः, पराधीनेषु वा सुखम्।
अज्ञानिना च वैराग्यं, क्षिप्रमेव विनश्यति ॥

भाई, मेघ की छाया का कोई पता नहीं है। उसे [illegible] नहीं [illegible] है। दुर्जन पुरुषों की प्रीति और बालू [illegible] प्रतिष्ठा [illegible] और जैसे [illegible] पुरुषों का [illegible] है कि [illegible]

किया, ज्ञानी का अपमान किया और ज्ञान की विराधना की। उसका फल [illegible] ये दोनो भोग रहे है। इनके पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार है सो हे राजन्! ध्यानपूर्वक सुनो।

ज्ञान की विराधना का कुफल

आज से तीन भव पहिले तुम्हारा राजकुमार एक सेठ का लडका था और यह गू गी सेठ की लडकी उसकी मा थी। जब वह लडका आठ वर्ष का हो गया तो उसने पढने के लिए गुरु की पाठशाला मे भेजा। परन्तु वह मन लगा कर कभी नही पढता था। जब समझाने पर भी उसने पढने मे मन नही लगाया तो गुरु ने ताडना-तर्जना दी। वह घर भाग गया और अपनी मा से बोला— मै अब पढने नही जाऊगा क्योकि गुरुजी मुझे बहुत मारते है। उसकी मा ने कहा—अब कल से पढने मत जाना और उसकी पट्टी पुस्तक लेकर चूल्हे मे जला दी। जब वह लडका दूसरे दिन पढने के लिए शाला मे नही गया तो गुरु ने लडके भेजकर सेठ से उसके नही आने का कारण पूछा। सेठ ने घर जाकर सेठानी से पूछा कि लडका पढने क्यो नही गया। उसने कहा—मेरा यह फूलसा सुकुमार लडका मारने-पीटने के लिए नही है। फिर पढा-लिखा करके करना भी क्या है? घर मे अटूट सम्पत्ति है। सेठ ने बहुत समझाया और कहा भी कि सम्पत्ति का कोई भरोसा नही, क्षणभर मे नष्ट हो सकती है और ज्ञान तो आत्मधन है, उसे न चोर चुरा सकते है, न आग-पानी नष्ट कर सकते है। ज्ञान से मनुष्य की शोभा है, इत्यादि रूप से बहुत कुछ कहा। मगर वह नही मानी और लडके को पढने नही भेजा। धीरे-धीरे वह कुसग मे पडकर दुर्व्यसनी हो गया और घर का सारा धन [illegible]। उस के दुख से दुखी होकर सेठ भी मर गया। अब वह और उसकी माता दोनो दुख मे दिन काटने लगे। एक दिन वह लडका घूमता हुआ [illegible] मे पहुचा। वहा पर ध्यान मे किसी साधु को देखकर तिरस्कार [illegible] उनके ऊपर थूक दिया और उखाड कर उनके [illegible] पर [illegible] दिया। मुनिराज ने वह परीषह शान्ति से सहन किया। मगर [illegible]

आयु पूर्ण होने पर मरकर वह [illegible] नारकी हुआ। [illegible]

कर यह तेरा पुत्र हुआ है और [illegible]

मा ने ज्ञान की अवहेलना की और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भाति सचालन करने लगे। गरीब असहाय छात्रो के लिए उन्होंने छात्रावास और भोजनालय भी खोले और योग्य अध्यापको को आजीविका से निश्चिन्त कर पठन-पाठन की व्यवस्था भी करके ज्ञान का समुचित प्रचार करते हुए स्वय भी ज्ञानाभ्यास करने लगे। यथासमय सथारा पूर्वक मरण करके देवलोक में उत्पन्न हुए और अब वे वहा से आकर और मनुष्य जन्म धारण करके तथा सयम को पालन करके मोक्ष को जायेगे।

भाइयो, इस प्रकार से यह ज्ञान पचमी का तप प्रचलित हुआ है। आज जिनको सर्व प्रकार की सुविधा है और शरीर मे कोई रोग नही है, वे पुरुष यदि ज्ञान की आराधना करेंगे, असहाय विद्यार्थियो को पढने-पढाने मे सहायता देगे, ज्ञान की सस्थाए खोलेगे और ज्ञान का प्रचार करेगे तो वे इस भव मे यश को प्राप्त करेगे और परभव मे ज्ञान और सुख को प्राप्त करेगे। इसलिए भाइयो, अपने द्रव्य का सदुपयोग करके ज्ञान की गगा बहाओ। ये धन-दौलत सब यही पडी रह जावेगी। यदि सद्ज्ञान का उपार्जन कर लोगे तो यही साथ जावेगी। कहा भी है—

> धन समाज गज राज तो साथ न जाव।
> ज्ञान आपका रूप, भये थिर अचल रहावे॥
> तास ज्ञान को कारण स्व-पर विवेक बखानो।
> कोटि उपाय बनाय, भव्य, ताको उर आनो॥

ज्ञान आत्मा का स्वरूप है, यदि वह एक बार भी प्रकट हो जाये तो सदा स्थिर-अचल रहता है। इसलिए कोटि-कोटि उपाय करके हे भव्य पुरुषो! इस स्व-पर विवेकी ज्ञान की आराधना करो। तभी तुम्हारा जन्म सफल होगा।

बिना पढ़े ही ज्ञानवान

जिसके पास ज्ञान है, वही ज्ञानी और [illegible]

[illegible]

प्रतिनिधि थे। तब पार्वतीजी ने कहा—अरे मदन, तू मेरी ओर से आ। अन्यों का मुझे भरोसा नहीं है। यदि पत्री को मंजूर कर लिया तो मैं पंजाब में नहीं विचरने दूंगी। मदनलालजी में इतनी विद्वत्ता थी, तब उन्होंने उन्हें अपना प्रतिनिधि बनाया। भाई, भीतर में विद्वत्ता हो और समय-सूचकता हो तो वह छिपी नहीं रहती है।

एक बार रिखराजजी स्वामी यहां जोधपुर में पधारे और [illegible] मोहल्ला वाले स्थानक में ठहर गए। उन्होंने रात को महाभारत सुनाना प्रारम्भ किया। उनकी प्रवचन शैली उत्तम रोचक थी और कण्ठ भी सुरीला था। अतः जनता खूब आने लगी। और सारे शहर में उनकी प्रशंसा होने लगी। तब यहां पर कविराज मुरारदानजी बहुत अभिमानी विद्वान् थे। वे समझते थे कि इन ढूंढिया साधुओं में कोई विद्वान् नहीं है। फिर ये क्या महाभारत का प्रवचन करते होंगे। फिर भी प्रशंसा सुनकर सौ-पचास आदमियों को साथ लेकर उनके प्रवचन में गये। कुछ देर सुनने के बाद मुरारदानजी बोले—महाराज! बताइये कि जब युधिष्ठिरजी पानी पीने के लिए गये तो उनसे कौन से प्रश्न पूछे गए थे और उन्होंने क्या उत्तर दिया था? तब स्वामी रिखराजजी ने शार्दूल-विक्रीडित छन्द में संस्कृत भाषा के द्वारा जो उत्तर सुनाया तो कविराजजी दांतों तले अंगुली दबाकर रह गए और बोले—महाराज, माफ करना। मुझे नहीं मालूम है कि आप लोगों में भी ऐसे दिग्गज विद्वान् हैं? मैंने तो हिन्दी में ही पूछा और आपने संस्कृत छन्द में उत्तर दिया। भाई, भीतर में माल हो, तभी धाक जम सकती है। कहा भी है—

बिन पूंजी के सेठजी, बिना सत्व को राज।
बिना ज्ञान के साधुता, कैसे सुधरे काज॥

जब भीतर में विद्वत्ता और प्रतिभा होती है, [illegible] यश प्राप्त कर पाता है। अन्यथा पराजय का अपमान सहन करना पड़ता है। यह प्रतिभा और विद्वत्ता कब प्राप्त होती है? जबकि मनुष्य [illegible] होकर ज्ञान की भक्ति, आराधना और उपासना करता है। जो [illegible] भक्ति और उपासना करते हैं, स्वाध्याय में [illegible] हैं और [illegible] विनय करते हैं, उनका ज्ञान संसार में [illegible] है और वे स्वयं [illegible] मुक्ति [illegible] हैं।

आज ज्ञान पंचमी के दिन [illegible] प्रतिदिन कुछ न कुछ नवीन [illegible] रहे? [illegible] —

२२ | मनुष्य की चार श्रेणियां

भाइयो, मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—एक उदार, दूसरे अनुदार, तीसरे सरदार और चौथे मुर्दार। उदार नाम विशालता का है। विशाल हृदय वाला उदार व्यक्ति जहाँ भी जाकर खड़ा होता है, बैठता है, अथवा किसी भी काम को करता है, सर्वत्र उसकी उदारता समान रूप से प्रवर्तित रहती है। वह किसी को दुखी नही देख सकता है, वह पर के दुःख को अपना ही दुःख मानता है और इसीलिए उसके दुःख को तत्काल दूर करने का प्रयत्न करता है। वह दूसरे के कार्य को अपना ही कार्य समझता है। यदि किसी का कोई काम बिगड़ता हुआ देखता है, तो वह बिना कहे ही उसे सुधारने का प्रयत्न करता है। वह बिना किसी के याचना किये ही दूसरे की सहायता करता है। उसकी सदा यही भावना रहती है कि—

> सर्वेऽपि सुखिन सन्तु, सन्तु सर्वे निरामया।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

संसार के समस्त प्राणी सुखी हों, सभी निरोग रहें, [illegible] को प्राप्त हों। किन्तु कोई भी प्राणी दुःख को प्राप्त न हो। [illegible] भावना है उदार व्यक्ति की, जो स्वप्न में भी किसी का [illegible] देखना चाहता है। और [illegible] भावना रखता है। इसीलिए [illegible] कहा गया है।

२२ | मनुष्य की चार श्रेणियां

भाइयो, मनुष्य चार प्रकार के होते है—एक उदार, दूसरे अनुदार, तीसरे सरदार और चौथे मुर्दार। उदार नाम विशालता का है। विशाल हृदय वाला उदार व्यक्ति जहा भी जाकर खडा होता है, बैठता है, अथवा किसी भी कार्य को करता है, सर्वत्र उसकी उदारता समान रूप से प्रवर्तित रहती है। वह किसी को दुखी नही देख सकता है, वह पर के दुख को अपना ही दुख मानता है और इसीलिए उसके दुख को तत्काल दूर करने का प्रयत्न करता है। वह दूसरे के कार्य को अपना ही कार्य समझता है। यदि किसी का कोई कार्य बिगडता हुआ देखता है, तो वह बिना कहे ही उसे सुधारने का प्रयत्न करता है। वह बिना किसी के याचना किये ही दूसरे की सहायता करता है। उसकी सदा यही भावना रहती है कि—

> सर्वेऽपि सुखिन सन्तु, सन्तु सर्वे निरामयाः।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाक् भवेत् ॥

संसार के समस्त प्राणी सुखी हों, सभी निरोग रहें, और सभी आनंद को प्राप्त हों। किन्तु कोई भी प्राणी दुख को प्राप्त न हो। [illegible] भावना है उदार व्यक्ति की, जो स्वप्न में भी किसी भी प्राणी को दुखी नहीं देखना चाहता है। और सबके कल्याण की, सुखी और निरोग रहने की भावना रखता है। इसीलिए तो कहा गया है कि—

अय निज परो वेति, गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्वकम्॥

भाई, यह अपना है और यह पर है—दूसरा है— ऐसी गिनती तो लघु हृदय वाले क्षुद्र व्यक्ति किया करते हैं। किन्तु जो पुरुप उदारचरित हैं—विशाल हृदय वाले होते हैं वे तो सारे ससार को अपना ही कुटुम्व मानते हैं। जैसे—कुटुम्वका प्रधान पुरुप अपने कुटुम्व की सार-सभाल करता है और उसके दु ख दूर करने को सदा उद्यत रहता है, उसी प्रकार उदार व्यक्ति भी प्रत्येक प्राणी के दु ख दूर करने का अपना कर्त्तव्य समझता है और उसे दूर करने का तत्काल प्रयत्न करता है। यही कारण है कि सभी लोग उससे प्यार करते हैं। और स्नेह की दृष्टि से देखते है। मनुष्य की तो वात ही क्या है, पशु-पक्षी और खूख्वार जानवर तक उसे स्नेह से और कृतज्ञता-भरी आखो से देखते हैं। आप लोगो ने देखा होगा कि जो व्यक्ति अपनी गाय-भैंसो के ऊपर सदय व्यवहार करते है, उनको समय पर खाना-पानी देते हैं और प्रेम से उनके ऊपर हाथ फेरते हैं, वे जानवर उस व्यक्ति की ओर कितनी ममतामयी नजर से देखते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट करते रहते हैं।

सिंह ने भी स्नेह किया

हमने अपने वचपन मे हिन्दी की पाठ्य पुस्तक मे पढा था कि एक वार एक मनुष्य किसी जगल से जा रहा था, उसे एक स्थान पर झाडी मे से किसी जानवर के कराहने की आवाज सुनाई दी। उसका हृदय करुणा से प्रेरित हुआ और वह उधर गया—जहा से कि आवाज आरही थी। उसने देखा कि एक सिंह (बव्वर शेर) पीडा से कराह रहा है। वह निर्भय होकर उसके समीप गया तो देखा कि उसके एक पजे मे वहुत वडा कॉटा लगा हुआ है और उससे खून निकल रहा है। उसने सिंह के पजे को पकडकर पहिले तो हाथ से काटा खीचने का प्रयत्न किया। पर जव वह नही निकला तो उसके पजे को उठाकर अपने मुख के पास करके और अपनी दाढो मे काटे के ऊपरी भाग को दबाकर पूरी ताकत से जो खीचा तो काटा निकल आया। पर खून की धारा और भी अधिक जोर से बहने लगी। उसने अपने साफे से एक पट्टी फाडी और पास की झाडी से कोमल पत्ते तोडकर और उन्हे मसल कर घाव पर रख के ऊपर से पट्टी वाधकर अपने घर चला आया। भाग्यवश वह किसी अपराध मे पकडा गया और उसे सिंह के सामने खाने को छोडने की सजा सुनाई गई। इधर भाग्य से उक्त सिंह भी पैर के दर्द से भागने मे असमर्थ होने के कारण पकडा गया था और राजा के पिंजडे मे बन्द था। जव पिंजड़े का द्वार खोला

गया और सिह उस व्यक्ति के सामने आया, तो उसने उसे देखते ही पहिचान लिया कि यह तो वही उपकारी पुरुष है, जिसने कि मेरा काटा निकाला था, अत उसकी ओर कृतज्ञता भरी नजर से देखकर और उसके चरण-स्पर्श करने के बहाने से मानो पैर चाटकर और प्रदक्षिणा देकर वापिस अपने पिंजरे मे चला गया। राजा ने भी उस पुरुष को निर्दोष समझ कर छोड़ दिया।

भाइयो, देखा आपने उदारता और दूसरे के दुख मे सहायता करने का प्रभाव—कि खूखार और भूखे सिह ने भी उसे नही खाया। इसी प्रकार जो पुरुष बिना किसी भेद-भाव के पक्षपात-रहित होकर सभी प्राणियो के प्रति उदार भाव रखते हैं, करुणा रस से जिनका हृदय भरा रहता है और निरन्तर दूसरे के दुख को दूर करते रहते है, वे ससार मे सर्वत्र निर्भय विचरते है और सब जनो के प्रिय होते हैं।

उदार के हृदय मे कण कण मे रस

उदार व्यक्ति कभी यश का भूखा नही होता। दूसरे का बडे से बडा भी उपकार करके न उससे प्रत्युपकार की ही भावना रखता है और न ससार से यश पाने की ही कामना करता है। वह तो जो कुछ भी दूसरो के साथ भलाई का काम करता है, उसे अपना कर्तव्य मान कर ही करता है। वह नाम का नही, कामका भूखा होता है। उसकी आत्मा मे—रग रग मे करुणा का ऐसा रस भरा होता है जैसे कि सेलडी के प्रत्येक कण मे मिष्टरस भरा होता है। उदार व्यक्ति के पास कोई मनुष्य किसी भी सकट के समय उसे दूर करने की भावना से जाय तो वह उसके सकट को तत्काल दूर करता है और उसे आश्वासन देता है कि आप इस सकट से बिलकुल नही घबराइए, मैं आपका ही हू, यह सकट आप पर नही, किन्तु मेरे ही ऊपर आया है और इसे मैं अपना तन, मन और धन लगा करके दूर करूगा। इस प्रकार उदार पुरुष प्रत्येक व्यक्ति के साथ अपने कुटुम्बी के समान ही व्यवहार करता है। उसमे अहकार नाम मात्र को भी नही होता है।

अनुदार मनुष्य

दूसरे प्रकार के अनुदार मनुष्य होते है। उनके हृदय मे उदारता का नाम भी नही होता। अनुदार व्यक्ति स्वार्थपरायण [illegible] होते है। अनुदार मनुष्य स्वय तो कृपण होता है, पर वह यदि किसी अन्य [illegible] [illegible] है, तो वह उसकी [illegible] भी [illegible] व्यवहार करता है। [illegible]

साथ भी वह अनुदारता रखता है और उन्हे भरपेट खाना नही देता। ऐसा करने से भले ही उसे दूध कम मिले, पर उसका उसे विचार नही होता। अनुदार मनुष्य अपनी स्त्री पुत्रादि के साथ भी कृपणता करता है और उनके समुचित आहार-विहार की भी व्यवस्था नही करता है। और तो क्या, ऐसा व्यक्ति अपने भी आहार-विहार मे कजूसी करता है। अनुदार व्यक्ति यदि रेल मे मुसाफिरी कर रहा है तो चार व्यक्तियो के स्थान को घेर कर स्वय सोना चाहता है, पर स्त्रियो और छोटे छोटे बच्चो को खडे देखकर उन्हे बैठने के लिए स्थान नही देता है बल्कि स्थान देने के लिए कहने पर लडने को उद्यत होता है। अनुदार मनुष्य रुपये का काम पैसे से ही निकालने का प्रयत्न करता है। वह वचनो तक मे अनुदार होता है। यदि किसी का बिगडता काम उसके बोलने मात्र से बनता हो तो वह बोलने मे भी उदारता नही दिखा सकता। जबकि सस्कृत की सूक्ति तो यह है कि 'वचने का दरिद्रता' *अर्थात्* वचन बोलने मे दरिद्रता क्यो करना, क्योकि बोलने मे तो पास का धन कुछ खर्च होता नही है। पर अनुदार मनुष्य बोलने मे भी अनुदार ही होता है। ऐसे व्यक्ति का हृदय बहुत कठोर होता है, दूसरो को दुख मे देखकर भी उसका हृदय पसीजता तक नही है। कोई भी जाकर उससे अपना दुख कहे तो वह मौखिक सहानुभूति भी नही दिखा सकता। सक्षेप मे इतना ही समझ लीजिए कि अनुदार मनुष्य उदार पुरुष से ठीक विपरीत मनोवृत्ति वाला होता है। इनसे किसी भी व्यक्ति का उपकार नही होता, प्रत्युत अपकार ही होता है। अनुदार मनुष्य तो पृथ्वी के भार भूत ही होते हैं। जबकि उदार व्यक्ति पृथ्वी के उद्धारक एव ससार के उपकारक होते है।

आन बान का पक्का

तीसरे प्रकार के सरदार मनुष्य हैं। उनके भीतर सदा ही बडप्पन का भाव बना रहता है। सरदार मनुष्य सोचता है कि जब लोग मुझे बडा मानते हैं और सरदार कहते हैं तो मैं हलका काम कैसे करूँ? मुझे तो अपने नाम के ही अनुरूप कार्य करना चाहिए। सरदार मनुष्य देश पर, समाज पर धर्म के ऊपर सकट आने पर उसकी रक्षा के लिए सबमे आगे जाकर खडा होता है। उसके हृदय मे ये भाव उठते रहते हैं कि—

'सर जावे तो जावे, पर शान न जाने पावे।

जो देश, समाज और धर्म की रक्षा के लिए सिर देने को सदा उद्यत रहता है, वही सरदार कहलाता है। रईसी प्रकृति के लोग भी सरदार कहलाते हैं। उनके पास जो भी व्यक्ति कामना से जाता है वह खाली हाथ नही

लौटता । वे पडितो, कवियो, ज्योतिषियो और कलाकारो का सन्मान करते है । उनके हृदय मे यह विचार बना रहता है कि मैने उच्च कुल मे जन्म लिया है, और लोग मुझे सरदार कहते है तो उस नाम के अनुरूप काम करना ही चाहिए । अन्यथा मेरा जीवन बेकार है और मुझे धिक्कार है । इस प्रकार से स्वाभिमान की धारा उनके हृदय मे सदा बहती रहती है । ऐसे सरदार लोग धन के खर्च करने मे बडे उदार होते है, उसकी उनको चिन्ता नही होती है ।

एक बार सालुम्बर रावजी अपने महल मे जा रहे थे, तब एक भुजबन्द की डोरी टूट गई और वह पिछोले के पानी मे गिर गया । उन्होने इसका कोई खयाल नही किया और भीतर चले गये । वहा पर चवर ढोरनेवाले ने भुजबन्द के गिरने की बात कही, तो उन्होने उस पर कोई ध्यान नही दिया । जब वे वापिस उधर से निकले और मौके पर आये और दूसरा भुजबन्द भी खोलकर पानी मे डालते हुए उस व्यक्ति से बोले—क्यो यही गिरा था । उसने कहा—मालिक, दूसरा भी क्यो डाल दिया तो बोले—अरे, तुझे [illegible] हाथ कैसे बतलाता । भाई ऐसे-ऐसे भी सरदार लोग होते है कि अनर्थक [illegible] करते हुए भी हाथ सकुचित नही करते है ।

जिन सरदार को अपनी सरदारगी का ख्याल होता है, जहा से निकल जाये या जहा भी पहुच जाये, अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप कार्य किए बिना नही रहते । ऐसे लोग ही जनता के हितार्थ को बडे बडे औषधालय, विद्यालय और भोजनालय खुलवाते है । उनकी दृष्टि अपने मोहल्ले मे, गाव की गलियो पर और नगर-निवासी प्रत्येक मनुष्य पर रहती है और यही चाहते है कि मेरे नगर मे कोई दुखी न रहे । सब मेरे समान सन्मान के साथ जीवन-यापन करे । न वे किसी का अपमान करते है और न स्वय अपमान सहन करते है । [illegible] की सूक्ति भी है—

उत्तमा मानमिच्छन्ति, धन-मानो च मध्यमा. ।
अधमा धनमिच्छन्ति मानो हि महता धनम् ॥

अर्थात्— उत्तम पुरुष सन्मान चाहते है । किन्तु अधम पुरुष [illegible] ही चाहता है, [illegible] उसके पीछे उसे कितना ही अपमान [illegible] पडे । भाई महापुरुषो के तो मान ही [illegible] धन है और [illegible] मान की रक्षा के लिए सदा उद्यमशील रहते है । कहा भी है

आत्मा सदा पर कार्ये, [illegible] ।

सत पुरुपो की आस्था यशरूपी शरीर मे होती है, इस अस्थायी पौद्गलिक शरीर मे उनकी निष्ठा नही होती है ।

मुर्दार मनुष्य

चौथे प्रकार के मुर्दार मनुष्य हैं । साहस-हीन, उत्साह-हीन, कायर और अकर्मण्य पुरुपो को मुर्दार कहते है । ऐसे मनुष्यो का हृदय सदा निराशा से परिपूर्ण रहता है । उनमे आत्म-विश्वास की वडी कमी होती है । ऐसे व्यक्ति से यदि कोई कहता है कि हाथ पर हाथ रखे क्यो बैठे हो ? कोई धन्धा क्यो नही करते ? तो वह कहता है कि यदि नुकसान हो गया, तो मैं क्या करूँगा ? उसमे धीरता का नाम नही होता । किसी काम को करने का साहस नही होता । उनके सामने यदि कोई धर्म का या वहिन-वेटी का अपमान करता है, या उसकी इज्जत-आवरू लूटता है तो वह अकर्मण्यक और कायर वना देखता रहेगा । यदि कोई उसे मुकाविला करने के लिए ललकारता भी है तो कहता है कि मैं क्या कर सकता हू, जो होना होगा, वह होगा । वह सदा दैव पर अवलम्बित रहता है और पुरुपार्थ से दूर भागता है । इसीलिए किसी सस्कृत कवि को कहना पडा कि—

'दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।'

अर्थात्—कायर पुरुप कहते हैं कि जो कुछ सुख-दुख देने वाला है, वह दैव ही है । मैं क्या कर सकता हू ।

आज के समय मे ऐसे मुर्दार मनुष्यो की कमी नही है । भाई, जो जीवन से थक गये, वूढ़े और अपाहिज हो गये हैं, वे यदि मुर्दारपने की वात कहे, तो ठीक भी है । किन्तु जव हम नौजवानो को यह कहते सुनते हैं कि हम क्या करें, हमे कोई सहारा देनेवाला नही है, तो सुनकर वडा दु ख होता है । अरे तुम्हारे अन्दर नया खून है, हड्डियो मे ताकत है और तोड-फोड करने के लिए स्फूर्ति और उत्साह है । फिर भी तुम लोग इस प्रकार से अपने ही जीवन-निर्वाह के लिए कायरता और मुर्दारपना दिखाते हो, तो आगे जीवन मे क्या सरदारपना दिखाओगे ? तुम्हे परमुखापेक्षी होने की क्या आवश्यकता है ? प्रकृति ने तुमको दो हाथ और पैर काम करने के लिए दिये हैं और मस्तिष्क विचार करने के लिए दिया है । फिर भी जव तुम अपनी ही रोटी की समस्या स्वय नही सुलझा सकते हो, तो दूसरो की क्या सुलझाओगे ? इन छोटे-छोटे पक्षियो को देखो– जो किसी की भी सहायता नही चाहते हैं और पुरुपार्थ से अपना चुगा स्वय खोजते रहते हैं । परन्तु आज के पढे-लिखे और

बडी-बडी डिग्रीधारी मनुष्य सरकार से कहते है कि हमे रोजी और रोटी दो। ऐसे नवयुवको और पढ़े-लिखे लोगो को धिक्कार है जो रोजी और रोटी के लिए ही दूसरो का या सरकारी साधनो के विनष्ट करने मे और हो-हल्ला मचाने मे लगाते हो, वही यदि किसी निर्माण कार्य मे लगाओ तो तुम्हारा [illegible] पार हो जाय।

बेकार मत बैठो, पुरुषार्थ करो!

एकबार एक नौजवान ने, पुरुषार्थी बनने की बात कहनेवाले पुरुष से पूछा बताइये, मे पढा-लिखा हू और हर काम को करने के लिए तैयार हू और बेकारी के कारण भूखो मर रहा हू क्या काम करूँ? उसने तुरन्त उत्तर दिया कि भाई, पढे-लिखे होने पर भी यदि तुम्हे कोई काम नही सूझता है और भूखे मरने की नौबत आ गई है, तो सवेरे उठते ही यह काम करो कि एक बुहारी लेकर अपने घर से निकलो और अपने घर का द्वार साफ करके लगातार हर एक व्यक्ति के घर का द्वार साफ करते हुए चले जाओ। आगे की ओर देखो भी नही? जब कोई पूछे कि यह काम क्यो कर रहे हो तो कहो कि बेकार बैठे भूखो मरने मे तो कुछ काम करते हुए मरना अच्छा है। फिर देखो शाम तक तुम्हे रोटी खाने को मिलती है, या नही। वह नवयुवक बोला—हा, रोटी तो मिल सकती है। पर यह तो नीचा काम है, मैं पढा-लिखा व्यक्ति इसे कैसे कर सकता हू। उसने कहा—भाई, यही तो तेरी भूल है कि अमुक काम बुरा या नीचा है और अमुक काम अच्छा है। इस अहकार को छोडकर जहा जो भी काम मिले, उसे उत्साह से करते रहो, कभी भूखे नही मरोगे। यह सुनकर वह नवयुवक चुप हो गया।

श्रम करें, श्री पायें!

भाइयो, बेकार वे ही फिरते है जो कि आराम की कुर्सी पर बैठना चाहते है। और परिश्रम से, खासकर शारीरिक परिश्रम से डरते है। यदि आज के बेकार नौजवान कुर्सी पर बैठने और शहरो मे रहने के मोह को छोड गावो मे जावे और शारीरिक परिश्रम करे, तथा [illegible] शिक्षित करते हुए भारत के प्राचीन उद्योग-धन्धो को अपनावे [illegible] बेकार होने की समस्या सहज मे ही हल हो सकती है। इस [illegible] चाहिए कि [illegible] पर जो भी काम मिले, उसे करने मे [illegible], फिर देखें कि [illegible]

[illegible]

[illegible]

कितना पतला और कोमल है। पर जब वर्षा का पानी वेग पकडता है, तो बडे-बडे बाधो को तोडता जाता है और बडे-बड मकानो और वृक्षो को उखाड देता है। भाई, वेग मे इतनी प्रवल शक्ति होती है। इसी प्रकार जिन लोगो के हृदय मे काम करने का वेग या जोश होता है, वे बड़े से बडे कठिन कामो को भी आसानी से कर डालते है। कर्मशील व्यक्ति का मस्तिष्क भी उर्वर होता है, उसमे नित्य नयी-नयी कल्पनायें प्रादुर्भूत होती रहती है और वह ऐसे-ऐसे महान् कार्य कर दिखाता है कि ससार उसे देखकर आश्चर्य चकित हो जाता है। परन्तु ये सब आश्चर्य-जनक, अपूर्व और खोज-शोध के कार्य वही कर सकता है, जो सरदार है, जिसका मस्तिष्क उर्वर है और जो सदा कर्तव्यशील रहता है। किन्तु जो मुर्दार है, कायर है, अकर्मण्य है और कार्य करने से डरते हैं, उनसे किसी कार्य की आशा नही की जा सकती है। जो अपनी रोटी ही नही जुटा सकते, उनसे उक्त कार्यों की आशा भी कैसे की जा सकती है। यदि मुर्दार मनुष्य अपना मुर्दापन या कायरता छोडकर प्रतिदिन थोडा-थोडा भी परिश्रम करे और सरदार या उर्वर मस्तिष्क वाले पुरुप की सगति करे और उससे कुछ न कुछ सीखे तो एक दिन वह भी सरदार वन सकता है।

भाइयो, मनुष्य वही कहलाने के योग्य है, जो कि उर्वर मस्तिष्क और सरदार मनोवृत्ति का है। वह पुरुपार्थ करते करते एक दिन उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है। कहा भी है।

मन वढ़ते वढ़ते वचन, धन वढते क्या देर।
मन घटते घटते वचन, फिर दुख मे क्या फेर॥

मन के वढने पर कीर्ति वढती है और कीर्ति वढने से नया उत्साह पैदा होता है और उत्साह से सभी कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। यदि मनुष्य ने दिल छोटा किया तो फिर सब वातें छोटी होती जावेगी। आपने सुना है कि मम्मण सेठ कितना कजूस था, जबकि उसके पास ६६ करोड की विशाल धन राशि थी। चौमासा प्रारम्भ होते ही वह अपने सब मुनीम-गुमास्तो को छुट्टी दे देता था, क्योकि उस समय कोई व्यापार चालू नही रहता था। उस समय कुल्हाडी लेकर जगल मे जाता दिन भर लकडिया काटता और भारी लेकर सायकाल घर आता तथा उन्हे वेचकर रोटी खाता था। भाई, देखो—जिसके पास इतनी अपार सम्पत्ति हो और निन्यानवे करोड का धनी हो, वह क्या ऐसा तुच्छ कार्य और वह भी वर्षा ऋतु मे करेगा? कभी नही करेगा। परन्तु मम्मण सेठ फिर भी करता था। एक ओर जहा उसमे इतनी उद्योगशीलता

थी और परिश्रमी मनोवृत्ति थी, वही दूसरी ओर कृपणता भी चरम सीमा को पहुची हुई थी।

उसे एक बार सनक सवार हुई कि मैं रत्नो की बैल जोडी बनाऊँ। अत उसने बैल बनाना प्रारम्भ कर दिया। जब बन कर तैयार हो गया, तब दूसरे को बनाना प्रारम्भ किया। बनते-बनते बैल का सारा शरीर बन गया। केवल सीग बनाना शेष रहे। उस समय सावन का महिना था और वर्षा की झडी लग रही थी, फिर भी वह मम्मण लकडी काटने के लिए जगल मे गया। लकडी काटते हुए सूर्यास्त हो गया। फिर भी उसने हिम्मत नही हारी और भारी उठाकर बरसते पानी मे वह नगर की ओर चला। उस समय राजा श्रेणिक रानी चेलना के साथ महल के सबसे नीचे की मजिल मे बैठे हुए चौपड खेल रहे थे और बरसाती मौसम का आनन्द ले रहे थे। जब यह मम्मण सेठ राज महल के समीप मे जा रहा था, तभी रानी चेलना ने पान की पीक थूकने के लिए गवाक्ष मे मुख बाहिर निकाला तो देखा कि बरसते पानी मे भीगे कपडे हो जाने से चलने मे असमर्थ दरिद्र-सा व्यक्ति जा रहा है। उसे देखकर चेलना का दिल दया से आर्द्र हो गया। उसने श्रेणिक महाराज से कहा—आप तो कहा करते है कि मेरे राज्य मे कोई दुखी नही है, सब समृद्ध और सुखी है। पर इधर देखिए, यह बेचारा ऐसे बरसते-पानी मे भी लकडी की भारी लिए जा रहा है, ठड के मारे जिसका शरीर काप रहा है। यदि यह दरिद्रता से दुखी नही होता, तो क्या ऐसे मौसम मे घर से बाहिर निकलता! श्रेणिक ने भी गवाक्ष से झाक कर देखा, तभी बिजली चमकी तो वह दिखाई दे गया। श्रेणिक ने द्वारपाल को बुलाकर कहा—देखो—राजमहल के समीप से जो लकडहारा जा रहा है, उसे लेकर मेरे पास आओ। उसने जाकर उससे कहा—अबे, भारी यही रख और भीतर चल, तुझे महाराज बुला रहे है। यह सुनते ही मम्मण चौका और सोचने लगा आज तक तो मेरी महाराज से [illegible] भी नही हुई है, और मैने कोई अपराध भी नही किया है। फिर महाराज मुझे क्यो बुला रहे है। जब मम्मण यह सोच ही रहा था, तब उसने [illegible] उसकी भारी नीचे पटक दी और बोला कि भीतर चलता है, या फिर [illegible]। यह सुनकर मम्मण भयभीत हुआ और [illegible] साथ भीतर गया। [illegible] सामने पहुच कर उसने श्रेणिक को नमस्कार किया।

[illegible]

हो रही है, इसलिए इस मौसम मे भी परिश्रम करना पड रहा है। श्रे णिक ने समझा कि खेती के लिए इसे बैलो की जोडी पूरी नही हो रही है। अत उन्होने द्वारपाल से कहा अपनी गौशाला मे सेंतीस हजार बैल-जोडिया बन्धी है, इसे ले जाकर सव दिखा दे और जो जोडी पसन्द आ जाय, वह इसे दे दो। मम्मण वोला—महाराज, मुझे तो केवल एक ही बैल चाहिए है, यह कहकर वह द्वारपाल के साथ गया। द्वारपाल ने जाकर दारोगा से कहा महाराज का आदेश है कि जो भी वैल इसे पसन्द आ जाए, वह इसे दे दिया जाय। दारोगा ने एक-एक करके सारे बैल दिखाए। वह सोचने लगा कि इसे यदि मैं ले जाऊँगा तो दाना-घास और खिलाना पडेगा। प्रत्यक्ष मे उसने दारोगा से कहा मुझे कोई भी बैल पसन्द नही है। तव वह वोला—अरे अभागे, मगध देश के उत्तम से उत्तम वैल यहा उपस्थित हैं, और तुझे कोई पसन्द नही है। मम्मण वोला आपका कहना सत्य है। पर मेरे बैल जैसा कोई वैल दिखे तो लूँ। वेमेल जोडी किस काम की। तव दारोगा ने उसे द्वारपाल को सौंप कर कहा इसे महाराज के पास वापिस ले जाओ। उसने जाकर कहा—महाराज, इसे कोई वैल पसन्द नही आया। श्रेणिक ने पूछा—क्यो भाई क्या वात है? मम्मण वोला—महाराज, मेरे वैल जैसा तो एक भी वैल नही दिखा। फिर अनमेल बैल लेकर के मैं क्या करूँ? यदि आप मेरे जैसा वैल देवें तो मैं लेने को तैयार हू।

मम्मण की यह वात सुनकर श्रेणिक को वडा आश्चर्य हुआ, उसने कहा—अच्छा कल हम स्वय आ करके तेरा वैल देखेंगे और उसकी जोड का दूसरा मगवा देंगे। अच्छा तू यह वता कि तेरा मकान कहा है? तब उसने अपना सब नाम-पता ठिकाना वता दिया। मम्मण वोला—महाराज, आप अकेले नही पधारें, किन्तु महारानी साहव मन्त्री लोगो और सरदारो के साथ पधारने की कृपा करें। श्रे णिक ने स्वीकृति दे दी। सेठ ने घर जाकर सब मुनीम-गुमास्तो को बुलाया और कहा कि श्रे णिक महाराज पूरे परिवार के साथ अपने यहा पधारेंगे अत अमुक-अमुक तैयारी इस प्रकार की होनी चाहिए और रसोई इस प्रकार की बननी चाहिए। वे लोग सर्व प्रकार की तैयारी करने मे जुट गये। उधर दूसरे दिन सबेरे श्रे णिक ने अभयकुमार को बुलाकर कहा—अपने नगर मे एक मम्मण सेठ अमुक गली मे रहता है। उसे एक बैल की जरूरत है। अपनी जोडियो मे से उसे कोई भी बैल पसन्द नही आया है, अत उसका बैल देखने के लिए आज उसके यहा चलेंगे। और जैसा उसका बैल होगा, वैसा मगाकर उसे दिला देंगे। यह सुनकर अभयकुमार बोले—महाराज,

मम्मण सेठ गरीब कैसे है ? उसके यहा तो ९९ करोड की पूजी है। और उसके मकान पर ध्वजा फहराती है। यह सुनकर श्रेणिक बोले—अरे, उसके शरीर पर तो पूरे कपडे भी नही है और वह भारी बेचकर अपनी गुजर करता है। अभयकुमार के बहुत कहने पर भी महाराज नही माने और बोले—आज मै स्वय चलकर के देखूगा। तुम चलने की तैयारी कराओ और सुनो—[illegible] और सरदार भी साथ चलेगे। अभयकुमार 'हा' भर कर चले गये।

यथासमय पूरी तैयारी के साथ श्रेणिक मम्मण सेठ के यहा जाने के लिए निकले तो सारे नगर मे हलचल मच गई। वे पूरे राज-परिवार के साथ जब मम्मण सेठ के मकान के सामने पहुचे तो मोतियो से भरे थालो और सुवर्ण घटो पर रत्न दीपको को लिए हुए सुहागिनी स्त्रियो ने राजा की आरती उतारी और मगल-गीत गाकर उनका स्वागत किया। वही एक ओर [illegible] वेश-भूषा मे खडे हुए मम्मण को देखकर श्रेणिक ने अभयकुमार से कहा—यही [illegible] दुखियारा मम्मण है। तभी रत्नो से भरा सुवर्ण थाल लाकर और सामने आकर मम्मण ने मुजरा किया। श्रेणिक ने सोचा—बेचारा कही से माग करके लाया होगा, अत अभयकुमार से कहा—यह नजराना नही रखना, किन्तु वापिस कर देना। सेठ ने नजराना लेने के लिए जब बहुत आग्रह किया, तब अभयकुमार के इशारे पर वह स्वीकार कर लिया गया। मम्मण ने महाराज से हवेली के भीतर पधारने के लिए प्रार्थना की। उसकी नौ खड की हवेली और उस पर ध्वजा फहरती देखकर श्रेणिक बड़े विस्मित हुए और अभयकुमार से बोले—क्या सचमुच मे यह इसी की हवेली है ? अभयकुमार के हा कहने पर उन्होने भीतर प्रवेश किया। सब सरदारो को यथास्थान बैठाकर महारानी और मत्रियो के साथ वह राजा श्रेणिक को ऊपर ले जाने लगा, तब उन्होने पूछा—सेठजी, तुम्हारा बैल कहा है ? मम्मण बोला—महाराज, चौथे खड पर है। श्रेणिक यह सोचने—कही जानवर भी ऊपर की मजिलो मे रहते है—चौथी मजिल पर पहुचे और वहा रत्न-निर्मित जगमगाते बैल को देखकर श्रेणिक बहुत विस्मित हुए। मम्मण बोला—महाराज, एक बैल तो तैयार हो गया है, किन्तु दूसरे के सीगो की कमी है। मुझे तो [illegible] है। उसकी यह बात सुनकर श्रेणिक अवाक् रह गए और सोचने लगे—

'राजा सोचे चेचूं गात मेरे किम मनु यह भागे।'

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मैं क्या कहू ? पर यह समझ मे नही आया कि इतना धन होने पर भी ऐसे बरसाती मौसम मे स्वय लकडी की भारी लिए क्यो आ रहा था । इतना धन-वभव होने पर भी यदि यह भारी लाकर रोटी खाता है, तो फिर इससे हीन पुनी और कौन हो सकता है ?

मम्मण सेठ ने महाराज से प्रार्थना की कि रसोई तैयार है, भोजन के लिए पधारिये । श्रे णिक ने कहा—क्या मेरा जीमना अकेले होता है ? मम्मण वोला—महाराज की आज्ञा हो तो सारी नगरी सौ वार जिमा दू । श्रे णिक ने कहा—सेठजी, जव ऐसी सामर्थ्य है, तव फिर रात को भारी लिए कैसे आ रहे थे । मम्मण वोला—महाराज, रात की वात मत पूछिये । इससे मेरी शान जाती है । वह वरदान अलग है और यह वरदान अलग है । मैं अपने लिए ही अभागी हू । अन्यथा मेरे कोई कमी नही है, सवके लिए रसोई तैयार है सो भोजन कीजिए ।

जब श्रे णिक उसके भोजनालय मे गये तो वहा की व्यवस्था देखकर दग रह गये । उन्हे स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी यह मेरे साथ इतने लोगो को चादी की चौकियो पर बैठाकर सुवर्ण के थालो मे जिमा सकता है । नाना प्रकार के पकवान और मिष्टान्नो से थाल सजे हुए थे । सोने की कटोरिया नाना प्रकार की शाको, रायतो और दालो से भरी हुई थी और सोने की रकाबिया नमकीन वस्तुओ से सजी हुई रखी थी । सुवर्ण के प्यालो मे नाना प्रकार के पेय पदार्थ रखे हुए थे । उसके ये ठाठ-वाट देखकर श्रेणिक ने बहुत ही चकित होते हुए भोजन किया । वाद मे मम्मण ने पान-सुपारी आदि से सबका सत्कार किया । तत्पश्चात् श्रे णिक ने चेलना से कहा—अपने लोग क्या समझकर आये थे और क्या देख रहे है । जब इसने अपने स्वागत-सत्कार मे इतना व्यय किया है तो इसे क्या देना चाहिए । अभयकुमार से भी इस विषय मे परामर्श किया । और कहा कि कुछ न कुछ इसे देकर और इसका उत्साह वढा करके जाना चाहिए ।

भाइयो, पहिले के राजा-महाराजा लोग यदि किसी के यहा जीमने जाते थे तो उसका उत्साह बढाकर आते थे । आज के ये टोपीवाले शासक आते हैं तो यो ही चले जाते हैं । यदि उन्हें दस हजार की थैली भी भेंट करो तो ये जाते समय वच्चे के हाथ पर पाच रुपये भी रखकर नही जाते हैं ।

हा, तो अभयकुमार ने कहा—इसका सन्मान वढा दिया जाय—ताजीम वढा दी जाय, जिससे अपना कुछ खर्च भी न हो और इसकी देश भर मे प्रसिद्धि भी हो जाय । श्रे णिक ने कहा—अभय, तुम्हारी सलाह उचित है ।

तत्पश्चात् जब सबका खान-पान हो गया, तब श्रेणिक ने कहा—सेठ जी, आप भोजन के लिए बैठिये, हम आपको भोजन परोसेंगे। भाई, यह गौरव क्या कम है, जो इतने बड़े राज्य का राजा अपने हाथ से भोजन परोसने की बात कहे। इससे बढ़कर और क्या इज्जत हो सकती है।

श्रेणिक के द्वारा अपने जीमने की बात सुनकर मम्मण बोला—महाराज, मेरे भाग्य में जीमना कहाँ है? सबके भोजनपान से निवृत्त होने के पश्चात अलग से मेरे लिए रसोई बनेगी, तब मैं खा सकूँगा। श्रेणिक बोले—सेठजी, आज आपको अपने हाथ से परोसकर और आपको जिमा करके हम जायेंगे। तब रसोइया बुलाया गया। उसने चूल्हा चेताया और एक भरतिया पानी भरकर चढ़ा दिया। उबाला आने पर दो मुट्ठी उड़द उसमें डाल दिये। जब वे उबल गये तो उन्हें निकाला गया। श्रेणिक ने पूछा—सेठजी, क्या-क्या और साथ में परोसा जाय। वह बोला—महाराज, और कोई चीज नहीं परोसिये, केवल इस घट में से थोड़ा सा तेल डाल दीजिए। उन उड़द की घूघरियों में तेल के डाल दिये जाने पर सेठ ने फाका लगाना प्रारम्भ किया। यह दृश्य देखकर सारे सरदार और महाराज भी चित्र-लिखित से देखते रह गये। सब सोचने लगे—देखो, इसने हम लोगों को तो बढ़िया से बढ़िया माल खिलाये हैं और यह कोरे उड़द के बाकुले खा रहा है। श्रेणिक ने कहा—अरे सेठजी, मिठाई छोड़कर के ये बाकुले क्यों खा रहे हो? वह बोला—यदि पेट में मीठा चला गया तो अभी दस्त लगना शुरू हो जावेंगे और फिर उनका रोकना कठिन हो जायगा। श्रेणिक की समझ में उसकी ऐसी स्थिति का रहस्य कुछ भी समझ नहीं आया। तब वे एक अवधिज्ञानी मुनि के पास गये और मम्मण की ऐसी परिस्थिति का कारण पूछा। उन्होंने कहा—राजन्, यह पूर्व भव में घी का बेचने वाला बनिया था। इधर-उधर से लाकर घी बेचता था और उसमें जो चार-आठ आने मिल जाते उसमें यह अपना निर्वाह करता था। यह [illegible] था। एक समय किसी सेठ ने किसी खुशी के अवसर पर स्वजन भोजन के बाद सवा-सवा सेर के लड्डू गाँव में बटवाये। उसके यहाँ भी एक लड्डू आया। उसने सोचा 'आज तो भोजन हो ही चुका है, अब यह कल काम में आ जायगा' यह सोचकर उसने घी के घड़े के ऊपर उसे रख दिया। [illegible] पर में [illegible], तो [illegible] था। एक मुनिराज की [illegible] आता हुआ उसने देखा। उन्होंने [illegible] [illegible] [illegible] ऐसी [illegible]। उसने [illegible] से प्रार्थना की और कहा—स्वामिन्, [illegible] और [illegible]

उद्धार कीजिए। आज आपके योग्य अनुद्दष्टि एक लड्डू लेन मे आया हुआ है, उसे आप ग्रहण कीजिए। यह सुनकर मुनिराज उसके घर मे गये। और उसने वह लड्डू वहरा दिया। मुनिराज उसे लेकर चले गये। लड्डू के कुछ खेरे घी के घडे मे चिपके रह गये थे तो इसने उन्हे निकालकर अपने मुख मे डाला। उसका स्वाद लेते ही मन मे पश्चात्ताप करने लगा—हाय, ऐसा स्वादिष्ट लड्डू मैंने व्यर्थ ही साधु को वहरा दिया। आज तो घर-घर ऐसे लड्डू आये हुए थे। इन्हे तो कही से भी वैसा मिल सकता था। इस प्रकार के अनुताप से इसने घोर पाप का वन्ध किया और काल मास मे काल करके यह पशु-योनि मे उत्पन्न हुआ। वहा से आकर यह मम्मण सेठ हुआ है। पूर्वोक्त दान के प्रभाव से इसके घर मे ऋद्धि-वैभव तो अपार है। किन्तु पीछे से जो स्वाद की लोलुपता से इसने अनुताप किया था, उससे इसके दुर्मोच भोगान्तराय कर्म वँध गया। मुनि को आहार का लाभ कराने से इसकी लाभान्तराय टूटी हुई है। अत दोनो ही कर्म अपना-अपना प्रभाव अव प्रत्यक्ष दिखा रहे हैं। यह सुनकर और भावो की विचित्रता से कर्मवन्ध की विचित्रता या विचार करते हुए श्रेणिक मुनिराज की वन्दना करके अपने घर को वापिस चले आये।

भाइयो, यह मम्मण का जीव मुर्दार प्रकृति का मानव था, जो दान देकर के भी पछताया,। इसी प्रकार मुर्दार प्रकृति के मनुष्य पहिले तो कोई उत्तम कार्य करते ही नही हैं। यदि किसी कारण-वश करे भी, तो पीछे पछताते है और अपने किये-कराये काम पर स्वय ही पानी फेर देते है। यही कारण है कि अनेक लोगो के पास अपार सम्पत्ति होते हुए भी वे न उसको भोग ही सकते हैं और न दान ही कर सकते हैं और अन्त मे खाली हाथ ही इस ससार से विदा हो जाते हैं। इसलिए जिन्हे भाग्योदय से यह चचल लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उन्हे कजूसी छोडकर जीवन को सफल वनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

उपसहार

वन्धुओ, आप लोगो के सामने मैंने चार प्रकार के मनुष्यो के चित्र उपस्थित किये हैं। अव आप लोग वतलायें कि आपको उदार व्यक्ति पसन्द है, या अनुदार? सरदार व्यक्ति रुचता है, या मुर्दार? चारो ओर से आवाज आ रही हैं कि उदार और सरदार व्यक्ति पसन्द है। भाई, इनमे से ये दो ही जाति के मनुष्य ग्राह्य हैं--उदार और सरदार। तथा अनुदार और मुर्दार व्यक्ति त्याज्य हैं। अब आप लोगो को इनमे से जो रुचे, उसे ग्रहण कर लीजिए और वैसे ही वन जाइये। कही ऐसा न हो कि सरदार वनने का भाव

किया और मन को मुर्दार बनालेवे । आज प्राय ऐसे ही मनुष्य देखने मे आते है कि बाते तो बडी-बडी करेगे और डीग सरदारपने की हाकेगे। पर जहा उदारता दिखाने का और कुछ देने का काम आया, तो स्वय तो देगे ही नही, किन्तु मीन-मेख निकाल करके देने वालो को भी नही देने देगे। वे अपने भीतर यह दुर्भाव रखते है कि यदि कार्य प्रारम्भ हुआ और दूसरे लोगो ने न दिया तो लोक-लाज के पीछे मुझे भी देना पडेगा। इसलिए ऐसे विचार वाले व्यक्ति दूसरो के देने मे अन्तराय बनते है और स्वय देने का तो काम ही नही है। भाई, उदार बनना सीखो। यह लक्ष्मी चचल है, और सदा किसी के पास रहने वाली नही है। जो इसको पकडने का प्रयत्न करते है, उनसे यह छाया के समान दूर भागती है। और जो इसे ठुकराते अर्थात् विद्यालय, औषधालय और दीन-अनाथो की सेवा-सुश्रूषा आदि सत्कार्यो मे लगाते है और खुले दिल से दान देते है, उनके पीछे-पीछे यह छाया के समान दौडती हुई चली आती है। कहा भी है कि— '**लक्ष्मी दातानुसारिणी और बुद्धिः कर्मानुसारिणी**।

अब आपको जो रुचे सो करो। जब कोई काम करना ही है तब उसमे विलम्ब नही करना चाहिए और '**शुभस्य शीघ्रम्**' की उक्ति के अनुसार उसे शीघ्र ही सम्पन्न करना चाहिए। उदार और सरदार सदा ही उदार और सरदार बने रहेगे और अनुदार और मुर्दार सदा ही दुःख पावेगे। इसलिए सत्कार्य के करने मे आप लोगो को उदारता और सरदारपने का ही परिचय देना चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक सुदि ७
जोधपुर

प्रकार के ? इस प्रकार से जिसके विचार क्षण-क्षण मे बदलते रहते है, तो उस व्यक्ति के सर्व ही कार्य व्यर्थ है। इसलिए पहले शान्ति के साथ, गंभीरता के साथ सोचकर फिर दृढ़ता के साथ और तेजी से उस कार्य पर अमल करना चाहिए।

परवशता से प्रतिकूल आचरण

भाइयो, कभी-कभी ऐसा भी अवसर आता है कि मनुष्य के विचार तो उत्तम है, किन्तु नौकरी, आदि की परवशता मे प्रतिकूल कार्य भी करने पड़ते है। जैसे कोई सरकारी नौकरी मे है और उसे ऊपर के अधिकारियो के आदेश के अनुसार अनेक आरम्भ-समारम्भ के महापाप करने पड़ते है। ऐसी दशा मे वह उन आदेशो का पालन करता हुआ भी यदि अपने भीतर प्रतिक्षण यह सोचता रहता है कि यदि मुझे दूसरी असावद्य नौकरी मिल जाती, जिसमे कि इस आरम्भ-समारम्भ के काम न करना पड़े। तो मैं इसे तुरन्त छोड़ देता। हे प्रभो, मुझे ऐसे पाप-पूर्ण कार्य करने का अवसर ही क्यो आया ? इस प्रकार से यदि वह पश्चात्ताप करता है और इस नौकरी को बुरी जानकर उसे छोड़ने की भावना रखता है तो वह महापापो से नही बधता। हा, लघु पापकर्म से तो बधता ही है। जैसे एक सायर का दारोगा है और उसके पास अधिकारी का आदेश आता है कि आज इतने पशुओ की चिट्ठी काटी जावे। अब वह नौकरी की परवशता मे चिट्ठी काटता रहा है, परन्तु हृदय से नही काट रहा है। भीतर तो अपने इस कार्य को बुरा ही मान रहा है और अपनी निन्दा ही कर रहा है—आत्म आपको धिक्कार रहा है, तो वह प्रबल कर्मों को नही बाधेगा। पर कर्मों का बन्ध तो है ही, इसमे कोई सन्देह नही है। दूसरा व्यक्ति इसी प्रकार के अवसर पर बिना किसी सोच-विचार के चिट्ठी काटता है और उसके मन मे अपने इस कार्य के प्रति कुछ भी गर्हा या निन्दा का भाव नही है, तो वह तीव्र पाप कर्मो को ही बाधेगा। क्योकि उसे अपने कार्य के प्रति कोई घृणा या पश्चात्ताप नही है। भाई, इस प्रकार से ऊपर से एक-सा ही काम करते हुए भी आन्तरिक भावो की अपेक्षा कर्म-बन्ध मे अन्तर पड़ जाता है।

कर्म बन्ध में मन्दता

अथवा जैसे आपके छोटे भाई या लड़के ने कोई गलत काम किया। आपके पास उसका उपालम्भ आया और आपने उस बालक पर [illegible] और रोष मे ऐसा [illegible] नही करना तो कहा। फिर भी यदि वह नही माना और वह दुबारा भी वही काम करता है तो आपने उस बालक को [illegible]
[illegible]

के भी थप्पड या लकडी मारी, तो दोनो प्रहारो मे अन्तर है, या नही ? अन्तर अवश्य है। इसी प्रकार किसी को लाठी से मारते हुए भी यह विचार है कि कही इसके मर्मस्थान पर नही लग जाय, या इसकी हड्डी नही टूट जाय, इस विचार से केवल सामने वाले को रोकने के भाव से मारता है और दूसरा शत्रु के मर्मस्थान पर मारता है—इस विचार से ही—कि एक ही प्रहार मे इसका काम तमाम कर दूँ, तो उन दोनो के भावो मे अन्तर है, या नही ? अवश्य है और भावो के अनुसार एक के मन्द कर्मवन्ध होगा और दूसरे के तीव्र कर्म बन्ध होगा। क्योकि जैनशासन मे भावो की प्रधानता है। जहा भावना मे, विचा ो मे अन्तर है, वहा पर कर्म वन्ध मे अन्तर अवश्य होगा।

और भी देखो एक साधु भी गमन करता है और दूसरा साधारण व्यक्ति भी गमन करता है। साधु ईर्यासमिति से जीवो को देखता हुआ और उनकी रक्षा करता हुआ चलता है और दूसरा इस जीव-रक्षा का कुछ भी विचार न रख के इधर-उधर देखते हुए चलता है, अव गमन तो दोनो कर रहे है, परन्तु दोनो की भावना मे अन्तर है, अत कर्म-बन्ध मे भी अवश्य अन्तर होगा। इस विपय मे आगम कहता है—

उच्चालदम्मि पादे इरियासमिदस्स अप्पमत्तस्स।
आवादेज्ज कुलिगो मरेज्ज तज्जोगमासेज्ज॥
ण हि तस्स तण्णिमित्तो बधो सुहुमोवि देसिदो समये॥

अर्थात्—ईर्यासमिति पूर्वक गमन करनेवाले अप्रमत्त साधु के पैर के नीचे सावधानी रखने पर भी यदि अचानक कोई जीव आकर मर जाय, तो उसे तन्निमित्तक—हिंसा-पापजनित सूक्ष्म भी कर्म वन्ध नही होता।

इसके विपरीत अयत्नाचार से गमन करनेवाले से जीव चाहे मरे, अथवा नही मरे, किन्तु उसको नियम से हिंसा का पाप वन्ध होगा। जैसा कि कहा है—

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्सणिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि वधो हिंसामेत्तेण समिदस्स॥

अर्थात् –जीव चाहे मरे, अथवा चाहे नही मरे, किन्तु चलने मे जो यतना-सावधानी—नही रखता है, अयत्नाचारी है—उसको हिंसा का पाप निश्चित रूप से लगता है। किन्तु जो चलते समय प्रयत्नशील है—सावधानी रखता है, उससे हिंसा हो जाने पर भी बन्ध नही होता है।

आगम के इन प्रमाणो के निर्देश का अभिप्राय यह है कि प्रमत्त योग से होने वाली हिंसा मे और अप्रमत्तयोग से होने वाली हिंसा मे आकाश-पाताल

जैसा अन्तर है। साधु के सावधानी रखते हुए भी हिंसा की सभावना रहती है, अतः उसे प्रतिदिन 'मिच्छामि दुक्कड' करना पडता है। भाई, वह यतना का विचार और जीव रक्षा का भाव किसके हृदय मे पैदा होता है ? जिसके कि हृदय मे ज्ञान का - विवेक का अकुश है। देखो—हाथी कितना बडा और बलवान होता है। वह गोली और भाले के शरीर मे लगने पर भी उसकी परवाह नही करता। परन्तु जब मस्तक पर महावत का अकुश पडता है, तब चिंघाडने लगता है और महावत जिधर ले जाना चाहता है, उधर ही चुपचाप चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क पर, मन पर विवेक का अकुश होगा, तो वह कुमार्ग पर नही चलेगा—कुपथगामी नही होगा। किन्तु सुपथ-गामी रहेगा। अकुश भी दो प्रकार के होते है—एक द्रव्य-अकुश और दूसरा भाव-अकुश। हाथी का अकुश द्रव्य-अकुश है। इसीप्रकार साधु के लिए आचार्य, गुरु आदि द्रव्य-अकुश है। विवेक का जागृत रहना भाव-अकुश है। जिसका विवेक जागृत रहता है, उसे सदा इस बात का विचार रहता है कि यदि मै अपने पद के प्रतिकूल कार्य करूंगा तो मेरा पद, धर्म और नाम कलकित होगा। मेरी जाति बदनाम होगी और सबको अपमान सहना होगा। इसप्रकार से जिसके मन के ऊपर ये दोनो ही अकुश रहते है, वह व्यक्ति कभी कुमार्ग पर नही चलेगा, किन्तु सदा ही सुमार्ग पर चलेगा। किन्तु जिसके ऊपर ये दोनो अकुश नही है, वे व्यक्ति मनमानी करते है। कहा भी है—

> विन अकुश बिगड्या घना, कपूत कुशिष्य ने कुनार।
> गुरु को अकुश धार सो, सो सुधर्या ससार॥

भाइयो, आप लोग अपने ही घरो मे देख लो—अकुश नही रहने से औरते विगड जाती है और वाल-बच्चे आवारा हो जाते है। गुरु का अकुश नही रहने से शिष्य विगड जाता है। इसलिए जैसे घर के स्त्री-पुत्रादि पर पिता या सरक्षक का अकुश होना आवश्यक है, उसी प्रकार शिष्य पर गुरु का अकुश होना भी आवश्यक है। इसमे आत्मिक लाभ तो है ही, [illegible] लाभ भी होता है और समय पर अपना भी [illegible] होता है। जैसे किसी [illegible] समस्या के आ जाने पर गुरु कहता है कि भाई, मै इस बात का उत्तर [illegible] से पूछ कर दूगा, अथवा शिष्य कहता है कि मै गुरुजी से पूछ कर दूगा। इस प्रकार [illegible] [illegible] [illegible]

जैसा अन्तर है। साधु के सावधानी रखते हुए भी हिंसा की सभावना रहती है, अत उसे प्रतिदिन 'मिच्छामि दुक्कड' करना पडता है। भाई, वह यतना का विचार और जीव रक्षा का भाव किसके हृदय मे पैदा होता है? जिसके कि हृदय मे ज्ञान का - विवेक का अकुश है। देखो—हाथी कितना बडा और बलवान होता है। वह गोली और भाले के शरीर मे लगने पर भी उसकी परवाह नही करता। परन्तु जब मस्तक पर महावत का अकुश पडता है, तब चिंघाडने लगता है और महावत जिधर ले जाना चाहता है, उधर ही चुपचाप चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क पर, मन पर विवेक का अकुश होगा, तो वह कुमार्ग पर नही चलेगा—कुपथगामी नही होगा। किन्तु सुपथ-गामी रहेगा। अकुश भी दो प्रकार के होते है—एक द्रव्य-अकुश और दूसरा भाव-अकुश। हाथी का अकुश द्रव्य-अकुश है। इसीप्रकार साधु के लिए आचार्य, गुरु आदि द्रव्य-अकुश हैं। विवेक का जाग्रत रहना भाव-अकुश है। जिसका विवेक जागृत रहता है, उसे सदा इस बात का विचार रहता है कि यदि मै अपने पद के प्रतिकूल कार्य करूँगा तो मेरा पद, धर्म और नाम कलकित होगा। मेरी जाति बदनाम होगी और सबको अपमान सहना होगा। इसप्रकार से जिसके मन के ऊपर ये दोनो ही अकुश रहते है, वह व्यक्ति कभी कुमार्ग पर नही चलेगा, किन्तु सदा ही सुमार्ग पर चलेगा। किन्तु जिसके ऊपर ये दोनो अकुश नही है, वे व्यक्ति मनमानी करते है। कहा भी है—

> बिन अकुश बिगड्या घना, कपूत कुशिष्य ने कुनार।
> गुरु की अकुश धार सी, सो सुधर्या ससार॥

भाइयो, आप लोग अपने ही घरो मे देख लो—अकुश नही रहने से औरतें बिगड जाती है और बाल-बच्चे आवारा हो जाते है। गुरु का अकुश नही रहने से शिष्य बिगड जाता है। इसलिए जैसे [illegible] पर पिता या सरक्षक का अकुश होना आवश्यक है, उसी प्रकार शिष्य पर गुरु का अकुश होना भी आवश्यक है। इससे आत्मिक लाभ तो है ही, [illegible] भी होता है और समय पर [illegible] होता है। [illegible]

[illegible]

आपको मालूम है कि मूर्त्ति-पूजक लोग अपने मन्दिरो मे धातु-पाषाण आदि की मूर्त्ति रखते है। यद्यपि उसमे देवता नही है, किन्तु देवत्व की कल्पना अवश्य है। यही कारण है कि मूर्त्ति-पूजक लोग मन्दिरो मे कोई भी लोक-विरुद्ध, धर्म-विरुद्ध या पाप-कारक कार्य नही करते है। यह उस द्रव्य मूर्त्ति के अकुश का ही प्रभाव है। देखो—पहिले स्थानको मे भी अकुश था कि सचित्त जलादि नही लाना। परन्तु उस अकुश के उठ जाने से सचित्त जल और फलादिक भी आने लगे हैं। लोग कहते हैं कि स्थानक से, उपाश्रय से या मन्दिर से हमारी यह चीज चोरी चली गयी। भाई, तुम ऐसी चीज धर्मस्थान पर लाये ही क्यो? आपने धर्मस्थान का अकुश नही रखा, तभी यह सब होने लगा है। पहिले मनुष्य धर्मस्थान पर ही नही, किन्तु घर पर ही यह अकुश रखते थे और धर्मखाते की—धर्मादे की—रकम को अपने काम मे नही लेते थे तो उनका परिवार यश पाता था।

सुकृत की शिला

मुगलकाल मे दिल्ली मे एक सेठ जी रहते थे। उनके यह नियम था कि अपनी ही पूजी से जीवन-निर्वाह करेंगे, दूसरे की या धर्मादे की पूजी से व्यवहार नही करेंगे। उनका कारोबार विशाल था और घर-परिवार भी भरा-पूरा था। उन्होने अपने नियम की सूचना मुनीम-गुमास्तो को भी दे रखी थी और घर पर स्त्री-पुत्रादि को भी कह रखा था कि अपने को परायी सम्पत्ति से लेन-देन नही करना है। न्याय-नीति से कमा कर खाना है।

एक दिन की बात है कि जब सेठजी घर पर भोजन के लिए गये हुए थे, और दुकान पर मुनीमजी ही थे, तब एक जर्जरित शरीर वाली बुढिया लकडी टेकती और कापती हुई आई और दुकान पर आकर मुनीमजी से बोली—बेटा, अब आगे मुझसे चला नही जाता। अत यह लादी (पत्थर की शिला) तू ही खरीद ले। मुनीमजी ने कहा—हमे इसकी जरुरत नही है। तब बुढिया बोली—दिवालिये, सेठ की दुकान पर बैठा है और कोई चीज लेकर बेचने को आता है तो तू इनकार करता है? और सेठ की इज्जत को धूल मे मिलाता है। सेटजी का नाम सुन कर मुनीमजी चौंके और सोचने लगे—बात तो यह बुढिया खरी कह रही है। उससे पूछा—माजी इसकी क्या कीमत है? वह बोली—बीस हजार रुपये। यह सुनते ही मुनीम सोचने लगा—अरे, चटनी बाटने जैसी तो यह बटैया (गोलपथडी) है और कीमत बीस हजार कहती है। जरूर इसमे कोई खास बात होगी। यह सोचकर उसने लेने का विचार किया। मगर जब तिजोरी खोलकर देखा तो उसमे उतने रुपये नही थे। समीप ही

दूसरी तिजोरी रखी थी—जिसमे कि धर्मादा और सुकृतफंड के रुपये रखे जाते थे। अत उसे खोलकर उसमे से रुपये निकाल कर बुढिया को दे दिये और वह लादी ले ली। वह बुढिया रुपये लेकर जैसे ही दुकान से बाहिर हुई कि पता नही किधर गायब हो गई। मुनीमजी वह लादी लेकर सेठजी के घर पहुचे और सेठजी से कहा—सेठजी, यह लादी मैंने बीस हजार मे ले ली, क्योकि इनकार करने पर दुकान की इज्जत जाती थी। आपके बिना पूछे एक काम तो यह किया और दूसरा अपराध यह किया कि सुकृतफंड की तिजोरी मे से रुपये दिये, क्योकि दुकान की तिजोरी मे रुपये नही थे। सेठजी बोले—मुनीमजी, कोई अपराध की बात नही है। आपने तो दुकान की इज्जत बचाने के लिए ही इसे लिया है। और सुकृतफंड की तिजोरी मे रुपया देकर लिया है, तब यह लादी अपनी नही है, सुकृत की ही लादी है। यह कहकर सेठजी ने सेठानीजी को देते हुए कहा—देखो, इसे भीतरी कमरे मे सुरक्षित रख दो और भूल करके भी कभी इससे चटनी आदि मत पीसना। यह कहकर सेठ जी ने उस पर अपने हाथ से लिख दिया कि यह लादी सुकृत की है, इसे सुकृत के सिवाय किसी अन्य कार्य मे नही लिया जाय?

भाइयो, आज अपने को धर्मात्मा तो सभी कहते है, चाहे वे जैन हो, वैष्णव हो, ईसाई हो या मुसलमान हो। परन्तु उनमे ऐसे कितने लोग है, जो कि ऐसा विवेक और विचार रखते हो? जिनके ऐसा विचार है और भूल-कर भी सुकृत का पैसा अपने कार्य मे नही लेते है, वे ही धर्मात्मा है, भले ही वे किसी भी जाति या धर्मवाले क्यों न हो? किन्तु जिनके ऐसा विवेक और विचार नही है, भले ही वे ऊपर का दिखाऊ धर्म कितना ही क्यो न करते हो, पर उन्हे धर्मात्मा नही कहा जा सकता। देखो—आप लोग यहा सामायिक और प्रवचन सुनने को स्थानक मे आते है। सामायिक करने के लिए बैठते समय आपने अपना शाल-दुशाला, कम्बल घडी आदि या अन्य पहिनने की कोई वस्तु उतार कर रखी और सामायिक पूरी करने के पश्चात् उसे उठाना भूलकर अपने घर चले गए। वहा जाने पर आपको याद आया कि अमुक वस्तु तो स्थानक मे ही भूल आए है। अब आप स्थानक मे आते है और [illegible] वहा पर नहीं पाते है, तो निश्चित है कि [illegible] कोई उसे ले गया है, क्योंकि स्थानक तो [illegible] का [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible]

वे धर्मस्थान से पर-वस्तु का चुराना तो दूर की वात है, किन्तु अपने ही द्वारा निकाले हुए सुकृत के द्रव्य को भी अपने काम मे लेना नीति-विरुद्ध समझते थे और पाप मानते थे ।

हा, तो मैं कह रहा था कि उन सेठजी ने उस लादी पर लिख दिया कि यह सुकृत की शिला है और इसका उपयोग सुकृत के काम मे ही किया जाय । क्योकि वे नीतिवान् थे । सेठानी ने उसे सभालकर के कमरे मे रख दी । और सेठजी दुकान पर चले गए । वह सुकृत की रकम जितने एक-दो घन्टे तक उस तिजोरी से वाहिर रही, उतने समय के व्याज को मिलाकर वीस हजार रुपये वापिस सुकृत की तिजोरी मे रख दिए ? भाई, सुकृत की रकम मे अपना और द्रव्य तो मिलाना, पर न उसमे से लेना ही चाहिए और न उसे अपने काम मे उपयोग करना चाहिए ।

सेठजी के जीमकर दुकान चले जाने पर स्त्रियो के जीमने का नम्बर आया । तव सेठानीजी अपनी वहुओ को साथ मे लेकर भोजन करने को वैठी । पहिले यही रीति थी । यह घर मे सम्प और एकता वनाये रखने का एक मार्ग था । परन्तु आज तो न सासु वहुओ को साथ लेकर जीमने वैठती है और न वहुएँ उनकी मर्यादा रखती है । सव अपनी-अपनी गरज रखती है । यही कारण है कि घरो मे फूट वढ रही है और प्रेम घट रहा है ।

हा, तो सेठानीजी अपनी वहुओ के साथ जव जीम रही थी, तभी कमरे के भीतर से किसी के छम-छम नाचने की आवाज आई । सेठानी ने वडी वहू से कहा—अरी, कमरा खोलकर तो देख, भीतर कौन नाच रहा है ? ज्यो ही उसने कमरे का द्वार खोल कर देखा तो उस शिलाको नाचते हुए पाया और उससे हीरे, पन्ने, मोती और माणिक को झरते हुए देखा । उसने यह वात आकर सेठानीजी से कही कि कमरे मे तो चमत्कार हो रहा है । सेठानी भी विस्मित होकर उठी और चमत्कार देखकर दग रह गई । कमरा वन्दकर वापिस जीमने लगी । जव खा पीकर और चौका-पानी से निवृत्त हुई तो सेठानीजी ने झरोखे से झाककर उस कमरे को पुन देखा तो वहा हीरे-पन्ने का ढेर हो गया था । उन्होने नौकर भेजकर सेठजी को कहलाया कि दुकान से घर तुरन्त पधारें । नौकर की वात सुनकर सेठजी सोचने लगे—क्या वात है, जो कि मुझे असमय मे वुलाया ? मुनीम लोग क्या सोचेंगे कि सेठजी अभी आये थे और वापिस फिर चले गये । भाई, पहिले के लोग इस वात का पूरा ध्यान रखते थे और काम-काज के सिवाय घर पर नही जाते थे । तभी उनका कारोवार ठीक चलता था और घर की इज्जत भी रहती थी ।

हा, तो सेठजी घर गए और सेठानीजी से बोले—आज असमय मे कैसे बुलाया ? उसने कहा—यह क्या कौतुक आया है ? चलकर के देखो कि सारा कमरा रत्नो से भर गया है। उन्होने जो जाकर देखा तो वे भी बडे विस्मित हुए और उस कमरे को बन्द करके ताला लगाकर चाबी अपने साथ ले गये। सेठजी ने सोचा कि ऐसी चमत्कारी सुकृत की वस्तु को अपने घर मे रखना ठीक नही है। यदि कभी किसी घर के व्यक्ति का मन चल जाय तो सारा घर बर्बाद हो जायगा। यह सोचकर शहर के बाहिर जो उनका बगीचा था उसमे एक बगला बनवाया। उसके नीचे तलघर बनवाया और उसमे बीस-बीस हाथ लम्बे चौडे कमरे बनवाये। जब बगला बनकर तैयार हो गया, तब सेठजी ने वह लादी घर से उठाई और कपडे मे लपेट कर बगीचे मे ले जाकर तलघर के एक कमरे मे जाकर रख दी। वह शिला वहा भी नाना प्रकार रत्न बिखेरने लगी। जब वह भर गया तो सेठजी ने उसे दूसरे म रख दी और इसे सील-मोहर लगाकर बन्द कर दिया। इस प्रकार दूसरे के भर जाने पर तीसरे मे और तीसरे के भर-जाने पर चौथे मे रख दी। और सब को सील-मोहर बन्द कर दिया और कमरो के बाहिर लिख दिया कि 'यह सम्पत्ति देश, जाति और धर्म मे लगाई जावे और मेरे परिवार का कोई व्यक्ति इसे काम मे नही लेवे।' यहा यह ज्ञातव्य है कि घर पर जो सुकृत का द्रव्य था और घर पर उस शिला के प्रभाव से जितना धन कमरे मे भर गया था, वह भी उन्होने बगीचे का मकान बनते ही उसके तलघर मे डलवा दिया था।

भाइयो, उन सेठजी का नाम था सारगशाह। वे जब तक जीवित रहे, उनका घर और परिवार भरपूर रहे और उनका कारोबार खूब चलता रहा। परन्तु जैसे चक्रवर्ती के काल कर जाने पर उनका अपार वैभव भी उनके [illegible] नही सम्भाल पाते है और वह सब समाप्त हो जाता है, क्योकि वह सब चक्रवर्ती के पुण्य से प्राप्त होता है, अत उनके जाते ही वह वैभव भी [illegible] जाता है। यही हाल सेठ सारगशाह का हुआ। उनके स्वर्गवास होने के कुछ दिनो के [illegible] सब [illegible] स्वर्गीय हो गए और कारोबार भी [illegible] हो गया। [illegible] आ गये और इधर [illegible] आई और उधर परिवार के [illegible], [illegible] और सेठानीजी [illegible] आई, [illegible] है, [illegible] में [illegible] है। [illegible] है [illegible]।

[illegible] हि [illegible] पुण्यानां [illegible] हि [illegible]।

अर्थात्—जिनका पुण्य बीत जाता है, विपत्तिया उनके पीछे रहती है उन्हें कही से लाना नही पडता। ससार मे सम्पत्ति या पुण्य की अनुगामिनी हैं और विपत्तिया पाप की सहचरी हैं।

अब सेठानी ने देखा कि दिन बदल गये हैं और जिस घर मे हमने अमीरी के दिन देखे हैं तो उस घर मे अब इस गिरी हालत मे रहना ठीक नही। उनका चित्त भी वहा नही लगता था। अत वे बहू और पोते को लेकर बगीचे के बगले मे चली गई और वही धर्मध्यानपूर्वक अपना शेप जीवन-यापन करने लगी। नौकर-चाकरो का जो विशाल परिवार था, उसे छुट्टी दे दी। केवल दो-तीन परिचारिकाएँ भीतरी काम को रखी और बगले के पहरे वा बाहरी काम के लिए दो नौकर रखे। भाई, कहावत है कि यदि 'दाल जल भी जाय, तो भाजी बराबर फिर भी रहती है'। तदनुसार गरीबी आजाने पर भी उनके सीमित परिवार के निर्वाह के योग्य सम्पत्ति फिर भी शेप थी, सो सेठानीजी उससे अपनी गुजर करती हुई रहने लगी। इतनी अधिक दशा बिगडने पर उन्होने उस सुकृत के द्रव्य की ओर मन को नही चलाया—जब कि वे उसी के ऊपर रह रही थी। पोते के पालन-पोपण और पढाई-लिखाई का उन्होने पूरा ध्यान रखा और धीरे-धीरे वह पढ लिखकर होशियार हो गया।

इन्ही दिनो की बात है कि बादशाह की सभा मे चर्चा चली कि दिल्ली मे यह कहावत क्यो प्रसिद्ध है कि **'पहिले शाह और पीछे बादशाह।'** कही बादशाह भी किसी के पीछे होता है? अत उसने वजीर को हुक्म दिया कि इस कहावत के प्रतिकूल यह हुक्म जारी कर दो कि आगे से यह कहा जाय कि **'पहिले बादशाह, पीछे शाह'**। वजीर ने कहा—जहापनाह, दिल्ली मे यह कहावत पीढियो से चली आ रही है उसे बदलना अपने हाथ की बात नही है। यह तो जनता के हाथ की बात है। वह बदलेगी, तभी सभव है, अन्यथा नही। बादशाह ने कहा—अच्छा शहर के सभी कौमो के खास-खास लोगो को बुलाया जाय। वजीर ने सबको बुलाया। जब वे लोग बादशाह का मुजरा करके बैठ गये तो बादशाह ने उनसे कहा—मैं यह कहावत बदलना चाहता हू। सबने कहा—हुजूर, यह पुराने वक्त से चली आ रही है फिर इसे क्यो बदला जाय? फिर भी यदि आप बदलना ही चाहते हैं, तो जो लोग शाह पदवी के अधिकारी हैं, उन लोगो को बुलाकर कहा जाय। यदि वे लोग बदलना चाहे तो यह बदल सकते हैं। बादशाह ने दूसरे दिन शाह पदवी के धारको को बुलाया और उनसे पूछा कि आपके पूर्वजो ने ऐसा क्या बडा काम किया है कि जिससे यह कहावत चली

कि 'पहिले शाह, पीछे बादशाह'। उन लोगों ने कहा—जहांपनाह, आपके और हमारे पूर्वज तो भगवान के प्यारे होगये हैं, सो हमें पता नहीं कि कैसे यह कहावत चली। परन्तु हम इतना निश्चित कह सकते हैं कि कोई भी कहावत अकारण नहीं चलती है। उसके मूल में कोई न कोई कारण अवश्य रहता है। उन लोगों ने (हमारे पूर्वजों ने) कभी कोई ऐसा ही शाही कार्य किया होगा, तभी तो यह कहावत चली। अकारण कैसे चल सकती थी। जब बादशाह ने देखा कि इसे बदलवाना सहज नहीं है तब उन्होंने एक तरकीब सोची और बोले—देखो, तुम लोग मेरे इस दीवान खाने के सामने इसी की ऊंचाई बराबर का एक रत्नों का 'कीर्त्तिस्तम्भ' बनवाकर एक माह में खड़ा कर दोगे तो यह कहावत रहेगी, अन्यथा खतम कर दी जायगी। सब शाह लोग बादशाह की बात सुनकर और कीर्त्तिस्तम्भ के बनवाने की 'हां' भरकर अपने घरों को आ आये।

दूसरे दिन शाह-वंश के प्रमुख ने जाजम बिछवाई और सब शाह लोगों को बुलवाकर पूछा—आप लोग बादशाह की बात को सुन चुके हैं। अब बतलाओ कि आप लोगों को 'शाह' की पदवी रखनी है, या नहीं रखनी है। सबने एक स्वर से कहा—हां, रखनी है। प्रमुख ने कहा—पदवी बातों से नहीं रहेगी। इसकेलिए आप लोगों को भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। सब लोग पुनः एक स्वर से बोले—जो कुछ भी चुकानी पड़ेगी, चुकायेंगे, पर पदवी नहीं जाने देंगे। तब प्रमुख ने कहा—अच्छा तो कागज-कलम उठाओ और अपनी अपनी रकम मांडो। सबने कहा—आपसे किसी की कोई बात छिपी नहीं है। आप जिसकी जो रकम मांडेंगे, वह सबको स्वीकार होगी। तब लिखनेवालों ने पूछा—पहिले किसके नाम की रकम मांडी जावे? तब एक दूसरे का मुख देखने लगे। कोई किसी का नाम कहे और कोई किसी का नाम पहिले लिखने को कहे। वहां नगरसेठ का एक मुनीम भी वहां उपस्थित था, जिसने यह [illegible] था। उसने कहा—सबसे पहिले मेरे [illegible] के नाम की रकम मांडी जावेगी, पीछे और [illegible] [illegible] मुनीमजी [illegible]

[illegible]

आखिर बग्घी मगाई गई और पच लोगों को लेकर मुनीम जी बगीचे मे पहुचे। दिन फिरने और सार-सभाल न रहने से बगीचा सूख गया था, एव मरम्मत न हो सकने से बगला की दीवाले भी जहा-तहा से फट रही थी। वहा की यह हालत देखकर पच लोग सोचने लगे – यहा से क्या मिलनेवाला है ? कहावत है कि 'बाई जी तो खालेवें, फिर बायना बाटें' ? जब सेठ सारगशाह जी की सेठानी बगीचे और बगले की सभाल भी नही कर सकती है, तब यहा से क्या आशा की जा सकती है, इस प्रकार सोच-विचार करते हुए पच लोग बग्घी से उतरे। मुनीमजी ने आगे बढकर पहरेदार से कहा—कु वर साहब को खबर करो कि पच लोग आये है। उसने जाकर कु वर साहब से कहा। उसने दादी मा के पास जाकर कहा कि शहर से पचलोग आये हैं। उसने कहा—जाओ, बैठक को साफ कराके उन्हे सत्कार पूर्वक बिठाओ और पूछो कि वे कैसे पधारे ? कु वर ने नौकर को बैठक साफ करने को कहा और स्वय बगले के बरामदे मे आकर सबका स्वागत किया और बैठक मे बैठाया। कुछ देर तक लोग कु वर से कुशल-क्षेम की पूछते रहे और इधर उधर की चर्चा करते रहे। जब उनके आने का प्रयोजन कु वर साहब ने पूछा—तभी भीतर से सेठानीने कहलवाया—सब लोग भोजन के लिए पधारे, रसोई तैयार है। पचो ने कहा—हम जीमने नही आये हैं, काम करने आये है। नौकर ने जाकर यह बात सेठानीजी से कही। तब सेठानी ने कहा—पहिले आप लोगो को जीमना होगा। पीछे जिस काम से आप लोग आये है, वह होगा। सेठानी ने यह कहलाकर और थाली मे सर्वप्रकार के भोज्य पदार्थ सजाकर बैठक मे भिजवा दिये। पच लोग थालो को आया देखकर मुनीम जी के आग्रह पर खाने लगे। जब सब लोग खा-पी चुके, तब मुनीम जी ने कु वर साहब से पचो के आने का प्रयोजन कहा। वे बोले—मैं मा साहब से पूछ कर आता हू, वे जो कहेगी, वही हाजिर कर दू गा। यह कह कर वह भीतर गया और अपनी दादी मा से सारी बात कह सुनाई। तब उसने कहा—पचो से जाकर कह दो कि जितने भी कीर्त्तिस्तम्भ खडे करने हो उनकी पूरी रकम सारगशाह के यहा से आजायगी। जब उसने यह बात पचो के सामने जाकर के कही तब सब पच लोग एक दूसरे का मुख देखने लगे। तब मुनीम जी कहते हैं कि आप लोग इधर-उधर क्या देखते हैं, पूरा खर्च सेठ सारगशाह के यहा से आयेगा, कागज पर कलम माडिये। तब पच लोग बोले—मुनीमजी, सामने कुछ दिखे तो माडें। यहा तो दीवाले ही उनकी परिस्थिति को बतला रही हैं, फिर ये कीर्त्तिस्तम्भ क्या बनवायेंगे ? तब मुनीमजी ने भीतर कहलाया

कि मै मिलने को आना चाहता हू। भीतर से उत्तर आया—पधारिये। [illegible]
मुनीम साहब भीतर गये और सारी बात सेठानी जी से कही और [illegible] कि
जब रकम माडने का नम्बर आया तो मैने कहा कि सबसे पहिले सेठ
सारगशाह का नाम मडेगा। इसलिए आप जो भी रकम चाहे वह लिखा
दीजिए। तब सेठानी ने कहा—मैंने कुवर साहब से कहला दिया है कि
जितनी रकम लगेगी, वह यहा से मिल जायगी। उन्होंने कहा—आपके
कहलाने पर पच लोग शकित दृष्टि से इधर-उधर देख रहे है ? तब सेठानी
ने कहा—आप पन्च लोगो को लेकर कुवर साहब के साथ तलघर मे पधारें
और जितनी भी रकम चाहिए हो, उसमे से निकाल लीजिए और गाड़िया
भर कर ले जाइये। सेठानी ने मनमे सोचा कि यह धन हमें अपने काम मे
तो लेना नही है और सेठ साहब अपने सामने ही तलघर पर लिखा गए
है कि जब भी देश, जाति और धर्म पर सकट पडे, तभी इसे काम मे लिया
जाये। तब वह नौकर को साथ लेकर और गेती-फावडा मगाकर सब पचो
के सामने द्वार की चिनाई को तुडवाया। सबसे पहिले वह शिला निकली
जिस पर सेठजी ने अपने ही हाथ से उक्त बात लिखी थी। फिर उसके हटाते
ही भीतर चमकते हुए हीरे पन्ने और मोती माणिक के ढेर के ढेर दिखाई
दिये। तभी मुनीमजी ने पचो से कहा—ऐसे ऐसे चार तलघर भरे हुए है।
यह सुनते ही पच लोग अवाक् रह गये और सब हर्षित नेत्रों से एक दूसरे
की ओर देखने लगे। फिर बोले—अब हमारी शाह पदवी को कोई नहीं छीन
सकता। पचो के कहने से तलघर वापिस चुनवा दिया गया और उसके ऊपर
पहिरेदार बिठा दिये गये।

अब पन्च लोग सारगशाह के नाम पर, पूरी रकम [illegible] और उनका
गुण-गान करते और हर्षित होते हुए बादशाह के पास पहुंचे और बोले—
जहापनाह, सर्व प्रकार के रत्न और जवाहिरात तैयार है, हुक्म दीजिए कि
कीर्तिस्तम्भ कहा पर बनाया जावे। यह सुनकर बादशाह बड़ा [illegible]
और मुस्कराते हुए बोला—आप लोगों ने [illegible] नहीं [illegible]। भला
कौन-सा बादशाह है जो रत्न-और जवाहिरात से कीर्तिस्तम्भ [illegible]
है। तब पचो ने कहा—हुजूर हमारे एक सारगशाह ही [illegible] कीर्तिस्तम्भ
बनवा सकते है, दूसरा की तो बात ही दूर है। [illegible] कीर्ति-
स्तम्भ [illegible] पीछे बनाऊगा। [illegible]
तब पचो ने कहा—हुजूर पधारिये। तब बादशाह [illegible]
[illegible]

शाह के बगले पर पहुचे। मुनीमजी ने नौकर से गेती-फावडा मगाकर और तलघर का द्वार खुलवा करके बादशाह को रत्नो के ढेर दिखाये। बादशाह एक ही शाह के घर मे रत्नो के ढेर देखकर वडा चकित हुआ कि जो वाहिर से साधारण सा घर दिखता है, उसके भीतर इतनी अपार सम्पत्ति हे, तव औरो के पास कितनी नही होगी ? फिर पचो से कहा—भाई मुझे कोई कीर्त्तिस्तम्भ नही वनवाना है। परन्तु मुझे तो पानी देखना था, सो आज अपनी नजर से प्रत्यक्ष देख लिया है। पचो ने वादशाह को वतलाया कि यह सब धन-माल सारगशाह जी का है। इसमे से एक कौडी भी उनके काम नही आती है। सेठ सारगशाह जी इसे धर्मार्थ सोप गये है और अपने हाथ से लिख गये हैं कि जव भी देश, जाति और धर्म पर सकट आवे, तभी इसे काम मे लिया जावे, अन्य कार्य मे नही लगाई जाये। इसलिये हुजूर जव भी कोई सकट देश पर आया देखे, तव इसे काम मे ले सकते हैं। यह सुन कर वादशाह आनन्द से गद्‌गद हो गये और हृदय प्रसन्नता से तर हो गया। वादशाह यह कह कर चले गये कि ठीक है, इस तलघर को वन्द करा दो और जब देश पर कोई सकट आयगा, तब इसका उपयोग किया जायगा। पच लोग भी हर्षित होते हुये अपने घर चले गये और सारगशाह का जय-जय कार करते गये।

सब के चले जाने पर मुनीमजी ने कहा—सेठानी साहव ! आप आज्ञा देवें तो फिर कारोबार शुरू किया जावे, क्योकि अब कु वर साहव भी काम सभालने योग्य हो गये हैं। तत्पश्चात् सेठानी जी के कहने से मुनीम जी ने फिर उनका कारोवार शुरू किया और पुण्योदय ने साथ दिया कि कुछ दिन मे उनके घर मे आनन्द ही आनन्द हो गया। और कारोवार भी पूर्व के समान चलने लगा। उनके पोते का नाम था विजयशाह।

भाइयो, कहने का यह मतलव है कि मनुष्य को अपनी नीति और नीयत सदा साफ रखना चाहिए। यदि कदाचित् मन कभी चल-विचल हो तो उसे ज्ञान के अकुश से वश मे रखना चाहिए। नीति विरुद्ध कभी कोई काम नही करना चाहिए। नीति से चलने वालो पर पहिले तो कभी कोई सकट आता ही नही है और यदि पूर्व-पापोदय से आ भी जाय, तो वह जल्दी ही दूर हो जाता है। जो पुरुष व्यवहार और व्यापार तो नीति-विरुद्ध करते हैं और समाज मे अपना पाप छिपाने के लिए दिखाऊ त्याग और तपस्या करते हैं, उनके वह सब करना बेकार है। आज कितने ही स्थानो पर ऐसे प्रमुख लोग देखे जाते हैं जो अपने को समाज का मुखिया कहते हैं और स्थानक, उ

आदि की चल-अचल सम्पत्ति पर कब्जा किये बैठे है। और समाज के मागने पर देना तो दूर रहा—हिसाब तक नही बतलाते है। आपके इसी जोधपुर मे पहिले कितने उपाश्रय और स्थानक थे। पर लोग उन्हे हजम कर गए। बादशाह की ओर से पर्युषण पर्व मे हिंसाबन्दी आदि के परवाने जिन लोगो को दिये गये थे उन्होने और उनके उत्तराधिकारियो ने समाज के मागने पर भी नही दिये और वे सब नष्ट हो गये। ऐसे लोग जहा भी और जिस भी काम मे हाथ डालेगे, वही बटाढार होगा। और भी देखो—आपके पूर्वजो ने ये उपाश्रय और स्थानक किसलिए बनाये थे? इसीलिए कि लोग निराकुलता पूर्वक यहा बैठकर सामायिक करे, पोसा करे और स्वाध्याय-ध्यान करे। परन्तु आज लोग इन्हे भी अपने काम मे लेने लगे है और इनमे बरात तक ठहराने लगे है और खान-पान के अनेक आरम्भ-समारम्भ भी प्रारम्भ कर दिये है। यदि कोई उन्हे रोकता है तो लड़ने को तैयार हो जाते है। भाई, ऐसी अनीति करने वाले लोग क्या फल-फूल सकते है? कभी नही। कहा है—

अन्यायोपार्जितं वित्त दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूल च विनश्यति॥

अर्थात्—अन्याय से उपार्जन किया हुआ धन दश वर्ष तक ठहरता है और ग्यारहवे वर्ष मे गाठ का भी लेकर विनष्ट हो जाता है। वह स्थायी नही रहता।

बन्धुओ, भगवान ने तो यह उपदेश दिया है कि जो महापाप के स्थान है, उन्हे पहिले छोड़ो। पीछे त्याग और तपस्या करो। परन्तु आज भगवान के भक्त पापस्थान तो कोई छोड़ना नही चाहते है और अपना बड़प्पन दिखाने और दुनिया की आखो मे धूल झोकने के लिए त्याग और तपस्या का ढोग करते है। भाई, ऐसा करना महा मायाचार है। इससे तिर्यञ्चायु का आस्रव होता है और अनेक जन्मो तक पशु पर्याय के महादुःख भोगना पड़ते है।

आप लोग देखे कि हिन्दु और जैनियो के कितने मन्दिर है [illegible] कितने गिरजाघर है और मुसलमानो की कितनी मस्जिदे है। [illegible] देखा कि किसी ने उन्हे बेचा हो या गिरवी रख दी हो? [illegible] दिखेगे। [illegible] पर पुरानो [illegible] कोई मन्दिर या मस्जिद [illegible] [illegible]

द्रव्य जैन मन्दिर का द्रव्य भी अपने काम मे नहीं लेना चाहिए। क्या आपने कभी यह विचार किया है कि हिन्दुओं के मन्दिर मे जाने पर प्रसाद दिया जाता है। किन्तु जैन मन्दिरों मे जाने पर क्यों नहीं दिया जाता है? इसका कारण यही है कि देव द्रव्य हमारे काम की वस्तु नहीं है, वह निर्माल्य है। तीर्थ क्षेत्रो पर जो भाता दिया जाता है, वह भी मन्दिरो मे या क्षेत्र के अन्दर नहीं दिया जाता है। किन्तु उस स्थान से बाहिर ही दिया जाता है। जिन लोगों ने यह व्यवस्था प्रचलित की है, उनका अभिप्राय यही रहा है कि तीर्थ यात्रा से थका और भूखा-प्यासा व्यक्ति सुख-साता पावे। उन्होंने उस द्रव्य को इसी उद्देश्य से सकल्प करके दिया हुआ है और जो यात्री जाते है वे भी उसमे कुछ न कुछ रकम जमा ही करा आते है। वैष्णवों मे दीवाली पर अन्न-कूट करते हैं। और फिर वे स्वय ही काम मे लेते है। मन्दिरमार्गी दि० जैनों मे भी निर्वाणोत्सव पर मन्दिरो मे लाडू चढाये जाते है, पर वे उसे काम में नही लेते हैं। भाई, दान द्रव्य को अपने काम मे नहीं लेना चाहिए, यही इसका रहस्य है। आप भी यह करेगे तो सदा आनन्द रहेगा।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला ८

जोधपुर

२४ सफलता का मूलमंत्र: आस्था

आस्था का अर्थ

भाइयो, आस्था नाम श्रद्धा, निष्ठा, दृढप्रतीति या विश्वास का है। आस्था के पूर्व मनुष्य को यह ज्ञान होना आवश्यक है कि यह वस्तु मेरे लिए हितकारी है, या नही ? ससार मे चार प्रकार की वस्तुएँ होती है—एक तो वह जो अच्छी तो है, पर अपने काम की नही है। दूसरी वह जो अपने काम की है, पर अच्छी नही है। तीसरी वह जो अच्छी भी है और काम की भी है और चौथी वह जो न अच्छी है और न अपने काम की ही है। जैसे—साधु के पात्र आदि उपकरण अच्छे हैं, पर गृहस्थ के काम के नही है। इसी प्रकार गृहस्थ के बाग-बगीचे और जर-जेवर अच्छे तो है किन्तु साधु के लिए व काम के नही है। जिसकी प्रकृति उष्ण है, उसके लिए केशर कस्तूरी अच्छी होते हुए भी काम की नही है। दही, मक्खन, मिश्री आदि अच्छे होते हुए भी वातप्रकृति वाले के लिए काम के नही है। दूसरी वस्तु अपने काम की तो है, परन्तु अच्छी नही है। जैसे—नीम के पत्ते, गिलोय और चिरायता आदि काम के तो है, क्योकि ये ज्वरादि को दूर करते है, परन्तु कड़ुए होने से अच्छे नही है। तीसरी वस्तु ऐसी है जो काम की भी है और अच्छी भी है। जैसे स्वस्थ व्यक्ति के लिए मनचाहा भोजन और शीत मे [illegible]। चौथी वस्तु ऐसी है जो न अच्छी भी नही है और काम की भी नही है। जैसे—जहर। अब इन चार प्रकार की [illegible]

योगी है, इसका निर्णय करके हमे उस पर आस्था करनी चाहिए, फिर उससे चल-विचल नही होना चाहिए। ऐसी दृढप्रतीति और श्रद्धा का नाम ही आस्था है। कहा भी है—

इदमेवेदृशमेव तत्त्व नान्यन्नेचान्यथा ।
इत्यकम्पाऽऽयसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसशयारुचि ॥

अर्थात्– तत्त्व का स्वरूप यही है, ऐसा ही है, जैसा कि जिनेन्द्र देवने कहा है। उससे विपरीत अन्य कोई वास्तविक स्वरूप नही है, और न अन्यथा हो सकता है। ऐसी दृढ प्रतीति का नाम ही श्रद्धा या आस्था है। जैसे तलवार की धार पर चढा पानी दृढ रहता है उससे अलग नही होता उसी प्रकार दृढ श्रद्धा से जिसका मन इधर-उधर नही होता है, उसे ही आस्था कहते हैं। यह पारमार्थिक आस्था है।

लौकिक आस्था

दूसरी लौकिक आस्था होती है। जैसे—सज्जन की सज्जन के ऊपर, पडौसी की पडौसी के ऊपर और मित्र की मित्र के ऊपर। कोई पुरुप सत्यवादी है, तो हमारी उस पर आस्था है—भले ही वह हमारा शत्रु ही क्यो न हो। किसी की आस्था ज्योतिषी पर होती है कि वह जो भविष्य फल कहेगा, वह सत्य होगा। किसी की आस्था वैद्य पर होती है कि उसके इलाज से मुझे अवश्य लाभ होगा।

मूलदेव एक राजकुमार था। उसे दान देने मे आनन्द आता था। उसकी दान देने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढने लगी तो उसके पिता को—जो कि एक बडे राज्य का स्वामी था—यह अच्छा नही लगा। भाई, कृपण को दाता पुरुष से, मूर्ख को विद्वान से, चोर को साहूकार से, पापी को धर्मात्मा से, दुराचारी को सदाचारी से और वेश्या या व्यभिचारिणी स्त्री को सदाचारिणी और ब्रह्मचारिणी स्त्री से ईर्ष्या होती है। इन लोगो का परस्पर मे मेल-मिलाप या प्रेम नही होता।

हा, तो जब राजकुमार मूलदेव की अपने पिता से अनबन रहने लगी तो वह एक दिन घर छोडकर वाहिर चला गया। चलते-चलते वह जगल मे पहुचा। वहा पर एक साधु का आश्रम दिखाई दिया। वह थककर चूर-चूर हो रहा था, अत उसने वही पर विश्राम करने का विचार किया। क्यूकि सूर्यास्त हो रहा था—अत उसने उस आश्रम के साधु से निवेदन किया कि बाबाजी! मैं रात भर यहा ठहर सकता हू? उस साधु ने कहा—आप सहर्ष ठहर सकते

है। उस आश्रम मे साधु का एक चेला भी था। उसके साथ बातचीत करते हुए मूलदेव सो गया। रात को दोनो ने स्वप्न मे देखा कि आकाश से उतरता हुआ पूर्णमासी का चन्द्रमा आया और मेरे मुख द्वार से पेट मे चला गया है। प्रात काल होने पर चेले ने गुरु से अपना स्वप्न कहकर उसका फल पूछा। गुरु ने कहा— आज तुझे भिक्षा मे एक बडा गोल रोट मिलेगा। मूलदेव भी वही बैठा हुआ सुन रहा था। उसे स्वप्न का फल जचा नही, अत उसने उनसे पूछना उचित नही समझा। भाई, स्वप्नादि का फल तो उस स्वप्न शास्त्र के वेत्ता अधिकारी व्यक्ति से ही पूछना चाहिए। यदि ऐसा कोई जानकार ज्योतिषी न मिले तो गाय के कान मे कह देना चाहिए और यदि वह भी समय पर नही मिले तो जगल मे जाकर बोल देना चाहिए। परन्तु अज्ञान, अभागी और पुण्यहीन व्यक्ति से नही कहना चाहिए, अन्यथा यथेष्ट फल नही मिलता है। तथा स्वप्नशास्त्र मे यह भी लिखा है कि स्वप्न आने के बाद फिर नही सोना चाहिए। यह विचार कर मूलदेव ने अपने स्वप्न का फल उस साधु से नही पूछा और वहाँ से चल दिया।

भाइयो, स्वप्न एक निमित्तज्ञान है। निमित्तज्ञान के आठ भेद शास्त्रो मे बतलाये है। यथा—

अष्टौ महानिमित्तानि—अन्तरिक्ष-भौम-अग-स्वर-व्यञ्जन-लक्षण-छिन्न-स्वप्न नामानि।

शुभाशुभ फल के सूचक ये आठ निमित्त है—अन्तरिक्ष-भौम, अग, स्वर, व्यजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रादि उदय अस्त आदि के द्वारा भूत-भविष्य काल की बात को जानना अन्तरिक्ष निमित्तज्ञान है। पृथ्वी के स्निग्धता-रूक्षता, सघनता-सछिद्रता आदि को देखकर भीतर मे छिपे हुए धनादि को जानना, भूकम्प आदि से जय पराजय और हानि लाभ को जानना भौम-निमित्त ज्ञान है। स्त्री-पुरुषादि के अग-उपागो को देखकर और उनको छूकर उनके सौभाग्य-दुर्भाग्य को जानना अग निमित्तज्ञान है। मनुष्य और पशु-पक्षियो के अक्षर-अनक्षर रूप शब्दो को सुनकर शुभ-अशुभ को जानना स्वर-निमित्तज्ञान है। मस्तक, गला, मुख आदि पर तिल-मसा आदि को देखकर उस व्यक्ति के हित-अहित रूप प्रवृत्ति को जानना व्यजन निमित्तज्ञान है। शरीर के श्रीवत्स, स्वस्तिक, शख, चक्र आदि शुभ चिह्नो को देखकर उसकी महानता और अशुभ चिह्नो को देखकर उसकी अधमता को जानना लक्षण निमित्तज्ञान है। वस्त्र, छत्र, आसन आदि को चूहे आदि के द्वारा कटे हुए को देखकर [illegible] जानना छिन्न निमित्त ज्ञान है। [illegible]

शुभाशुभ फल को जानना स्वप्न निमित्तज्ञान है। स्वप्न दो प्रकार के होते हैं—सफल और निष्फल। शरीर मे वात पित्तादि के विकार होने पर आनेवाले स्वप्न निष्फल होते हैं। किन्तु जब शरीर मे वात-पित्तादि का कोई भी विकार नही हो उस समय देखे हुए स्वप्न फल देते हैं। रात्रि के विभिन्न समयो मे देखें गये स्वप्न विभिन्न समयो मे फल देते हैं। स्वप्नशास्त्र मे ७२ प्रकार के स्वप्न बतलाये गये हैं। उनमे ३० उत्तम जाति के महास्वप्न माने गये हैं। उनमे से गज, वृषभ आदि चौदह महास्वप्नो को तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माताए देखती हैं, सात को नारायण की माताए, चार को बलभद्र की माताए और किसी एक को मॉडलिक राजा की माताए देखती हैं। शेष ४२ स्वप्न साधारण माने जाते हैं। उनमे से कुछ तो ऐसे हैं कि देखने मे बुरे प्रतीत होते हैं, परन्तु उनका फल उत्तम होता है। जैसे यदि कोई स्वप्न देखे कि मैं विष्टा मे गिर पडा हू और मल लिप्त हो रहा हू तो ऐसे स्वप्न का फल राज्य-प्राप्ति एव धन-ऐश्वर्य लाभ आदि बतलाया गया है। कुछ ऐसे भी स्वप्न होते हैं जो देखने और सुनने मे तो अच्छे मालूम पडते हैं, परन्तु उनका फल बुरा होता है। जैसे कि स्वप्न मे स्नान करता हुआ अपने को देखे, दूसरे के द्वारा अपने को माला पहिरायी जाती हुई देखे तो इसका फल मरण या सकट आना आदि बतलाया गया है। पहिले लोग इन सर्व प्रकार के निमित्तो के ज्ञाता होते थे और साधुओ को विशिष्ट तपस्या के कारण अष्टाङ्ग महानिमित्त का ज्ञान तथा ऋद्धि सिद्धि की प्राप्ति हो जाती थी। तभी तो शास्त्रो मे **'णमो अट्ठंग महानिमित्त कुसलाण'** अर्थात् 'अष्टाग महानिमित्त शास्त्र मे कुशल साधुओ को मेरा नमस्कार हो' ऐसे मत्र वाक्य पाये जाते हैं, और दैनिक स्तोत्रो मे भी ऐसे पाठ मिलते हैं—

प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञा स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न।

अर्थात्—अष्टाग निमित्तो के जानने वाले प्रवादी परम ऋषिगण हमारा कल्याण करें।

आज लोगो की इन बातो पर आस्था नही है और वे कहते है कि ये सब झूठ है। परन्तु भाई, यथार्थ मे बात ऐसी नही है। ये सब निमित्तशास्त्रोक्त बातें सत्य है। परन्तु सूक्ष्मता से उनका ज्ञान आज विरले लोगो मे पाया जाता है। अधिकाश लोग पल्लवग्राही पाडित्य वाले होते हैं, सो उनकी भविष्यवाणी झूठी निकल जाती है, या शुभाशुभ जैसा वे फल बतलाते हैं, वह मिथ्या सिद्ध होता जाता है, सो यह शास्त्र का दोष नही, किन्तु अधूरे अध्ययन का फल है।

ज्ञान का सम्मान

पुराने जमाने में निमित्त विद्या का प्रसार था और लोग ज्योतिष और निमित्तशास्त्र को पूर्ण रूप से अधिकारी गुरु से पढते थे। तब उनका शुभा-शुभ फल-कथन सत्य सिद्ध होता था। आजकल प्रथम तो इस ज्योतिष विद्या के विशिष्ट अभ्यासी व्यक्ति ही नही है। जो कुछ थोडे से जहा कहीं है, तो लोग उनके परिश्रम का समुचित मूल्याकन भी नही करते है। कितने ही लोग मफ्त मे ही विना कुछ दिये लग्न आदि को पूछने पहुंचते है। ऐसे लोग यह भी नही सोचते है कि ज्योतिषी के इसके सिवाय आमदनी का और कोई धन्धा नही है, फिर हम मुफ्त मे क्यो पूछे। ज्योतिषी भी देखते है कि यह खाली हाथ ही पूछने आया है, तो वे भी उसे यो ही चलता हुआ सा लग्न समय आदि बतला देते है। आप लोग मुकद्दमे आदि के वास्ते वकीलो से सलाह लेने को जाते है तो उसे भी भरपूर फीस देते है। पर जिस लडके या लडकी के विवाह-सम्बन्ध की लग्न पूछने जाते है, जिसका कि सम्बन्ध दोनो के जीवन भर के सुख-दुख से है, जिनके विवाह मे आप हजारो और लाखो रुपये खर्च करते है अनर्थक कार्यो मे पैसा पानी की तरह बहाते है, उसी का लग्न निकलवाने मे ज्योतिषी को कुछ भी नही देना चाहते, या [illegible] मे ही काम निकालना चाहते है। भाई, चाहिए तो यह कि आप ज्योतिषी से कहे कि आप लडके और लडकी दोनो की कुडलियो को देखे कि वे शुद्ध और सही है, या नही? यदि अशुद्ध हो तो उसे जन्म समय [illegible] शुद्ध करके मिलान करके लग्न निकालने के लिए कहिये और साथ मे कहिये कि आपकी समुचित सेवा की जायगी। हम आपको भरपूर पारिश्रमिक भेट करेगे। आपके ऐसा कहने पर ही ज्योतिषी समुचित परिश्रम करके [illegible] और यदि किसी के [illegible] यह [illegible] देना भी [illegible] देगा। पर यह [illegible] है जबकि आप [illegible] पारिश्रमिक भेट करे। [illegible] लोग [illegible] और [illegible] [illegible] आई, [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]

लग्न ठीक जंच जाती तो रुपये लेते अन्यथा वापिस कर देते थे। और साफ कह देते थे कि मेरे पास लग्न का मुहूर्त नही है। वे विवाह की लग्न ऐसी निकालते थे कि कभी कही पर भी बारह वर्ष से पहिले विधुर या विधवा होने का सुनने मे नही आया। उनके चार शिष्य थे, उन्होने अपनी विद्या किसी को नही पढायी। जब उनसे किसी ने इसका कारण पूछा तो उन्होने उत्तर दिया कि अपात्रो को ऐसी विद्या देना उसे बदनाम कराना है। वे प्राय कहा करते थे कि

'व्यर्थस्त्वपात्रे व्ययः' अर्थात् अपात्र को पढाने मे समय का व्यय करना व्यर्थ है। जब उत्तम विद्या सुयोग्य पात्र को दी जाती है तो वह यश-वर्धक होती है अन्यथा अपयश और अपमान का कारण होती है। जब योग्य पात्र को विद्या दी जाती थी, तभी योग्य विद्वान् पैदा होते थे।

ठालो बात करे सब आय के देन की बात करे नहीं कोई।
पूछत आगम ज्योतिष वैदिक पुस्तक काढ कहो हम जोइ।
काम कहो हम है तुम सेवक आरत के वस बोलत सोइ।
दिल ठरे तो दुवा फुरे 'केसव, मु हरी बात से काम न होई ॥१॥

हा, तो वह मूलदेव उस आश्रम से चल करके किसी बडे नगर मे पडितो के मुहल्ले मे पहुचा। उसने लोगो से पूछा कि यहाँ सर्वोत्तम ज्योतिषी कौन है? लोगो ने जिसका नाम बताया उसका पता-ठिकाना पूछता हुआ वह उसके घर पर पहुचा। वहा पर अनेक लोग अपने अपने प्रश्न पूछने के लिए बैठे हुए थे और ज्योतिषी जी नम्बर वार उत्तर देकर रवाना करते जाते थे। उनकी आकृति और भाव-भगिमा से मूलदेव को भी विश्वास हो गया कि ये उत्तम ज्योतिषी है। अत वह भी उन्हे नमस्कार करके यथास्थान बैठ गया। जब अन्य सब लोग चले गये और इसका नम्बर आया तो इसके पास भेट करने को कुछ भी नही था। और यह जानता था कि

'रिक्तपाणिर्न पश्येद् राजान देवता गुरुम्'

अर्थात्- खाली हाथ राजा, देवता और गुरु के पास नहीं जाना चाहिए। इस मर्यादा के अनुसार उसने अपने हाथ मे पहिनी हुई हीरा की अगूठी उनको भेंट की और उनके चरण-स्पर्श करके विनयावन्त होके बैठ गया। ज्योतिषी ने पहिले तो आगन्तुक का मुख देखा, पीछे अंगूठी की ओर दृष्टि डाली। फिर पूछा—कहिये, आपको क्या पूछना है? उसने अपना रात्रि मे आया हुआ

स्वप्न कह सुनाया । स्वप्न सुनकर ज्योतिषी ने कहा—आप दूर से आये और थके हुए प्रतीत होते हैं और भोजन का समय भी हो रहा है । अतः पहिले आप स्नान कीजिए और भोजन करके विश्राम कीजिए । तत्पश्चात् आपके स्वप्न का फल बतलाऊंगा । मूलदेव भी कल से भूखा और थका हुआ था । अतः ज्योतिषी के आग्रह को देखकर नहाया-धोया । पंडितजी ने पहिनने के लिए धुले हुए दूसरे वस्त्र दिये और अपने साथ बैठा कर प्रेम से उत्तम भोजन कराया और उसे विश्राम के लिए कहकर स्वयं भी विश्राम करने के लिए चले गये । तीसरे पहर पंडितजी अपनी बैठक में आये और मूलदेव भी हाथ-मुंह धोकर उनके पास जा पहुंचा । पंडित जी ने पूछा—कुंवर साहब आप स्वप्न का फल पूछने को आये हैं, अथवा मेरी परीक्षा करने के लिए आये हैं ? यदि स्वप्न का ही फल पूछने को आये हैं, तो मैं जो बातें कहूं, उसे स्वीकार करना होगा । मूलदेव ने उनकी बात स्वीकार की । पंडितजी बोले—तो मैं स्वप्न का फल पीछे कहूंगा । पहिले आप मेरी सुपुत्री के साथ शादी करना स्वीकार करो । यह सुनकर मूलदेव ने कहा—पंडितजी, मेरा कोई ठिकाना नहीं है और आप शादी स्वीकार करने की कह रहे हैं, यह कैसे संभव होगा । पंडितजी बोले—आप इसकी चिन्ता मत कीजिए । मूलदेव ने भी सोचा कि जब लक्ष्मी आ रही है, तब मैं भी क्यों इनकार करूं । प्रकट में बोला आपकी आज्ञा स्वीकार है । तब पंडितजी ने कहा—आपके स्वप्न का फल यह है कि आपको सात दिन के बाद इसी नगर का राज्य प्राप्त होगा । यह कहकर उन्होंने सर्व तैयारी करके गोधूलि की शुभवेला में मूलदेव के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और वह भी जामाता बन कर सुख से उनके घर रहने लगा ।

भाइयो, सात दिन पीछे अकस्मात् नगर के राजा का स्वर्गवास हो गया । उनके कोई सन्तान नहीं थी । स्वजन अनेक थे । पर उनमें से किसी एक को राजा बनाने पर गृह-कलह की आशंका से मंत्री और सरदार लोगों ने [illegible] निश्चय किया कि हथिनी के ऊपर कलश रखकर [illegible] [illegible]

किसी के गले मे माला नही पहिनायी। कितने ही उम्मेदवार देवी-देवताओ की मनौती करते हुए सामने आये, पर हथिनी के आगे बढने पर अपने भाग्य को कोसते रह गये। कहा है—

पग विन कटे न पथ, बाह विन हरे न दुर्जन।
तप विन मिले न राज्य, भाग्य विन मिले न सज्जन।
गुरु विन मिले न ज्ञान, द्रव्य विन मिले न आदर।
ताप विना नहीं मेह, मेह विन लर्वं न दर्दुर।
विश्न राम कहैं शाह् वचन बोल अगर पीछा फीरे।
ध्रग ध्रग उन जीव को मन मिलाय अतर करे॥

भाई, विना पूर्व जन्म की तपस्या के राज्य नही मिलता है। जिसने दान दिया है तपस्या की है, उसे ही राज्य लक्ष्मी मिला करती है।

हा, तो वह हथिनी घूमते-घूमते अन्त मे पडितो के मुहल्ले मे गई। वहा उस ज्योतिषी जी के मकान के बाहिर चबूतरे पर मूलदेव अपने मित्रो के साथ बैठे हुए थे। हथिनी ने इनकी ओर देखा और गले मे माला पहिना करके मस्तक पर से सुवर्ण कलश उठाकर उनका अभिषेक कर दिया। इसी समय आकाश-वाणी हुई कि यह राजा नगर-निवासियो के लिए आनन्द वर्धक होगा। राज्य के अधिकारियो ने सामने आकर उनका अभिनन्दन किया और सन्मान के साथ हथिनी पर बैठाकर राज-भवन ले गये। वहा पर उन्हे राजतिलक करके राजगादी पर बैठाया और तत्पश्चात् मृत राजा का अन्तिम सस्कार किया। बारह दिन बीतने के बाद समारोह के साथ राज्यगादी की पूरी रश्मे अदा कर दी गई। और मूलदेव राजा बनकर आनन्द से रहने लगा।

भाइयो, इस कथानक के कहने का अभिप्राय यह है कि मूलदेव को प्रथम तो यह आस्था थी कि मैं जो दान देता हू सो उत्तम कार्य कर रहा हूँ। यदि मेरे पिता दान देने से रुष्ट होकर मुझे रोकते हैं, तो मैं इस सत्कार्य को नही छोडूगा। दूसरे जब उसे स्वप्न आया तो यह आस्था थी कि यह शुभ स्वप्न है, अत अवश्य ही उत्तम फल देगा। तीसरी यह आस्था थी कि सच्चे ज्योतिपी के वचन कभी अन्यथा नही होते, अत योग्य ज्योतिपी से ही इसका फल पूछना चाहिए।

जिनवचन पर आस्था

बन्धुओ, इसी प्रकार आप लोगो की भी आस्था भगवान के वचनो पर होनी चाहिए कि भगवान ने मुक्ति का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्-

स्वप्न कह सुनाया । स्वप्न सुनकर ज्योतिषी ने कहा—आप दूर से आये और थके हुए प्रतीत होते हैं और भोजन का समय भी हो रहा है । अत पहिले आप स्नान कीजिए और भोजन करके विश्राम कीजिए । तत्पश्चात् आपके स्वप्न का फल बतलाऊगा । मूलदेव भी कल से भूखा और थका हुआ था । अत ज्योतिपी के आग्रह को देखकर नहाया-धोया । पडितजी ने पहिनने के लिए धुले हुए दूसरे वस्त्र दिये और अपने साथ बैठा कर प्रेम से उत्तम भोजन कराया और उसे विश्राम के लिए कहकर स्वय भी विश्राम करने के लिए चले गये ' तीसरे पहर पडितजी अपनी बैठक मे आये और मूलदेव भी हाथ-मुह धोकर उनके पास जा पहुचा । पडित जी ने पूछा-- कु वर साहब, आप स्वप्न का फल पूछने को आये है, अथवा मेरी परीक्षा करने के लिए आये है ? यदि स्वप्न का ही फल पूछने को आये हैं, तो मैं जो बाते कहू, उसे स्वीकार करना होगा । मूलदेव ने उनकी बात स्वीकार की । पडितजी बोले—तो मैं स्वप्न का फल पीछे कहूगा । पहिले आप मेरी सुपुत्री के साथ शादी करना स्वीकार करो । यह सुनकर मूलदेव ने कहा—पडितजी, मेरा कोई ठिकाना नही हे और आप शादी स्वीकार करने की कह रहे है, यह कैसे सभव होगा । पडितजी बोले—आप इसकी चिन्ता मत कीजिए । मूलदेव ने भी सोचा कि जब लक्ष्मी आ रही है, तब मै भी क्यो इनकार करूं । प्रकट मे बोला आपकी आज्ञा स्वीकार हे । तब पडितजी ने कहा —आपके स्वप्न का फल यह हे कि आपको सात दिन के बाद इसी नगर का राज्य प्राप्त होगा । यह कहकर उन्होने सर्व तैयारी करके गोधूलि की शुभवेला मे मूलदेव के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और वह भी जामाता बन कर सुख से उनके घर रहने लगा ।

भाइयो, सात दिन पीछे अकस्मात् नगर के राजा का स्वर्गवास होगया । उनके कोई सन्तान नही थी । वशज अनेक थे । पर उनमे से किसी एक को राजा बनाने पर युद्ध की आशका से मत्री और सरदार लोगो ने मिलकर यह निश्चय किया कि हथिनी के ऊपर नगारा रखा कर, मस्तक पर जल-भरा सुवर्ण कलश रख कर और सूड मे पुष्पमाला देकर नगर मे नगारा बजवाते हुए यह घोषणा करायी जाय कि यह हथिनी जिसके गले मे यह पुष्पमाला पहिनायेगी और सुवर्ण-कलश से जिसका अभिषेक करेगी, वही व्यक्ति राज्य का उत्तराधिकारी होगा । अब हथिनी नगर मे घूमने लगी । उसके पीछे राज्य के प्रमुख अधिकारी गण भी पूरे लवाजमे के साथ घूमने लगे । एक-एक करके सभी मोहल्लो के घरो के सामने से हथिनी निकलती चली गई, पर उसने

किसी के गले मे माला नही पहिनायी। कितने ही उम्मेदवार देवी-देवताओ की मनौती करते हुए सामने आये, पर हथिनी के आगे बढने पर अपने भाग्य को कोसते रह गये। कहा है—

पग विन कटे न पथ, बाहु विन हरे न दुर्जन।
तप विन मिले न राज्य, भाग्य विन मिले न सज्जन।
गुरु विन मिले न ज्ञान, द्रव्य विन मिले न आदर।
ताप विना नहीं मेह, मेह विन लवै न दर्दुर।
विशन राम कहै शाह वचन बोल अगर पीछा फीरे।
ध्रग ध्रग उन जीव को मन मिलाय अतर करे॥

भाई, विना पूर्व जन्म की तपस्या के राज्य नही मिलता है। जिसने दान दिया है तपस्या की है, उसे ही राज्य लक्ष्मी मिला करती है।

हा, तो वह हथिनी घूमते-घूमते अन्त मे पडितो के मुहल्ले मे गई। वहा उस ज्योतिषी जी के मकान के वाहिर चबूतरे पर मूलदेव अपने मित्रो के साथ बैठे हुए थे। हथिनी ने इनकी ओर देखा और गले मे माला पहिना करके मस्तक पर से सुवर्ण कलश उठाकर उनका अभिषेक कर दिया। इसी समय आकाश-वाणी हुई कि यह राजा नगर-निवासियो के लिए आनन्द वर्धक होगा। राज्य के अधिकारियो ने सामने आकर उनका अभिनन्दन किया और सन्मान के साथ हथिनी पर बैठाकर राज-भवन ले गये। वहा पर उन्हे राजतिलक करके राजगादी पर बैठाया और तत्पश्चात् मृत राजा का अन्तिम सस्कार किया। वारह दिन वीतने के वाद समारोह के साथ राज्यगादी की पूरी रश्मे अदा कर दी गई। और मूलदेव राजा बनकर आनन्द से रहने लगा।

भाइयो, इस कथानक के कहने का अभिप्राय यह है कि मूलदेव को प्रथम तो यह आस्था थी कि मैं जो दान देता हू सो उत्तम कार्य कर रहा हूं। यदि मेरे पिता दान देने से रुष्ट होकर मुझे रोकते है, तो मैं इस सत्कार्य को नही छोड़ूगा। दूसरे जब उसे स्वप्न आया तो यह आस्था थी कि यह शुभ स्वप्न है, अत अवश्य ही उत्तम फल देगा। तीसरी यह आस्था थी कि सच्चे ज्योतिषी के वचन कभी अन्यथा नही होते, अत योग्य ज्योतिषी से ही इसका फल पूछना चाहिए।

जिनवचन पर आस्था

बन्धुओ, इसी प्रकार आप लोगो की भी आस्था भगवान के वचनो पर होनी चाहिए कि भगवान ने मुक्ति का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्-

चारित्र को बताया है। इसके विपरीत सभी ससार के कारण है। सच्चा धर्म तो ये तीन रत्न ही है। कहा भी है—

सद्दृष्टि-ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति ॥

अर्थात् धर्म के ईश्वर तीर्थंकर देवो ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को सत्य धर्म कहा है। इनके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र ससार के कारण हैं। ऐसी जिसके दृढ आस्था होती है, वही व्यक्ति भवसागर से पार होता है।

भाइयो, भौतिक कार्यों के करने के लिए भी उसमे आस्था और निष्ठा की आवश्यकता है। बिना आस्था के उनमे भी सफलता नही मिलती है। आज जितनी भी वैज्ञानिक उन्नति के चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहे है, वे सब एक मात्र निष्ठा के ही सुफल है। वर्तमान मे आध्यात्मिक निष्ठा वाले व्यक्ति तो इने-गिने ही मिलेंगे। परन्तु जीवन उन्ही का सफल है जो कि लक्ष्मी के चले जाने पर और अनेक आपत्तियो के आने पर भी अपनी निष्ठा से विचलित नही होते हैं।

गुरु की अवहेलना न करो

आप लोग गृहस्थ है अत आप को भौतिक उन्नति के विना भी काम नही चल सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि आप धर्म पर श्रद्धा रखते हुए धर्म युक्त भौतिक कार्यों को निष्ठापूर्वक करते रहे। आपको सच्चे गुरुओ पर आस्था रखनी चाहिए कि '**भवाब्धेस्तारको गुरु**' अर्थात् ससार-सागर से तारने वाला गुरु ही है, उसके सिवाय और कोई दूसरा नही है।

'**डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा, हीलति मिच्छ पडिवज्जमाणा**"

भावार्थ यह है कि—गुरु को यह नही मानना चाहिए कि ये छोटे है—मुझ से कम ज्ञानी है, ऐसा विचार कर उनका अपमान करना ठीक नही।

आज आप लोग अक्सर ऐसा सोचने लगते हैं कि ये गुरु तो मेरे ही सामने पैदा हुए हैं, इन्होने तो कल ही दीक्षा ली है, अभी तो इनको वोलने का भी तरीका याद नहीं है। मैं तो इनसे वहुत अधिक जानता हू और क्रियावान् भी हू। भाई, ऐसा विचार करने से भी गुरु की अवहेलना होती है और मिथ्यात्व कर्म का वन्ध होता है। जिनके मिथ्यात्व कर्म वधता है और उत्तरोत्तर पुष्ट होता रहता है, उन्हे वोधि की प्राप्ति दुर्लभ है। इसलिए आप लोगो को सदा

गुरु पर आस्था रखनी चाहिए और यही भावना करनी चाहिए कि मैं जितनी भी गुरु की भक्ति करूंगा, सेवा करूंगा और इनके अनुशासन मे रहूगा तो मेरे आत्मा का उत्तरोत्तर विकास ही होगा।

आप लोगो को ज्ञात होना चाहिए कि स्थानाङ्ग सूत्र मे बतलाया गया हैं कि गुरु के उपकार से शिष्य, सेठ के उपकार से सेवक और माता-पिता के उपकार से पुत्र कभी ऊऋण नही हो सकता है। जब गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन ! क्या ऊऋण होने का कोई उपाय भी है ? तब भगवान ने कहा—उऋण तो नही हो सकता, परन्तु हलका अवश्य हो सकता है ? गौतम स्वामी ने पुन पूछा—भगवन् ! किस प्रकार हलका हो सकता है ? तब भगवान् ने कहा—गौतम, जिस पुत्र के माता-पिता मिथ्यात्व के गर्त मे पडे हो, वह उसमे से निकाल कर यदि सम्यक्त्व मे स्थापित करें, उन्हे सम्यक्त्व की प्राप्ति करावे, तो वह उनके ऋण से हलका हो सकता है। गुरु का शिष्य पर अनन्त उपकार हैं। परन्तु कदाचित् कर्मोदय से गुरु अपने पद से चल-विचल हो जायें, क्योंकि जब तक मोह कर्म का उदय है और छद्मस्थ अवस्था है, तब तक भूल का होना सभव है तब उनको प्रतिबोध देकर जिस प्रकार से भी सभव हो, वापिस सुमार्ग पर प्रत्यवस्थापन करने से शिष्य गुरु के ऋण से हलका हो सकता है।

सुयोग्य श्रावक

एक महात्मा जी बडे ज्ञानी, ध्यानी और चरित्रवान् थे। परन्तु वे एकल विहारी थे। वे विचरते हुए एक नगर मे पहुचे। इनके प्रवचन सुनकर जनता मुग्ध हो गई, अत. लोग उनकी सेवा-सुश्रूषा करने लगे। एक दिन जब महात्मा जी पारणा के लिए जा रहे थे, तब एक बहुमूल्य हीरा पडा हुआ दिखायी दिया। उसे देखकर उनके विचार उत्पन्न हुआ कि आज तो मैं शरीर से स्वस्थ और जवान हू। पर पीछे शरीर के शिथिल और अस्वस्थ होने पर विना धन के मेरी कौन सेवा करेगा ? यह विचार आते ही उन्होंने उसे उठाकर उसे अटी मे रख लिया। जब गोचरी से निवृत्त हुए तो सोचा कि इसे कहा रखा जावे ? तब उन्होंने उसे एक कपडे की धज्जी मे बाधकर बैठने के पाटे मे एक गड्ढा था, उसमे रख दिया। सायकाल के समय प्रतिक्रमण करने के लिए एक श्रावक प्रतिदिन आते थे और वे महात्मा जी के समीप ही बैठते थे, सो आज भी जब प्रतिक्रमण का समय हुआ तो महात्मा जी प्रतिक्रमण बोलने लगे और वह श्रावक भी बैठकर प्रतिक्रमण सुनने लगा।

भाइयो, यह प्रतिक्रमण भी क्या है ? अपने धर्म की रोकड सभालना है। जैसे आप लोग शाम को दुकान की रोकड सभालते हैं और दिन भर के आय-व्यय का लेखा-जोखा करते है, उसी प्रकार साधु भी अपने व्रतो का शाम को लेखा-जोखा करता है कि मेरे व्रत किनने निरतिचार रहे और कितनो मे अतिचार लगा है। सर्व व्रतो के २५५ अतिचार होते है। ६६ अतिचार श्रावको के हैं और १५६ अतिचार साधुओ के होते है। महात्मा जी ने प्रतिक्रमण करते हुए पहिले अहिंसा महाव्रत का मिच्छामि दुक्कड बोला। तत्पश्चात् सत्य-महाव्रत, अस्तेय महाव्रत और ब्रह्मचर्य महाव्रत का मिच्छामि दुक्कड' बोला। जब पाचवे महाव्रत का नम्बर आया तो मन मे विचार आया कि मैं जब परिग्रह लेकर बैठा हूँ, तब 'मिच्छामिदुक्कड' कैसे बोलू ? यह सोच कर पाचवें महाव्रत का 'मिच्छामि दुक्कड' नही दिया। श्रावक ने सोचा कि आज महात्मा जी भूल गये, या क्या बात है जो पाचवें व्रत का प्रतिक्रमण नही किया। जब श्रावक ने लगातार चार-पाच दिन तक यही हाल देखा, तो उसने सोचा कि महात्मा जी के इस व्रत मे कही न कही कुछ मामला गडबड़ है। दूसरे दिन जब महात्मा जी पलेवना करके बाहिर गये हुए थे, तब श्रावक ने एकान्त पाकर महात्मा जी के सारे सामान को सभाला—देखभाल की, परन्तु कोई चीज नही मिली। जब उसने पाटे को उठा करके देखा तो एक गड्ढे मे कपडे का एक टुकडा नजर आया। उसने उसे निकाल कर जो खोला तो बहुमूल्य हीरा दिखा। उसने कुछ देर तक तो नाना प्रकार से विचार किया। अन्त मे उसने उसे अपने पास रख लिया। जब महात्मा जी बाहिर से आये तो एकान्त देखकर पाटे के गड्ढ मे उसे सभाला तो हीरा को गायब पाया। पहले तो उन्हे कुछ धक्का-सा लगा। पीछे विचारा कि चलो—सिर का भार उतर गया। शाम को जब प्रतिक्रमण का समय आया तो उन्होने चारो व्रतो के समान पाचवें व्रत का भी 'मिच्छामि दुक्कड' जोर से बोला। श्रावक ने देखा कि मामला तो हाथ मे आगया है। फिर एक बार—और भी निर्णय कर लेना चाहिए। जब प्रतिक्रमण पूर्ण हुआ तो उसने महात्मा जी के पास जाकर चरण-वन्दन किया और पूछा - महाराज, सुखसाता है ? महात्मा जी बोले—पूरी सुख-साता और परम आनन्द है। पुन उसने विनय पूर्वक पूछा—गुरुदेव, एक शका है कि अभी बीच मे तीन-चार दिन पाँचवें महाव्रत का 'मिच्छामि दुक्कड नही लिया, सो क्या बात हुई और आज फिर कैसे लिया ? महात्मा जी ने सहज भाव से हीरा मिलने से लेकर आज तक की सारी बात ज्यों की त्यो कह सुनाई। आज किसी मेरे हितैषी ने उठाकर मुझे उस पाप से

मुक्त कर दिया है। श्रावक ने पूछा—उस हीरे को आपने कहाँ रख दिया था? महात्मा बोले—भाई कपड़े की एक धज्जी मे बाध करके इसी पाटे के इस गड्ढे मे रख दिया था। और जब रत्न मेरे पास था, तब भाई, मै पाचवे महाव्रत का 'मिच्छामि दुक्कड' कैसे देता? परन्तु आज किसी भले मनुष्य ने उसे उठाकर साता उपजा दी सो प्रतिक्रमण बोलने मे उल्लास रहा और पाचवें महाव्रत की शुद्ध हृदय से 'मिच्छामि दुक्कड' दी है।

गुरु के मुख से सारी बात निश्छलभाव से सुनकर श्रावक आनन्दित होता हुआ विनय पूर्वक बोला—गुरुदेव, आप महापुरुष हैं, आप जैसी निर्मल आत्मा मेरे देखने मे कभी नही आई। परन्तु मैं ही नीच हू क्योकि मैं ही उस हीरे को ले गया हू। यह सुनकर महात्मा जी बोले—भाई, तू पापी नही, किन्तु भला आदमी है, क्योकि तूने मुझे पाप-पक मे डूबने से बचा लिया है।

भाइयो, इस कथानक के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि ऐसे पुण्यवान् श्रावक हो जो कि अपने धर्म मार्ग से डिगते हुए गुरु को वापिस उसमे दृढ करदें, तो वह शिष्य गुरु के ऋण से हलका हो सकता है।

इसी प्रकार जिस साहूकार सेठ का कारोबार दिन पर दिन डूब रहा है और वह व्यक्ति—जिसे पहिले सेठने सर्व प्रकार की सहायता देकर उसका उद्धार किया था—वह आकर सेठ की सहायता करे और तन मन धन लगा कर सेठजी को डूबते से बचावे तो वह उसके ऋण से हलका हो सकता है।

बन्धुओ, जिसके हृदय मे धर्म के प्रति और अपने कर्तव्य-पालन के प्रति ऐसी दृढ आस्था हो, वही व्यक्ति गुरु के ऋण से, मा-बाप के ऋण से और समाज के ऋण से हलका हो सकता है। परन्तु आज हम देखते हैं, कि लोग ठीक इसके विपरीत काम करते हैं। यदि किसी उत्तम कार्य को प्रारम्भ करने की योजना बनायी जाती है तो आज के श्रावक सहायक होने के स्थान पर बाधक बनते हैं और उस कार्य मे नाना प्रकार की बाधाएँ खडी करने का प्रयत्न करते हैं और उस कार्य का श्रीगणेश होने के पूर्व ही योजना को ठप्प कर देते है। किन्तु जो आस्थावान होते है, वे जिस कार्य को करने का निश्चय कर लेते है, वे उसे करके ही छोडते हैं। भर्तृहरि ने नीतिशतक मे कहा भी है कि—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै.,
> प्रारभ्यविघ्नविहता विरमतिमध्या।
> विघ्नै पुन. पुनरपि प्रतिहन्यमाना,
> प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।

भाई, जो नीच या अधम जाति के मनुष्य होते है, वे तो विघ्नो के भय से कार्य का प्रारम्भ ही नही करते हैं? किन्तु जो उत्तम मनुष्य होते है वे जिस

कार्य को प्रारम्भ कर देते हैं, उसमे हजारो विघ्न और बाधाओ के आ जाने पर भी उसे छोडते नही है, किन्तु पूरा करके ही दम लेते है। क्योकि सुकृती पुरुष अगीकार की गई बात का पालन करते है और अन्त तक उसका निर्वाह करते हैं।

जो व्यक्ति आस्था रखकर काम करते हैं, भले ही उसके बीच मे कितनी ही विघ्न-बाधाएँ क्यो न आवे, किन्तु अन्त मे सफलता प्राप्त होती ही है। आज देखो —अमेरिका और रूस वालो ने अन्तरिक्ष जगत् की खोजबीन के लिए किये गये प्रयत्नो मे सफलता प्राप्त कर ही रहे है। इस सब सफलता का श्रेय उन लोगो की एक मात्र कर्तव्यनिष्ठा का है। फिर जैनधर्म तो पुकार-पुकार करके कह रहा है कि जो भी जैसा बनना चाहे, आस्थापूर्वक बराबर-प्रयत्न करता रहे तो नियम से वैसा ही बन सकता है। आप लोग भी व्यापार करने की आस्था से ही घर-वार छोडकर परदेश जाते हैं तो कमाकर लाते हैं, या नही ? इसी आस्था के बल पर बड़े-बडे ऋपियो और मुनियो ने घोरातिघोर उपसर्ग सहे और यातनाएँ सही, परन्तु वे अपनी आस्था से डिगे नही तो अन्त मे सफलता पाई, या नही ? पाई ही है और सदा के लिए संसार के परिभ्रमण से मुक्त हो गये है। आज भी आस्थावान् व्यक्ति प्रत्येक दिशा मे सफलता पा ही रहे है। मन्त्र-तन्त्रादि भी आस्थावान् व्यक्ति को ही सिद्ध होते हैं, अनास्था वालो को नही होते।

एक बार द्वारिका मे सभा के भीतर श्री कृष्ण जी ने कहा कि जो रैवताचल पर जाकर और सर्व प्रथम भगवान् अरिष्टनेमि की वन्दना करेगा, उसे मैं अपना प्रधान अश्वरत्न इनाम मे दू गा। अनेक लोग दूसरे दिन बहुत सवेरे ही भगवान् की वन्दना के लिए दौडे। किन्तु श्रीकृष्ण का कालक नाम का पुत्र सबसे पहिले पहुचा। और भगवान की वन्दना करके लौट आया। इधर बलभद्र जी के पुत्र कु जमवर की नीद कुछ देर से खुली तो वे उठते ही सामायिक लेकर बैठे और सोचने लगे—हे भगवान्, जो आपके पास जाते हैं और वन्दन करके व्रत-प्रत्याख्यान स्वीकार करते हैं, वे धन्य हैं। परन्तु मैं कितना प्रमादी हू कि अभी तक सोता रहा। अपने इस प्रमाद पर मुझे भारी दु ख है और अपने आपको धिक्कारता हूँ। मेरी यह परोक्ष वन्दना आप स्वीकार कीजिए, यह कहते हुए शुद्ध हृदय से सामायिक के काल भर भगवान की भक्ति मे तल्लीन रहता है और उनके गुण-गान करता रहता हे।

दूसरे दिन जब श्री कृष्ण जी सभा मे विराज रहे थे, तब कालक ने आकर कहा—मैंने आज सर्वप्रथम भगवान का वन्दन किया है। उन्होने कहा—

भगवान से इसका निर्णय करके इनाम दिया जावेगा। श्री कृष्ण रैवताचल पर सपरिवार गये और भगवान को वन्दन करके कहा—दीनबन्धो, आज आपको सबसे पहिले किसने वन्दन किया है? भगवान ने पूछा—कृष्ण, द्रव्य-वन्दन की बात पूछ रहे हो, या भाववन्दन की। कृष्णजी ने कहा—भगवन्, जिसमे अधिक लाभ हो उसी के लिए पूछा है। तब भगवान ने कहा—आज द्रव्य से वन्दन तो कालक ने सर्व प्रथम किया है और भाव से वन्दन कुंजभवर ने किया है। और उसी को अधिक लाभ मिला है। श्री कृष्ण ने आकर कुंज-भवर को अश्वरत्न इनाम मे दिया और कालक से कहा—तूने लोभ से वशी-भूत होकर के वन्दन किया है, किन्तु कुंजभवर ने बिना किसी लोभ के निःस्वार्थ भाव से वन्दन किया है।

भाइयो, जहा भगवान के प्रति या धर्म के प्रति सच्ची निष्ठा या आस्था होती है, वहा पर स्वार्थ भावना नही होती है। ऐसे आस्थावान् व्यक्ति ही इस लोक मे भी सुख पाते है और परलोक मे भी सुख पाते हैं। इसलिए आप लोगो को अपनी आस्था सुदृढ रखनी चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला ६
जोधपुर

कार्य को प्रारम्भ कर देते हैं, उसमे हजारो विघ्न और बाधाओ के आ जाने पर भी उसे छोडते नही है, किन्तु पूरा करके ही दम लेते है। क्योकि सुकृती पुरुष अगीकार की गई बात का पालन करते है और अन्त तक उसका निर्वाह करते हैं।

जो व्यक्ति आस्था रखकर काम करते है, भले ही उसके बीच मे कितनी ही विघ्न-बाधाएँ क्यो न आवे, किन्तु अन्त मे सफलता प्राप्त होती ही है। आज देखो—अमेरिका और रूस वालो ने अन्तरिक्ष जगत् की खोजबीन के लिए किये गये प्रयत्नो मे सफलता प्राप्त कर ही रहे हैं। इस सब सफलता का श्रेय उन लोगो की एक मात्र कर्तव्यनिष्ठा का है। फिर जैनधर्म तो पुकार-पुकार करके कह रहा है कि जो भी जैसा बनना चाहे, आस्थापूर्वक बराबर-प्रयत्न करता रहे तो नियम से वैसा ही बन सकता है। आप लोग भी व्यापार करने की आस्था से ही घर-बार छोडकर परदेश जाते हैं तो कमाकर लाते हैं, या नही ? इसी आस्था के बल पर बडे-बड़े ऋषियो और मुनियो ने घोरातिघोर उपसर्ग सहे और यातनाएँ सही, परन्तु वे अपनी आस्था से डिगे नही तो अन्त मे सफलता पाई, या नही ? पाई ही है और सदा के लिए ससार के परिभ्रमण से मुक्त हो गये हैं। आज भी आस्थावान् व्यक्ति प्रत्येक दिशा मे सफलता पा ही रहे है। मन्त्र-तन्त्रादि भी आस्थावान् व्यक्ति को ही सिद्ध होते हैं, अनास्था वालो को नही होते।

एक बार द्वारिका मे सभा के भीतर श्री कृष्ण जी ने कहा कि जो रैवता चल पर जाकर और सर्व प्रथम भगवान् अरिष्टनेमि की वन्दना करेगा, उसे मैं अपना प्रधान अश्वरत्न इनाम मे दूगा। अनेक लोग दूसरे दिन बहुत सवेरे ही भगवान् की वन्दना के लिए दौडे। किन्तु श्रीकृष्ण का कालक नाम का पुत्र सबसे पहिले पहुचा। और भगवान की वन्दना करके लौट आया। इधर बलभद्र जी के पुत्र कुजभवर की नीद कुछ देर से खुली तो वे उठते ही सामायिक लेकर बैठे और सोचने लगे—हे भगवान्, जो आपके पास जाते है और वन्दन करके व्रत-प्रत्याख्यान स्वीकार करते हे, वे धन्य है। परन्तु मैं कितना प्रमादी हू कि अभी तक सोता रहा। अपने इस प्रमाद पर मुझे भारी दुख है और अपने आपको धिक्कारता हूँ। मेरी यह परोक्ष वन्दना आप स्वीकार कीजिए, यह कहते हुए शुद्ध हृदय से सामायिक के काल भर भगवान की भक्ति मे तल्लीन रहता है और उनके गुण-गान करता रहता है।

दूसरे दिन जब श्री कृष्ण जी सभा मे विराज रहे थे, तब कालक ने आकर कहा—मैंने आज सर्वप्रथम भगवान का वन्दन किया है। उन्होंने कहा—

भगवान से इसका निर्णय करके इनाम दिया जावेगा । श्री कृष्ण रैवताचल पर सपरिवार गये और भगवान को वन्दन करके कहा—दीनबन्धो, आज आपको सबसे पहिले किसने वन्दन किया है ? भगवान ने पूछा—कृष्ण, द्रव्य-वन्दन की बात पूछ रहे हो, या भाववन्दन की । कृष्णजी ने कहा—भगवन्, जिसमे अधिक लाभ हो, उसी के लिए पूछा है । तब भगवान ने कहा—आज द्रव्य से वन्दन तो कालक ने सर्व प्रथम किया है और भाव से वन्दन कुंजभवर ने किया है । और उसी को अधिक लाभ मिला है । श्री कृष्ण ने आकर कुंज-भवर को अश्वरत्न इनाम मे दिया और कालक से कहा—तूने लोभ से वशी-भूत होकर के वन्दन किया है, किन्तु कुंजभवर ने विना किसी लोभ के निःस्वार्थ भाव से वन्दन किया है ।

भाइयो, जहा भगवान के प्रति या धर्म के प्रति सच्ची निष्ठा या आस्था होती है, वहा पर स्वार्थ भावना नही होती है । ऐसे आस्थावान् व्यक्ति ही इस लोक मे भी सुख पाते है और परलोक मे भी सुख पाते हैं । इसलिए आप लोगो को अपनी आस्था सुदृढ रखनी चाहिए ।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला ६
जोधपुर

●

२५ आर्यपुरुष कौन ?

आर्य के भेद

भाइयो, अभी तक आपके सामने मुनिजी ने आर्यपुरुष के गुण बताये। पर 'आर्य' शब्द का क्या अर्थ है, यह भी आपको ज्ञात होना चाहिए। आर्य शब्द की निरुक्ति करते हुए कहा गया है —

'अर्यन्ते गुणैर्गुणवद्भिर्वा सेव्यन्ते इत्यार्या'।

अर्थात्—जो गुणो से गुणवानो के द्वारा सेवित होते है, वे आर्य कहलाते है। विद्यानन्द स्वामी ने इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है—

सद्गुणैः गुणैरर्यमाणत्वाद् गुणवद्भिश्च मानवैः।
प्राप्तर्द्धीतरभेदेन तत्रार्या द्विविधा स्मृता ॥

जिनके भीतर मानवोचित सद्गुण पाये जाते है, अत जो गुणवान् मानवो के द्वारा उत्तम कहे जाते हैं, वे आर्य कहलाते हैं। ऐसे आर्यपुरुष दो प्रकार के होते हैं—ऋद्धिप्राप्त आर्य और अनृद्धिप्राप्त आर्य। जिनको तपस्या के प्रभाव से अनेक प्रकार की ऋद्धि या लब्धि प्राप्त होती है, वे अलौकिक गुण प्राप्त ऋषिगण ऋद्धिप्राप्त आर्य कहलाते हैं। तथा जिन पुरुषो मे सुजनता, सहृदयता, कारुणिकता और दानशीलता आदि विशिष्ट लौकिक गुण पाये जाते हैं, वे अनृद्धिप्राप्त आर्य कहलाते है।

उक्त व्याख्याओ के अनुसार यह अर्थ फलित होता है कि आर्य का शब्दार्थ श्रेष्ठ पुरुष है और अनार्य का अर्थ नेष्ट पुरुष है। जिनका व्यवहार एव

आचार-विचार खराब है, वह अनार्यपुरुष है। यह आर्य शब्द आज का नही, किन्तु अनादिकाल का है। शायद आप लोगो ने यह समझ रखा है कि यह आर्य शब्द दयानन्द सरस्वती ने प्रकट किया है, क्योकि उन्होने आर्य समाज की स्थापना की है। हमारे जैन सूत्रो मे यह शब्द सदा से ही उत्तम पुरुषो के लिए प्रयुक्त होता आया है। जैसे कि आर्य जम्बू, आर्य सुधर्मा आदि। गृहस्थो के लिए भी यह प्रयोग मिलता है—अहो आर्यपुत्र ! जब तक यहा पर भोगभूमि प्रचलित थी, तब तक स्त्री अपने पति को 'आर्य' और पति अपनी स्त्री को 'आर्ये' कह कर ही सम्बोधित करते थे। तत्त्वार्थसूत्रकार ने मनुष्यो के दो भेद बतलाये है - 'आर्या म्लेच्छाश्च' अर्थात् मनुष्य दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ। म्लेच्छो को ही अनार्य कहते हैं। म्लेच्छो का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

> धर्म-कर्मवहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः।
> अन्यथाऽन्यैः समाचारैरार्यावर्तेन ते समा.॥

अर्थात्—जो लोग धर्म-कर्म से वहिर्भूत है—जिनमे धर्म-कर्म का विचार नही है, वे पुरुष म्लेच्छ माने गये हैं। अन्य कार्यों का आचरण तो उनका आर्यावर्त के पुरुषो के ही समान ही होता है।

ऋद्धि या लब्धि से रहित आर्य पुरुष भी पाच प्रकार के होते हैं—क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य। काशी-कौशल आदि उत्तम क्षेत्र मे उत्पन्न हुए पुरुष क्षेत्रार्य हैं। इक्ष्वाकु आदि उत्तम वशो मे उत्पन्न मनुष्य जात्यार्य है। असि-मषी आदि से आजीविका करनेवाले लोग कर्मार्य है। सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले मनुष्य दर्शनार्य कहलाते हैं और चारित्र को धारण करने वाले चारित्रार्य कहे जाते हैं।

धार्मिक दृष्टि से आर्य

भाइयो, यहा पर हमे दर्शनार्य और चारित्रार्य से ही प्रयोजन है। जिनके भीतर विवेक है, हेय-उपादेय का ज्ञान है और आचार-विचार उत्तम हैं, वे ही यथार्थ मे आर्य कहे जाने के योग्य है। आर्य पुरुष की प्रकृति कोमल होनी चाहिए, कठोर नही। कोमल हृदय मे ही सद्गुण उत्पन्न होते हैं, कठोर हृदय मे नही। जैसे कि कोमलभूमि मे ही बीज उत्पन्न होता है कठोर भूमि मे नही। पर जब हम देखते है कि बार-बार उपदेश दिये जाने पर भी हमारा हृदय करुणा से आर्द्र नही होता है, तब यही ज्ञात होता है कि हमारा हृदय कोमल नही।

जैसे पानी बरसने पर भी जहा की भूमि गीली न हो, तो उसे कठोर भूमि कहा जाता है, उसी प्रकार सतसग पाकर और धर्मोपदेश सुनकर भी यदि हमारा हृदय कोमल नही हो रहा है, तो समझना चाहिये कि वह कठोर है? यही कारण है कि हमारे विचार कुछ और है और प्रचार कुछ और ही करते हैं। जो लोग उत्तम जाति, उत्तम कुल और उत्तम देश मे जन्म लेकर के भी आर्यपने के गुणो से रहित होते है, उन्हे वास्तव मे अनार्य ही समझना चाहिए। आर्य होने के लिए बाहिरी धन-वैभव आदि की आवश्यकता नही है, किन्तु आन्तरिक गुणो की ही आवश्यकता है।

एक बार विहार करते हुए हम एक गाव मे पहुँचे। वहा पर एक ब्राह्मण के घर को छोडकर शेप सब अन्य जाति के ही लोगो के घर थे। सध्या हो रही थी और हमे वहा पर रात्रि भर ठहरना था। हमे मालूम हुआ कि अमुक घर ब्राह्मण का है, तो हम उस घर के आगे पहूचे। द्वार पर एक बाई खडी थी। हमने उससे कहा कि हमे यहा रात भर ठहरना है यदि तुम पोल मे ठहरने की आज्ञा दे दो तो ठहर जाये, क्योकि सर्दी का मौसम है। उस बाई ने पूछा—तुम कौन हो? मे नही जानती कि तुम चोर, बदमाश या डाकू हो? मैंने कहा—बाई, तू बिलाडे के पास अमुक गाव की जाई—जन्मी है। और हम तो जगत्-प्रसिद्ध हैं, सभी लोग जानते हैं कि हम कौन है। वह यह सुनकर भी बोली—पोल तो दूर की बात है, हम तो तुम्हे चबूतरी पर भी नही ठहरने देगे। मैंने कहा—बाई, तेरा धनी आने तक तो ठहरने दे, क्योकि हमारे प्रतिक्रमण का समय हो रहा है। परन्तु उसने नही ठहरने दिया। हम भी 'अच्छा, तेरी मर्जी' ऐसा कहकर चल दिये और समीप मे ही एक नीम के वृक्ष के नीचे भूमि का प्रतिलेखन करके बैठ गये। इसी समय एक आदमी आया और बोला—महाराज, माघ का महीना है, सर्दी जोर पर है। यहा पर आप ठर जाओगे। और फिर यहा पर चीचडे भी बहुत हैं। मैं जाति का बाभी हू। मेरा मकान अभी नया बना है, उसमे पोल है, उसमे आप यदि ठहर सकते हो तो ठहर जाइये। मैंने उसम अभी रहवास नही किया है। मैंने कहा—भाई यदि रहवास भी कर लिया हो तो उसमे क्या हर्ज है? कोई धूल-मिट्टी तो तेरी जाति मे नही मिली है? फिर हमारा सिद्धान्त तो मनुष्य जाति को एक ही मानता है। यदि तुम्हारी भावना है तो दे दो। इस प्रकार हम उसकी आज्ञा लेकर उसकी नई पोल मे ठहर गये। तत्पश्चात् उसने अपनी बिरादरीवालो को इकट्ठा किया और उनसे कहा—अपने गाव मे साधु महाराज आये है, तो उनका उपदेश तो सुनना चाहिए। आज अपना तबूरा नही बजायेंगे और इनका ही उपदेश

आप निश्चिन्त रहे, आपका यह काम अवश्य हो जायगा। इस प्रकार वचनो से भी जो हिम्मत बधाते है, वे पुरुष भी आर्य कहलाने योग्य हैं। आज अधिकतर लोग सोचते है कि हमे दूसरो से क्या मतलब है ? हम क्यो झझट मे पडे ? परन्तु ऐसा विचारना आर्यपना नही, किन्तु अनार्यपना है।

आर्यपुरुष की करुणाशीलता

भाइयो, आप लोगो ने अनेक वार सुना होगा कि मेघरथ राजा की शरण मे एक कबूतर पहुचा और उसके पीछे लगा हुआ बाज भी आगया। अब आप लोग बतलाये कि उस कबूतर से राजा का क्या कोई स्वार्थ था ? नही था। किन्तु दु.ख से पीडित उसे जब शरण दे दी। तब बाज बोला—राजन्, मेरी शिकार मुझे सौपो। राजा ने कहा - क्षत्रिय लोग शरणागत के प्रतिपालक होते हैं। उसे हम आपको कैसे सौप सकते हैं ? यह सुनकर बाज बोला—तो मैं भूखा हू, मुझे उसकी तौल बराबर अपना मास काटकर खाने के लिए दीजिए। राजा ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तराजू और छुरी मगाई गई और एक पलडे पर बाज को बैठाया और दूसरे पर अपना मास काट-काट कर रखने लगा। भाई, यह थी राजा की करुणावृत्ति, जो सकट मे पडे कबूतर के प्राण बचाने के लिए वे अपना मास भी काटकर देने के लिए तैयार हो गये। आप लोगो के पास भी यदि कोई आपत्ति का मारा आवे और आप सोचें कि इससे क्या लेना और क्या देना है ? तो यह बात आर्यपने के प्रतिकूल है। भाई, आपत्ति मे पडे पुरुप से लेना भी है। लेना तो यह है कि हम अपने भीतर यह अनुभव करें कि आपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति कितनी दयनीय दशा मे होता है, वह कितना असहाय होता है और उस पर जो शक्ति-सम्पन्न और सबल-व्यक्ति घोर-जुल्म करते हैं, तो हमे उन दोनो की प्रकृति का सबक लेना है। और देना क्या है—साझ। अर्थात् उस शरणागत दुखी व्यक्ति से यह कहे कि भाई, तू घबडा मत। तेरी रक्षा के लिए मैं तैयार हू। यदि कभी कोई व्यक्ति अपनी परिस्थिति के वशीभूत होकर आपके पास आता है तो उससे ऐसा मत कहो कि हमे तुमसे क्या लेना-देना है। भाई, यह सारा लोक-व्यवहार देने और लेने से ही चलता है। लोग रकम लेते भी है और देते भी हैं, तभी व्यवहार का काम चलता है। अपनी लडकी दूसरो को देते हैं और दूसरो की लेते भी है, तभी समाज का काम चलता है। देना और लेना मानव मात्र का धर्म है। दूसरो से गुण लो और साझ दो। साझ कितना दिया जाता है ? जितना आपके पास है, उतना। कल्पना कीजिए—आपके रहने के लिए एक कोठरी है और दो-तीन

मनुष्यो को ही ठहरने के लिए आप उसमे साझ दे सकते है। अब यदि दस आदमी आजावे और कहे कि हमे भी साझ दो—ठहरने दो। तब हाथ जोडने पडते हैं और कहना पडता है कि साहब, आप स्वयं ही देख लीजिए कि जगह कितनी है। मेरी ओर से इनकारी नही है। वे स्थान की कमी देखकर स्वय ही चले जावेंगे। पर स्थान के रहते हुए इनकार करना यह आर्यपने के प्रतिकूल है।

सबको सहयोग

बन्धुओ, एक महात्मा जगल मे एक झोपडी बनाकर रहते थे। पानी बरसने लगा तब एक व्यक्ति ने आकर पूछा—क्या मुझे भी ठहरने के लिए स्थान है ? महात्मा जी बोले—हा, एक व्यक्ति के सोने का स्थान है, पर दो व्यक्ति इसमे बैठ सकते है, इस प्रकार कहकर वह महात्मा उठकर बैठ गया और उसे भी बुला करके भीतर बैठा लिया। इतने मे दो व्यक्ति और भी भीजते हुए आये और बोले—महात्मा जी क्या भीतर और भी जगह है ? महात्माजी बोले—हा भाई, दो के बैठने की जगह है और चार व्यक्तियो के खडे रहने की जगह है, यह कहकर वे दोनो खडे हो गये और उन दोनो को भी भीतर बुला करके खडा कर लिया। भाई, यह कहलाता है आर्यपना। सच्चे आर्य तो दूसरे को इनकार करना जानते ही नही है। यदि आप लोग इतना त्याग नही कर सकें, तो भी शक्ति के अनुसार तो त्याग करना ही चाहिए और उदारता भी प्रकट करना चाहिए।

यहा कोई पूछे कि यह 'साझ' क्या है ? यह तो खाऊ प्रवृत्ति को बढावा देना है। जिसे जो दिया जाता है, उसे वह खा जाता है। वह लौटकर वापिस नही आता है। भाई, आप लोगो को ऐसा नही सोचना चाहिए। देखो—किसान जमीन मे धान्य बोता है, तो सारी जगह का धान्य तो वापिस नही आता है ? खेत मे दो-चार हाथ जमीन ऐसी भी होती है, कि जिसमे डाला गया बीज वापिस नही आता है। अब यदि कोई व्यक्ति आकर कहे कि भाई, तेरे खेत की यह जमीन तो बेकार है, तू इसे मुझे दे दे तो क्या वह किसान उसे दे देगा ? नही देगा। भाई, कितने ही लोग लेने मे सार समझते है, तो कितने ही देने मे सार समझते है। जो देने मे सार समझते है, उन्हे ही आर्य पुरुष समझना चाहिए।

धन्ना सेठ का दान

बन्धुओ, शास्त्रो मे भगवान ऋषभदेव के तेरह पूर्व भवो का वर्णन मिलता है। इनमे पहिला भव धनावह सेठ का है। उनके पास अपार सम्पत्ति थी

आप निश्चिन्त रहे, आपका यह काम अवश्य हो जायगा। इस प्रकार वचनो से भी जो हिम्मत बधाते है, वे पुरुप भी आर्य कहलाने योग्य हैं। आज अधिकतर लोग सोचते है कि हमे दूसरो से क्या मतलब है ? हम क्यो झझट मे पड़े ? परन्तु ऐसा विचारना आर्यपना नही, किन्तु अनार्यपना है।

आर्यपुरुष की करुणाशीलता

भाइयो, आप लोगो ने अनेक वार सुना होगा कि मेघरथ राजा की शरण मे एक कबूतर पहुचा और उसके पीछे लगा हुआ बाज भी आगया। अब आप लोग बतलाये कि उस कबूतर से राजा का क्या कोई स्वार्थ था ? नही था। किन्तु दु ख से पीडित उसे जब शरण दे दी। तब बाज बोला—राजन्, मेरी शिकार मुझे सौपो। राजा ने कहा - क्षत्रिय लोग शरणागत के प्रतिपालक होते हैं। उसे हम आपको कैसे सौप सकते हैं ? यह सुनकर बाज बोला—तो मैं भूखा हू, मुझे उसकी तौल बराबर अपना मास काटकर खाने के लिए दीजिए। राजा ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तराजू और छुरी मगाई गई और एक पलडे पर बाज को बैठाया और दूसरे पर अपना मास काट-काट कर रखने लगा। भाई, यह थी राजा की करुणावृत्ति, जो सकट मे पडे कबूतर के प्राण बचाने के लिए वे अपना मास भी काटकर देने के लिए तैयार हो गये। आप लोगो के पास भी यदि कोई आपत्ति का मारा आवे और आप सोचे कि इससे क्या लेना और क्या देना है ? तो यह बात आर्यपने के प्रतिकूल है। भाई, आपत्ति मे पडे पुरुष से लेना भी है। लेना तो यह है कि हम अपने भीतर यह अनुभव करे कि आपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति कितनी दयनीय दशा मे होता है, वह कितना असहाय होता है और उस पर जो शक्ति-सम्पन्न और सवल-व्यक्ति घोर-जुल्म करते हैं, तो हमे उन दोनो की प्रकृति का सबक लेना है। और देना क्या है—साझ। अर्थात् उस शरणागत दुखी व्यक्ति से यह कहे कि भाई, तू घबडा मत। तेरी रक्षा के लिए मैं तैयार हू। यदि कभी कोई व्यक्ति अपनी परिस्थिति के वशीभूत होकर आपके पास आता है तो उससे ऐसा मत कहो कि हमे तुमसे क्या लेना-देना है। भाई, यह सारा लोक-व्यवहार देने और लेने से ही चलता है। लोग रकम लेते भी है और देते भी हैं, तभी व्यवहार का काम चलता है। अपनी लडकी दूसरो को देते हैं और दूसरो की लेते भी हैं, तभी समाज का काम चलता है। देना और लेना मानव मात्र का धर्म है। दूसरो से गुण लो और साझ दो। साझ कितना दिया जाता है ? जितना आपके पास है, उतना। कल्पना कीजिए—आपके रहने के लिए एक कोठरी है और दो-तीन

मनुष्यो को ही ठहरने के लिए आप उसमे साझ दे सकते हैं। अब यदि दस आदमी आजावें और कहे कि हमे भी साझ दो—ठहरने दो। तब हाथ जोडने पडते हैं और कहना पडता है कि साहब, आप स्वयं ही देख लीजिए कि जगह कितनी है। मेरी ओर से इनकारी नही है। वे स्थान की कमी देखकर स्वय ही चले जावेंगे। पर स्थान के रहते हुए इनकार करना यह आर्यपने के प्रतिकूल है।

सबको सहयोग

बन्धुओ, एक महात्मा जगल मे एक झोपडी बनाकर रहते थे। पानी बरसने लगा तब एक व्यक्ति ने आकर पूछा—क्या मुझ भी ठहरने के लिए स्थान है ? महात्मा जी बोले—हा, एक व्यक्ति के सोने का स्थान है, पर दो व्यक्ति इसमे बैठ सकते हैं, इस प्रकार कहकर वह महात्मा उठकर बैठ गया और उसे भी बुला करके भीतर बैठा लिया। इतने मे दो व्यक्ति और भी भीजते हुए आये और बोले—महात्मा जी क्या भीतर और भी जगह है ? महात्माजी बोले—हा भाई, दो के बैठने की जगह है और चार व्यक्तियो के खडे रहने की जगह है, यह कहकर वे दोनो खडे हो गये और उन दोनो को भी भीतर बुला करके खडा कर लिया। भाई, यह कहलाता है आर्यपना। सच्चे आर्य तो दूसरे को इनकार करना जानते ही नही है। यदि आप लोग इतना त्याग नही कर सके, तो भी शक्ति के अनुसार तो त्याग करना ही चाहिए और उदारता भी प्रकट करना चाहिए।

यहा कोई पूछे कि यह 'साझ' क्या है ? यह तो खाऊ प्रवृत्ति को बढावा देना है। जिसे जो दिया जाता है, उसे वह खा जाता है। वह लौटकर वापिस नही आता है। भाई, आप लोगो को ऐसा नही सोचना चाहिए। देखो—किसान जमीन मे धान्य बोता है, तो सारी जगह का धान्य तो वापिस नही आता है ? खेत मे दो-चार हाथ जमीन ऐसी भी होती है, कि जिसमे डाला गया बीज वापिस नही आता है। अब यदि कोई व्यक्ति आकर कहे कि भाई, तेरे खेत की यह जमीन तो बेकार है, तू इसे मुझे दे दे तो क्या वह किसान उसे दे देगा ? नही देगा। भाई, कितने ही लोग लेने मे सार समझते हैं, तो कितने ही देने मे सार समझते हैं। जो देने मे सार समझते है, उन्हे ही आर्य पुरुष समझना चाहिये।

धन्ना सेठ का दान

बन्धुओ, शास्त्रो मे भगवान ऋषभदेव के तेरह पूर्व भवो का वर्णन मिलता है। इनमे पहिला भव धनावह सेठ का है। उसके पास अपार सम्पत्ति थी

और दिन-रात बढती ही जाती थी । भाई, जब अन्तराय टूटती है, तब लक्ष्मी के बढने का कोई ठिकाना नही रहता। एक बार उसके मन मे विचार आया कि मेरे धन तो बहुत बढ गया है, अब मुझे अपने भीतर सद्‌गुण भी बढाना चाहिये ; इसके लिए आवश्यक है कि मैं दूसरो से सद्‌गुण लू और दूसरो को अपने धन मे से साझ दू ? यह विचार कर वह उत्तम वस्तुओं की भेट लेकर राजा के पास गया और भेट समर्पण करके नमस्कार किया। राजा ने उन का अभिवादन करते हुए उचित स्थान पर बैठाया। सेठ ने कहा—महाराज, मेरा विचार व्यापार के लिये बाहिर जाने का है। यदि कोई भाई व्यापार के लिए मेरे साथ चलना चाहे तो चल सकता है। मैं उसे साथ मे ले जाऊगा और उसके खान-पान का सारा खर्च मै उठाऊंगा। तथा व्यापार के लिए जितनी पूजी की जरूरत होगी, वह मै दूगा। व्यापार मे जो लाभ होगा, वह उसका होगा। और यदि नुकसान होगा, तो वह मेरा होगा। आप सारे नगर मे घोपणा करा दीजिए कि जो भी मेरे साथ चलना चाहे वे साथ चलने के लिए तैयार हो जावे और अपने नाम लिखा देवे। उसने यह भी घोपित करा दिया कि मैं जो यह व्यापार के लिए सुविधा दे रहा हू, वह कोई दान समझ करके नही दे रहा हू। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की मेरे घर मे सीर है। वह मुझे अपना ही समझ करके मेरे साथ चले। घोषणा सुनकर के अनेक व्यक्ति चलने के लिए तैथार हो गये और उन्होने सेठ के पास जाकर अपने-अपने नाम लिखा दिये। यात्रा के लिए प्रस्थान के शुभ मुहूर्त की घोषणा करा दी गई और सब लोगो ने अपने अपने डेरे नगर के बाहिर लगा दिये। राजा की ओर से भी चौकीपहरे का प्रबन्ध कर दिया गया। तथा आगे के लिए भी आदेश भेज दिये गये कि मेरा सेठ आरहा है, उसके जान-माल की रक्षा की जावे और उसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसे राज्य की ओर से पूरा किया जावे।

इस प्रकार जब चलने की तैयारी सब प्रकार से पूरी हो गई, तभी श्री धर्मघोष नाम के आचार्य भी ५०० मुनियो के परिवार के साथ वहा पधारे। उन्होने भी उसी देश मे विहार करने के लिए कह दिया था परन्तु मार्ग विकट था अत उसे पार करने के लिए किसी बडे सार्थवाह के साथ की आवश्यकता थी। उन्हे यह ज्ञात हुआ कि धन्नावह सेठ भी उसी देश की ओर व्यापार करने के लिए जा रहा है, तो आचार्य महाराज ने सेठ के पास जाकर अपना अभिप्राय कहा कि हम लोग भी आपके साथ उसी देश की ओर चलना चाहते है।

भाइयो, पहिले के लोगो को अपने बडे से भी बडे पद का कोई अभिमान नही होता था। मुनिसघ के अधिपति भी जब किसी राजा के प्रदेश मे विहार करना चाहते थे, तब पहिले राजा की आज्ञा प्राप्त कर लेते थे, तभी उसके राज्य मे विहार करते थे और यदि किसी देश के राजा का मरण हो जाता था अथवा और कोई रीति-भीति का उपद्रव होता था तो वे विहार नही करते थे। आज के समान पहिले भारतवर्ष मे सर्वत्र जाने-आने के लिए राजमार्ग नही थे, अत साधु-सन्त भी साहूकारो और व्यापारियो के सघ के साथ ही एक देश से दूसरे देश मे विहार करते थे।

हा, तो धन्नावह सेठ से जब धर्मघोष आचार्य ने उनके साथ चलने की बात कही और पूछा कि आपको कोई कष्ट तो नही होगा ? तब वह अति हर्षित होकर बोला—भगवन्, यह तो मेरे परम सौभाग्य की बात है कि कल्पवृक्ष भी हमारे साथ चल रहा है। आपके साथ रहने मे तो हमारी सभी विघ्न-बाधाऐं दूर होगी और हमे धर्म का लाभ भी मिलता रहेगा। हमे आपके साथ रहने मे क्या ऐतराज हो सकता है। आप सर्व सघ-परिवार को लेकर हमारे सघ के साथ विहार कीजिए। यह कहकर उसने चलने का दिन-मुहूर्त्त आदि सब बतला दिया। यथासमय सेठ अपने सार्थवाहो के साथ रवाना हुआ और आचार्य भी अपने सघ-परिवार के साथ कुछ अन्तराल से चलने लगे ? जहा पर रात हो जाती और सेठ का पडाव लगता, वही थोडी दूर पर वृक्षो के नीचे प्रासुक भूमि देखकर आचार्य भी अपने सघ-परिवार के साथ ठहर जाते ? इस प्रकार चलते-चलते मार्ग मे ही चौमासा आगया। आषाढ का मास था और पानी बरसना प्रारम्भ हो गया, तब सेठ ने अपने साथियो से कहा—भाइयो, अब वर्षा काल मे आगे चलना ठीक नही है। इस समय अनेक छोटे छोटे सम्मूर्च्छन जीव पैदा हो जाते हैं, सर्वत्र घास आदि उग आती है, इससे चलने पर उन असख्य जीवो की विराधना होगी, वाहनो मे जुते बैलो को भी और हमे अपने आपको भी कष्ट होगा, तथा अपना माल भी खराब हो जायगा। अत यही किसी ऊचे और ऊसर भू भाग पर हमे अपना पडाव लगा देना चाहिए और शान्तिपूर्वक चौमासा बिताना चाहिए।

भाइयो, पहिले चौमासे मे गृहस्थ लोग भी आना-जाना बन्द कर देते थे और एक जगह ठहर कर धर्म-साधन करते थे। उन्हे भी जीव-विराधना का विचार रहता था और असावद्य या अल्प सावद्य के ही व्यापार करते थे। आज तो इन सब बातो का किसी को कुछ भी विचार ही नही रहा है और चौमासे मे भी व्यापार के लिए मोटर-ट्रक आदि दौडाते फिरते हैं और महा आरम्भ

के व्यापारादि करते हैं। इन कल-कारखानो मे कितनी महा हिंसा होती है, इसका क्या कभी आप लोगो ने विचार किया है ?

हा, तो जब आचार्य धर्मघोप ने देखा कि चौमासा शुरु हो गया है और सेठ भी अपने साथियो के साथ ठहर गया है तब हमे भी यही आस-पास किसी निरवद्य और निराकुल स्थान पर ठहर जाना चाहिए। यह विचार कर उन्होने भी अपने सर्वसघ-परिवार को पर्वतो की गुफाओ आदि एकान्त स्थानो मे ठहरने के लिए आज्ञा दे दी और कहा—साधुओ, यदि एपणीय आहार-जल मिल जावे तो ग्रहण कर लेना, अन्यथा जैसी तपस्या सभव हो, वैसा कर लेना। तब सब साधुओ ने कहा— गुरुदेव, इस जगल मे निर्दोप गोचरी मिलना सभव नही है, अत आप तो हमे चार-चार मास क्षमण की तपस्या दिलावे। आचार्य ने सबको चातुर्मासिक तपस्या का प्रत्याख्यान कराके स्वय भी उसे अंगीकार किया और वे किसी निर्जन वन-प्रदेश मे जा विराजे। शेप साधु भी यथायोग्य स्थानो पर ठहर करके आत्म-साधना मे सलग्न हो गये।

इधर सेठ भी अपने सार्थवाहो के साथ सामायिक-स्वाध्याय आदि करते हुए चौमासे के दिन पूरे करने लगा। उसने देखा कि साधु-सन्त लोग अपने-अपने ठिकाने चले गये है और धर्मध्यान मे मस्त हैं तो वह भी अपने कार्य मे और साथियो की सार-सभाल मे व्यस्त होकर उन साधु-सन्तो की बात ही मानो भूल-सा गया। इस प्रकार चार मास बीत गये। तब धन्नावह सेठ ने अपने साथियो को प्रस्थान करने के लिए तैयार होने की सूचना दी। जब सेठ के प्रधान मुनीम ने आकर कहा—सेठ साहब, और तो सब ने चलने की तैयारी कर ली है। परन्तु अपने साथ जो ५०० मुनिराज आये थे, उनका तो कोई पता ही नही है, तब सेठ को पश्चात्ताप हुआ—हाय, मैं बडा पापी हू ! जो मुनि-महात्माओ को विश्वास देकर साथ मे लाया, परन्तु पूरे चौमासे भर मैंने उनकी कोई सार-सभाल नही की। तब सब लोगो को भेजकर सेठ ने उनकी खोज-बीन करायी। इधर चौमासा पूर्ण हुआ जानकर सब साधु लोग भी आचार्य के पास एकत्रित हुए। जैसे ही सेठ को साधुओ के एकत्रित होने के समाचार मिले, वैसे ही वह आचार्य देव के पास गया और उनके चरण-कमलो मे पडकर रोने लगा। आचार्य महाराज ने पूछा - सेठजी, क्या बात है ? सेठ बोला — महाराज, मैंने आपके साथ विश्वासघात का महापाप किया है जो कि मैं आप सबको विश्वास दिलाकर साथ मे लाया और फिर चौमासे भर मैंने आप लोगो की कोई सार-सभाल नही की। तब आचार्य ने कहा— सेठजी, इसमे आपका कोई अपराध नही है। हमारा तो चार मास तक खूब धर्म-साधन हुआ और

कोई किसी प्रकार का कष्ट नही हुआ हैं। सेठ ने कहा—आपका यह बडप्पन है कि आप इस प्रकार कहते हैं। परन्तु मैं तो अपनी भूल के कारण अधम पुरुष ही हू। तव आचार्य ने सेठ को और उनके सारे सघ को धर्म का हृदयग्राही उपदेश दिया और सब लोग सुनकर बडे प्रसन्न हुए। उपदेश के अन्त मे सेठ ने आचार्य महाराज से गोचरी को पधारने के लिए प्रार्थना की। और उन्होंने भी गोचरी को जाने के लिए विचार किया।

इसी समय सौधर्म स्वर्ग का शक्रेन्द्र अपनी सभा मे बैठा हुआ कह रहा था कि जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे धन्नावह सेठ के समान और कोई परोपकारी और धर्मात्मा गृहस्थ नही है। यह सुनकर सर्व देवता बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु एक मिथ्यात्वी देव को शक्रेन्द्र के वचनो पर विश्वास नही हुआ और वह उसकी परीक्षा करने के लिए वहा से चलकर यहा आया, जहा पर कि धन्नावह अपने साथियो के साथ ठहरा हुआ था। सब सघ वाले चातुर्मासिक साधुओ की पारणा कराने के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे कि इस देवने आकर सब की भोजन-सामग्री को साधुओ के लिए अग्राह्य कर दी।

भाइयो, मनुष्य इस प्रबल अन्तराय कर्म को इसी प्रकार दूसरो के भोग-उपभोग आदि मे विघ्न करके ही बाधता है और फिर पीछे रोता है कि हाय, मेरे ऐसे अन्तरायकर्म का उदय है कि पुरुषार्थ करने पर भी मुझे यथेष्ट भोगोपभोगो की प्राप्ति नही हो रही है और लक्ष्मी नही मिल रही है।

हा, तो सब साधु-सन्त को गोचरी के लिए निक्लने की आज्ञा देकर आचार्य गोचरी के लिए निकले। वे एक-एक कर सबके रसोई-घरो मे गये, परन्तु कही पर भी कल्पनीय वस्तु दृष्टिगोचर नही हुई। सर्वत्र कुछ न कुछ अकल्पपना दिखा। धीरे-धीरे घूमते हुए जब वे धन्नावह सेठ के डेरे पर पहुचे तो वहा पर भी कोई वस्तु ग्रहण करने के योग्य नही दीखी और जो भी वस्तु सेठ ने उन्हे वहराने के लिए उठाई, उसे भी आचार्य ने **एसमपि न कप्पइ'** कह कर लेने से इनकार कर दिया। यह देखकर सेठ बहुत घबडाया और अपने मन मे अपने दुष्कर्मो की निन्दा करता हुआ सोचने लगा कि मेरे पास और भी कोई ऐसी वस्तु है, जो इनके कल्पनीय हो ? तभी साथ मे लाये गये घी के पीपो की ओर उसका ध्यान गया और उसने आचार्य महाराज से निवेदन किया—महाराज, कोठार के तम्बू मे पधारिये, वहा पर आपके लिए कल्पनीय घी विद्यमान है। आचार्य ने वहा जाकर के अपना पात्र रख दिया। देवता ने जो घी को पात्र मे वहराते देखा तो उसने आचार्य की सुनने और देखने की शक्ति को अपने विक्रियाबल से कम कर दी। अब सेठ पात्र मे घी वहराता

जाता है, परन्तु आचार्य को नही दीखने से वे इनकार नही कर रहे हैं। सेठजी का नियम था कि जब तक साधु तीन बार लेने से इनकार न कर दे, तब तक मैं पात्र मे बहराने से नही रुकूगा, सो वह घी बहराता जाता है और वह पात्र से बाहिर बहता जाता है। न आचार्य इनकार कर रहे हैं और न वह बहराने से ही रुक रहा है। इस प्रकार एक-एक करके सेठने घी के सब पीपो का घी बहरा दिया। सेठ के साथी लोग यह देखकर आचार्य की नाना प्रकार से समालोचना करने लगे। कितने ही तो जोर-जोर से भी कहने लगे—अरे, ये आचार्य क्या अन्धे हो गये है? जो घी बहा जा रहा है, पर ये लेने से इनकार ही नही कर रहे हैं। भाई लोगो का क्या है? जरा से मे इधर से उधर हो जाते है। परन्तु आचार्य की श्रवण शक्ति चली जाने से न वे किसी की बात सुन ही रहे थे और दृष्टि-मन्द हो जाने के कारण कुछ देख ही न पा रहे थे। लोग सेठजी के लिए भी भला-बुरा कहने लगे कि अरे ये साधु अन्धे और बहरे हो गये है तो क्या सेठजी भी अन्धे हो गये हैं, जो यह बहता हुआ घी भी उन्हे नही दीख रहा है। सेठजी इन सब बातो को देखते और सुनते हुए भी उन पर कुछ ध्यान नही दे रहे है और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ है कि जब तक ये तीन बार इनकार नही कर देगे तब तक मैं देता ही जाऊगा। साथ ही यह विचार भी उनके मन मे आ रहा है कि मैं तो सुपात्र के पात्र मे ही दे रहा हू, किसी ऐसे-वैसे अपात्र या कुपात्र को नही बहरा रहा हू। अत उनके मन मे लोगो की नाना प्रकार की बाते सुनते हुए भी किसी प्रकार का क्षोभ नही हुआ।

इधर जब उस देवने देखा कि इतना घी सेठ ने बहरा दिया और आचार्य और सेठ की—दातार और पात्र दोनो की ही सर्व ओर से निन्दा हो रही है। फिर भी सेठ के मन मे किसी भी प्रकार का अणुमात्र भी दुर्भाव पैदा नही हो रहा है, तब उसे शक्रेन्द्र की बात पर विश्वास हुआ और उसने उसी समय आचार्य महाराज के सुनने और देखने की शक्ति ज्यो की त्यो कर दी। तब मुनिराज ने कहा—भैया, यह क्या किया। तूने इतना सारा घी क्यो बहा दिया। सेठ बोला—गुरुदेव, आपने मना नही किया सो मै बहराता चला गया। तब आचार्य ने कहा—भाई, क्या बताऊ? जब से तूने मेरे पात्र मे घी बहराना शुरु किया, तभी से मेरे देखने और सुनने की शक्ति समाप्त हो गई। अभी वह वापिस शक्ति प्राप्त हुई तो मैं तुम्हे मना कर रहा हू। उसी समय उस देवने प्रत्यक्ष होकर पहिले आचार्य का वन्दन-नमस्कार किया। फिर सेठ को नमस्कार करके बोला—सेठजी, शक्रेन्द्र ने आपकी जैसी प्रशसा की थी, मैंने आपको उसी के समान पाया। मैंने ही अपनी माया से आचार्य महाराज के

देखने और सुनने की शक्ति को कम कर दिया था। मैं आपसे क्षमा मागता हू। आपके घी का कोई नुकसान नही हुआ है। एव यथापूर्व भरे हुए हैं। तभी देव ने सभी श्रावको के रसोई घरो की भोज्य वस्तुओ को कल्पनीय कर दिया और सर्व साधुओ ने आहार पाणी प्रासुक प्राप्त कर पारणा किया। देवता भी सर्व साधुओ को वन्दन-नमन करके और सेठ की भूरि-भूरि प्रशसा करता हुआ अपने स्थान को चला गया।

बन्धुओ, यह कथानक मैंने इस बात पर कहा है कि जो आर्यपुरुष होते हैं, वे यह विचार नही करते हैं कि मैं इसे दे रहा हू तो यह पीछा आवेगा, या नही ? वे तो निर्वांछक होकर के ही दान देते हैं और जो कुछ भी किसी का उपकार करते हैं, वह प्रत्युपकार की भावना न रखकर ही करते हैं। वे व्यापार करते हैं तो उसमे भी अनुचित लाभ उठाने की भावना छोडकर और घाटा उठाकर भी सस्ते भाव से अन्न के व्यापारी लोगो को अन्न सुलभ करते हैं और वस्त्र या अन्य वस्तुओ के व्यापारी अपनी-अपनी वस्तुओ से मुनाफा कमाने की वृत्ति को छोडकर सस्ते और कम मूल्य पर ही वस्तुओ को देकर जनता-जनार्दन की सेवा करते हैं। आज के युग मे ऐसे आर्य पुरुषो के दर्शन भी दुर्लभ हो रहे हैं। जिधर देखो, उधर ही लोग दुष्काल के समय मे अन्न को छुपा-छुपाकर रखते हैं और काले बाजार मे दूने और तिगुने दाम पर बेंचकर मनमाना मुनाफा कमाते हैं। यह आर्यपना नही, बल्कि अनार्यपना है। आप लोगो को यह अनार्यपने की प्रवृत्ति छोडना चाहिए और आर्यों के वशज होने के नाते अपने भीतर आर्य गुणो को प्रकट करना चाहिए।

चार प्रकार के पात्र

भाइयो, पात्र भी चार प्रकार के होते हैं – रत्नपात्र सुवर्णपात्र, रजतपात्र और मृत्तिका पात्र। रत्नो के पात्र समान तो तीर्थंकर भगवान् हैं। सोने के पात्र साधु-सन्त लोग है। चादी के पात्र समान व्रती श्रावक और सम्यक्त्वी भाई हैं। तथा शेष लोग मिट्टी के पात्र समान हैं। जैसे पात्र मे वस्तु रखी जायगी, उसकी वैसी ही महत्ता होती है। इसी प्रकार उक्त चार प्रकार के पात्रो मे से जिस प्रकार के पात्र को दान दिया जायगा और जैसे भावो के साथ दिया जायगा, वह उसी प्रकार का हीनाधिक फल देगा। पात्रदान का सुफल अवश्य ही प्राप्त होता है, इसमे कोई सन्देह नही, इसलिए पात्र को दान देते समय आपको सदा ऊचे भाव रखना चाहिए और हीन विचार कभी भी मन मे नही लाना चाहिए। इस प्रकार जो आर्यपुरुष होते है, उनका पहिला

जाता है, परन्तु आचार्य को नही दीखने से वे इनकार नही कर रहे हैं। सेठजी का नियम था कि जब तक साधु तीन बार लेने से इनकार न कर दें, तब तक मैं पात्र मे वहराने से नही रुकूगा, सो वह घी वहराता जाता है और वह पात्र से बाहिर बहता जाता है। न आचार्य इनकार कर रहे हैं और न वह वहराने से ही रुक रहा है। इस प्रकार एक-एक करके सेठने घी के सब पीपो का घी बहरा दिया। सेठ के साथी लोग यह देखकर आचार्य की नाना प्रकार से समालोचना करने लगे। कितने ही तो जोर-जोर से भी कहने लगे—अरे, ये आचार्य क्या अन्धे हो गये है? जो घी बहा जा रहा है, पर ये लेने से इनकार ही नही कर रहे हैं। भाई लोगो का क्या है? जरा से मे इधर से उधर हो जाते है। परन्तु आचार्य की श्रवण शक्ति चली जाने से न वे किसी की बात सुन ही रहे थे और दृष्टि-मन्द हो जाने के कारण कुछ देख ही न पा रहे थे। लोग सेठजी के लिए भी भला-बुरा कहने लगे कि अरे ये साधु अन्धे और बहरे हो गये है तो क्या सेठजी भी अन्धे हो गये है, जो यह बहता हुआ घी भी उन्हे नही दीख रहा है। सेठजी इन सब बातो को देखते और सुनते हुए भी उन पर कुछ ध्यान नही दे रहे है और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ है कि जब तक ये तीन वार इनकार नही कर देंगे तब तक मैं देता ही जाऊंगा। साथ ही यह विचार भी उनके मन मे आ रहा है कि मैं तो सुपात्र के पात्र मे ही दे रहा हू, किसी ऐसे-वैसे अपात्र या कुपात्र को नही बहरा रहा हू। अत उनके मन मे लोगो की नाना प्रकार की बाते सुनते हुए भी किसी प्रकार का क्षोभ नही हुआ।

इधर जब उस देवने देखा कि इतना घी सेठ ने बहरा दिया और आचार्य और सेठ की—दातार और पात्र दोनो की ही सर्व ओर से निन्दा हो रही है। फिर भी सेठ के मन मे किसी भी प्रकार का अणुमात्र भी दुर्भाव पैदा नही हो रहा है, तब उसे शक्रेन्द्र की बात पर विश्वास हुआ और उसने उसी समय आचार्य महाराज के सुनने और देखने की शक्ति ज्यो की त्यो कर दी। तब मुनिराज ने कहा—भैया, यह क्या किया। तूने इतना सारा घी क्यो बहा दिया। सेठ बोला—गुरुदेव, आपने मना नही किया सो मैं बहराता चल गया। तब आचार्य ने कहा—भाई, क्या बताऊ? जब से तूने मेरे पात्र मे घी बहराना शुरु किया, तभी से मेरे देखने और सुनने की शक्ति समाप्त हो गई। अभी वह वापिस शक्ति प्राप्त हुई तो मैं तुम्हे मना कर रहा हू। उसी समय उस देवने प्रत्यक्ष होकर पहिले आचार्य का वन्दन-नमस्कार किया। फिर सेठ को नमस्कार करके बोला—सेठजी, शक्रेन्द्र ने आपकी जैसी प्रशसा की थी, मैंने आपको उसी के समान पाया। मैंने ही अपनी माया से आचार्य महाराज के

देखने और सुनने की शक्ति को कम कर दिया था। मैं आपसे क्षमा मागता हू। आपके घी का कोई नुकसान नही हुआ है। एव यथापूर्व भरे हुए है। तभी देव ने सभी श्रावको के रसोई घरो की भोज्य वस्तुओं को कल्पनीय कर दिया और सर्व साधुओ ने आहार पाणी प्रासुक प्राप्त कर पारणा किया। देवता भी सर्व साधुओ को वन्दन-नमन करके और सेठ की भूरि-भूरि प्रशसा करता हुआ अपने स्थान को चला गया।

वन्धुओ, यह कथानक मैंने इस वात पर कहा है कि जो आर्यपुरुष होते हैं, वे यह विचार नही करते हैं कि मैं इसे दे रहा हू तो यह पीछा आवेगा, या नही ? वे तो निर्वाछक होकर के ही दान देते हैं और जो कुछ भी किसी का उपकार करते हैं, वह प्रत्युपकार की भावना न रखकर ही करते हैं। वे व्यापार करते हैं तो उसमे भी अनुचित लाभ उठाने की भावना छोडकर और घाटा उठाकर भी सस्ते भाव से अन्न के व्यापारी लोगो को अन्न सुलभ करते है और वस्त्र या अन्य वस्तुओ के व्यापारी अपनी-अपनी वस्तुओ से मुनाफा कमाने की वृत्ति को छोडकर सस्ते और कम मूल्य पर ही वस्तुओ को देकर जनता-जनार्दन की सेवा करते है। आज के युग मे ऐसे आर्य पुरुषो के दर्शन भी दुर्लभ हो रहे हैं। जिधर देखो, उधर ही लोग दुष्काल के समय मे अन्न को छुपा-छुपाकर रखते है और काले वाजार मे दूने और तिगुने दाम पर वेचकर मनमाना मुनाफा कमाते हैं। यह आर्यपना नही, वल्कि अनार्यपना है। आप लोगो को यह अनार्यपने की प्रवृत्ति छोडना चाहिए और आर्यो के वशज होने के नाते अपने भीतर आर्य गुणो को प्रकट करना चाहिए।

चार प्रकार के पात्र

भाइयो, पात्र भी चार प्रकार के होते हैं - रत्नपात्र सुवर्णपात्र, रजतपात्र और मृत्तिका पात्र। रत्नों के पात्र समान तो तीर्थंकर भगवान् है। सोने के पात्र साधु-सन्त लोग हैं। चादी के पात्र समान व्रती श्रावक और सम्यक्त्वी आदि है। तथा शेष लोग मिट्टी के पात्र समान है। जैसे पात्र मे वस्तु रखी जायगी, उसकी वैसी ही महत्ता होती है। इसी प्रकार उक्त चार प्रकार के पात्रो मे से जिस प्रकार के पात्र को दान दिया जायगा और जैसे भावों के साथ दिया जायगा, वह उसी प्रकार का हीनाधिक फल देगा। पात्रदान का सुफल अवश्य ही प्राप्त होता है, इसमे कोई सन्देह नही, इसलिए पात्र को दान देते समय आपको सदा ऊचे भाव रखना चाहिए और हीन विचार कभी भी मन मे नही लाना चाहिए। इस प्रकार जो आर्यपुरुष होते है, उनका [illegible]

गुण है हृदय की कोमलता। दूसरा गुण है - लेना और देना। लेना गुण और देना साझ। तीसरा गुण है—विकथा, निन्दा और व्यर्थ के वाद-विवाद से दूर रहना। आर्यपुरुष प्रयोजन और आत्मकल्याण की बात के सिवाय निरर्थक या पर-निन्दा और विकथा की बात न स्वय कहेगा और न सुनेगा ही। आर्य-पुरुष मन से कभी दूसरे की बुरी बात का चिन्तन नही करते, कान से सुनते भी नही हैं और आख से किसी की बुरी बात देखते ही नही है। वे आखो से जीवो को देखकर यतनापूर्वक चलते हैं, वचन से दूसरो के लिए हितकारी प्रिय वचन बोलते है और मन से दूसरो की भलाई की बात सोचते हैं। इस प्रकार उनके मन, वचन और काय मे भी आर्यपना रहता है। आर्यपुरुषो का लेन-देन, रीति-रिवाज और खान-पान सभी कुछ आर्यपने से भरा रहता है। उनकी सदा यही भावना रहती है—

नहीं सताऊं किसी जीवको, झूठ कभी नहि कहा करू,
पर-धन, वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करू।
अहंकार का भाव न रक्खू, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरो की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन मे औरो का उपकार करूं।
मैत्री भाव जगत मे मेरा, सब जीवो से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवो पर मेरे उरसे करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग-रतो पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूं मै उन पर ऐसी परिणति हो जावे।
गुणीजनो को देख हृदय मे मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहा तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे,
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे।

आज लोग धर्म-धर्म चिल्लाते है और अपने को आर्य कहते हैं। परन्तु उनके भीतर धर्म कितना है और आर्यपना कितना है, यह देखने की वात है। अभी मध्यप्रदेश के रायपुर नगर मे आचार्य तुलसी का चौमासा हुआ। वहा पर उनकी 'अग्नि परीक्षा' नामक पुस्तक को लेकर अपने को सनातन धर्मी और आर्य कहने वाले लोगो ने कितना उपद्रव किया, पडाल जला दिया और सती-साध्वियो तक पर अत्याचार करने पर उतारू हो गये। आचार्य तुलसी का वहा पर चौमासा पूरा करना भी कठिन कर दिया। आप लोगो को ज्ञात

है कि जैन दिवाकर चौथमल जी स्वामी ने भी 'सीता वनवास' नामक पुस्तक एक ही राग मे लिखी है। वह भी अग्नि-परीक्षा जैसी ही है। भाई, जिस प्रकार पूर्वाचार्यों ने प्राकृत मे 'तेसट्ठिपुरिसचरिय' बनाया, उसके ही आधार पर आचार्य हेमचन्द्र ने 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष-चरित' बनाया और उसी के आधार पर उपाध्याय समयसुन्दर जी और केशवराज जी ने रामायण का निर्माण किया। उसी प्रकार पहिले वाल्मीकिजी ने पहिले सस्कृत मे रामायण बनाई, फिर तुलसीदास जी ने अपनी रामायण बनाई, तो सभी मे राम और सीताजी के चरित का वर्णन है। मूल कथानक मे कोई अन्तर नही है। हा घटनाओ का चित्रण किसी ने विस्तार से किया है, तो किसी ने सक्षेप से किया है। अभी आपके सामने कृष्ण जी का और कस का प्रकरण चलता है तो जैसे क्षुद्र वचन कस ने कृष्ण जी के लिए कहे है, वे यदि नही बताये जावेंगे तो कैसे पता चलेगा कि कौन कौन है और किसका चरित भला या बुरा है। इसी प्रकार सीताजी के लिए अग्नि-परीक्षा पुस्तक मे जो कुछ लिखा गया है, वह आचार्य तुलसी नही कह रहे है, किन्तु धोबी और सीता की सौतें कह रही है। उन्होने तो उन बातो को लेकर केवल कविता-बद्ध कर दिया है। हा, यह हो सकता है कि कही कवि की कल्पना मे एक शब्द के स्थान पर चार-पाच शब्दो का प्रयोग कर दिया हो और कही कोई कठोर शब्द आ गया हो ? परन्तु वह पक्ष तो पुराना ही है, आचार्य तुलसी ने कोई अपने मन से गढ कर नही लिखा है। पर इस साधारण सी बात को लेकर जो इतना ऊधम मचाया गया, सतियो के ठहरने के स्थान पर पत्थर फेंके गये और न मालूम क्या-क्या किया गया और खुल कर गालियो का और गन्दे शब्दो का प्रयोग किया गया ? क्या यह धर्म है और क्या यह आर्यपना है। यहा पर आप लोग यह बात छोड दे कि हमारे और आचार्य तुलसी के विचारो मे कुछ सिद्धान्त भेद है। परन्तु आचार्य तुलसी का अपमान सारे जैन समाज का अपमान है। यह आचार्य तुलसी का अपमान नही जना है, परन्तु सारे समाज का जला है। आचार्य तुलसी ने सनातन धर्म के अग्रणी करपात्री जी ने कहा—आप स्वय पुस्तक देखे और उसमे यदि कोई अनुचित बात दिखे तो जैसा आप कहेंगे, मै वैसा संशोधन करने को तैयार हू। मगर वे उस पुस्तक को भी देखने के लिए तैयार नही हुए। और समाचार पत्रो मे तो यह भी प्रकाशित हुआ है कि उन्होने यहा तक कहा कि यदि कोई नेता हमे रोकेगा तो हम उसे निरर्थक मानेंगे। उनके अनुयायी बिना विचारे जैसा कह रहे है, वे उसे ही मान रहे है और यहा तक प्रचार कर रहे है और धमकी दे रहे है कि

आने वाले कुम्भ के मेले मे हम इसका आन्दोलन उठायेंगे। इसका स्पष्ट उद्देश्य यह है कि वे जैनियो को बाहिर निकालना चाहते है। उनके इन शब्दो को ले र वहा भयकर तूफान खडा हो गया है और आजकल वहा कर्फ्यू लगा दिया गया है, ऐसा रेडियो से समाचार प्रसारित किया गया है। उनके इस आन्दोलन से ऐसा ज्ञात होता है कि जहा पर जैनियो की सख्या कम होगी, वहा पर वे उनका नामोनिशान भी नही रहने देना चाहते हे ? क्या यही आर्यपना हे ? और क्या यही धर्म है ? ऐसा व्यवहार और उसका प्रचार तो धर्म और देश के लिए कलक हे और ऐसी स्थिति जैनियो के लिए ही नही, अपितु देश के लिए भी खतरनाक है।

जैन सब एक हैं

भाइयो, हम चाहे स्थानकवासी हो, मन्दिरमार्गी हो या दिगम्बरी हो, परन्तु जैन के नाते हम सब एक है। उन लोगो ने जैनियो के साथ अन्याय करने मे कोई कसर नही रखी। परन्तु हमारा समाज तो तमाशा देखने मे मस्त है। यह बडे शर्म की बात है कि आज हम रायपुर मे अपने भाइयो का अपमान देखकर खुशी मनाते है ! हम अपने घर के भीतर भले ही मत-भेद रखे, पर दूसरो के द्वारा आक्रमण किये जाने पर तो हमे एक होकर रहना चाहिए और उसका एक होकर मुकाविला करना चाहिए।

मुसलमानो ने हिन्दुओ को काफिर लिखा है और मुसलमान बादशाहो ने हजारो-लाखो मूर्तिया तोडी है और हजारो ही हिन्दुओ को मौत के घाट उतारा है। तब कोई बहादुरी उनके ऊपर नही दिखलाई ? और आज जैनियो को अल्पसख्यक देखकर उन पर सवार हो रहे है और धमकी दे रहे हैं कि हम कुम्भ के मेले पर ऐसा करेंगे—वैसा करेंगे ? उन्हे ज्ञात होना चाहिए कि जैनी अभी मर नही गये है। यदि सारे भारत के समस्त जैनी मिलकर आवाज उठावे तो उन धर्म के ठेकेदारो को पता चले कि हम कितने पानी मे हैं ? शकराचार्य जी कहते है कि हमारी कुर्सी सोने की है। भाई, यहा भी ऐसे कई श्री पूज्य जी पडे हुए हैं, और अनेक श्रीमन्त जैनी ऐसे है कि जिनके घरो मे आप से भी बढकर सोने की कुर्सिया पडी हुई है। क्या जैनियो के त्याग की कोई सनातनी तुलना कर सकता है ? क्या सनातनियो मे भी कोई भामाशाह और पाडाशाह हुआ है, जिसने देश पर सकट के समय अपनी करोडो की सम्पत्ति समर्पण कर दी हो ! तेरहपथी भाई तो शान्ति वाले हैं। यदि उन जैसे उद्दड होते, तो दिल्ली मे गायो के आन्दोलन के समय जैसे फरसे और लाठियो से लोगो के माथे फोडे, वैसे ही वे भी फोड देते। परन्तु जैनी तो

अहिंसा धर्म के अनुयायी हैं और उसी के पुजारी हैं, वे स्वयं मार खा लेते हैं, परन्तु वापिस मुकाबिला नहीं करते हैं।

भाइयो, कैसी भी परिस्थिति आये, उसे शान्ति से बैठकर और परस्पर में विचार-विनिमय करके सुलझाना चाहिए, तभी सनातनी आर्य कहला सकते हैं और जैनी जैन कहला सकते हैं, अन्यथा नहीं।

आज विचारों के आदान-प्रदान का युग है कोई भी आकर यदि अपने विचार सुनाता है तो हमें शान्तिपूर्वक सुनना चाहिए। यदि उसके विचार आपको श्रेष्ठ प्रतीत हों तो स्वीकार कर लेना चाहिए और यदि रुचिकर न लगें तो नहीं मानना चाहिए। परन्तु यह कहां का न्याय है कि हम औरों पर दबाव डाल कर कहें कि जैसा हमारे मत में कहा है और जैसा हम कहते हैं, वैसा ही सबको मानना पड़ेगा। यह बात न तो कभी ऐसी हुई है और न अभी या आगे हो ही सकती है सनातनियों के भीतर ही देखो - परस्पर में सैकड़ों ही बातों में मतभेद है। रामायण में भी कितने ही स्थलों पर वाल्मीकि कुछ कहते हैं और तुलसीदास कुछ और ही कहते हैं। दोनों में दिन-रात जैसा अन्तर है। कबीरपन्थियों ने राम को काल कहा है और उसके ऊपर राम पचीसी बनाई है। वहां पर तो इन धर्म के ठेकेदारों को बोलने की हिम्मत आज तक भी नहीं हुई। किन्तु सारी शक्ति आज उनकी 'अग्नि-परीक्षा' के ही ऊपर लग रही है, मानो उसमें सनातनियों के प्रति विष ही विष वमन किया गया हो ? अग्नि-परीक्षा को छपे हुए आज कई वर्ष हो गये हैं। परन्तु अभी तक उनकी नींद नहीं खुली थी। आज ही उनकी आंख खुली है ! आज सनातनी हिन्दुओं के आचार्य कहते हैं कि हम भारत में राज्य कर रहे हैं। भाई, मैं उनसे पूछता हूं कि यदि सचमुच उनका राज्य हो जाय तो क्या वे सिक्खों, जैनियों और अपने से विभिन्न धर्मानुयायियों को क्या घानी में पील देंगे ? उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि आज प्रजातन्त्र का युग है, नादिरशाही का जमाना नहीं है। किसी एक व्यक्ति के द्वारा यदि किसी महापुरुष के प्रति कोई अपमानजनक शब्द लिख या बोल दिया जाता है, तो उससे उस महापुरुष का अपमान नहीं हो जाता है। सौ टच के सोने को यदि कोई कीचड़ में डाल देगा, तो क्या वह सौ टच का नहीं रहेगा ? इसलिए आज हमें बड़े विवेक से काम लेना चाहिए और किसी पक्ष को अपने मति-भ्रम से कमजोर मानकर उस पर अन्याय नहीं करना चाहिए। यदि कोई हमारी धार्मिक और आत्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने का प्रयत्न करता है तो हम सब जैनियों का सम्प्रदायवाद

का और पन्थवाद का व्यामोह छोडकर और एक होकर उसका मुकाविला करना चाहिए।

धर्मवीरो, तुम लोग तो महावीर के अनुयायी हो। तुम्हे अपने धर्म का और धर्माचार्य का अपमान नही करना चाहिए। आज यदि किसी मत के अनुयायी तुम्हारे खिलाफ कोई आन्दोलन छेडते है तो तुम्हे उसका समुचित उत्तर देना चाहिए। भारत-सरकार का भी कर्तव्य है कि वह इस प्रकार सम्प्रदायवाद का विप-वमन करनेवाले लोगो के वोलने पर प्रतिवन्ध लगा देवे और उन अखवारो पर भी प्रतिवन्ध लगा देवे जो कि साम्प्रदायिकता का प्रचार करते है। हम जैनी लोग आर्यपना रखते है और किसी के साथ अनार्यपनेका व्यवहार नही करते हैं। फिर भी यदि कोई आगे वढकर हमारे साथ अनार्यपनेका व्यवहार करता है, तो हमे भी उसका न्यायपूर्वक उत्तर देना ही चाहिए।

सहनशीलता रखिए

पहिले के लोग कितने सहनशील और विचारक होते थे कि किसी व्यक्ति द्वारा कुछ कह दिये जाने पर भी उत्तेजित नही होते थे और शान्ति से उस पर विचार करते थे कि इसने हमे यह शव्द क्यो कहा ? एकवार केशी मुनि ने परदेशी राजा को 'चोर' कह दिया, तो उन्होने विनयपूर्वक पूछा—भगवन्, मैं चोर कैसे हूँ। जब उनसे उत्तर सुना तो नतमस्तक हो स्वीकार किया कि आपका कथन सत्य है। यदि मा-वाप किसी वात पर नाराज होकर पुत्र से कहे कि यदि मेरा कहना नही मानेगा तो भीख मागनी पडेगी। परन्तु समझ-दार पुत्र सोचता है कि यह तो वे हमारे हित के लिए ही कह रहे है। क्योकि कहावत भी है

जे न मानें बड़ो की सीख, ले खपरिया मागे भीख।

अर्थात् जो बडे-बूढो की सीख नही मानते हैं, वे खप्पर हाथ मे लेकर घर-घर भीख मागते फिरते है।

महाभारत मे आया है कि एक वार अर्जुन जब युद्ध मे लड रहे थे और युधिष्ठिर नही दिखे तो उन्हे खयाल आया कि कही कौरव लोग उन्हें जुआ खिलाकर के सारा राजपाट फिर से न ले लेवें ? यह विचार आते ही उन्होने पहिले भीम को खबर लेने के लिए भेजा। परन्तु वे मार्ग मे ही लडाई मे उलझ गये और वापिस नही आये तो अर्जुन ने सत्यकि को भेजा। जब वह भी खबर लेकर वापिस नही पहुचा तो सारथी से रथ को छावनी पर लौटा ले चलने के लिए कहा। अर्जुन को युद्ध से आया हुआ देखकर युधिष्ठिर ने

पूछा—तुम युद्ध में कैसे लौट आये ? अर्जुन ने कहा—आपके रथ की ध्वजा नहीं दिखने से आपको सम्भालने के लिए आया हूँ। यह सुनते ही युधिष्ठिर ने कहा—अरे, क्षत्रिय-कुल-कलंक, तू शत्रुओं को पीठ दिखाकर आगया ? इसप्रकार भर्त्सनापूर्वक अनेक अपशब्द कहे। तब तक तो अर्जुन को क्रोध नहीं आया। किन्तु जब युधिष्ठिर ने कहा—डाल दे गाण्डीव धनुष को नीचे। तो यह सुनते ही अर्जुन आपे से बाहिर हो गये और उनके ही ऊपर धनुषबाण चलाने को तैयार हो गये। श्री कृष्ण ने यह देखते ही अर्जुन का हाथ पकड़ लिया और बोले—तू पिता तुल्य अपने बड़े भाई को ही मारने के लिए तैयार हो गया ? अरे, उन्होंने तो तेरा जोश जागृत करने के लिए ही ऐसे शब्द कहे हैं। तेरा अपमान करने के लिए नहीं। यह सुनते ही अर्जुन की आंखें और हाथ नीचे हो गये। और वापिस युद्ध स्थल को लौट गये।

अन्यतीर्थी होते हुए भी परदेशी राजा ने यही सोचा कि स्वामी और नाथ कहलाने वाले अनेक है। पर यह साधु मुझे चोर कह रहा है, तो मुझे कुछ शिक्षा देने के अभिप्राय से ही कह रहा है। अनाथी मुनि ने जब राजा श्रेणिक से ही अनाथ कह दिया, तो उन्होंने पूछा—मैं अनाथ कैसे ? मैं तो सहस्रों व्यक्तियों का नाथ हूँ। मुनि ने कहा—क्या तू मौत से अपनी रक्षा कर सकता है, तो श्रेणिक बोले-नहीं। तब मुनि ने कहा—जो मौत से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, तो वह अनाथ नहीं तो और क्या है ? पहिले बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से भी साधु-सन्त कोई कठोर शब्द बोल देते थे, तो वे उसे सहन करके अच्छे ही अर्थ में उसे लेते थे। आज यदि कोई सन्त किसी मालदार से कुछ कह दे तो उन पर त्योरी चढ़ जाती है। भाइयो, किसी की भी बात को सुनकर उस पर शान्तिपूर्वक विचार करना चाहिए। यही आर्यपना है। और जो किसी बात को सुनकर आपे से बाहिर हो जाते है और मरने-मारने को उतारू हो जाते है तो यही अनार्यपना है। हमें अनार्यपना छोड़कर आर्यपना अंगीकार करना चाहिए।

वि० सं० २०२७ कार्तिक सुदी १०
जोधपुर

२६ सिंहवृत्ति अपनाइये !

बुद्धिमान सद्‌गृहस्थो, स्थानाङ्गसूत्र मे विविध प्रकार के भावो का वर्णन किया गया है। जो मनुष्य को मानवता ग्रहण करने के लिए प्रेरणा देते हैं। हमारे तीर्थंकरो ने हमे मानव बनाने की जितनी चिन्ता की है, उतनी न हमारे माता-पिताओ ने की और न मित्र या स्वजन-सम्बन्धियो ने की है। और तो क्या स्वय आपने ही नही की है। भगवान ने मानवता प्राप्त करने के लिए जो उपदेश दिया उसका प्रधान कारण यह है कि इस मानव-देह का पाना अति दुर्लभ है। यदि मनुष्य इस देह को पाकर के भी इसे सफल नही कर सका और इसे व्यर्थ गवा दिया तो फिर अनन्त ससार मे परिभ्रमण करना पडेगा। इसलिए उन्होने अनेक युक्तियो के साथ मानवता को प्राप्त करने के लिए बार-बार प्रेरणा दी। आज के त्यागी सन्त महात्मा लोग भी भगवान के उन वचनो का ही अनुसरण करके आपको प्रेरणा दे रहे हैं।

चार प्रकार के मनुष्य :

स्थानाङ्गसूत्र मे चार प्रकार के पुरुप बतलाये गये है—सिंह के समान, हाथी के समान, वृषभ के समान और अश्व के समान। ये सभी सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच हैं और चारो ही उत्तम जाति के पशु हैं। यद्यपि सिंह मासाहारी पशु है, तथापि वीरत्वगुण के कारण उसे उत्तम कहा गया है। जो वीर व्यक्ति होता है, वह सर्वत्र निर्भय रहता है। कहा भी है—

'एकाकिनस्ते विचरन्ति वीरा'।

अर्थात् जो वीरपुरुष होते हैं, वे सर्वत्र अकेले ही निर्भय होकर विचरते हैं। सिंह अपनी इस वीरता के कारण ही वन का राजा कहलाता है। अन्यत्र—

'मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रत्व वितीर्णं केन कानने'

अर्थात् सिंह को मृगराजपना जंगल में किसने दिया है? किसी ने भी नहीं दिया है। किन्तु वह अपने अपूर्व शौर्य और पराक्रम से स्वयं वन का राजा बन जाता है। सिंह के पास न तो शस्त्र हैं और न कवच-टोप आदि ही। न रहने को कोट किले आदि ही। परन्तु अपनी वीरता के कारण अनेक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित पुरुषों के साथ भी टक्कर लेता है। इसका कारण यह है कि उसके भीतर अदम्य साहस और महान् आत्मविश्वास होता है। वह बड़े-बड़े मदोन्मत्त हाथियों को देखकर भी मन में यह स्वाभिमान और आत्मविश्वास के साथ रहता है कि 'सत्त्व प्रधान न च मांसराशि' अर्थात् बल प्रधान है। किन्तु मांस की राशि प्रधान नहीं है। अपने इस आत्मविश्वास के ऊपर ही वह बड़े बड़े हाथियों के छक्के छुड़ा देता है और उनके मस्तक पर किये गये एक ही पंजे के प्रहार से मदान्ध हाथी चिंघाड़ते हुए चारों ओर भागते नजर आते हैं। साधारण लोगों के तो उसकी गर्जना सुनने मात्र से ही प्राण निकल जाते हैं। जिस व्यक्ति में सिंह के समान वीरता भरी होती है, उसे ही 'नरसिंह' और 'पुरुषसिंह' कहा जाता है। जैसा कि नीति वाक्य है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।

अर्थात् उद्योग करनेवाले पुरुषसिंह को लक्ष्मी स्वयं प्राप्त होती है। दृष्टान्त एकदेशी होता है, अतः सिंह की उपमा देते हुए उसकी वीरता से ही अभिप्राय है, उसके किसी अवगुण से नहीं। ज्वारी के उत्तम दानों को मोतियों और मक्की के दानों का पीला चमकता रंग देखकर मोहरों की उपमा दी जाती है, वह उनमें केवल वर्ण समता देखकर ही दी जाती है। अन्यथा [illegible] मोती और ज्वारी के दानों में, तथा सोने और मक्की के दानों में आकाश-पाताल जैसा अन्तर है। यह छोटी वस्तु को बड़ी उपमा दी गई है। कहीं पर बड़ी वस्तु को छोटी उपमा भी जाती है। जैसे [illegible] जैसा [illegible] है। [illegible] एक [illegible] भी दे देता है, [illegible] हजारों [illegible] लिये [illegible] पर भी [illegible] नहीं [illegible] है। [illegible] अनेक [illegible] हैं। [illegible] की उपमा [illegible] दी जाती है, [illegible] होता है।

जो व्यक्ति सिह के समान होते हे, उनको भयावनी रात मे वन मे, मसान मे या कही भी जाने के लिए कह दो, वे कही भी जाने से नही हिचकते है। किन्तु जो कायर पुरुप होते है, वे रात मे घरके वाहिर पेशाव करने के लिए जाने मे भी डरते है। पुरुपसिह जिस कार्य के करने मे सलग्न हो जाता है, वह कभी पीछ नही हटता, भले ही प्राण चले जावें। जो सिह के समान वृत्तिवाले पुरुप होते है, वे सदा दृढनिश्चयी होते है। उन जैसे व्यक्तियो के लिए कहा जाता है कि--

> चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यवहार।
> पै दृढ़ व्रत हरिश्चन्द्र का, टरे न सत्य विचार॥

और ऐसे ही पुरुपसिहो के लिए कहा जाता है—

> रघुकुल-रीति सदा चल आई,
> प्राण जायें, पर बचन न जाई।

भाई, सिहवृत्ति वाले मनुष्या की यही प्रकृति होती है कि प्राण भले ही चले जावे पर वे अपने दिये वचन से पीछे नही हटते है और लिये हुए प्रण या प्रतिज्ञा का मरते दम तक निर्वाह करते हैं। सिह वृत्ति मनुष्य जिस कार्य को करने का निश्चय कर लेता है, उसे पूरा करके ही रहता है। भगवान महावीर स्वामी को ही देखो—जब उन्होने साधु वेष धारण कर लिया तो साढे बारह वर्ष तक लगातार एक से एक वढकर और भयकर से भयकर उपसर्ग उनके ऊपर आते ही रहे। मगर वे अपने साधना-पथ से रच मात्र भी विचलित नही हुए। तभी वे दिव्य केवल ज्ञानी और केवल दर्शनी बने और अनन्त गुणो के स्वामी होकर अपने उद्धार के साथ तीन जगत का उद्धार किया।

कायरता छोडो !

आज आप लोगो मे से किसी से यदि पूछा जाय कि भाई कल सामायिक क्यो नही की, तो कहते हैं कि क्या करे महाराज, 'जीव को गिरह लगी हुई है, कि सामायिक करने का अवकाश ही नही मिला। कोई'कहेगा—महाराज, आज स्त्री इस प्रकार लडी कि सामायिक करने का मन ही नही हुआ। तीसरा कहेगा कि महाराज, सौ का नोट जेब से किसी ने निकाल लिया और चौथा कहेगा कि आज जमाई की बीमारी का तार आने से जाने की तैयारी मे लगा रहा। इस प्रकार अपना-अपना रोना रोकर कहेगे कि महाराज. इस कारण से सामायिक नही कर सके। मैं पूछता हू कि स्त्री, जमाई या सौ का नोट तुम्हारा उद्धार कर देंगे और तुम्हे मोक्ष मे भेज देंगे ? नही भेजेंगे। परन्तु मनुष्य मे

अश्व के समान पुरुष

तीसरी जाति के पुरुप घोडे के समान होते हैं। घोड़े का स्वभाव चचल होता है और वह इशारे पर चलता है । इसी प्रकार जिनकी वुद्धि चचल और तीक्ष्ण होती है, वह प्रत्येक तत्त्व को शीघ्र पहिचान लेता है। कहा जाता है कि घोडा जिस मार्ग से अधेरी रात मे एक वार भी निकल जावे तो वह भूलता नही है और यदि छोड दिया जावे तो वापिस अपने स्थान पर पहुच जाता है। इसी प्रकार घोडे के समान जिस व्यक्ति का स्वभाव होता है, वह गुरुजनो के द्वारा वतलाये गये सुमार्ग पर नि शक होकर चला जाता है। जिस प्रकार घोडा अपने ऊपर सवार के प्रत्येक इशारे को समझता है और तदनुसार चलता है, उसी प्रकार इस जैसी प्रकृति वाले पुरुप भी गुरु के प्रत्येक अभिप्राय और सकेत को समझकर तदनुसार चलते है। चचल और तीक्ष्ण वुद्धि वाला पुरुप प्रत्येक परिस्थिति मे अपने अभीष्ट और हितकारी मार्ग का निर्णय कर लेता है। जैसे घोडा अपने शत्रु सिंह आदि की गन्ध तुरन्त दूर से ही भाप लेता है, उसी प्रकार इस जाति का पुरुप भी आने वाले उपद्रवो को तुरन्त भाप लेता है और उनसे वचने के लिए सतर्क हो जाता है। मनुष्य के भीतर इस गुण का होना भी आवश्यक है।

धीर पुरुष : वृषभ समान

चौथी जाति के पुरुप वृपभ (बैल) के समान होते हैं। जैसे बैल अपने ऊपर आये वोझ को शान्त भाव से वहन करता है और गाडी मे जोते जाने पर अभीष्ट स्थान तक गाडी को ले जाता है, उसी प्रकार इस प्रकृति के मनुष्य भी अपने ऊपर आये हुए कुटुम्ब के भार को, समाज के भार को और धर्म के भार को शान्तिपूर्वक अपना कर्तव्य समझकर वहन करते है। बैल की प्रकृति भद्र होती है और गाडी को नदी पर्वत और वन मे से निकालकर पार कर देता है, उसी प्रकार वृषभ जाति का मनुष्य भी आने वाले मार्ग के सकटो से बचाता हुआ कुटुम्ब का और अपना निर्वाह करता है। मारवाड मे बैल को धोरी इसीलिए कहते है कि वे चलने से डरते नही है और अपने मालिक को अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देते हैं। जो वृपभजाति के मनुष्य होते है उन पर कुटुम्ब का, समाज का, देश का और धर्म का कितना ही भार क्यो न आजावे, परन्तु वे उससे घबडाते नही है और अपना कर्तव्य पूर्ण करके ही विश्राम लेते हैं। इस प्रकार सिंह, हाथी, अश्व और वृपभ के समान चार जाति के मनुष्य होते हैं।

के लिए जगल मे जा रहे है। भाई, जिसके पास होगा, तो वह पहिनावेगा ही। यह सुनकर और जानवरो के आभूपणो को देखकर सब वाराती दग रह गये।

माता का गौरव

हा, तो मैं बहिनो से कह रहा था कि जब आपकी सन्तान योग्य और उत्तम गुणवाली होगी और ससार मे उसकी प्रशसा होगी, तो आप लोगो की प्रशसा विना कहे ही हो रही है। क्योकि उनकी जननी तो आप लोग ही हैं। फिर लोग कहते ही है कि उस माता को धन्यवाद है कि जिसने ऐसे-ऐसे नर-रत्न उत्पन्न किये है। और भी देखो-भगवान ने जीवो के तीन वेद वतलाये है—स्त्रीवेद, पुरुपवेद और नपुंसक वेद। इनमे सबसे पहिले स्त्री वेद ही रखा है, क्योकि ससार की जननी वे ही है। वे ही अपने उदर मे नौ मास तक सन्तान को रखती हैं और फिर जन्म देकर तथा दूध पिलाकर सन्तान को वडा करती है और सर्व प्रकार से उसका लालन-पालन करती है। पुरुप तो घर मे लाकर पैसा डाल देता है। उसका समुचित विनियोग और व्यवस्था तो आप लोग ही करती है। और भी देखो—तीर्थंकर भगवान् वालपन से किसी को भी हाथ नही जोडते है, यहा तक कि अपने पिता को भी नही। किन्तु माता को वे भी हाथ जोडते है। इन सब वातो से स्त्री का गौरव और वडापन स्वय सिद्ध है। शास्त्रो मे भी मनुष्य गति से मनुष्य के साथ मनुष्यनी, देवगति से देवके साथ देवी और तिर्यंगति से तिर्यंच और तिर्यंचिनी दोनो ही ग्रहण किये जाते हैं। किन्तु व्यापार करने, शासन करने और युद्ध जीतने आदि दु खकारी कठोर कार्यो को पुरुप ही करता है, इसलिए लोक व्यवहार मे उनको लक्ष्य करके वात कही जाती है। इसका यह अभिप्राय नही है कि स्त्रियो की उपेक्षा की गई हैं। अत बहिनो को किसी प्रकार की हीनभावना मन मे नही लानी चाहिए और न यह ही सोचना चाहिए कि महापुरुषो ने हमारी उपेक्षा की है। देखो! भगवान ने पुरुपो के समान ही स्त्रियो के सघ की व्यवस्था की है। साधुओ के समान व्रत धारण करने वाली स्त्रियो का साध्वी सघ बनाया और श्रावक के व्रतो को धारण करने वाली स्त्रियो का श्राविका सघ बनाया और अपने चतुर्विध सघ मे उन्हे पुरुपो के ही समान बरा-बरी का स्थान दिया है। फिर पुत्र तो अपने पितृकुल का ही नाम रोशन करता है किन्तु पुत्री तो पितृकुल और श्वसुरकुल इन दो का नाम रोशन करती है। भाई, यह जैन सिद्धान्त है, इसमे तो जो वस्तु जैसी है, उसका यथावत् ही स्वरूप-निरूपण किया गया है। इसमे कही भी किसी के साथ कोई पक्षपात नही किया गया है।

हैं, उस घर का नाम सर्व ओर फैलता है। इसलिए आपको अपना उत्तर-दायित्व समझना चाहिए और स्वय शेरनी और कामधेनु बनकर अपनी सन्तान को शेर और कल्प-वृक्ष बनाना चाहिए।

पवित्र विचारो का प्रभाव

पुराने समय की बात है—एक सेठ के घर मे चोर घुसा। कुछ आहट पाने से सेठानी की नीद खुल गई। उसने बाहिर छत पर जाकर देखा तो एक पर-छाईं-सी दिखी। उसने सोचा कि यदि मैं आवाज करूगी तो सेठजी की और बच्चो की नीद खुल जावेगी और पता नही, ये कितने लोग है और ये कही किसी पर आक्रमण कर दे तो आपत्ति आ जाय। जो जाना हो—चला जायगा। पर किसी पर आपत्ति नही आनी चाहिए, यह विचार कर वह वापिस कमरे का द्वार बन्द करके सो गई। कुछ देर बाद सेठ की नीद खुली। जैसे ही वे छत पर आये तो देखा कि कोई व्यक्ति नीचे की ओर उतर रहा है। सेठजी समझ गये कि कोई पुरुष चोरी करने के लिए आया है, अत यह क्यो खाली हाथ जावे, यह विचार कर वे कमरे का द्वार खुला छोडकर ही भीतर जाकर सो गये। सेठजी मन मे विचारते रहे कि इस बेचारे के घर मे कुछ होगा नही तभी तो यह चोरी करने के लिए रात मे ऐसे सर्दी के समय आया है। इधर चोर ने सोचा कि सेठ ने मुझे देख लिया है और चोरी कराने के लिए ही इसने कमरे का द्वार खुला छोड दिया है, तो मुझे अब इस घर मे चोरी नही करनी चाहिए। यह सोचकर वह वापिस चला आया। दूसरे दिन सेठ ने देखा कि चोर कुछ भी नही ले गया है और खाली हाथ लौट गया है तो उन्होने मकान का प्रधान द्वार भी रात को खुला छोड दिया और तिजोरी का ताला भी बन्द नही किया। यथासमय वही चोर चोरी करने के लिए आया। आकर के उसने देखा कि आज तो मकान का द्वार ही खुला हुआ है तो वह भीतर घुसा। दुकान मे जाकर देखा कि तिजोरी का ताला भी नही लगा हुआ है तो चोर ने सोचा कि मेरे द्वारा चोरी कराने के लिए ही सेठ ने ऐसा किया है। अत मुझे यहा से चोरी नही करना है। वह विचार कर वह आज भी खाली हाथ वापिस चला गया।

भाइयो, देखो—मानव के पवित्र विचारो मे कितनी प्रबल शक्ति होती है कि वह चोरो के हृदय मे भी परिवर्तन कर देती है। सबेरे सेठ ने उठकर देखा कि तिजोरी मे से कुछ भी रकम नही गई है और घर मे से भी कोई दूसरा माल नही गया है, तब वह बहुत विस्मित हुआ कि चोर तो घर मे आया है, क्योकि गादी पर उसके पैर के निशान स्पष्ट दिख रहे हैं। परन्तु फिर भी

हुए ले गये और बोले—लो यह तुम्हारा बेटा आगया है ? यह सुनकर चोर बोला—सेठजी, मैं तो चोर हू। मुझे अपना बेटा बना कर क्यो अपनी पैठ गवाते है ? आपको अपना घर आबाद करना है, अथवा बर्बाद करना है? सेठ ने उसकी कही बात पर ध्यान नही दिया और कहा—भाई, तू रात भर का जागा हुआ है, अत यहा पर आराम कर। मै सवेरे फिर बात करूंगा। अब तू भागने का प्रयत्न मत करना। अन्यथा राजपुरुषो को सौंप दूगा। वह कहकर और अपने शयनागार मे लेजाकर उसे सुला दिया। आप भी स्वय आराम करने लगे।

जब सवेरा हुआ, तब सेठजी उठे और शौचादि से निवृत्त होकर स्नानादि किया, तथा उस चोर को भी निबटने के लिए कहा। जब वह निबट चुका तब उसे अपने साथ बैठाकर नाश्ता (कलेवा) कराया और उसे अपने साथ दुकान में ले गए। वहा जाकर सेठजी ने मुनीम जी से कहा—नगर के अमुक-अमुक प्रमुख व्यक्तियो को बुला लाओ। तब सभी प्रमुख पच लोग आगये तो उन्होने पूछा—कहिए सेठजी, आज हम लोगो को कैसे याद किया है ? सेठजी ने सबका समुचित आदर-सत्कार करते हुए कहा—भाइयो, आप लोगो को ज्ञात है कि मेरे लडकिया तो तीन है। पर लडका एक भी नही है। यह सुनकर सबने कहा—तब आप किसी के लडके को गोद ले लीजिए। सेठजी बोले—मैंने भी यही निर्णय किया है। पचो ने पूछा किस लडके को गोद लेने का निर्णय किया है ? तब सेठजी ने पास मे बैठे हुए चोर की ओर सकेत कर कहा—इसे गोद लेने का विचार किया है। जैसे ही लोगो ने उसकी ओर दृष्टि डाली तो सबके सब सोचने लगे अरे, यह तो नामी चोर है। इसे सेठजी गोद कैसे ले रहे हैं। पर मुख से स्पष्ट नही कह कर बोले—आपकी परीक्षा मे कसर नही है, पर अभी जल्दी क्या है ? सेठ बोला—भाइयो, मैंने भली-भाति से परीक्षा कर ली है। आप लोगो की राय लेने के लिए बुलाया है। यह सुनकर पच लोग एक-एक करके खिसक गये। सेठ ने भी सोचा—आफत टली।

तत्पश्चात् सेठ ने ज्योतिषी को बुलाया। उसके आने पर कहा—गोद लेने के योग्य अच्छा मुहूर्त बताओ। ज्योतिषी ने पूछा—सेठजी, किसे गोद ले रहे हैं। सेठजी ने इशारे से बताया—इसे। उसे देखते ही ज्योतिषि बोला—अभी तो बहुत दिनो तक कोई अच्छा मुहूर्त्त नही निकलता है। सेठजी बोले—पडितजी, आपने ज्योतिष का भली-भाति से अध्ययन नही किया है। अरे, अगिराचार्य कहते है कि जब मन मे उल्लास हो, तभी मुहूर्त है। मेरे मन मे

महाराज, मैं सबको जानता हू। परन्तु अब किसी का पर्दा उघाडना नहीं चाहता हूँ। राजा उसकी बात सुनकर बोला—अरे तू तो बडा समझदार मालूम पडता है। फिर तूने इतनी चोरिया कैसे की? वह बोला—महाराज, मैंने नही की, परन्तु आपने कराई हैं? राजा ने पूछा—मैने कैसे कराई? वह बोला—महाराज, आप सारी प्रजा के रक्षक और प्रतिपालक कहलाते हैं। यदि आप गरीबो की दीन दशा का ख्याल रखते, उन्हे रोजी से लगाते और उनकी सार-सभाल करते, तो हम गरीब लोग चोरिया क्यो करते? राजा उसकी यह बात सुनकर मन ही मन लज्जित हुआ। फिर भी उससे प्रकट मे पूछा—अच्छा बता, उन चोरियो का माल कहा कहा है? उसने बतला दिया जितने भी आप के राज्य मे साहूकार बने बैठे हैं, सबके घर मे वह माल रखा है। क्योकि हम लोग तो चोरी करके जो माल लाते थे, वह सब आधे दामो पर साहूकारो के यहा बेच जाते थे। एक यह सेठ ही ऐसा मिला, जिसने कभी किसी की चोरी का माल नही लिया। मैं तीन बार इनके घर मे भी चोरी को गया और इन्होने मुझे चोरी करने का अवसर भी दिया। मगर मेरी नीति के विरुद्ध होने से कभी इनके माल को नही लिया और मेरी इसी ईमानदारी पर प्रसन्न होके इन्होने मुझे गोद लिया है। उसके मुख से ये खरी-खरी और सच्ची बाते सुनकर राजा ने ससन्मान उसे विदा किया।

भाइयो, जो सत्यवादी और अपने नियम पर दृढ रहता है, वह सर्वत्र प्रशसा पाता है। अब वह अपने माता-पिता की मन वचन काय से भरपूर सेवा करने लगा और कारोबार को भी भली-भाति चलाने लगा। चारो ओर उसका यश फैल गया।

जब वह अपने माता-पिता से खूब रच-पच गया और उनका भी उस पर पूरा विश्वास हो गया, तब एक दिन सेठानी ने उससे कहा बेटा, अब मैं तेरी शादी करना चाहती हूँ। वह बोला—माताजी, मेरा विवाह हो चुका है और घर पर बाल बच्चे भी हैं। अब यदि मैं दूसरी शादी करूँगा तो उन लोगो पर यह बडा अन्याय होगा। तब सेठानी ने कहा तो बेटा, बहु को बच्चो के साथ तू यही पर ले आ। उसने कहा—माताजी, आप स्वय मेरे घर पर जावे और यदि आपको जच जावे, तो आप लिवा लाइये। सेठानी उसके घर गई, साथ मे उसे भी ले गई। जाकर उसकी स्त्री से कहा— बहू जी जैसा तेरा यह धनी सुधर गया है, यदि तू भी सुधरने को तैयार हो तो तेरे लिए मेरा घर-बार तैयार है। उसने कहा—मा साहब, जहा गोलमाल चलता है। वही पर खोट चलती है। जब मेरे धनी सुधर गए है तो मैं भी सुधर जाऊँगी।

कुछ समय के बाद सेठानी ने फिर उसे बुलाकर के कहा—बेटा, तूने धर्मकार्य सीख लिये और करने भी लगा है, सो हम बहुत प्रसन्न हैं। अब एक बात और सुन। पुरुष चार प्रकार के होते है—सिह के समान, हाथी के समान, अश्व के समान और वृषभ के समान। बता—तू इनमे से किस प्रकार का मनुष्य बनना चाहता है? उसने कहा—मा साहब, मैं तो सिह के समान पुरुष बनना चाहता हू। सेठानी ने कहा—तो बेटा, बन जा! यह सुनते ही वह बोला—लो मा साहब, अपना यह घर-बार सभालो। मैंने धर्म ग्रन्थो मे पढा है और ज्ञानियो के मुख से सुना है कि यह मेरा घर नही है, यह पर घर है। अब मैं अपने घर को जाऊ गा। यह कहकर वह सबसे बिदा लेकर साधु बन गया। उसने अध्यात्म की उच्च श्रेणी पर आरोहण किया और परम विशुद्धि के द्वारा सर्वकर्मों का नाश कर सदा के लिए निरजन बन गया।

भाइयो, जो पुरुप सिंह के समान निर्भय होते हैं, वे ही ऐसे साहस के काम कर सकते हैं। आप लोग भी अपने को महावीर की सन्तान कहते हो। पर मैं पूछता हूँ कि आप महावीर के जाये हुए पुत्र हो, या गोद गये हुए पुत्र हो? भगवान महावीर के तो पुत्र हुआ ही नही, अत जाये हुए पुत्र तो हो कैसे सकते हो? हा, गोद गये हुए हो तो फिर अभी कहे गये कथानक के समान उस घर को भी सभाल लेना। जैसे वह एक चोर होते हुए भी एक सच्चा साहूकार बना और अन्त मे महान् साहूकार बन गया। फिर आप लोग तो महावीर के पुत्र हो और साहूकारो के घरो मे जन्म लिया है। इसलिए आप लोगो को सिंह वृत्ति के पुरुप बनकर अपने आपको और अपने वश को दिपाना होगा, तभी आप लोगो का अपने को महावीर का अनुयायी कहना सार्थक होगा। भगवान महावीर का चरण चिन्ह 'सिंह' था। उनकी ध्वजा मे भी सिंह का चिन्ह अकित था, तो उनके अनुयायियो को सिंह जैसी प्रकृति का होना ही चाहिए। और अपने कुल का यश सत्कार्य करके सर्व ओर फैलाना चाहिए। भगवान महावीर के धर्म की तभी सच्ची प्रभावना होगी जब उनके अनुयायी उन जैसे ही महावीर और सिंह जैसे शूर बनेंगे। जो वीर होते है वे अपने दिये वचन का पूर्णरूप से पालन करते हैं। यह नही कि ग्यारह बजे आने का नाम लेकर तीन दिन तक भी आनेका पता नही चले? जिसके इतनीसी भी वचनो की पाबन्दी नही है तो वह वीर और साहूकार कैसे बन सकता है? भाई, वचनो से ही साहूकारी रहती है। कहा भी है कि—

वचन छल्यो बलराज वचन कौरव कुल खोयो।
वचन काज हरीचन्द नीच घर नीर समोयो।

कुछ समय के बाद सेठानी ने फिर उसे बुलाकर के कहा—वेटा, तूने धर्मकार्य सीख लिये और करने भी लगा है, सो हम बहुत प्रसन्न हैं। अव एक वात और सुन। पुरुष चार प्रकार के होते हैं—सिंह के समान, हाथी के समान, अश्व के समान और वृपभ के समान। बता—तू इनमे से किस प्रकार का मनुष्य बनना चाहता है? उसने कहा—मा साहब, मैं तो सिंह के समान पुरुप वनना चाहता हू। सेठानी ने कहा—तो बेटा, बन जा! यह सुनते ही वह वोला—लो मा साहब, अपना यह घर-वार सभालो। मैंने धर्म ग्रन्थो मे पढा है और ज्ञानियो के मुख से सुना है कि यह मेरा घर नही है, यह पर घर है। अव मैं अपने घर को जाऊंगा। यह कहकर वह सबसे बिदा लेकर साधु बन गया। उसने अध्यात्म की उच्च श्रेणी पर आरोहण किया और परम विशुद्धि के द्वारा सर्वकर्मों का नाश कर सदा के लिए निरजन बन गया।

भाइयो, जो पुरुप सिंह के समान निर्भय होते हैं, वे ही ऐसे साहस के काम कर सकते हैं। आप लोग भी अपने को महावीर की सन्तान कहते हो। पर मैं पूछता हूँ कि आप महावीर के जाये हुए पुत्र हो, या गोद गये हुए पुत्र हो? भगवान महावीर के तो पुत्र हुआ ही नही, अत जाये हुए पुत्र तो हो कैसे सकते हो? हा, गोद गये हुए हो तो फिर अभी कहे गये कथानक के समान उस घर को भी सभाल लेना। जैसे वह एक चोर होते हुए भी एक सच्चा साहूकार बना और अन्त मे महान् साहूकार बन गया। फिर आप लोग तो महावीर के पुत्र हो और साहूकारो के घरो मे जन्म लिया है। इसलिए आप लोगो को सिंह वृत्ति के पुरुप बनकर अपने आपको और अपने वश को दिपाना होगा, तभी आप लोगों का अपने को महावीर का अनुयायी कहना सार्थक होगा। भगवान महावीर का चरण चिन्ह 'सिंह' था। उनकी ध्वजा मे भी सिंह का चिन्ह अकित था, तो उनके अनुयायियो को सिंह जैसी प्रकृति का होना ही चाहिए। और अपने कुल का यश सत्कार्य करके सर्व ओर फैलाना चाहिए। भगवान महावीर के धर्म की तभी सच्ची प्रभावना होगी जब उनके अनुयायी उन जैसे ही महावीर और सिंह जैसे शूर बनेंगे। जो वीर होते है वे अपने दिये वचन का पूर्णरूप से पालन करते है। यह नही कि ग्यारह बजे आने का नाम लेकर तीन दिन तक भी आनेका पता नही चले? जिसके इतनीसी भी वचनो की पावन्दी नही है तो वह वीर और साहूकार कैसे वन सकता है? भाई, वचनो से ही साहूकारी रहती है। कहा भी है कि—

वचन छल्यो वलराज वचन कौरव कुल खोयो।
वचन काज हरीचन्द नीच घर नीर समोयो।

ग। अब मार्ग जो तुम्हें देखकर मार्ग प्रतीत हो, उस पर चलो । यह भगवान का आदेश है। अब यह निर्णय करना आपके हाथ मे है कि हमे किस मार्ग पर चलना है।

मानो, आप किसी मार्ग से अपने गन्तव्य स्थान को जा रहे हैं। अचानक आपके कानो मे आवाज आई कि यहा से थोडी दूरी पर एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण स्थान है। अब आप सोचते हैं कि गन्तव्य स्थान पर भले ही कुछ देरी से पहुच जायेंगे। किन्तु मार्ग मे आये इस ऐतिहासिक स्थान को तो देखते ही जाना चाहिए। अब आप वहा जाते हैं और वहा पर अकस्मात् ऐसी सामग्री मिल जाती है कि जिसका अन्वेषण आप वर्षों से कर रहे थे। उसे देख कर आपका हृदय आनन्द से गद्गद हो जाता है। भाई, आप वहा पर सुनने से ही गए, तभी वह अपूर्व ऐतिहासिक सामग्री आपको प्राप्त हो सकी।

कुछ समय के बाद सेठानी ने फिर उसे बुलाकर के कहा—बेटा, तूने धर्मकार्य सीख लिये और करने भी लगा है, सो हम बहुत प्रसन्न है। अब एक बात और सुन। पुरुष चार प्रकार के होते है—सिंह के समान, हाथी के समान, अश्व के समान और वृषभ के समान। बता—तू इनमे से किस प्रकार का मनुष्य बनना चाहता है? उसने कहा—मा साहब, मैं तो सिंह के समान पुरुष बनना चाहता हू। सेठानी ने कहा—तो बेटा, बन जा! यह सुनते ही वह बोला—लो मा साहब, अपना यह घर-बार सभालो। मैंने धर्म ग्रन्थो मे पढा है और ज्ञानियो के मुख से सुना है कि यह मेरा घर नही है, यह पर घर है। अब मैं अपने घर को जाऊगा। यह कहकर वह सबसे विदा लेकर साधु बन गया। उसने अध्यात्म की उच्च श्रेणी पर आरोहण किया और परम विशुद्धि के द्वारा सर्वकर्मों का नाश कर सदा के लिए निरजन बन गया।

भाइयो, जो पुरुष सिंह के समान निर्भय होते है, वे ही ऐसे साहस के काम कर सकते है। आप लोग भी अपने को महावीर की सन्तान कहते हो। पर मैं पूछता हूँ कि आप महावीर के जाये हुए पुत्र हो, या गोद गये हुए पुत्र हो? भगवान महावीर के तो पुत्र हुआ ही नही, अत जाये हुए पुत्र तो हो कैसे सकते हो? हा, गोद गये हुए हो तो फिर अभी कहे गये कथानक के समान उस घर को भी सभाल लेना। जैसे वह एक चोर होते हुए भी एक सच्चा साहूकार बना और अन्त मे महान् साहूकार बन गया। फिर आप लोग तो महावीर के पुत्र हो और साहूकारो के घरो मे जन्म लिया है। इसलिए आप लोगो को सिंह वृत्ति के पुरुष बनकर अपने आपको और अपने वश को दिपाना होगा, तभी आप लोगो का अपने को महावीर का अनुयायी कहना सार्थक होगा। भगवान महावीर का चरण चिन्ह 'सिंह' था। उनकी ध्वजा मे भी सिंह का चिन्ह अकित था, तो उनके अनुयायियो को सिंह जैसी प्रकृति का होना ही चाहिए। और अपने कुल का यश सत्कार्य करके सर्व ओर फैलाना चाहिए। भगवान महावीर के धर्म की तभी सच्ची प्रभावना होगी जब उनके अनुयायी उन जैसे ही महावीर और सिंह जैसे शूर बनेंगे। जो वीर होते है वे अपने दिये वचन का पूर्णरूप से पालन करते हैं। यह नही कि ग्यारह बजे आने का नाम लेकर तीन दिन तक भी आनेका पता नही चले? जिसके इतनीसी भी वचनो की पाबन्दी नही है तो वह वीर और साहूकार कैसे बन सकता है? भाई, वचनो से ही साहूकारी रहती है। कहा भी है कि—

वचन छल्यो बलराज वचन कौरव कुल खोयो।
वचन काज हरीचन्द नीच घर नीर समोयो।

वचन काज श्री राम लंक वभिषण थाप्यो
वचन काज जग देव शीश ककाली आप्यो।
वचन जाय ता पुरुष को कर से जीभ ज कट्टिये
वेताल कहे विक्रम सुनो बोल वचन किम पलटिये ॥१॥

संसार में वही महामानव कहलाने का अधिकारी है जिसका कि हृदय सिंह के समान निर्भय है, जो आपत्तियों से नही घबराता है और न किसी का सहारा चाहता है। यदि आप लोग इस सिंहवृत्ति को धारण करोगे तो नर से नारायण और भक्त से भगवान बनने मे कोई देर नही लगेगी।

वि० सं० २०२७ कार्तिक शुक्ला ११
जोधपुर

२७ | सुनो और गुनो !

धर्मश्रवण की आवश्यकता

बन्धुओ, आप लोग अपने जीवन को कृतार्थ करने के लिए प्रभु की वाणी का श्रवण करना चाहते हैं। इसका उद्देश्य क्या है ? यह कि जिसे जिस वस्तु को पाने की इच्छा होती है, वह उसे अन्वेपण करने का प्रयत्न करता है। जैसे रोग दूर करने के लिए किसी डाक्टर, वैद्य और हकीम को ढूढना पडता है, मुकद्दमा लडने के लिए वकील, वैरिस्टर और सोलीसीटर को तलाश करना पडता है और व्यापार करने के लिए व्यापारी, आडतिया और दलालो की छान-वीन करनी पडती है। इसी प्रकार से आत्मसाधन के लिए प्रभु की वाणी का सुनना सर्वोपरि माना गया है। सुनने से ही हमे यह ज्ञात होता है कि यह वस्तु उच्चकोटि की है, यह मध्यम श्रेणी की है और यह अधम है। इन सब बातो का विचार तभी सभव है, जब कि हम सुनने के लिए उद्यत होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है कि —

सोच्चा जाणइ कल्लाण, सोच्चा जाणइ पावग।
उभय पि जाणई सोच्चा, जं सेय त समायरे ॥

मनुष्य सुनकर ही जानता है कि यह कल्याण का मार्ग है और सुनकर ही जानता है कि यह पाप का मार्ग है। सुनने से ही दोनो मार्गों का पता चलता है। मार्ग दो है—एक धर्म का, दूसरा अधर्म का, एक मोक्ष का दूसरा ससार

अप्सराए नृत्य कर रही है और सर्व प्रकार के भोगोपभोग के साधन सुलभ है। इतना सुनने पर भी आप कहेंगे कि भाड मे जाय ऐसा आनन्द कि जहा से हम जीवित नही लौट सकते है।

सुनकर चुनो ?

भाइयो, आप लोगो ने इसी प्रकार स्वर्ग-मोक्ष के एव नरक-पशु योनि मे जाने के सभी मार्गों को सुना है और विचार भी किया है कि हमे दु ख के मार्ग पर नही जाना है किन्तु सुख के मार्ग पर चलना है। किन्तु अज्ञानी मनुष्य इन सब बातो को सुनकर भी कहता है कि आज धर्म करने से हमारा पेट नही भरेगा और दुनियादारी का काम नही चलेगा। अपने को तो चचल पुरी वाली लक्ष्मी मिले तो काम चले। यह सुनकर सन्त पुरुप कहते है—पधारो, इस मार्ग पर चलने से वह भी मिल जायगी। परन्तु तुम्हारी आत्मा काली हो जायगी, पाप का भारी भार उठाना पडेगा और फिर ससार-सागर से पार होना कठिन हो जायगा। तब विचारवान् व्यक्ति विचारता है कि हमे ससार के क्षणिक सुखो के पाने के लिए अपनी आत्मा को काली नही करना है और न पाप के भार को ढोना है। वह जानता है कि यह मानुप पर्याय बडी कठिनाई से मिली है। यदि इसे हमने इन काम-भोगो मे आसक्त होकर यो ही गवा दिया तो फिर आगे अनन्तकाल मे भी इसे पाना कठिन है। अत मुझे तो आत्म-साधना मे ही आगे बढते रहना चाहिए। सासारिक लक्ष्मी तो पुण्यवार्ना के साथ आगे स्वयमेव प्राप्त होती जायगी। उसके पाने के लिए मुझे अपनी आत्मा को पाप के महापंक मे नही डुबोना है। जिस पुरुप ने आत्म-कल्याण की बात सुन ली है, वह पापमार्ग या अकल्याणकारी वस्तु की ओर आकर्षित नही होता है। किन्तु जिसने आत्म कल्याण की बात सुनी ही नही है, वह तो उस ओर आकर्पित हुए विना नही रहेगा।

आप लोग यहा उपदेश सुनने को आये है और मे सुनाने के लिए बैठा हुआ हू। भाई, यह भगवद्-वाणी तो निर्मल जल की धारा है। जो इसमे डुबकी लगायगा, वह अपने सासारिक सन्तापो को दूर कर आत्मिक अनन्त शान्ति को प्राप्त करेगा। इस भगवद्-वाणी को सुनते हुए हमे एक ही ध्यान रखना चाहिए कि हे प्रभो, मैं तेरा हू और तू मेरा है। परन्तु आप तो जगत्-प्रभु बन गये और मैं तेरा भक्त होकर के भी अब तक दास ही बना हुआ हू। तेरे सम-कक्ष होने मे मेरे भीतर क्या कमी रह गई ? जो कमी मेरे मन-वचन-काया मे रह गई हो, वह बता, मैं उसे दूर करूगा। यदि इस प्रकार के विचार

भी कानो में पड जाये, तो एक ही वचन से उसका उद्धार हो सकता है। आपको यह विचारने की आवश्यकता नही है कि अभी तक इतना सुन लिया। फिर भी बेडा पार नही लगा, तो आगे क्या लगेगा। अरे भाई, शुद्ध हृदय से सुना ही कहा है ? यदि शुद्ध हृदय से सुना जाय और कलेजे पर चोट पडे तो तुम्हारी बुद्धि तत्काल ठिकाने पर आजाय और जग से वेडा पार हो जाय। हम तो इसी आशा को लेकर प्रभु के मगलमय वचन सुना रहे हैं। प्रभु ने यही कहा है कि हे भव्य जीवो, जिन सासारिक वस्तुओ से तुम मोह कर रहे हो, वे तुम्हारी नही है, उनको छोडो और जिस वैराग्य और ज्ञान से तुम दूर भागते हो और प्रेम नही करते हो, वे तुम्हारी है। इसलिए पर से प्यार छोडकर अपनी वस्तु से प्यार करो। तभी तुम्हारा उद्धार होगा।

एक वार एक पडित काशी से शास्त्र पढकर अपने देश को जा रहा था। मार्ग मे एक बडा नगर मिला। उसने सोचा कि खाली हाथ घर क्या जाऊ ? कुछ न कुछ दान-दक्षिणा लेकर जाना चाहिए, जिससे कि घर के लोग भी प्रसन्न हो। यह विचार कर वह उस नगर के राजा के पास गया और उन्हे आशीर्वाद दिया। राजा ने पूछा—पडितजी, कहाँ से आ रहे हो ? उसने कहा-महाराज, काशी से पढकर आ रहा हू। राजा ने पूछा—क्या-क्या पढा है ? उसने कहा—महाराज, मैंने व्याकरण, साहित्य इतिहास ज्योतिप, वैद्यक पुराण, वेद, स्मृति आदि सभी ग्रन्थ पढे हैं। राजा ने कहा - बहुत परिश्रम किया है। बताओ, अब आपकी क्या इच्छा है ? पडित ने कहा—जितना कुछ मैने पढा है, वह सब आपको सुनाना चाहता हूँ। राजा ने कहा—इतना समय मुझे नही है। आप तो दो-चार श्लोको मे सब वेद-पुराणो का सार सुना दीजिए। तब पडित ने कहा—महाराज, मैं तो एक श्लोक मे ही सबका सार सुना सकता हूँ। राजा ने कहा—सुनाइये ! वह बोला—महाराज, सुनिये —

अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकार पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥

व्यासजी ने अपने अठारहो पुराणो मे और सर्व वेद-वेदाग, उपनिषद्, भागवत, गीता आदि मे सारभूत दो ही वचन कहे है कि पर प्राणी का उपकार करना पुण्य कार्य है और पर-प्राणी को पीडा पहुचाना पाप कार्य है। मनुष्य को पाप कार्य छोडकर के पुण्य कार्य करना चाहिए।

यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। और फिर उसने कहा—आत्म-कल्याण की तो वात आपने बहुत सुन्दर वतलाई। अब यह वतलाइये कि किस

वस्तु के सेवन से शरीर सदा नीरोग रह सकता है। तव उसने कहा—एक हरडे के सेवन से मनुष्य जीवन भर नीरोग रह सकता हैं। वैद्यक शास्त्र मे हरीत की (हरडे) को माता के समान जीवन-रक्षिका वताया गया है। "हरीत की भूक्षु राजन् ! मातावत् हितकारिणी !"

पडित के दिये गये उत्तर से राजा वहुत प्रसन्न हुआ और उसे भरपूर दक्षिणा देकर विदा किया।

जीवन अमूल्य है

भगवान महावीर ने समय को सबसे अमूल्य बताया है और वार-वार गौतम के वहाने से सव प्राणियो को सम्बोधन करते हुए कहा है कि **'समय गोयम, मा पमायए'** । अर्थात् हे गौतम, एक समय का भी प्रमाद मत करो। इस एक प्रमाद मे सर्व पापो का समावेश हो जाता है। आठ मद, चार कषाय, इन्द्रियो के पाचो विषय, निद्रा और चारो प्रकार की विकथाए, ये सब प्रमाद के ही अन्तर्गत हैं। भाई, भगवान महावीर का यह एक ही वाक्य हमारा उद्धार करने के लिए पर्याप्त है। जव भगवान के एक ही वचन मे इतना सार भरा हुआ है, तव जो भगवान के कहे हुए अनेको वचनो का श्रवण करते हैं और उन्हे हृदय मे धारण करते हैं, तो उनके आनन्द का क्या कहना है ? सव वचनो को सुनने वाला तो नियम से सुख को प्राप्त करेगा ही।

बन्धुओ, मनुष्य का जीवन स्वल्प है। उसमे भी अनेक आधि-व्याधिया लगी हैं। फिर कुटुम्व के भरण-पोपण से ही मनुष्य को अवकाश नही मिलता है और शास्त्रो का ज्ञान तो अगम-अपार है। इसलिए हमे सार वात को ही स्वीकार करना चाहिए।

महाभारत के समय की वात है जव कि कौरवो और पाण्डवो की सेना युद्ध के लिए आमने-सामने मोर्चा वाधे खडी हुई अपने-अपने सेनापतियो के आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। उस समय अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—भगवन्, वताइये, यहा पर कौन-कौन मेरे शत्रु हैं, जिन पर मैं प्रहार करू ? तव श्री कृष्ण ने सामने खडे हुए भीष्म, द्रोण, कर्ण, और कौरव आदि को वताया। अर्जुन वोला—

> आचार्या· पितर पुत्रास्तथैव च पितामहा.।
> मातुला· श्वसुरा पौत्रा श्याला. सम्वन्धिनस्तथा ॥
> एतान्न हन्तुमिच्छामि, घ्नतोऽपि मधुसूदन !
> अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

हे मधुसूदन, ये तो मेरे गुरुजन हे, पितामह है, पुत्र है, कोई मामा है, कोई श्वसुर है, कोई पौत्र है, कोई साला है और कोई स्वजन-सम्बन्धी है। ये लोग भले ही मुझे मारें, पर मैं इन अपने ही लोगो को नही मारना चाहता हू, भले ही इसके बदले मुझे त्रैलोक्य का राज्य ही क्यो न मिले ? यह कहकर अर्जुन ने अपने हाथ से गाण्डीव धनुप को फेक दिया।

जब श्री कृष्ण ने देखा कि सारा गुड ही गोवर हुआ जाता है, तव उन्होने अर्जुन को सम्वोधन करते हुए कहा—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाय भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह जीव न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है, न कभी हुआ है और न कभी होगा। यह तो शाश्वत, नित्य, अज और पुराण हे। यह शरीर के मारे जाने पर भी नही मरता है। किन्तु—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यिन्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रो को छोडकर नये दूसरे वस्त्रो को धारण करता है, इसी प्रकार जीव भी पुराने शरीरो को छोडकर नये शरीरो को धारण करता है। इसलिए तू विकल और कायर मत वन। किन्तु निर्भय होकर युद्ध कर। ये कौरव तेरे बहुत बडे अपराधी हैं। इन लोगो ने तुम्हारे साथ छ महा अपराध किये है। पहिले तो इन लोगो ने भीष्म को विप दिया। दूसरे द्रौपदी का चीर हरण कर लाज लेनी चाही। तीसरे तुम्हारा राज्य लिया। चौथे जगल मे तुम लोगो को मारने के लिए आये। पाचवे गायो को घेर कर ले जाने का प्रयास किया और छठा अपराध यह कि तुम लोगो को मारने के लिए फिर आये है। इसलिए इन दुष्टो को दण्ड देना ही चाहिए। अर्जुन कही फिर ढीला न पड जाय, इसलिए श्री कृष्ण ने फिर कहा—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोस्य एव च।
नित्य· सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेनं विदित्वैन नानुशोचितुमर्हसि॥

इस आतमा को न शस्त्र छेद सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न पानी गला सकता है, न पवन सुखा सकता है। अत यह आतमा अच्छेद्य हैं, अदाह्य

है, अवलेद्य और अशोष्य है । यह नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविकार्य कहा जाता है । इसलिए तू इसे अजर अमर जान और इनको दण्ड देने मे किसी प्रकार का शोच मत कर ।

श्री कृष्ण के इस प्रकार उपदेश होकर अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हो गया और अन्त मे अपने शत्रुओ पर विजय पाई ।

भाइयो, आत्मा के इन नित्य निर्विकारी स्वभाव का वर्णन प्राय सभी आस्तिक दर्शनो मे किया गया है । अत हमे सभी मतो मे जो उत्तर और सार वस्तुए दृष्टिगोचर हो, उन्हे ले लेना चाहिए । सिद्धसेन दिवाकर तो भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—

सुनिश्चित न परतन्त्रयुक्तिषु स्फुरन्ति या काश्चन सूक्तिसम्पद
तवैव ता पूर्णमहार्णवोत्थिताः जिन प्रमाण तव वाक्यविप्रुषः ॥

हे जिनेन्द्र देव, परमतो मे जो कुछ भी सूक्तिसम्पदाए दृष्टिगोचर होती हैं, वे सब आपके पूर्वश्रुतरूप महार्णव से उठे हुए वचन-शीकर हैं, जल कण हैं यह सुनिश्चित है ।

उक्त कथन का सार यही है कि जहाँ कही भी कोई उत्तम और सार-युक्त वात दिखे उसे विना किसी सन्देह के ग्रहण कर लेना चाहिए और जो भी आत्म-अहितकारी दिखे उसे छोड देना चाहिए । पहले भली बुरी वात को सुनना चाहिए, सुनकर समझना चाहिए और समझकर मनन करना चाहिए, फिर अहितकर को छोड देना चाहिए—इसे ही कहते हैं सुनना और गुनना ।

सुना, पर गुना नहीं तो ?

ज्ञाता धर्मकथासूत्र मे एक कथानक आया है कि पूर्वकाल मे इसी भारत वर्ष की चम्पानगरी मे एक माकन्दी नाम का सेठ था । उसके दो पुत्र हुए—जिनरक्ष और जिनपाल । वे सैकडो मनुष्यो को साथ लेकर और नाना प्रकार की चीजे लेकर व्यापार के लिए जहाज-द्वारा देशान्तर गये । वहा जब खूब धन कमाकर वापिस लौट रहे थे, तब समुद्री तूफान से जहाज नष्ट हो गया और वे एक काष्ठ-फलक के सहारे किसी टापू के किनारे जा पहुंचे । जब वे दोनो उस टापू पर जाने लगे तो एक पुतली ने भी मना किया । परन्तु वे नही माने और उस पर चढते हुए चले गये । भाई, आप लोग ही जब वडे बूढो और गुरुजनो तक का कहना नहीं मानते, तो वे एक स्त्री का कहना तो कैसे माने ।

आगे बढने पर उस द्वीप की देवी शृगार करके सामने आई और स्वागत करती हुई उन दोनो भाइयो को अपने महल मे ले गई। उसने कहा—हमे मालूम है कि तुम लोगो का सर्वस्व समुद्र मे नष्ट हो गया है। अब तुम लोग कोई चिन्ता मत करो। यह रत्न द्वीप है और मेरे भण्डार मे अपार सम्पदा है। अत यही रहो और हमारे साथ सासारिक सुख भोगो। वे लोग भी काम-भोगो मे लुभा गये और उसके साथ सुख भोगते हुए रहने लगे। एक बार उसे इन्द्र के पास से बुलावा आया तो उसने जाते हुए कहा—देखो, यदि यहा पर मेरे बिना तुम लोगो का चित्त न लगे तो इस महल के चार उद्यान है, यहा पर बावडी-सरोवर आदि सभी मनोरजन के साधन है, अत घूमने चले जाना। पर देखो उत्तरवाले उद्यान मे भूल करके भी मत जाना। वहा पर भयकर राक्षस रहता है वह तुम्हे खा जायगा। यह कहकर वह देवी चली गई।

जब उन दोनो भाइयो का मन महल मे नही लगा तो वे पहिले कुछ देर तक पूर्व दिशा के उद्यान मे गये। कुछ देर घूमने के बाद चित्त नही लगने से दक्षिण दिशा के उद्यान मे गये और जब वहा भी चित्त नही लगा तो पश्चिम दिशा वाले उद्यान मे जाकर घूमे। जब वहां भी चित्त नही लगा और देवी भी तब तक नही आई, तो उन्होने सोचा कि उत्तर दिशा के उद्यान मे चल कर देखना तो चाहिए कि कैसा राक्षस है, अत वे साहस के साथ उसमे भी चले गये। भीतर जाकर के क्या देखते हैं कि वहा पर सैकडो नर ककाल पडे हैं चारो ओर से भयकर दुर्गन्ध आ रही है। आगे बढने पर देखा कि एक मनुष्य शूली पर टगा हुआ अपनी मौत के क्षण गिन रहा है। उससे उन्होने पूछा—भाई, तुम्हारी यह दशा किसने की है? उसने बताया कि जिसके मोह-जाल मे तुम लोग फस रहे हो, वह एक दिन हमे भी इसी प्रकार से फुसला करके ले आई थी। कुछ दिन तक उसने मेरे साथ भोग भोगे। जब मुझे क्षीणवीर्य देखा तो इस शूली पर टाग कर तुम लोगो को बहका लाई है। यहा पर जितने भी नर ककाल दिख रहे है, वे सब उसी डायन के कुकृत्य है। यह सुनकर वे बहुत डरे। उन्होने उससे बच निकलने का कोई उपाय पूछा। उसने कहा—इधर से उतरते हुए तुम लोग समुद्र के किनारे जाओ। वहा पर समुद्र का रक्षक एक यक्ष आकर पूछेगा कि क्या चाहते हो। तब तुम अपने उद्धार की बात कहना। वह घोडा बनकर और अपनी पीठ पर बैठा करके समुद्र के पार पहुचा देगा। यह सुनते ही वे दोनो उस द्वीप से जल्दी-जल्दी उतरे और समुद्र के किनारे पहुच कर यक्ष की प्रतीक्षा करते हुए भगवान का नाम स्मरण करने लगे।

थोडी देर के वाद यक्ष प्रकट हुआ। उसने पूछा—क्या चाहते हो ? इन दोनो ने कहा हमे यहा से उस पार पहुचा दो, जिससे हमारा उद्धार हो जावे। तव यक्ष ने कहा – देखो, मैं घोडा वनकर तुम लोगो को अपनी पीठ पर बैठा करके पार कर दू गा । मगर इस वात का ध्यान रखना कि यदि वह देवी आजावे और तुम्हे प्रलोभन देकर लुभावे और वापिस चलने के लिए कहे तो तुम पीछे की ओर मत देखना । यदि देखा तो मैं तुम्हे वही पर समुद्र मे पटक दू गा और वह तुम्हे पकड कर तलवार से तुम्हारे खड-खड करके मार देगी। यदि तुम्हें हमारा कहना स्वीकार हो तो हमारी पीठ पर वैठ जाओ। उनके हा करने पर यक्ष ने घोडे का रूप वनाया वे दोनो उसकी पीठ पर सवार हुए और वह तीव्र वेग से उन्हे ले कर उड चला। इतने मे ही वह देवी अपने स्थान पर आई और उन दोनो को वहा पर नही देखा तो उसने सव उद्यानो को देखा। अन्त मे वह उडती हुई समुद्र मे पहुची तो देखा कि वे दोनो यक्षाश्व की पीठ पर चढे हुए जा रहे हैं। तव उसने पहिले तो भारी भय दिखाया । पर जब उन दोनो मे से किसी ने भी पीछे की ओर नही देखा, तव उसने मन मोहिनी सुन्दरी का रूप वनाकर हाव-भाव और विलास विनयपूर्वक करुण वचनो से इन दोनो को मोहित करने के लिए अपना माया जाल फैलाया। उसने कहा—हे मेरे प्राणनाथो, तुम लोग मुझे छोड कर कहा जा रहे हो ? मैं तुम्हारे विना कैसे जीवित रह सकूगी ? देखो, मेरी ओर देखो। मुझ पर दया करो और वापिस मेरे साथ चलकर दिव्य भोगो को भोगो । इस प्रकार के वचनो को सुनकर जिनपाल का चित्त तो चलायमान नही हुआ। किन्तु जिनरक्ष का चित्त प्रलोभनो से विचलित हो गया और जैसे ही उसने पीछे की ओर देखा कि यक्ष ने उसे तुरन्त पीठ पर से नीचे गिरा दिया। उसके नीचे गिरते ही उस देवी ने उसे भाले की नोक पर ले लिया ऊपर उछाल कर तलवार से उसके खड-खड कर दिये। जिनपाल अडिग रहा। उसे यक्ष ने समुद्र के पार पहुचा दिया। पीछे उसे धन-माल के साथ चम्पा नगरी भी पहुचा कर वापिस अपने स्थान को लौट आया ।

भाइयो, इस कथानक से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जिन काम-भोगो को हमने दु खदायी समझ कर छोड दिया है, उन्हे नाना प्रलोभनो के मिलने पर भी उनकी ओर देखें भी नही। अन्यथा जिनरक्ष के समान दु ख भोगना पडेगा जिनरक्ष ने सुना तो सही पर गुना नही, उस पर अमल नही किया जिस कारण उसका सर्वनाश हो गया। आप भी वचपन से सुन रहे हो, ससार की दशा देखते-देखते वूढे हो चले हो, फिर भी नही चेत रहे हो। जिस भाई का तुमने लालन-पालन

किया और अपनी कमाई मे से आधा हिस्सा दिया, वही भाई जरा सी बात पर तुम्हे मारने के लिए लाठी लेकर तैयार हो जाता है। जिस पुत्र के लिए तुमने अपने सब सुख छोडे और स्वय भूखे रहकर पाल-पोस कर बडा किया, वही एक दिन सब कुछ छीनकर स्वय मौज करता है और तुम्हे दर-दर का भिखारी बना देता है । जिस स्त्री की इच्छाओ को पूरा करने के लिए तुमने हजारो पाप किये और लाखो कष्ट सहे, वही निर्धनता और निर्वलता आ जाने पर तुमसे मुख मोड लेती है। ससार के ये सब सम्बन्ध स्वार्थ से भरे हुए हैं और अन्त मे उस रत्नद्वीपवासिनी देवी के समान मरणान्तक कष्ट देने वाले हैं। किन्तु जो जिनपाल के समान इन सबसे मुख मोडकर और गुरु वचनो पर श्रद्धा न कर आगे की ओर ही देखते हुए बढते चले जाते है, वे सर्व दु खो से पार होकर निराबाध सुख के भडार अपने मोक्ष घर को पहुच जाते हैं। इसलिए पिछली बातो को विसार कर आगे की ही विचारणा करनी चाहिए। कहा भी है—

बीती ताहि विसार दे, आगे की सुधि लेय।

भाइयो, भगवान ने तो ससार को सर्वथा छोडने का ही उपदेश दिया है। परन्तु जो उसे सर्वथा छोडने मे अपने को असमर्थ पाते है, उन्हे श्रावक धर्म को स्वीकार करने के लिए कहा है। अत आप लोगो की जैसी भी स्थिति हो उसके अनुसार आत्मकल्याण मे लगना ही चाहिए। यदि और अधिक कुछ नही कर सकते तो तुलसीदास के शब्दो मे दो काम तो कर ही सकते हो ?

तुलसी जग मे आय के, कर लीजे दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरिनाम।

एक तो यह कि अपने भोजन मे से एक, आधी चौथाई रोटी भी गरीब बुभुक्षित दुखित प्राणी को खाने के लिए अवश्य दो और लेने के नाम पर एक भगवान का नाम लो। परन्तु अन्याय और पाप करके धन कमाना छोड दो। दुखीजनो की वैयावृत्य करो, सेवा करो, और असहायो की जितनी बने सहायता करो। हमेशा सत्पुरुषो की सगति करो और उनके उपदेशो को सुनो। सुनने से ही तुम्हे भले बुरे का ज्ञान होगा और तभी तुम बुरे का त्याग कर भले कार्य को करने मे लग सकोगे। सुनने से असख्य लाभ है। सुनकर सार को ग्रहण करो और अपना जीवन उत्तम बनाओ।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १२
जोधपुर

२८ धर्मकथा का ध्येय

एक शब्द : अनेक रूप

सद्‌गृहस्थो, आपके सामने कथा का प्रकरण चल रहा है। किसी वस्तु के कथन करने को, महापुरुषो के चरित-वर्णन करने को कथा कहते हैं। कथा शब्द के पूर्व यदि 'वि' उपसर्ग लगा दिया जावे तो 'विकथा' वन जाता हैं, और अर्थ भी खोटी कथा करना या वकवाद करना हो जाता है। शब्दो की उत्पत्ति धातुओ से होती है। किसी एक धातु से उत्पन्न हुए एक शब्द के आगे प्र वि सम् आदि उपसर्गों के लग जाने से उस धातु-जनित मूल शब्द का अर्थ वदल जाता है। जैसे 'हृ' धातु है, इसका अर्थ 'हरण करना' है, इससे प्रत्यय लगाने पर 'ह्रियते' इतिहार इस प्रकार से 'हार' शब्द वना। अव इस 'हार' शब्द के आगे 'आ' उपसर्ग लगाने पर 'आहार' शब्द वन गया और मूलधात्वर्थ वदल कर उसका अर्थ भोजन हो गया। यदि उसी 'हार' शब्द के आगे 'वि' उपसर्ग लगा दिया जाय, ओ 'विहार' शब्द वन जाता है और उसका अर्थ घूमना-फिरना हो जाता है। यदि 'वि' हटाकर 'प्र' उपसर्ग लगा दिया तो 'प्रहार' शब्द वन जाता है और उसका अर्थ किसी पर शस्त्र आदि से वार करना हो जाता है। यदि 'प्र' हटाकर 'स' उपसर्ग लगा दिया तो 'सहार', शब्द वन जाता है और उसका अर्थ सर्वथा नाश करना हो जाता है। यदि 'स' को हटा कर 'परि' उपसर्ग लगा देते हैं, तो

'परिहार' शब्द वन जाता है और उसका अर्थ 'त्याग' करना हो जाता है। इसलिए कहा गया हैं कि—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-सहार - विहार-परिहारवत् ।'

अर्थात् उपसर्ग से धातु का मूल अर्थ बलपूर्वक अन्यरूप मे परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे कि 'हार' के प्रहार, आहार, सहार, विहार और परिहार अर्थ हो जाते है।

इसी प्रकार 'कथ्' धातु से बने 'कथा' शब्द का अर्थ भी 'वि' उपसर्ग लगने से 'विकथा' रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

व्याकरणशास्त्र के अनुसार एक-एक धातु के अनन्त अर्थ होते हैं। उसमे प्रत्यय और उपसर्ग भेद से नये-नये शब्द बनते जाते है और उनसे नया-नया अर्थ व्यक्त होता जाता है। यदि कोई शब्दशास्त्र का विद्वान् है, तो जीवनभर एक ही शब्द के नवीन-नवीन अर्थ प्रकट करता रहेगा। इसीलिए कहा गया है कि **'अनन्तपार किल शब्दशास्त्रम्'** अर्थात् शब्दशास्त्र का कोई पार नही है, वह अनन्त है, यानी अन्त-रहित है।

इस प्रकार प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थ होते हुए भी ज्ञानीजन प्रकरण के अनुसार ही उसका विवक्षित अर्थ ग्रहण करते हैं। जैसे—'सैन्धव' शब्द का अर्थ 'सेधा नमक' भी है और सिन्धु देश मे पैदा हुआ घोड़ा भी है। अब यदि भोजन के समय किसी ने कहा—'सैन्धव आनय' अर्थात् 'सैन्धव' लाओ, तो सुननेवाला उस अवसर पर घोडा नही लाकर 'सेधा नमक' लायेगा। इसी प्रकार वही शब्द यदि कही जाने की तैयारी के समय कहा जायगा तो सुननेवाला व्यक्ति नमक को नही लाकर के 'घोडा' को लायेगा, क्योकि वह देखता है कि यह जाने के समय कहा गया है, अत 'सैन्धव' (घोडा) की आवश्यकता है न कि नमक की।

यही नियम सर्वत्र समझना चाहिए कि भले ही प्रयुक्त शब्द के अनेक अर्थ होते हो, किन्तु जिस स्थान पर, जिस अवसर मे और जिन व्यक्तियो के लिए कहा गया है, वहा के उपयुक्त अर्थ को ग्रहण किया जाय और वहा पर अनुपयुक्त या अनावश्यक अर्थों को छोड दिया जाय।

चार प्रकार की कथा :

भगवान् ने चार प्रकार की कथायें कही हैं। यथा—

'कहा चउव्विहा पण्णत्ते । त जह आक्खेवणी विक्खेवणी सवेयणी, निव्वेयणी ।

अर्थात्—भगवान की देशना रूप कथायें चार प्रकार की होती हैं—आक्षेपणी, विक्षेपणी और सवेदनी और निर्वेदनी। जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टियो का और पर-मतो का निराकरण करके छह द्रव्य और नव पदार्थों का निरूपण करे, उसे आक्षेपणी कथा कहते है। जो प्रमाण और नयरूप युक्तियो के द्वारा सर्वथा एकान्तस्वरूप वादो का निराकरण करे, उसे विक्षेपणी कथा कहते हैं। पुण्य के वर्णन करने वाली कथा को सवेदनी कथा कहते और पाप के फल का वर्णन करने वाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते हैं। अथवा ससार, शरीर और भोगो से वैराग्य उत्पन्न करनेवाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते है। जैसा कि कहा है—

> आक्षेपणीं तत्त्वविधानभूता विक्षेपणीं तत्त्वदिगन्तशुद्धिम्।
> सवेगिनी धर्मफलप्रपचा निर्वेदिनी चाह कथा विरागाम्॥

आक्षेपणी कथा तत्त्वो का निरूपण करती है। विक्षेपणी कथा तत्त्वो मे दिये जाने वाले दोपो की शुद्धि करती है। सवेदनी कथा धर्म का फल विस्तार से कहती है और निर्वेदिनी कथा वैराग्य को उत्पन्न करती है।

मनुष्य के जीवन के लिए ये चारो ही कथायें उपयोगी हैं, अत भगवान् ने इन चारो कथाओ का निरूपण किया है। देखो—मनुष्य के शरीर मे जब कोई बीमारी घुल-मिल जाती है और डाक्टर या वैद्य लोग कहते हैं कि अमुक प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने से यह विकार उत्पन्न हो गया है अत पहिले रेचक औपधि देकर उसे बाहिर निकालना होगा, उन अभक्ष्य मास-मदिरा आदि का सेवन बन्द करना होगा और अमुक इजेक्शन शरीरस्थ कीटाणुओ को समाप्त करना होगा। पीछे अमुक औपधि के सेवन से इसके शरीर का पोपण होगा। इसी प्रकार भगवान् ने भी बताया कि देखो—अन्यमतावलम्बियो के कथन से तुम्हारे भीतर जो मिथ्यात्व और अज्ञान उत्पन्न हो गया है, तथा हिंसादि पापरूप प्रवृत्ति से जो विकार पैदा हो गया हैं, पहिले उसे दूर करो पीछे यथार्थतत्त्वो का श्रद्धान कर अपने आचरण को शुद्ध करा तो तुम्हारी जन्म-जरा-मरण रूप बीमारी जो अनादिकाल से लगी हुई चली आ रही है, वह दूर हो जायगी। बस, इस प्रकार की धर्म-देशना को ही आक्षेपणी कथा कहते हैं।

दूसरी कथा है विक्षेपणी। विक्षेप का अर्थ है—एक की बात को काट कर अपनी बात कहना? जैसे किसी बीमार के लिए एक डाक्टर ने किसी दवा के सेवन के लिए कहा। तब दूसरा डाक्टर कहता है कि इसमे क्या

रखा है ? इसे बन्द कर मेरी दवा लो। इसी प्रकार ससार मे खोटे प्रवचनो का प्रचार करने वाले पाखण्डी बहुत है। उनका निराकरण करने वाले और परस्पर मे लडने-झगडने वाले बहुत है। उनके विवाद को दूर कर अपेक्षा और विवक्षा से कथन करने वाला स्याद्वादरूपी सबसे वडा चिकित्सक कहता है कि रेचन के लिए अमुक औषधि का लेना भी आवश्यक है और पाचन के लिए अमुक औषधि भी उपयोगी है तथा शरीर-पोपण के लिए अमुक औपधि श्रेष्ठ है, इस प्रकार यह स्याद्वादरूपी महावैद्य सबके पारस्परिक विक्षेपो को दूर कर और वस्तु का यथार्थ स्वरूप बतला करके उन्हे यथार्थ मुक्ति-मार्ग का दर्शन कराता है। अत जिज्ञासु और मुमुक्षु जनो के लिए विक्षेपणी कथा भी हितकारक है।

तीसरी कथा का नाम सवेगिनी है। सम् अर्थात् सम्यक् प्रकार से पुण्य और धर्म के फल को बता करके वेग पूर्वक जो धर्म और पुण्य-कार्यों मे लगाते और पाप एव अधर्म कार्यों से बचाने वाली कथा को सवेगिनी कथा कहते हैं। नदी मे जब वेग आता है तो उसके सामने कोई वस्तु नही ठहर सकती है, किन्तु सब बहती चली जाती है। इसी प्रकार आत्मा के भीतर जब धार्मिक भाव जागृत होता है, तब उसके सामने विकारी भाव नही ठहर सकते है।

चौथी कथा का नाम निर्वेदिनी है। जब मनुष्य बार-बार पापो के फलो को सुनता है। तब उसका मन सासारिक कार्यों से उदासीन हो जाता है और तभी वह उनसे बचने का और सन्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है। इसलिए वैराग्य बढने वाली निर्वेदिनी कथा का भी भगवान् ने उपदेश दिया है।

उक्त चारो ही धर्म-कथाएँ है। धर्म-कथा करने का अभिप्राय है कि हमको शान्ति प्राप्त हो और हमारी आपदाएँ दूर हो। लोग कहते है कि हमे तो सदा चिन्ताए ही घेरे रहती हैं, एक क्षण को भी शान्ति नही मिलती है। भाई, ऐसा क्यो होता है ? इसका कभी आप लोगो ने विचार किया है ? यदि मनुष्य अपनी चिन्ताओ के कारणो पर विचार करे तो उसे ज्ञात होगा कि उसने इन चिन्ताओ को स्वय ही घेर रखा है। मनुष्य जब अपनी शक्ति, पुरुषार्थ और भाग्य को नही देखकर अमित और असीमित धनादि के प्रलोभन मे फसता है, तभी उसे चारो ओर से चिन्ताएँ घेरे रहती हैं। यदि वह यह विचार करे कि हे आत्मन्, तुझे खाने को पाव-डेढ पाव का आहार पर्याप्त है, सोने के लिए साढे तीन हाथ भूमि और शरीर ढकने के लिए दो गज कपडा चाहिए है। फिर तू क्यो त्रैलोक्य की माया को पाने लिए हाय-हाय करता है और क्यो चिन्ताओ के पहाड को अपने सिर पर ढोता है ? इन

पक्षियो को तो देख ? जिन वेचारो के पास तो कोई साधन भी नही और इन्हे कोई सहायता देनेवाला भी नही है। फिर भी ये सदा चहकते हुए सदा मस्त रहते हैं। ये दिन को भी आनन्द-किलोल करते रहते हैं और रात को भी निश्चिन्त होकर सोते हैं। जव ये पशु-पक्षी तक भी चिन्ता नही करते है और निश्चिन्त होकर जीवन-यापन करते हैं, तव तू क्यो चिन्ता की ज्वाला मे सदा जलता रहता है । यह चिन्ता की ज्वाला तो चिता से भी भयकर है। जैसा कि कहा है—

> चिन्ता-चिता द्वयोर्मध्ये चिन्ता एव गरीयसी।
> चिता दहति निर्जीव चिन्ता दहति सजीविकम् ॥

चिन्ता और चिता इन दोनो मे चिन्ता रूपी अग्नि ही वहुत भयकर है, क्योकि चिताकी अग्नि तो निर्जीव शरीर को (मुर्दे को) जलाती है, किन्तु चिन्ता रूपी अग्नि तो सजीव शरीर को अर्थात् जीवित मनुष्य को जलाती है।

चिन्तन करो, चिता नहीं

अत ज्ञानी मनुष्य को विचार करना चाहिए कि मैं क्यो चिन्ता करूँ ? यदि चिन्ता करूँगा तो मेरे मस्तिष्क की जो उर्वराशक्ति है—प्रतिभा है—वह नष्ट हो जायगी। अत मुझे चिन्ता को छोड कर वस्तु-स्वरूप का चिन्तक वनना चाहिए। इसलिए हे भाईयो, आप लोग चिन्ता को छोडकर चिन्तक (विचारक) वने और सोचे कि यह आपदा मुझ पर क्यो आई ? इसकी जड क्या है ? मूल कारण क्या है ? इस प्रकार विचार कर और चिन्ता के मूल कारण की खोज करेंगे और चिन्तक वनेंगे तो अवश्य उसे पकड सकेंगे और जव पकड लेंगे तो उसे दूर भी सहज मे ही कर सकेंगे। अन्यथा चिन्ता की अग्नि मे ही जलते रहेंगे। भाई, चिन्तक पुरुष ही इस भव की आपदाओ से छूट सकता है और भविष्य का, पर भव का भी सुन्दर निर्माण कर सकता है और उसे सुखदायक वना सकता है।

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है और इसी कारण उसे चिन्ता उत्पन्न होती है, पर उससे चिन्तित रह कर अपने आपको भस्म करना उचित नही है, किन्तु चिन्ता को अपने भीतर घर मत करने दो। वह जैसे ही आवे, उसे उसके कारणो का विचार करके दूर करो। पर यह कव सभव है ? जव कि उसके भीतर ज्ञान की पूजी हो और ध्यान की विचारने की प्रवृत्ति हो। चिन्ता के लिए तो कुछ नही चाहिए, परन्तु चिन्तक के लिए तो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन रूपी पूँजी की आवश्यकता है। यदि इन दोनो को साथ लेकर चलोगे तो सम्यक्चारित्र तो स्वयमेव आ जायगा। इस प्रकार जव आप ठीक दिशा मे

प्रयत्न करेगे तो आपकी सारी चिन्ताएँ—चाहे वे शारीरिक हो, या मानसिक इहलौकिक हो, या पारलौकिक, सब अपने आप ही दूर हो जायगी और आप अन्धकार-व्याप्त मार्ग से निकल कर प्रकाश से परिपूर्ण राजमार्ग पर पहुच जावेगे जिस पर कि निश्चिन्त होकर चलते हुए अपनी अभीष्ट यात्रा सहज मे ही पूर्ण कर लेगे और चिर-प्रतिक्षित शान्ति को प्राप्त कर सदा के लिए निश्चिन्त हो जावेगे।

बन्धुओ, आप लोग विचार करे कि डाक्टर के द्वारा बतलायी गयी ऊची से ऊची औषधि लेने, बिटामिन की गोलिया खाने और प्रतिदिन दूध पीने पर भी यदि हम स्वास्थ्य-लाभ नही कर पाते है तो कही न कही पर मूल मे भूल अवश्य है ? वह भूल चिन्ता ही है। जब मनुष्य चिन्ता से ग्रस्त रहता है, तब उसका खाया-पिया सब व्यर्थ हो जाता है। किसी ने एक व्यक्ति से कहा—इस बकरे को खूब खिलाओ-पिलाओ। मगर देखो -यह न मोटा-ताजा होने पावे और न कमजोर ही। उस व्यक्ति ने किसी चिन्तक व्यक्ति से इसका उपाय पूछा। उसने कहा—इसको सिंह के पिंजरे के पास बाध कर खूब-खिलाते-पिलाते रहो। न यह घटेगा और न बढेगा। इधर खाने-पीने पर जितना बढेगा उधर सिंह की ओर देखकर 'कही यह मुझे खा न जाय ?' इस चिन्ता से सूखता भी रहेगा।

धर्मप्रिय सुदर्शन

भाइयो, यह चिन्ता बहुत बुरी है। इसे दूर करने के लिए भगवान ने ये पूर्वोक्त कार प्रचार की कथाए बताई है। इनमे से आक्षेपणी और विक्षेपणी कथा के द्वारा अपनी आत्मा की कमजोरियो और अनादि-कालीन एव नवीन उत्पन्न हुई मिथ्या धारणाओ को दूर करो, क्योकि उन को दूर किये बिना शक्ति प्राप्त नही हो सकती है। जब हम इतिहास को पढते है, तब ज्ञात होता है कि भारत को शत्रुओ के आक्रमण करने पर अनेक बार हार की मार खानी पडी और अनेक उतार-चढाव देखने पडे हैं। परन्तु यह भारत और उसके निवासी चिन्तन मे जागरूक थे, तो आज यह स्वतत्र है और विदेशियो की दासता से मुक्त है। इसी प्रकार आत्म-स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम आक्षेपणी और विक्षेपणी कथा के द्वारा आत्म-शुद्धि करे और सवेगिनी एव निर्वेदिनी कथा के द्वारा इसे सपोषण देवे और उसका सरक्षण करे तो एक दिन आप लोग अवश्य ही सभी सासारिक और आत्मिक चिन्ताओ से मुक्त होकर के सदा के लिए आत्म-स्वातन्त्र्य प्राप्त कर लेगे। आत्म-स्वातन्त्र्य की प्राप्ति का नाम ही मुक्ति है, मोक्ष है और उसे ही शिव पद की प्राप्ति कहते है।

भगवान महावीर के समय चम्पानगरी मे सुदर्शन नाम का एक बहुत धनी सेठ रहता था। उसके अपार धन-सम्पत्ति थी। परन्तु वह सदा इस बात से चिन्तित रहता था कि मैं इस धन-वैभव की रक्षा कैसे करू? किस काम मे इसे लगाऊ? धन के लिए चोरो का खतरा है, डाकुओ का आतक है और राज्य का भी भय है। इसी चिन्ता से वह भीतर ही भीतर घुलने लगा। उसे चिन्तातुर देखकर उसकी पत्नी मनोरमा ने एक दिन पूछा—नाथ, आज कल आप इतने चिन्तित क्यो दिखाई देते हैं? उसने अपनी चिन्ता का कारण बताया। मनोरमा सुनकर बोली - प्राणनाथ, आप व्यर्थ की चिन्ता करते हैं? सुदर्शन बोला—प्रिये, इस चिन्ता से मुक्त होने का क्या उपाय है? मनोरमा बोली—स्वामिन्! भगवद्-वाणी सुनिये। सुदर्शन ने पूछा—भगवद्-वाणी कौन सुनाते है? मनोरमा ने कहा—निर्ग्रन्थ श्रमण साधु सुनाते हैं। सुदर्शन ने पुन पूछा—क्या आप उन साधुओ को जानती है? मनोरमाने कहा—हा नाथ, मैं उन्हे अच्छी तरह से जानती हूँ और सदा ही उनके प्रवचन सुनने जाती हू। सुदर्शन बोला—तब आज मुझे भी उनके पास ले चलो। यथासमय मनोरमा पति को साथ लेकर प्रवचन सुनने के लिए गुरुदेव के चरणारविन्द मे पहुँची और उनको वन्दन करके दोनो ने उनकी वाणी सुनी। सुदर्शन को वह बहुत रुचिकर लगी और सोचने लगा—ओ हो, मैंने जीवन के इतने दिन व्यर्थ ही बिता दिये। और परिग्रह के अर्जन और सरक्षण मे ही जीवन की सफलता मान ली। आज मुझे जीवन के उद्धारक ऐसे सन्त पुरुषो का अपूर्व समागम प्राप्त हुआ है। इसके पश्चात् वह मनोरमा के साथ सन्त की वाणी सुनने के लिए जाने लगा। धीरे धीरे उसके भीतर ज्ञान की धारा प्रवाहित होने लगी और वह वस्तु-स्वरूप का चिन्तक बन गया। कुछ समय पश्चात् मुनिराज विहार कर गये। परन्तु सुदर्शन का हृदय वैसी वाणी सुनने के लिए लालायित रहने लगा।

इसी समय भगवान महावीर का समवसरण चम्पा मे हुआ और नगरी के बाहिरी उद्यान मे भगवान् विराजे। नगरी के लोगो को जैसे ही भगवान् के पधारने के समाचार मिले तो सभी नागरिक लोग भगवान् के वन्दन और प्रवचन सुनने के लिए पहुचे। सुदर्शन सेठ भी अपनी पत्नी के साथ गया और भगवान् के दर्शन कर और उनकी अनुपम वीतराग शान्त-मुद्रा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। जब उसने भगवान् की साक्षात् वाणी सुनी तो उसके आनन्द का पार नही रहा। प्रवचन के अन्त मे उसने खडे होकर कहा—भगवन्, मैं आपके प्रवचन की रुचि करता हू, प्रतीति करता हू और श्रद्धा करता हू। परन्तु इस समय घर-बार छोडने के लिए अपने को असमर्थ पाता हूँ। कृपया मुझे श्रावक के व्रत प्रदान कर अनुगृहीत कीजिए। तत्पश्चात् उसने भगवान् से पाँच

अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह श्रावक-व्रतो को स्वीकार किया और भगवान् की वन्दना करके अपने घर आगया।

अब उसकी विचार-धारा एकदम बदल गई। जहा पहिले वह धन के अर्जन और सरक्षण मे ही जीवन की सफलता समझता था, वहा वह अब सन्तोष मय जीवन बिताने और धन को पात्र दान देने, और दीन-दुखियो के उद्धार करने मे जीवन को सफल करने लगा। उसने अपने आय का बहुभाग धार्मिक कार्यों मे लगाना प्रारम्भ कर दिया। इससे उसकी चारो और प्रशसा होने लगी। वह घर का सब काम अलिप्तभाव से करने लगा। जहा उससे पहिले धन के सरक्षण की चिन्ता सताती थी, वह सदा के लिए दूर हो गई। अब उसे सभी लोग अपने परिवार के समान ही प्रतीत होने लगे और वह सबकी तन-मन धन से सेवा करने मे ही अपना जीवन सार्थक समझने लगा। धीरे-धीरे देश-देशान्तरो मे भी उसका यश फैल गया और वहा के व्यापारी और महाजन लोग आकर उसके ही यहा ठहरने लगे।

जब चम्पा नरेश को ज्ञात हुआ कि सुदर्शन सेठ के त्यागमय व्यवहार के कारण देश मे सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य छा रहा है और विद्रोह एव अराजकता का कही नाम भी नही रहा है, तब वह स्वय ही सुदर्शन सेठ से मिलने के लिए उनके घर पर गया। राजा का आगमन सुनकर सेठ ने आगे जाकर उनका भर-पूर स्वागत किया और प्रारम्भिक शिष्टाचार के पश्चात् उनसे आगमन का कारण पूछा। राजा ने कहा प्रिय सेठ, आपके सद्व्यवहार और उदार दान से मेरे सारे देश मे सुख-शान्ति का साम्राज्य फैल रहा है, मै तुम्हे धन्यवाद देने आया हू और आज से तुम्हे "नगर-सेठ" के पद से विभूषित करता हूँ। अब आगे से आप राज-सभा मे पधारा कीजिए। सुदर्शन ने नत-मस्तक होकर राजा के प्रस्ताव को शिरोधार्य किया। तत्पश्चात् सुदर्शन राज-सभा मे जाने आने लगे।

पुरोहित को प्रबोध

जब राजपुरोहित कपिल को यह ज्ञात हुआ कि सुदर्शन को 'नगर-सेठ' बनाया गया है, तो वह मन ही मन मे जल-भुन गया। क्योकि कपिल तो शुचिमूल धर्म को मानता था और सुदर्शन विनयमूल धर्म को माननेवाला था। अत उसने अवसर पाकर राजा से विनयमूल धर्म की निन्दा करते हुए कहा—महाराज, आपने यह क्या किया? सुदर्शन तो विपरीत मार्ग का अनुयायी है। इससे तो सच्चे धर्म की परम्परा का ही विनाश हो जायगा। पुरोहित की बात सुनकर राजा ने कहा—पुरोहित जी, यह आपकी धारणा मिथ्या है। शुचिका अर्थ है—स्नान करना और कपडे साफ रखना। परन्तु कहा है कि—

इस तन को घोये क्या हुआ, इस दिल को धोना चाहिए।
शिला बनाओ शील की अरु ज्ञान का साबुन सही।
सत्य का पानी मिला है, साफ धोना चाहिये ।।इस।।

पुरोहित जी, इस शरीर को साबुन लगा-लगा कर और तेल-फुलेल रगड-रगड कर घडो जल से स्नान किया, तो क्या यह शुद्ध हो जाता है ? इस शरीर के भीतर रहने वाली वस्तुओ की ओर तो दृष्टि-पात कर, ससार मे जितनी भी अपवित्र वस्तुए है, वे सब इसमे भरी हुई है। किसी मिट्टी के घडे मे मल-मूत्रादि अशुचि पदार्थ भरकर ऊपर से घडे को जल से धोने पर क्या वह शुद्ध हो जायगा ? शौचधर्म तो हृदय को शुचि (पवित्र) रखने से होता है और उसे विनयमूल धर्म के धारक साधुजन ही धारण करते है। जो शुद्ध शील का पालन करते हैं, ज्ञान-ध्यान और तप मे सलग्न रहते है, उनके ही शुचिता सभव है। अन्यथा निरन्तर पानी मे ही गोता लगानेवाली मछलिया और मगर मच्छ कच्छपादि सभी को पवित्र मानना पडेगा। कहा भी है—

प्राणी सदा शुचि शील जप तप ज्ञान ध्यान प्रभाव तें।
नित गग—जमुन समुद्र न्हाये अशुचि दोष स्वभावतें।
ऊपर अमल, मल भर्यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै ?
बहु देह मैली, सुगुण-थैली शौच गुण साधू लहै ।।

पुरोहितजी, विचार तो करो ऐसी अपवित्र वस्तुओ से भरा यह देह क्या यमुना-गगा और समुद्र मे स्नान करने से पवित्र हो सकता है ? कभी नही हो सकता। धर्म तो हृदय की शुद्धि पर निर्भर है। यदि हृदय शुद्ध नही है तो वाहिर से कितना ही साफ रहा जाय, वह अशुद्ध ही है।

पुरोहित जी, और भी देखो—शरीर की शुद्धि करते हुये यदि कुछ अधिक रगड लग गई और खून आ गया, उस पर मक्खिया वैठ गई और पानी आदि के योग से उसमे रस्सी (पीव) पड गई तो वह दुर्गन्ध मारने लगता है और कीडे पड जाते है। फिर वह शुद्धता क्या काम आई ? जरा आप आखे खोल कर देखें कि पानी से शरीर की शुद्धि होती है क्या ? अरे जल से मुख की शुद्धि के लिए हजारो कुल्ले कर लो, फिर भी क्या मुख शुद्ध हो गया ? कितने सुगन्धित मजनो से और वनस्पति की दातुनो से रगडने पर भी क्या मुख मे शुद्धि आ जाती है ? यदि हजारो वार मुख-शुद्धि करने के पश्चात् आप मुख का एक कुरला किसी दूसरे के ऊपर डाल दोगे तो क्या वह अपने को अपवित्र नही मानेगा और क्या आप से लडने के लिए उद्यत नही होगा ? अवश्य ही होगा। और भी देखो—आपने बहुत सा द्रव्य

व्यय करके उत्तम भोजन तैयार कराया और उसमे का एक ग्रास अपने मुख मे रखकर उसे ही दूसरे को खाने के लिए देने पर क्या वह खा जायगा ? अरे, वह तो उस उच्छिष्ट ग्रास को लेने के लिए तैयार तक भी नही होगा। प्रत्युत आपसे कहेगा कि क्या मुझे काक या स्वान समझा है, जो कि उच्छिष्ट खाते हैं। इन सब बातो से स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरीर सदा ही अपवित्र है, वह ऊपरी स्नानादि करने से कभी शुचि नही हो सकता। शरीर का धम ही सडना, गलना और विनशना है। सन्तो ने ठीक ही कहा है—

अरे ससारी लोगो ! गदी देही का कैसा गारवा ॥ टेर॥
छिनमे रगी चंगी दीसे, छिनमे छेह दिखावे।
काची काया का क्या भरोसा, क्या इनसे मो लावेरे।

हे मानव, तू इतना अभिमान क्यो करता है, क्यो इतना उफन रहा है ? कपडे हाथ मे लेता है कि कही धूल न लग जाय। परन्तु तेरे शरीर से तो यह धूल बहुत अच्छी है। इसमे से तो अनेक उत्तम वस्तुये उत्पन्न होती हैं। किन्तु इस शरीर से तो मल, मूत्र, श्लेष्म, आदि महा घृणित वस्तुये ही उत्पन्न होती है। जो शरीर कुछ समय पूर्व गुलाब के फूल जैसा सुन्दर दिखता था, वही कुछ क्षणो मे ऐसा बन जाता है कि लोग समीप बैठना भी पसन्द नही करते है।

राजा के इस प्रकार सम्बोधित करने पर कपिल पुरोहित का शुचि-मूलक धर्म का मिथ्यात्व दूर हो गया और वह भी अब राजा साहब और सुदर्शन सेठ के साथ तत्व-चर्चा के समय बैठने लगा। भाई, सगति का प्रभाव होता ही है। धीरे-धीरे पुरोहित को तत्त्व चर्चा मे इतना रस आने लगा कि उसे समय का कुछ भान ही नही रहे।

कपिला का सदेह भरा उलाहना

जब पुरोहित रात्रि मे उत्तरोत्तर देरी से पहुचने लगा, तब उसकी कपिला स्त्री के मन मे सदेह उत्पन्न हुआ कि मेरा पति इतनी रात बीते तक कहाँ रहता है ? भाई, स्त्रियो का स्वभाव ही ऐसा है कि पुरुष की किसी भी बात पर उसे वहम आये विना नही रहता। फिर रात के समय देर तक घर आने पर तो सन्देह होना स्वाभाविक ही है। एक दिन आधी रात के समय जब पुरोहित जी घर पहुचे और द्वार खुलवाया तो कपिला पुरोहितानी उफनती हुई बोली—

कैसी बुद्धि हो गई भ्रष्ट जरा नहीं शर्म भी खाते हो।
इतनी रात विताइ कहाँ पर कारन क्यो न सुनाते हो ।।टेर।।
राज्य गुरु कहलाते पडित अकल अघाते हो।
दुनिया क्या चर्चा करती वो सुन न पाते हो ।। इ० १ ।।

अरे, आप पडित कहलाते हो और इतनी रात बीतने पर घर आते हो ? आपको शर्म नही आती ! आपकी पढाई को धिक्कार है। इस प्रकार से उसके मन मे जो कुछ आया, वह उसने कह डाला। पुरोहितजी ने उसके आक्रोश-मय वचनो को शान्तिपूर्वक सुना और मन मे सोचने लगे— जब मैं इतनी देर से घर आता हू, तब इसके मन मे सन्देह उठना स्वाभाविक है। अत मुझे इसका सन्देह निवारण करना चाहिए। यह विचार कर उन्होने बडे मीठे स्वर में शान्तिपूर्वक कहा—

चिन्ता मत कर हे प्रिये, नहीं और कोई बात।

हे सौभाग्यशालिनि, तू इतनी आग-बबूला क्यों होती है ? तू जिस बात की शका कर रही है, उसका लेश मात्र भी मेरे साथ कोई सम्बन्ध नही है। अरी, भरी जवानी मे नही था, तो अब इस ढलती अवस्था मे क्या होगा ? देर से घर आने का कारण यह है कि मुझे समय बीतने का कुछ पता नही चल पाता है। वह ज्ञान भडार है, उसके समान विचारक विद्वान् अन्यत्र ढूढने पर भी नही मिलेगा। मैं तेरे सामने उसकी क्या प्रशसा करूँ ? तू और किसी भी प्रकार का वहम अपने मन मे मत कर। जैसे भगेडी को भग पिये विना, अफीमची को अफीम खाये विना और सगीतज्ञ को सगीत सुने विना चैन नही पडती वैसे ही ज्ञानी को ज्ञानी की सगति किये विना भी चैन नही पडती है। इसलिए तू अपने मन मे किसी भी प्रकार का सन्देह मत कर। सुदशन सेठ जैसा धनी है, वैसा ही ज्ञानी भी है, मिष्टभाषी भी है और कामदेव के समान सुन्दर रूपवान् भी है। उसके समीप बैठ कर चर्चा करने पर उठने का मन ही नही होता है। इस प्रकार सुदर्शन सेठ का प्रशसा करता हुआ पुरोहित सो गया।

कपिला पुरोहितानी ने पति के मुख से जो इस प्रकार से सुदर्शन सेठ की प्रशसा सुनी तो इसे रात्रिभर नीद नही आई और वह करवट बदलती हुई सोचती रही कि किस प्रकार सुदर्शन के साथ सगम किया जाय ?

भाइयो, देखो— वर्षा का जल तो एक ही प्रकार का मधुर होता है, और वह सर्वत्र समान रूप से बरसता है। किन्तु बगीचे मे नाना प्रकार के वृक्षों की

जडो मे पहुचकर वह नाना प्रकार रसवाला बन जाता है। गन्ने की जड मे पहुँचकर वही मीठा बन जाता है, नीबू की जड मे पहुचकर वही खट्टा और नीम की जड मे पहुँचकर वही कडुआ बन जाता है। यह उस पानी का दोष नही है। किन्तु प्रत्येक वृक्ष की प्रकृति का प्रभाव है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है, वह तदनुसार परिणत हो जाता है। इसी प्रकार भगवान् की वाणी तो विश्व का हित करनेवाली—कल्याण कारिणी—ही होती है। किन्तु वही मिथ्यात्वी जीवो के कानो मे पहुचकर विपरीत रूप मे परिणत हो जाती है, क्योकि मिथ्यात्वियो के भीतर मिथ्यात्व रूपी महाविष भरा हुआ है। दूध का स्वभाव मधुर ही है, परन्तु पित्तज्वर वाले व्यक्ति को वह कडुआ ही प्रतीत होता है। कहा भी है—

'पित्तज्वरवतः क्षीरं तिक्तमेव हि भासते'

इसीप्रकार वही दूध पीकर सर्व साधारण व्यक्तियो मे अमृत रूप से परिणत होता है किन्तु सर्प के द्वारा पिया गया दूध विष रूप ही परिणत होता है। इसमे दूध का दोष नही सर्प की प्रकृति का ही दोष है।

हा, तो भाई, वह कपिला अब सुदर्शन के साथ समागम के उपाय सोचने लगी। पर पुरोहित के घर पर रहते हुए यह सभव नही था। यद्यपि कपिला सदाचारिणी थी और धर्म-अधर्म को भी पहचानती थी। परन्तु उसके ऐसा मोहकर्म का उदय आया कि वह कामान्ध हो गई और पर-पुरुष के समागम के लिए चिन्तित रहने लगी।

भाइयो, कर्मो की गति विचित्र है। उनकी लीला अपार है। कौन जानता है कि किस समय क्या होगा? आप लोगो ने अब तक क्या यह बात कभी सुनी कि जैन साधु चतुर्मास पूर्ण होने के पहिले ही विहार करे। परन्तु आज यह भी सुनने मे आ रहा है कि तुलसी गणी को अपने सघ के साथ कार्तिक सुदी द्वादशी को ही विहार करना पडा है। यह कौन सुनाता है? समय ही सुनाता है। समय पर जो बातें होनी होती है, वे हो जाया करती हैं। यह कितनी बुरी बात हो गई। साधु-मर्यादा और समाज के नियम के प्रतिकूल यह घटना घटी है। समय के प्रवाह को कौन रोक सकता है? जो बात समय को अभीष्ट है, वह हो ही जाया करती है, तो भी सबको उससे शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए। लोग आज कह रहे है कि जैन समाज का जन-बल, धन-बल और धर्म-बल कहा चला गया? विचारने की बात है कि ऐसा क्यो हुआ? उत्तर स्पष्ट है कि जैन समाज मे एकता नही, एक का मत नही और पारस्परिक सहानुभूति नही। इसी का फल है कि जो अनहोनी बात भी आज कानो से सुन रहे है।

आज जैन समाज की शक्ति पारस्परिक पन्थवाद मे विखर रही है। एक सम्प्रदाय वाले सोचते हैं कि यह तो अमुक सम्प्रदाय का झगडा है, हमे इससे क्या लेना-देना है। जव दूसरे सम्प्रदाय पर भी इसी प्रकार का कोई मामला आ पडता है, तव इतर सम्प्रदाय वाले भी ऐसा ही सोचने लगते हैं। पर भाइयो यह विभिन्न सम्प्रदाय की वात तो घर के भीतर की है। वाहिर तो हमे एक होकर रहना चाहिए। क्योकि हम सव एक ही जैनधर्म के अनुयायी है और एक ही अहिंसा धर्म के उपासक है वात्सल्यगुण के नाने हमारे भीतर परस्पर मे प्रेमभाव और सहानुभूति होना ही चाहिए और एक सम्प्रदाय के ऊपर किसी भी प्रकार की आपत्ति आने पर सवको एक जूट होकर उसका निवारण करना चाहिए। सच्चा जैनी कभी भी जैनधर्म और जैन समाज का किसी भी प्रकार का अपमान सहन नही कर सकता है।

कपिला का जाल

हा, तो मैं कह रहा था कि ऐसी अनहोनी वातो को भी यह समय करा देता है, तदनुसार उस कपिला ब्राह्मणी के मन मे भी काम-विकार जागृत हो गया और वह सुदर्शन समागम की चिन्ता मे रहने लगी। और उचित अवसर की प्रतिक्षा करने लगी। एक दिन राजा ने किसी कार्यवश पुरोहित को पाच-सात दिन के लिए वाहिर भेजा। कपिला ने अपना मनोरथ पूर्ण करने के लिए यह उचित अवसर देखकर दासी से कहा कि तू सुदर्शन सेठ के घर जाकर उनसे कहना - तुम्हारे मित्र पुरोहितजी कई दिन से वीमार हैं और आप को याद कर रहे हैं। दासी ने जाकर सुदर्शन सेठ को यह वात कह सुनाई। यद्यपि सुदर्शन सेठ दूसरो के यहा जाया नही करते थे, तथापि मित्र की वीमारी का नाम सुनकर उसके यहा जाने का विचार किया और दासी को यह कह विदा किया कि मैं अभी आता हू। दासी ने जाकर पुरोहितानी को सेठजी के आने की वात कह सुनाई। वह स्नानादि सोलह शृङ्गार करके तैयार होकर सेठजी के आने की प्रतीक्षा करने लगी। इधर सुदर्शन भी सायकाल होता देखकर भोजनादि से निवृत्त हो मित्र के घर गये। जैसे ही वे मित्र के द्वार पर पहुचे वैसे ही कपिला ने उनका हाव-भाव से स्वागत किया। सेठने पूछा—वाई, हमारे भाई साहव कहा है और उनकी तवियत कैसी है? कपिला वोली—वे ऊपर के कमरे मे लेट रहे हैं, तवियत वैसी ही है, आप स्वय ऊपर चलकर देख लीजिए।

सुदर्शन सेठ जैसे ही ऊपर गये, वैसे ही कपिला ने घर का द्वार भीतर से वन्द कर दिया और मन ही मन प्रसन्न होती हुई ऊपर पहुची। सुदर्शन ने

ऊपर के सारे कमरे देख डाले, पर मित्र को कही पर भी नही पाया । इतने मे ही कपिला ऊपर पहुची तो उन्होने कपिला से पूछा - बाई, भाई साहब कहा हैं ? वह मुस्कराते हुए बोली – आपके भाई साहब तो बाहिर गये हुए हैं । आपकी प्रशसा सुनकर मैं कभी से आपके दर्शनो के लिए उत्सुक थी, आप सहज मे आने वाले नही थे, अत उनकी बीमारी के बहाने से आपको बुलाया है । मैंने जब से रूप-सौदर्य की प्रशसा सुनी है, तभी से मैं आपके साथ समागम करने के लिए बैचेन हो रही हू । कपिला के ऐसे पापमय निर्लज्ज वचन सुनकर सुदर्शन मन ही मन विचारने लगे—'यहा आकर मैंने भारी भूल की है । अब बचने का कोई उपाय करना चाहिए । यदि मैं इसे सीधा नकारात्मक उत्तर देता हू तो सभव है कि यह हल्ला मचाकर मुझे और भी आपत्ति और संकट मे डाल दे और लोग भी यही समझेंगे कि सेठ दुराचारी है, तब तो रात्रि के समय कपिल की अनुपस्थिति मे उसके घर आया है ? अत उन्होने ऊपर से मधुर वचन बोलते हुए बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया । परन्तु जब देखा कि यह कामान्ध हो रही है और नग्न होकर मेरी ओर बढती ही चली आ रही है, तब सेठ ने कहा—पुरोहितानीजी, अप्सरा जैसी सर्वांग सुन्दरी आपके सामने होते हुए और स्वयं प्रार्थना करते हुए कोई पुरुपत्व-सम्पन्न व्यक्ति अपने मन को काबू मे नही रख सकता है । नीति मे भी कहा है—

'ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थः' ।

अर्थात्—स्त्री-भोग का आस्वादी ऐसा कौन पुरुपार्थ-सम्पन्न पुरुष है जो जो कि आप जैसी निर्वसना और विवृतजघना स्त्री को देखकर उसे छोडने के लिए समर्थ हो सके ? अर्थात् कोई भी नही छोड सकता है ।

किन्तु यदि आप किसी से न कहे, तो मैं सत्य बात कहू—वह बोली ' नही कहूगी । तब सेठजी बोले—मैं तो यथार्थ मे पुरुषत्व-हीन व्यक्ति हू । कहने और देखने भर के लिए पुरुप हू । यह सुनकर कपिला आश्चर्य से चकित होकर बोली—यह आप क्या कहते हैं ? सुदर्शन ने कहा—मैं यथार्थ बात ही कह रहा हू । अन्यथा यह सभव नही था कि मैं आपकी इच्छा को पूरा न करता । अब तो कपिला को विश्वास हो गया कि सेठ जी यथार्थ मे पुरुपत्व से हीन हैं । तब वह निराश होती हुई बोली—तब आप भी मेरी यह बात किसी से न कहिये । उसकी बात सुनकर सुदर्शन यह कहते हुए वापिस चले आये कि हा, मैं तुम्हारी बात किसी से नही कहूगा ।

इस घटना के पश्चात् सेठजी ने नियम कर लिया कि आगे से मै किसी भी व्यक्ति के घर नही जाऊगा ।

अभया का कुचक्र

कुछ समय के बाद कौमुदी महोत्सव आया । राजा ने सारे शहर मे घोषणा करा दी कि सब स्त्री-पुरुष महोत्सव मनाने के लिए उद्यान मे एकत्रित हो । राजा अपने दल-बल के साथ उद्यान मे गया और नगर-निवासी लोगो के साथ सुदर्शन सेठ भी गया । उनके पीछे राज-रानी भी अपनी सखी-सहेलियो और दासियो के साथ उद्यान मे जाने के लिए निकली । इसी समय सुदर्शन सेठ की सेठानी मनोरमा भी अपने चारो पुत्रो के साथ रथ मे बैठकर उद्यान की ओर चली । कपिला महारानी अभया के साथ रथ मे बैठी हुई थी । उसने जैसे ही देवागना सी सुन्दर मनोरमा और उसके देवकुमारो जैसे सुन्दर लडको को देखा तो महारानी से पूछा—यह सुन्दर स्त्री किसकी है और ये देवकुमार से बालक किसके है ? रानी ने कहा—अरी, तुझे अभी तक यह भी ज्ञात नही है । अपने नगरसेठ सुदर्शन की यह पत्नी मनोरमा है और ये उसी के लडके हैं । यह सुनकर कपिला हस पडी । रानी ने पूछा—पुरोहितानीजी, आप हसी क्यो ? पहिले तो कपिला ने बतलाने मे कुछ आनाकानी की । मगर जब महारानी जी का अति आग्रह देखा तो वह बोली—

महारानीजी, आश्चर्य इस बात का है कि सुदर्शन सेठ तो पुरुषत्व-शून्य हैं-नपुसक है—फिर उनके ये चार-चार पुत्र हो, यह बात मैं कैसे मानू ? यदि ये पुत्र इसी ने जाये हैं, तब यह निश्चय से दुराचारिणी है । यह सुनकर रानी ने रोष-भरे शब्दो मे कहा—

अरी हिये की अन्धी, तू क्या कहती है ? मनोरमा के समान तो अपने राज्यभर मे भी कोई स्त्री पतिव्रता नही है । मैं तेरी बात को नही मान सकती । तब कपिला बोली—महारानी जी, लाल आँखे दिखाने से क्या लाभ ? जो बात मैं कह रही हू, वह सत्य है । रानी ने पूछा—तूने यह निर्णय कैसे किया है । तब कपिला ने आप बीती सारी घटना कह सुनाई । जब सुदर्शन सेठ ने स्वय अपने मुख से अपने को पुरुपत्व-हीन कहा है, तब मैं कैसे मानू कि ये पुत्र उसी के है ? इसीलिए मैं कहती हू कि मनोरमा सती नही है । तब रानी ने कहा—

अरी मूर्खे, तू पुरुषो की माया को नही जानती । तेरे से छुटकारा पाने के लिए ही सेठ ने अपने को पुरुषत्व हीन कह दिया है और तुझे सेठ ने इस प्रकार ठग लिया है । सुदर्शन तो पुरुष शिरोमणि पुरुष है, साक्षात् कामदेव है ।
कपिला ने देखा कि महारानी जी मेरी बात किसी भी प्रकार से स्वीकार नही करती है, तब उसने व्यग्य पूर्वक कहा—

महारानीजी, मैं मूर्ख ही सही । परन्तु आप तो बुद्धि-वैभव वाली है और बहुत कुशल है । पर मैं तब आपको कुशल समझू, जब आप उसके साथ भोगो को भोग लेवे । इस प्रकार कपिला ने रानी पर रग चढा दिया । अब रानी मन ही मन सुदर्शन को अपने जाल मे फसाने की सोचने लगी ।

उद्यान से राजमहल मे वापिस आने पर रानी ने अपना अभिप्राय अपनी अति चतुर दासी से कहा । उसने रानी को बहुत समझाया पर उसकी समझ मे कुछ नही आया । कहा भी है—

विषयासक्तचित्तानां, गुण को वा न नश्यति ।
न वैदुष्यं न मानुष्यं, नाभिजात्य न सत्यवाक् ॥

अर्थात्—जिनका मन विषयो मे—काम-भोगो मे आसक्त हो जाता है, उनका कौन सा गुण नष्ट नही हो जाता है । न उनमे विद्वत्ता रहती है, न मानवता रहती है, न कुलीनता रहती है और न सत्य वचन ही रहते हैं ।

दासी ने फिर भी कहा—महारानी जी, आप इतने बडे राज्य की स्वामिनी होकर एक साधारण पुरुष की याचना करती है ? यह बात आपके योग्य नही है । उसकी बात सुनकर रानी बोली—बस, तू अधिक मत बोल । यदि सुदर्शन सेठ के साथ मेरा समागम नही होगा तो मैं जीवित नही रह सकूंगी ।

भाइयो, हमारे महर्षियो ने ठीक ही कहा है—

पाक त्यागं विवेकं च, वैभव मानितामपि ।
कामार्ता खलु मुञ्चन्ति, किमन्यैः स्व च जीवितम् ॥

जो मनुष्य काम से पीडित होते हैं, वे पवित्रता, त्याग, विवेक, वैभव, और मान-सम्मान को भी छोड देते है । और अधिक क्या कहे, वे अपने जीवन को भी छोड देते है अर्थात् मरण को भी प्राप्त हो जाते हैं ।

दासी ने फिर भी समझाया—महारानी जी, यदि कही भेद खुल गया, तो भारी वदनामी होगी और आपकी प्रतिष्ठा धूल मे मिल जायगी । अत आप इस प्रकार का दुर्विचार छोड देवें । मगर रानी के हृदय पर कुछ भी असर नही हुआ । आचार्य कहते है कि—

पराराधनजार्द्दैन्यात्पैशुन्यात्परिवादतः ।
पराभवात् किमन्येभ्यो न विभेति हि कामुक ॥

कामी पुरुप दूसरो की खुशामद करने से, दूसरे के आगे दीनता दिखाने से, पैशुन्य से, निन्दा से और क्या कहे अपने अपमान से भी नही डरते हैं ।

अन्त मे उस दासी ने रानी की प्रेरणा पर एक उपाय सोचा। उसने कुम्हार के यहा जाकर मिट्टी के सात पुतले बनवाये—जो कि आकार-प्रकार मे ठीक सुदर्शन के समान थे। इधर रानी ने राजा से अनुज्ञा लेकर अठाई-व्रत करने का प्रपंच रचा। रात के समय वह दासी एक पुतले को कन्धे से उठाकर और अपनी पीठ पर लाद करके आई और राजमहल मे घुसने लगी। द्वारपाल ने उसे रोका। पर वह जब जबरन घुसने लगी तब द्वारपाल का धक्का पाकर उसने पुतले को पृथ्वी पर पटक दिया और रोना-धोना मचा दिया कि हाय, अब महारानी जी बिना पुतले के दर्शन किये पारणा कैसे करेगी। दासी की यह बात सुनकर द्वारपाल डर गया और बोला—पडिते, आज तू मुझे क्षमा कर मुझ से भूल हो गई। आगे से ऐसी भूल नही होगी। इस प्रकार वह दासी प्रतिदिन एक एक पुतला बिना रोक-टोक के राजमहल मे लाती रही। आठवे दिन अष्टमी का पोषधोपवास ग्रहण कर सुदर्शन सेठ पौषध शाला मे सदा की भाति कायोत्सर्ग धारणा कर प्रतिमा योग से अवस्थित थे तब दासी ने आधी रात के समय वहा जाकर और उन्हे अपनी पीठ पर लाद कर तथा ऊपर से वस्त्र ढककर रानी के महल मे पहुचा दिया।

रानी ने सुदर्शन से कहा—हे मेरे आराध्य देव, हे सौभाग्य-शालिन, हे पुण्याधिकारिन्, तुम्हारे दर्शन पाकर मैं धन्य हो गई हू और तुम भी कृतार्थ हो गये हो। अब मौन छोडो और आखे खोलो। देखो—राजरानी तुम्हारे प्रणय की भिखारिणी बन करके तुम्हारे सामने खडी है। परन्तु सुदर्शन ने तो पौषधशाला से दासी द्वारा उठाने के समय ही यह नियम ले लिया था कि जब तक यह मेरा उपसर्ग दूर नही होगा, तब तक मेरे मौन है और अन्न-जल का भी त्याग है। अत वे मूर्त्ति के समान अवस्थित रहे। रानी ने उनको रिझाने के लिए नाना प्रकार के हाव-भाव के साथ गीत गाये और नृत्य भी किया और पुरुष को चलायमान करने की जो-जो भी कलाएं वह जानती थी—सभी की। परन्तु सुदर्शन तो सुमेरु के समान ही अडोल बने रहे। जब उसने देखा कि मेरे राग प्रदर्शन का इस पर कोई असर नही हो रहा है, त[illegible] भय दिखाना प्रारम्भ किया और कहा—सुदर्शन, [illegible] मेरे साथ कामभोग नही करोगे, तो जानते हो, मै तुम्हे [illegible] दूंगी। फिर तुम्हारी क्या दुर्गति होगी, सो तुम स्वयं [illegible] भाई, सुदर्शन को क्या सोचना था। वे तो पहिले से [illegible] अपने ध्यान मे मस्त थे। वे तो जानते थे कि [illegible] वही होगा।

'जो जो पुद्गल फरसना, सो सो निश्चय होय ।

इस प्रकार मनाते और धमकाते हुए जब रानी ने देखा कि यह तो बोलता ही नही है और अब सवेरा होने को ही आगया है, तब उसने त्रिया-चरित फैलाया और आवाज लगाई—दौडो दौडो, मेरे महल मे चोर आ घुसा है, इसे पकडो । पहरेदार आवाज सुनकर जैसे ही महल के भीतर गये तो सुदर्शन सेठ को आसन पर बैठा देख करके बोले—महारानी जी, ये तो सुदर्शन सेठ है, चोर नही है । महारानी बोली कोई भी हो, पर जब मेरे महल मे रात्रि के समय आया है, तब चोर ही है । इसे पकड कर ले जाओ । पर द्वारपाल लोग उन्हे प्राय महाराज के पास आते-जाते और बैठते-उठते देखते थे, अत उन लोगो की हिम्मत पकडने की नही हुई और वे लोग अपनी असमर्थता बतला करके वापिस चले गये ।

इतने मे सवेरा हो गया और जब यह बात महाराज के कानो तक पहुची कि सुदर्शन सेठ आज रात्रि मे महारानी जी के महल मे आये है और महारानी जी ने चोर-चोर की आवाज देकर द्वारपालो को पुकारा । फिर भी उन लोगो ने उसे नही पकडा है । तब वे भी अतिविस्मित होते हुए महारानी के महल मे पहुचे और सुदर्शन को देखकर बोले—सेठजी, रात के समय महारानी जी के महल मे कैसे आये ? परन्तु वे तो उपसर्ग दूर होने तक मौन लेकर ध्यानस्थ थे, अत उन्होने कुछ भी उत्तर नही दिया । राजा ने कई बार प्रेम से पूछा । मगर जब कोई भी उत्तर नही मिला, तब रानी बोली—

"महाराज, आप इससे क्या पूछ रहे है ? क्या यह अपने मुख से अपना पाप आपके सामने कहने की हिम्मत कर सकता है ? यह ढोगी, बगुला-भक्त जो आपके सामने धर्म की लम्बी-चौडी बाते किया करता है, वह रात मे पता नही, कब कहा से मेरे महल मे आ घुसा और रात-भर इसने मेरा शील-खण्डन करने के लिए अनेक उपाय किये । मगर बडी कठिनाई से मैं अपना शील बचा सकी । जब मैंने पहरेदारो को आवाज दी, तब यह ढोगी ध्यान करने का ढोग बनाकर बैठ गया । इस प्रकार रानी के द्वारा कान भरने पर और सेठ के द्वारा कोई उत्तर नही दिये जाने पर राजा को भी कुछ बात जची कि अवश्य ही 'दाल मे कुछ काला' है । तब उन्होने क्रोधित होकर कहा—देख सुदर्शन, तू अब भी जो कुछ बात हो, सत्य-सत्य कह दे, अन्यथा इसका नतीजा बुरा होगा । इस प्रकार धमका कर पूछने पर भी जब सेठ की ओर से कोई उत्तर नही मिला, तब राजा ने क्रोधित होकर पहरेदारो को हुक्म दिया

कि इसे पकड कर राज-सभा में उपस्थित करो। यह कह कर राजा महल से निकल कर राज सभा में चले गये।

शूली का सिंहासन

थोडी ही देर में यह समाचार सारे नगर में बिजली के समान फैल गया और सभी सरदार और साहूकार लोग राज-सभा में जा पहुंचे। जब यह समाचार सुदर्शन की पत्नी मनोरमा ने सुना तो उसे मानो लकवा ही मार गया हो, ऐसी दशा हो गई। वह सोचने लगी—मेरे पति तो सदा की भांति पौषधशाला में, ध्यान करने के लिए गये थे, फिर रानी के महल में कैसे पहुंचे। वे स्वयं गये हों यह कभी संभव नहीं है। अवश्य ही इसमें कुछ रहस्य है? जो कुछ भी हो, वे जब तक निरपराध होकर घर में नहीं आते हैं तब तक मेरे भी अन्न-जल का त्याग है, ऐसा संकल्प कर और सब कार्य छोड़कर ध्यानावस्थित हो भगवत्-स्मरण करने लगी।

राज-सभा में पहुंचते ही राजा ने कोतवाल से कहा—[illegible] को बुलाकर कहो कि वह सुदर्शन को गधे पर चढ़ा कर सारे नगर में घुमावे और फिर श्मशान में ले जाकर के शूली पर चढ़ा देवे। जैसे ही राजा का यह आदेश सुना तो सारी सभा में कुहराम मच गया। सरदार और साहूकार लोगों ने खड़े होकर राजा से निवेदन किया—महाराज, यह कभी संभव नहीं है कि सुदर्शन सेठ किसी दुर्भावना से महारानी जी के महल में गये हों? अवश्य ही इसमें कुछ रहस्य है। जब लोग यह कह ही रहे थे, तभी कोतवाल लोग, सुदर्शन को पकड़े हुए राज-सभा में आये। सुदर्शन को देखते ही सब ने उत्कंठित होकर कहा—आप सेठ हो इसलिए ठीक बतावें कि यह सब रानी के महल में रात के समय क्या था? प्रमुख लोगों ने उनसे पूछा—सेठजी, बताइये, क्या बात है? और क्यों आप रात के समय महारानी जी के महल में गये? परन्तु सुदर्शन ने किसी को कोई उत्तर नहीं दिया और मौन धारण किये खड़े रहे। सुदर्शन को मौन देखकर [illegible] लोग भी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। [illegible] राजा ने कोतवाल से कहा—इन्हें ले जाओ और गधे पर चढ़ा कर सारे नगर में घुमा कर शूली पर चढ़ा दो।

राजा का आदेश सुनते ही कोतवाल सुदर्शन को [illegible] से बाहिर ले गया और [illegible] उन्हें [illegible] में घुमाया [illegible] वह [illegible] और [illegible] रहे। [illegible]

हो लिए। जब सुदर्शन को लेजाकर कोतवाल श्मशान पहुचा और चाण्डाल को शूली पर चढाने का हुक्म दिया, तभी इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। उसने अवधिज्ञान से जाना कि चम्पानगरी मे ऐमा भयानक काड हो रहा है और एक निर्दोप धर्मात्मा व्यक्ति को शूली पर चढाया जा रहा है, तब उसने हिरणगमेपी देव को आज्ञा दी कि चम्पानगरी मे जाकर तुरन्त सुदर्शन सेठ का सकट दूर करो। वह आदेश पाकर पलक मारते ही चम्पानगरी के स्मशान मे पहुचा और जैसे ही चाण्डाल ने सुदर्शन को शूली पर चढाया कि उस देवने उसे तत्काल सिंहासन वनाकर उस पर सुदर्शन को वैंठा दिया, शिर के ऊपर छत्र लगाया और दोनो ओर से चवर ढुलने लगे। आकाश मे देव-दुदुभिया बजने लगी और सुदर्शन के जय-जयकार के साथ पुष्प वर्पा होने लगी।

जैसे ही यह समाचार राजा के पास पहुचा तो वह दौडा हुआ स्मशान पहुँचा और नगर निवासी लोग भी आ पहूचे। सवके मुख से 'सत्य की जय', 'सुदर्शन सेठ की जय' धर्म की जय' के नारे निकल ने लगे, जिससे सारा आकाश गूज उठा। राजा ने देखा कि यहा तो मामला ही उलटा हो गया है, और देव मेरी ओर वक्रदृष्टि से देख रहा है तो वह साष्टाङ्ग नमस्कार करता हुआ बोला—मुझे क्षमा किया जाय, मेरे से वडी भूल हो गई हे। देवने कहा—तूने अपराध तो वहुत भारी किया जो रानी के कहने मे आ गया और बुद्धि-विवेक से काम नही लिया। किन्तु सुदर्शन सेठजी की आज्ञा से मै तुझे माफ करता हू। परन्तु आगे से ऐसी भूल कभी मत करना। राजा ने हाथ जोडकर देव की आज्ञा को शिरोधार्य किया और सुदर्शन से क्षमा-याचना करते हुए कहा—सेठजी, अब तो मेरी ओर कृपा दृष्टि करो। सेठ ने आये हुए सकट को दूर हुआ जान कर पौषध पाला। राजा ने वडे भारी अनुनय-विनय के साथ उन्हे अपने हाथी के ऊपर सिंहासन पर बैठाया और स्वय उनके ऊपर छत्र तातकर पीछे खडा हो गया। दोनो ओर दीवान और नगर-प्रधान चवर ढोलने लगे। उपस्थित सारी जनता ने सेठजी का जयजयकार किया। इस प्रकार बडे समारोह के साथ सारी नगरी मे घूमता हुअ जुलूस सेठजी की हवेली पर पहुचा। सेठजी हाथी पर से उतर कर जैसे ही देव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के अभिमुख हुए कि उसने कहा—मेरा अभिवादन पीछे करना। पहिले जाकर अपनी सेठानी का ध्यान पलाओ। सुदर्शन ने भीतर जाकर कहा—मनोरमे, ध्यान पालो। तुम्हारे सत्य और शील के प्रभाव से सब सकट दूर हो गया है और सत्य की विजय हुई है। देखो—इस देवराज ने

शूली से सिहासन कर दिया और सारे नगर-निवासी धर्म की जय बोलते हुए तुम्हारे घर के बाहिर खडे है। पति के ये वचन सुनकर मनोरमा ने नेत्र खोले ता उसकी आखो से आनन्दाश्रुओ की धारा बह निकली। तत्पश्चात् सुदर्शन ने देवता का मधुर शब्दो मे आभार मानकर उसे विसर्जित किया और नगर-निवासियो को भी हाथ जोडकर विदा किया।

तत्पश्चात् सुदर्शन ने पारणा की और अपना अभिप्राय मनोरमा से कहा कि जब मेरे ऊपर यह सकट आया था तो मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं इस सकट से बच जाऊँगा तो साधुव्रत स्वीकार करूँगा। मैंने ससार के सब सुख देख लिए है। ये सब प्रारम्भ मे मधुर दिखते हैं किन्तु परिपाक-समय महाभयकर दु ख देते हैं। यदि मै घर मे न होता तो यह सकट क्यो आता। अत तुम मुझे दीक्षा लेने की स्वीकृति दो। मनोरमा ने कहा—'नाथ, जो गति तुम्हारी सो ही हमारी' मैं भी आपके बिना इस घर मे रहकर क्या करूँगी। मैं भी सयम धारण करूगी। इसके बाद उन दोनो ने मिलकर घर का सारा भार पुत्र और पुत्र-वधुओ को सौंपकर सयम धारण कर लिया। सुदर्शन साधु-सघके साथ और मनोरमा साध्वी सघ के साथ सयम-पालन करते हुये विचरने लगे।

पाप का भडाफोड़

इधर जैसे ही महारानी अभयमती को पता चला कि सुदर्शन की शूली सिहासन बन गई और वह जीवित घर वापिस आ गया है, तब वह राजमहल के सातवें खड से गिर कर मर गई और व्यन्तरी हुई। जब साधु वेष मे विचरते हुए सुदर्शन मुनिराज एक बार जगल मे रात के समय ध्यानावस्थित थे, तब उस व्यन्तरी ने इन्हे देखा और पूर्वभव का स्मरण करके उसने अपने शृगार-रस-पूरित हाव-भाव-विलासो से उन्हे डिगाने के भरपूर उपाय किए। मगर जब उन्हे किसी भी प्रकार से नही डिगा सकी, तब उसने सैकडो प्रकार के भयकर उपद्रव किये। पर सुदर्शन मुनिराज गिरिराज सुदर्शन मेरु के समान अचल और अडोल रहे। अन्त मे थक कर वह हार गई और प्रभात हो गया, तब वह भाग गई। कुछ समय पश्चात् सुदर्शन मु
कर्मों का नाश कर मोक्ष पधारे और मनोरमा साध्वी
पाल कर जीवन के अन्त मे सन्यासपूर्वक शरीर त्याग कर दे
उत्पन्न हुई।

भाइयो, सुदर्शन का यह कथानक हमे अनेक शिक्षाएँ देता है। पहली तो यह है कि हमे सदा उत्तम सगति करना चाहिए। और प्राणान्त सकट के आने पर भी अपने व्रत-नियम पर पूर्ण रूप से दृढ रहना चाहिए। कभी किसी भी प्रकार के बडे से बडे प्रलोभन मे नही फसना चाहिए।

दूसरी शिक्षा हमारी बहिनो को मनोरमा से लेनी चाहिए जैसे उसने पति पर आये सकट की बात सुनी तो तुरन्त यह नियम लेकर बैठ गई कि जब तक मेरे पति का सकट दूर नहीं होगा, तब तक मेरे अन्न जल का त्याग है और वह भगवद्-भक्ति मे लीन हो गई। वह जानती थी कि सकट से उद्धारक धर्म ही है, अत उसी का शरण लेना चाहिए।

तीसरी शिक्षा सर्वसाधारण के लिए यह मिलती है कि किसी धर्मात्मा व्यक्ति पर कोई सकट आवे तो सब मिलकर उसका बचाव करने के लिए शासक वर्ग के सामने अपनी आवाज को बुलन्द करें। यदि आज तुलसी गणी के ऊपर आये सकट के समय सारी जैन समाज ने मिलकर एक स्वर से अपनी आवाज शासन के सम्मुख बुलन्द की होती, तो यह कभी सभव नही था कि उन्हे चातुर्मास पूर्ण होने के पूर्व ही विहार करना पडता। सब लोग यह समाचार पढ कर रह गये और किसी के कान मे जूँ तक नही रेंगी। सब यही सोचते रहे कि यह तो दूसरे सम्प्रदाय का झगडा है, हमे इसके लिए क्या करना है ?

भाइयो, आज यदि आप लोगो को जीवित रहना है और धर्म की व समाज की लाज रखनी है, तो सम्प्रदायवाद के सकुचित दायरे मे से बाहिर आओ। आज न तो दस्सा, वीसा, पचा और ढैया का भेद-भाव रखने की आवश्यकता है और न तेरहपंथी, बीसपथी, गुमानपथी, बाइस सम्प्रदाय और स्थानकवासी या मन्दिरमार्गी भेद-भावो के रखने की आवश्यकता है। किन्तु सबको एक भगवान् महावीर के झडे के नीचे एकत्रित होने की आवश्यकता है। आज इन सब भेद-भावो की दीवालो को हटाकर एक विशाल रगमच पर आने की और भगवान महावीर के शासन को धारण करने और प्रचार करने की आवश्यकता है। आज पारस्परिक कलह मिटाने की और सद्-भाव वढाने की आवश्यकता है। आप लोग यह न सोचे महाराज (मैं) वेष, परिवर्तन करने वाले है, या मेरी श्रद्धा मे शिथिलता आगई है। न मैं वेष वदलने वाला हू और न मेरी श्रद्धा मे ही कोई शिथिलता आई है। परन्तु आज समय की पुकार है कि यदि तुम्हे और हमे जीवित रहना है तो सबको एक होकर, हाथ से हाथ और कधे से कधा मिलाकर के चलना होगा। आज

यदि हम उन पर हसेंगे, तो कल वे भी हमारे ऊपर हसेंगे। इसलिए हमे खूब सोच-विचार कर पारस्परिक कटुता व वैमनस्यता का भाव निकालकर एक वनना चाहिए। आज एक वने विना जीवित रहना सभव नही है। आज जव परस्पर विरोधी और विरुद्ध धर्म, भाषा, वेपभूषा और सभ्यतावाले राष्ट्र भी परस्पर मे समीप आ रहे हैं, तव हम सव जैन भाई तो एक ही देशवासी एक ही भाषा-भाषी, एक धर्म, सस्कृति और सभ्यता वाले और एक ही जाति के हैं। फिर हममे फिरकापरस्ती क्यो हो ? क्यो हम एक दूसरे से लडे और एक दूसरे को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझे ? हमे एक होकर अपने धर्म सघ, और जिन शासन के गौरव की रक्षा करनी चाहिए। हमारी धर्म कथा का यही मुख्य उद्देश्य है।

वन्धुओ, हमे सुदर्शन जैसे महापुरुषो की कथाए सुननी चाहिए, जिससे धर्म पर श्रद्धा वढ़े और धर्म-धारण करने पर उसमे दृढ रहने की शिक्षा मिले। इसी कथा को सुनकर ही तो हमारे जयमलजी महाराज साहव की चित्तवृत्ति वदल गई और उन्होंने साधुपना ले लिया था। इस प्रकार के स्वर्ग और मोक्षगामी पुरुषो की कथाए ही सुकथाए हैं—सच्ची कथाए हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य राग-द्वेष को वढाने वाली कथाए हैं, वे सव विकथाए हैं। विकथाओ के वैसे तो असख्य भेद है। परन्तु आचार्यों ने उन्हे मुख्य रूप से चार प्रकार मे विभक्त किया है—स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा और राज कथा। स्त्रियो के हाव-भाव, विलास-विभ्रम और उनके व्यभिचार आदि की चर्चा करना, उनका सुनना, तथा नग्न नृत्यो वाले नाटक सिनेमादि का देखना स्त्री कथा है। नाना प्रकार के भोजन वनाने, उनके नाना प्रकार के देश-विदेश-प्रचलित खान-पान के प्रकारो की चर्चा करना और खाने-पीने वालो की वात करने [illegible] भोजन कथा है। आज किस देश मे क्या हो रहा है [illegible] पहिनावा-उढावा कैसा है, उनका खान-पान और रहन [illegible] की चर्चा करना देश कथा है। आज लोग इस चर्चा [illegible] मानते हैं और सुकथा समझते है, और इसी [illegible] पत्र और पत्रिकाए हाथ मे लिए वाचा करते है, [illegible] मनुष्य इस कथा को आत्मकल्याण मे वाधक [illegible] कथा करना भी विकथा ही है। [illegible] की, उनके जय-पराजय की और [illegible] है। इसी प्रकार [illegible] की चर्चा [illegible] परिग्रह वढाने वाली कथाए [illegible]

२९ | आध्यात्मिक चेतना

वन्धुओ, सूत्र क्या है ? शब्दो का भडार है। यदि इस भडार को हम सावधानी के साथ सभाल करके रखें तो हमे ज्ञान की प्राप्ति हो, जनता की बुद्धि का विकास हो और इन्ही के आधार पर नवीन-नवीन ग्रन्थो की रचना होकर ज्ञान के भडार की अभिवृद्धि भी होती रहे । इसके लिए सबसे पहिली आवश्यकता है इस सूत्र-भण्डार को सुरक्षित रखने की । इसे सुरक्षित कैसे रखना ? क्या वस्त्रो मे वाध करके लकडी की अलमारियो मे रख करके अथवा लोहे की तिजोडियो मे वन्द करके ? नही, ये तो द्रव्य सूत्र की रक्षा के उपाय है, भाव सूत्र की रक्षा के नही । भाव सूत्र की रक्षा के लिए आवश्यक है कि हम इन सूत्रो का पठन-पाठन करें, मनन-चिन्तन करे और ज्ञान के विनाशक अतिचारो से वचे रहे । भाव सूत्र की रक्षा तभी सभव है, जब कि हमारा आभीक्ष्ण्य ज्ञानोपयोग हो, हमारे हृदय मे ज्ञान की धारा निरन्तर प्रवाहित रहे और हम अध्यात्म मे सदा जागरूक रहे । जिसका भगवद्-वाणी पर विश्वास है, दृढ श्रद्धा है, वही व्यक्ति अपने स्वरूप को देख सकता है। कहा है—

जिनेश्वर तणी वाणी जाणी तेने जाणी है।

वाणी हृदयंगम करो

जिनेश्वर देव की वाणी अनेक लोग वाचते है । परन्तु उसको हृदयंगम करने वाले लाखो मे दो चार ही मिलेंगे । भगवान की वाणी का जो आदर है,

वही अपनी आत्मा और अपने हृदय का आशय है। यदि इन दोनो का आपस मे सम्वन्ध हो जाय, तो अन्तरग मे प्रकाश प्रकट हो जाय। जैसे आपके घर मे बिजली की ट्यूब लगी हुई है परन्तु जब तक मेन लाइन से उसका कनेक्शन नही होता, तब तक घर मे प्रकाश नही होता है। दोनो का कनेक्शन होने पर ही प्रकाश होता है। जिसके हृदय मे भगवद्-वाणी का यह कनेक्शन हो जाता है, वह यह कभी नही कहेगा कि मुझे आत्म-ध्यान करने के लिए समय नही है। मुझे इस समय सोना है, खाना-पीना है, या कही बाहिर जाना है अथवा अमुक काम करना है। ये सब बाते अध्यात्म चेतना वाले व्यक्ति के हृदय से निकल जाती है। यद्यपि ससार मे रहते हुए वह यह सब काम करता अवश्य है, परन्तु जल मे कमल के समान उनसे भिन्न ही रहता है।

अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अंतर गत न्यारो रहै, ज्यों धाय खिलावत बाल॥

यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव के पास साधन तो वही के वही है, तथापि वह भीतर से यही मानता है कि ये सब अन्य हैं और मैं इन से सर्वथा भिन्न हू। सब पदार्थों के रहते हुए भी उसके हृदय मे उनके लिए मूर्च्छाभाव नही है। जहा पर मूर्च्छा अर्थात् ममता भाव होता है, वही परिग्रह है। भगवान ने कहा है कि जिन वस्तुओ पर अपनापन नही है—ममत्व भाव नही है—वहा पर चाहे त्रैलोक्य की सम्पदा भी क्यो न हो, हम परिग्रह मे नही हैं। इसके विपरीत यदि हमारे पास कुछ भी नही हो और रहने की टूटी-फूटी छोटी सी कुटिया या झोपडी ही हो परन्तु हमारी आसक्ति और ममता उसके प्रति है, तो हम परिग्रही ही है।

भाइयो, धाय को देखो वह बडे घराने के बच्चो को नहलाती-धुलाती है खिलाती-पिलाती है और अपने पुत्र के समान उसका सर्व प्रकार से सरक्षण करती है, परन्तु मन मे उसके यही भाव रहता है कि यह मेरा नही है और मैं इसकी माता नही हू। वह केवल उसके साथ अपना कर्तव्य-पालन करती है और अपने जीवन-निर्वाह का एक साधनमात्र मानकर उसकी प्रतिपालना करती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टिजीव अपने कुटुम्ब और परिवार के लोगो को भीतर से अपना नही मानता है, किन्तु अपना व्यावहारिक कर्तव्य का पालन मात्र करता है। अन्तरग मे उसकी किसी के साथ आसक्ति नही है। जो जिनवाणी का आशय समझ लेते है उनकी ऐसी ही परिणति हो जाती है।

देखो—भरत चक्रवर्ती भी आप लोगो के समान ही गृहस्थ थे। उनके पास जितनी प्रचुर मात्रा मे सम्पत्ति थी, उसका करोडवा हिस्सा भी आपके पास नही है। फिर भी आपके ये शब्द हमारे कानो मे बार-बार आते हैं कि क्या करें महाराज, घर की ऐसी जिम्मेवारी सिर पर आकर पडी है कि उसे निभाये बिना कोई चारा ही नही है। परवश होकर उसे निभानी ही पडती है। पर मैं पूछता हू, कि आपका यह कहना सत्य है क्या ? अरे, जिन बाल-बच्चो के मा-बाप बचपन मे ही मर जाते है, वे सबके सब क्या मर ही जाते हैं ? अथवा भीख ही जन्म भर मागते रहते है ? भाइयो, यह हमारा अज्ञान है, मिथ्यात्व है, कि हम ऐसा समझते हैं कि हम इनकी प्रतिपालना कर रहे हैं। यदि हम न करें, या न रहे, तो ये भूखे मर जावेंगे ? भाई, सब अपना-अपना भाग्य लेकर आये है और उसी के अनुसार सबका पालन-पोषण होता है। किन्तु हम इस रहस्य को नही समझते हैं और परकी ममता मे ही अपने जीवन के अमूल्य समय को नष्ट कर देते है और कहते है कि कुटुम्ब की झझटो के मारे हमे समय ही नही मिलता है। यदि यह बात सत्य होती, तब तो भरत चक्रवर्ती को समय मिल ही नही सकता था। परन्तु भरत अपने हृदय के भीतर यह मानते थे कि मैं इनका नही और ये मेरे नहीं है। उनकी इस आध्यात्मिक चेतना से ही उन्हे सहज मे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई और अपना अभीष्ट पद प्राप्त कर लिया। परन्तु आप लोग तो केवल बनावटी बातें करते है क्योकि आप लोगो के ऊपर जिनवाणी का कोई असर नही हुआ है। जिनके हृदयो पर उसका असर हो जाता है, वे किसी भी परिस्थिति मे क्यो न हो, आत्म-कल्याण करने के लिए, भगवद्-वाणी सुनने के लिए और आत्म-साधना के लिए समय निकाल ही लेते हैं।

स्वानुभव चिंतामणि :

जिसके भीतर एक बार आत्म-प्रकाश हो जाता है और आत्म-रस का स्वाद मिल जाता है वह फिर उस रस का पान किये बिना रह नहीं सकता है। हृदय की तन्त्री जब बजती है तब वह उसमें मग्न हो जाता है। कहा भी है—

> अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रस कूप।
> अनुभव मार्ग मोक्ष को, अनुभव आतम स्वरूप॥

चिन्तामणि रत्न के लिए कहा जाता है कि जिस वस्तु का मन से चितवन करो, उसे वह देता है। परन्तु वह लौकिक वस्तुओं को ही दे सकता है, पारलौकिक स्वर्ग मोक्ष आदि तो नहीं दे सकता है। परन्तु यह स्वानुभव रूपी

चिन्तामणि रत्न सभी प्रकार के लौकिक और पारलौकिक अभीष्ट सुखो को दे सकता है। रस-कु भिका से निकाला गया रस लोहे को ही सोना बनाने की क्षमता रखता है, शेष धातुओ को नही। परन्तु यह स्वानुभवरूपी रस प्रत्येक प्राणी को शुद्ध, बुद्ध सिद्ध बनाने की सामर्थ्य रखता है, भाई, मोक्ष का सत्य और सही मार्ग आत्मानुभव ही है। जो व्यक्ति आत्मानुभव से शून्य है, वह भगवद्-उपदिष्ट सन्मार्ग पर ठहर सकेगा, क्योकि उसके मस्तिष्क मे तो नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प भरे हुए है जिनको आत्मानुभव हो जाता है और जो आत्मानुभव मे सलग्न हैं उन्हें ससार की कोई भी शक्ति डिगा नही सकती है। लोगो के पास डिगन्ने के जितने भी साधन है, वे सब भौतिक है और वे भौतिक शरीर पर ही अपना प्रभाव दिखा सकते है, अर्थात् लाठी, तलवार, बन्दूक और भाला आदि शास्त्रो से अथवा अग्नि आदि से शरीर का ही विनाश कर सकते हैं। किन्तु अमूर्त्त आत्मा का कुछ भी नही बिगाड सकते हैं। आप लोगो को ज्ञात है कि पाच सौ मुनि कुरुजागन देश मे गये। वहा के राजा के दीवान नमुचि ब्राह्मण ने सघ के आचार्य से कहा—महाराज, यदि आप लोग जीवित रहना चाहते हैं, तो अपना सिद्धान्त छोडकर मेरा सिद्धान्त स्वीकार कर लेवे। अन्यथा मैं किसी को भी जीवित नही छोड़ूगा। तब सघ आचार्य ने कहा— हमारा सिद्धान्त को हमारी आत्माओ मे रमा है, उसे कोई आत्मा से अलग कर नही सकता और आत्मा तो अरूपी है, वह किसी से खडित या नष्ट हो ही नही सकती। वह अविनाशी है, सदा अवस्थित है —

अव्वए वि अवट्ठिए वि

इस आत्मा को शस्त्र छेद नही सकते, अत अच्छेद्य है, अग्नि जला नही सकती, अत यह अदाह्य है, पानी भिगा या गला नही सकता, अत यह अक्लेद्य है, पवन सुखा नही सकता, अत यह अशोष्य है। यह नित्य है, सर्वगत है, स्थाणु है, अचल है, और सनातन है।

आचार्य ने और भी कहा—अरे नमुचि, तुझे यदि यह अरमान है कि मैं इन साधुओ को भय दिखाकर, कष्ट देकर और उपसंग करके इन्हे सिद्धान्त से विचलित कर दूँगा, तो तेरा यह निरा भ्रम है। जीने का भय इन बाहिरी दश प्राणो को होता है आत्मा को नही होता है। हम साधुओ को इन दश द्रव्य प्राणो की कोई चिन्ता नही रहती है। हमारे ज्ञान-दर्शनरूप भाव प्राण तो सदा ही हमारे साथ रहेगे, वे त्रिकाल मे भी हमसे अलग होने वाले नही है और न कोई उन्हे हमसे अलग कर ही सकता है।

नमुचि ने देखा कि ये साधु मेरे सिद्धान्त को स्वीकार करने लिए किसी भी प्रकार तैयार नहीं हैं, तब उसने एक-एक करके पाँचसौ ही मुनियो को घानी मे पिलवा दिया। भाई, वताओ, इस जोर-जुल्म का कोई पार रहा ? उन सभी साधुओ ने हसते हसते प्राण दे दिये, परन्तु अपना सिद्धान्त नही छोडा। न उन्होंने अपने प्राणो की भिक्षा ही उससे मागी। उनके भीतर यह दृढ श्रद्धान और विश्वास था कि हमारा सिद्धान्त ठीक है। अत उन्होंने मरना स्वीकार किया, मगर अपना सिद्धान्त छोडना स्वीकार नही किया। उन मुनियो मे अनेक तो लब्धि-सम्पन्न थे। यदि वे चाहते तो नमुचि को यो ही भृकुटि के विक्षेप से, या दृष्टिपात मात्र से भस्म कर सकते थे। परन्तु वे लोग तो सच्चे अहिंसा धर्म के आराधक थे, प्राणिमात्र के रक्षक थे और परीषह-उपसर्गों के सहन करने वाले थे। वे स्वय मरण स्वीकार कर सकते थे, परन्तु दूसरे को कष्ट देने का स्वप्न मे भी विचार नहीं कर सकते थे। वे मोक्ष के मार्ग पर चल रहे थे, अत ससार के मार्ग पर कैसे चल सकते थे ? अपनी इसी आध्यात्मिक चेतना और दृढता के बल पर उन्होने मोक्ष को प्राप्त किया। जिनके भीतर यह आत्म-विश्वास नही है, वे ही लोग दूसरो के बहकावे मे या डराने मे आ सकते है और अपना धर्म छोड सकते है, किन्तु धर्म का और आत्मस्वरूप का वेत्ता व्यक्ति त्रिकाल मे भी अपना धर्म नहीं छोड सकता है।

क्षमामूर्ति रघुनाथ

पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज विक्रम सवत् १८८६ की साल जालोर पधारे। उस समय वहा पर पोतिया बध धर्म का प्रचार था। उसकी श्रद्धा करने वाले वहा सैकडो व्यक्ति थे। उन लोगो को जैसे ही यह ज्ञात हुआ कि रघुनाथजी महाराज अपने धर्म का प्रचार करने के लिए इधर आ रहे हैं तो वे लोग लाठी लेकर नगर के बाहिर खडे हो गये और बोले कि यहा आप को आने की आवश्यकता नही है। पूज्य श्री ने पूछा, क्यो ? तो उन लोगो ने कहा कि यहा पर हमारे धर्म का प्रचार हो रहा है। आप यहा उसमे विक्षेप करने के लिए आये है, अत यहा नही ठहर सकते। पूज्य श्री ने कहा—आप लोग भोले है। हम तो गाव-गाव मे प्रचार करते आ रहे है, और करते हुए जावेगे। आप लोग हमे रोकनेवाले कौन होते है ? हा, यदि राज्य-शासक कह देवे कि तुम लौट जाओ तो हम एक कदम भी आगे नही रखेगे। परन्तु आप लोगो के कहने से नही लौट सकते है। वे लोग उत्तेजित होकर बोले—यदि नगर के भीतर एक कदम भी रखा तो मारे जाओगे। पूज्य श्री ने कहा—भाई, आत्मा तो मरती नही है और शरीर [illegible]

ममत्व नही हे। यह कह उन्होने जैसे ही शहर मे प्रवेश किया तो उनको लोगो ने लट्ठ मार दिये। पूज्यश्री के मस्तक से खून झरने लगा। उन लोगो ने साथ के अन्य सन्तो को मारना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु उन्होने कोई परवाह न की। जब उन लोगो ने देखा कि मारने के बाद भी शहर से प्रवेश कर ही रहे ह, तब उन्होने शहर भर मे यह सूचित कर दिया कि जो कोई भी इन लोगो को ठहरने के लिए स्थान देगा, उसे भी हम देख लेंगे। यह सुनकर किसी ने भी उन सन्तो को ठहरने के लिए स्थान नही दिया। उनके पीछे काटने कुत्ते लगा दिये, पत्थर फेके और इसी प्रकार के उपद्रव किए। परन्तु वे पीछे नही लौटे। एक नाई ने आकर पूछा, महाराज, क्या बात हे ? पूज्यश्री ने कहा—भाई, जो फरसना है वह होता है। हमे तो ठहरने के लिए स्थान भर की आवश्यकता है। नाई बोला—यह शिवजी का मन्दिर है, आप यहा विराजो। पूज्यश्री ने कहा - भाई, हमारे निमित्त से किसी भाई को कष्ट तो नही होगा ? उसने कहा - महाराज, हम कष्ट मिटाने का ही काम कर रहे है। किसी को कोई कष्ट नही होगा, आप विराजिये। पूज्यश्री सब सघ के साथ आज्ञा लेकर वहाँ ठहर गये। जब सन्त लोग पानी लेने के लिए भी नगर मे जावे तो विपक्षी लोग कुत्ते लगा देवे। और पत्थर मार कर पात्र फोड देवे। इस प्रकार तीन दिन तक लगातार इतने कष्ट दिए कि जिसकी कोई सीमा नही। परन्तु पूज्यश्री जी ने किसी की कोई निन्दा नही की।

तीन दिन के बाद वहा के भडारोजी खवासजी के जमाईजी का परवाना पहुचा कि सन्त लोग आरहे ह उनका पूरा ध्यान रखना। परन्तु इसका भी सकेत पूज्यश्री ने नही कराया। और समभाव पूर्वक आहार-पानी के लिए नगर मे घूमते रहे। चौथे दिन कचहरी मे हाकिम से कहा कि कुछ सन्त लोग समदडी से यहा आने वाले ह सो आने पर हमे सूचित करना। तब नीचे के अहलकार ने कहा—हुजूर, उन साधुओ को आये तीन दिन हो गए है और शहर मे उनकी मिट्टी-पलीत हो रही हे। यह सुनते ही हाकिम निकला। उस समय उनका जमाना था, वे लोग सौ-पचास आदमियो को साथ लिए विना नही निकलते थे। उन्होने शिवजी के मन्दिर मे जा कर सन्तो की दशा देखी तो उन्हे दुख हुआ और बोले—हाकिम साहब, हमे दावा नही करना था, जो आपसे फरियाद करते। उन्होने सब सन्तो को साथ मे लिवा ले जाकर कचहरी के सामने ठहराया, उनके प्रवचनो की व्यवस्था की और स्वय प्रवचन सुनने को आने लगे। यह देख कर विपक्षियो के हौसले पस्त हो गये और वे ठडे पड गये। [illegible] प्रकार [illegible] तथा उनके प्रवचन सुनकर उन विपक्षियो मे

से चार व्यक्तियों ने पूज्य श्री से दीक्षा ग्रहण की। नगर निवासियों ने चतुर्मास करने के लिए प्रार्थना की। पूज्य श्री ने उसे स्वीकार कर चार मास तक भगवान् की वाणी सुनाई और शुद्ध मार्ग की प्ररूपणा की, जिससे ४५० व्यक्तियों ने उसे अंगीकार किया और पोतिया वंध धर्म छोड़ दिया।

भाइयो, दुःखों को सहन किए बिना सुख नहीं मिलता है। आप लोग दुकानों पर जाकर बैठते हैं, गर्मी का मौसम है, लू चल रही है, सिर के ऊपर टीन तप रहे हैं, पसीना झर रहा है और प्यास लग रही है, फिर भी ऐसे समय यदि ग्राहक माल खरीदने के लिए पहुंचते हैं, और मन-चाहा मुनाफा मिल रहा है, तब क्या आप लोग को घर का तलघरा और पंखा याद आता है, या खाने-पीने की बात याद आती है? जैसे कमाऊ पूत सुख-दुख की परवाह नहीं करता है, उसी प्रकार आत्म-कल्याणार्थी सन्त लोग और मुमुक्षु गृहस्थ लोग भी अपने कर्त्तव्य-पालन करने और धर्म का प्रचार करने में सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करते हैं। जो केवल व्याख्यानों में पंजा घुमाने वाले हैं, जिन्हें खान-पान अच्छा और पहिनने को बढ़िया चाहिए, उनसे धर्म का साधन नहीं हो सकता और न प्रचार ही। साधुओं के लिए तो भगवान का यह आदेश है कि—

यद्देहस्योपकाराय　　　　तज्जीवस्यापकारकम्।
यज्जीवस्योपकाराय　　　　तद्देहस्यापकारकम्॥

अर्थात् जो जो कार्य देह का उपकार करने वाले हैं, वे सब जीव का अपकार करने वाले हैं और जो जो साधन जीव के उपकारक हैं, वे सब देह के अपकारक हैं। भाई, शरीर की तो यह स्थिति है कि—

पोषत तो दुख देय घनेरे, शोषत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावे॥

ज्यों-ज्यों इस शरीर का पोषण किया जाता है, त्यों-त्यों यह और भी अधिक दुर्गतियों के दुःखों को देता है और ज्यों-ज्यों इसका शोषण किया जाता है, त्यों-त्यों यह सुगति के सुखों को और अक्षय अविनाशी आत्मिक सुख को देता है।

भाइयो, साधुपना तो आराम करने के लिए नहीं है। यहां तो [illegible] की मौत का जामा पहिन कर रहना पड़ता है। [illegible] नष्ट हो जायगी। इसलिए हम [illegible]
[illegible]

भीतर खीच लिया है। कैमरे से नही, और कलम से भी नही। किन्तु अपनी आन्तरिक भावनाओ से, पर-परिणतियो को दूर कर और उन्हे तिलाजलि देकर स्व-परिणति मे स्थिरता पा ली हैं, उन्होने ही आत्मा का यथार्थ चित्र खीचा है और वे ही सच्चे परमानन्द-रस के आस्वादी बने हैं। ऐसे ही आध्यात्मिक चेतना की जागृति वालो के लिए कहा गया है कि—

यो चित्त निज मे थिर भये तिन अकथ जो आनन्द लह्यो,
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो ॥

जो पुरुष अपने भीतर यह चिन्तवन करते है कि मेरा स्वरूप तो दर्शन, ज्ञान, सुख और बल-वीर्यमय है, अन्य कोई भी पर भाव मेरा स्वरूप नही है, इस प्रकार की भावना के साथ अपनी आत्मा मे स्थिर हो जाते हैं, उन्हें जो अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है, वह इन्द्र, अहमिन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र को भी प्राप्त नही है।

बन्धुओ, जो महापुरुष ऐसे आत्मस्वरूप मे स्थिर हो जाते हैं, वे बाहिरी वस्तुओ के सयोग और वियोग की कोई चिन्ता नही करते हैं। वे सदा आनन्द के साथ अपने गन्तव्य मार्ग पर चलते रहते हैं और मार्ग मे आने वाली किसी भी बडी से बडी विघ्न-बाधा से विचलित नही होते हैं। आप लोगो को बडे सौभाग्य से यह स्वाधीन मोक्ष का मार्ग मिला है, इसलिए अपने भीतर आत्म चेतना की जागृति कीजिए। उसे कही से लेने को जाना नही है। वह अपने भीतर ही है। उनके ऊपर विकारो का जो आवरण आ गया है, उसे दूर कीजिए और फिर देखिए कि हमारे भीतर कितनी अमूल्य प्रकाशमान निधि विद्यमान है। जिसके सामने त्रैलोक्य की सारी सम्पदा भी नगण्य है।

चतुर्दशी का सदेश

भाइयो, आज कार्त्तिक सुदी चतुर्दशी है। यह हमे याद दिलाती है पाप के जो चौदह स्थान हैं, उनका त्याग करना चाहिए' वे है—

सचित दव्व विगह, पन्नी तबोलवत्थ कुसुमेसु।
वाहण सयण विलेवण, बभ दिसिनाहण भत्त सु।

इन चौदह वस्तुओ की मर्यादा करो। भगवान ने कहा है कि मर्यादा करने से सुमेरु के समान वडे-वडे पाप रुक जाते हैं। केवल सरसो के समान छोटे पाप रह जाते है। यदि अन्तरग मे ममता रुक गई तो सव पाप रुक गये। यदि ममता नही रुकी और बाहिरी द्रव्य कम भी कर दिया तो भी कोई लाभ नही। जैसे आपने आज औरो को देखा देखी या मेरे कहने से उपवास कर लिया। पीछे घर जाने पर कहते हैं—चक्कर आ रहे है, भूख प्यास लग

रही है, व्यर्थ ही महाराज के कहने से या लोगों की देखा-देखी यह उपवास ले लिया, इत्यादि विकल्प उठते हैं, तो स्वय सोचो कि उससे तुम्हें कितना लाभ हुआ ? एक मोहर के स्थान पर एक पैसे का लाभ मिला। इसलिए आचार्यों ने आज्ञा दी है कि—

समीक्ष्य व्रतमादेयमात्त पाल्य प्रयत्नत ।
छिन्नं दर्पात् प्रमादाद्वा प्रत्यवस्थाप्यमञ्जसा ॥

पहिले खूब सोच विचार करके व्रत ग्रहण करना चाहिए। फिर जिस व्रत का ग्रहण कर लिया उसे प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए। यदि फिर भी दर्प से या प्रमाद से व्रत भग हो जाय, तो तुरन्त उसे पुन प्रायश्चित्त लेकर धारण कर लेना चाहिए।

अतएव आप लोगों को आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए और अपने भीतर के घुमस्कारा को दूर करने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार सावद्य कार्यों का परित्याग कर आत्मस्वरूप को जागृत करने मे लगना चाहिए। आप भले ही साधुमार्गी हो, या तेरहपथी हो, आश्रम-पथी हो, गुमानपथी या तारणपथी हो, दिगम्बर हो या श्वेताम्बर हो ? किसी भी सम्प्रदाय के हो, सबका लक्ष्य आत्मस्वरूप की प्राप्ति करना है। जैसे किसी भी वस्तु का कोई भी व्यापारी क्यो न हो, सभी का लक्ष्य एक मात्र धनोपार्जन का रहता है, इसी प्रकार किसी भी पथ का अनुयायी कोई क्यो न हो सबको अपने ध्येय प्राप्ति का लक्ष्य रहना चाहिए। भाई, जो समदृष्टि होते हैं, उनका एक ही मत होता है और जो विषमदृष्टि होते है उनके सौ मत होते है। लोकोक्ति भी है कि 'सौ सुजान एक मत'। समझदारो का एक ही मत होता है। आत्म-कल्याणार्थियो का भी एक लक्ष्य होता है कि किस प्रकार से हम अपना अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त करें। सौ मतवालो की दुर्गति होती है किन्तु एक मतवाले सदा सुगति को प्राप्त करते है। यहा एक मत से अभिप्राय है एक सन्मार्ग पर चलने वालो से। जो सन्मार्ग पर चलेगा, वह कभी दु ख नही पायगा।

धर्म पर बलिदान हो जाओ !

भाइयो, समय के प्रवाह और परिस्थितियो से प्रेरित होकर आपके पूर्वज अनेक सम्प्रदायो मे विभक्त अवश्य हुए। परन्तु जब कभी विधर्मियो के आक्रमण का अवसर आता था, तो सब एक जैनशासन के झण्डे के नीचे एकत्रित हो जाते थे और विधर्मियो का मुकाबिला करते थे। यह उनकी खूबी थी। परन्तु आज ऊपर से सगठन की बात की जाती है, लम्बे चौडे लेख लिखे जाते है और लच्छेदार मीठे और जोशीले भाषण दिये जाते है। किन्तु अवसर

आते ही ऐसे खिसकते है कि ढढने पर भी पता नही चलता और लौटकर मुख भी नही दिखाते है। इससे यही ज्ञात होता है कि समाज का गौरव, यश और महत्त्व कायम रख सकने वाले बडे लोग ढीले पड गये और उनके ढीले पडने से जो काम करने की भावना और स्फूर्त्ति पैदा होनी चाहिए थी, वह पैदा नही होती, प्रत्युत भीतर ही भीतर अनेक झझटे पैदा हो जाती है। आज हम तो दो ही बाते सीखे है—कि हर एक की आलोचना करना और निन्दा करना। आप लोग ही बताये कि फिर समाज आगे कैसे बढ सकता है? भाई, मुक्ति का मार्ग तो अभी बहुत दूर है, हम तो अभी मानव कहलाने के योग्य मुक्ति के मार्ग पर भी नही चल रहे हैं। दो भाइयो की दुकाने पास-पास हैं, तो एक दूसरे के ग्राहको को बुलाता है और एक दूसरे को चोर वतलाता है। बताओ-फिर दोनो साहूकार कहा रहे? हमारा अध पतन इतना हो गया कि जिसकी कोई सीमा नही। भाईचारा तो भूले ही, मानवता तक को भूल गये। कल एक भाई ने कहा था कि जब तक ये पगडीवाले है, तब तक दुनिया के लोग दुश्मन ही रहेगे। मैं पूछता हू कि यहा पर पगडीवाले अधिक है, या उघाडे माथे वाले? पगडी बाधने वाले तो थोडे ही है। उनके तो लोग दुश्मन बनते है, आप नगे सिर वालो के तो नही बनते? यदि आप लोग आगे बढकर काम कर लेगे तो पगडीवाले आपका ही यश गावेंगे और आपके नाम की माला फेरेगे। परन्तु आप लोगो ने तो दुश्मनी के भय से अपने वेष को ही छोड दिया। दुश्मनो की निन्दा के भय से आपलोग किस किस बात को छोडते हुए चले जावेगे? जरा शान्त चित्त हो करके सोचो, विचारो और आगे आकर के समाज मे सगठन का बिगुल बजाओ, तभी कुछ काम होगा। केवल दूसरो की टीका-टिप्पणी करने या आलोचना-निन्दा करने से न आप् लोगो का उत्थान होगा और न समाज का ही। आज एक होने का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। इसे हाथ से मत जाने दो और कुछ करके दिखाओ, तभी आप लोगो का गौरव है। आलमगीर औरगजेब—बादशाह ने वीर राठौर दुर्गादास को सन्धि के लिए दिल्ली बुलाया और वे दिल्ली पहुचे तब बादशाह के पास अपने आने की सूचना भेजी। बादशाह ने सन्तरी से कहा—भीतर लिवा लाओ, परन्तु उनके हथियार वही पहरे पर रखवा आना। जैसे ही सन्तरी ने हथियार रखकर भीतर किले मे चलने को कहा, वैसे ही दुर्गादास बादशाह से विना मिले ही वापिस चले आये।

तभी तो उनके विपय मे यह प्रसिद्ध है—

> दुर्गो आसकर्ण को, नित उठवागो जाय।
> अमल औरग रो उतरे, दिल्ली धरका खाय ॥

भाइयो, दुर्गादास एक ही बहादुर व्यक्ति था, जिसने हाथ से गई हुई मारवाड की भूमि को वापिस ले लिया। यदि—

'दुर्गा जो जगत मे नहीं होता, तो सुन्नत सबकी हो जाती।

उसके विषय मे यह कहावत आज तक प्रचलित है कि यदि मारवाड मे दुर्गादास नही होता तो सब तलवार के बल पर मुसलमान बना लिये जाते। भाई, एक ही माई के लाल ने सारे देश की रक्षा करली। राणाप्रताप, शिवाजीराव और दुर्गादास की यह ख्याति उनके उस शूरवीरता के साथ किये गये कामो से ही है। इन तीनो मे से दो के पास तो राज्य था। परन्तु दुर्गादास के पास क्या था? फिर भी वह शान्ति के साथ लडा और देश की आन रखी। उसे पराधीन नही होने दिया। जब बादशाह ने कहा—दुर्गादास, मैं तुमको मारवाड का राज्य देता हूँ और राज-तिलक करता हू तो उन्होंने कहा—मुझे इसकी आवश्यकता नही। आप राजतिलक जो राजगद्दी के अधिकारी है, उन्हे ही दीजिए। इस प्रकार दुर्गादास ने अपना सारा जीवन देश के लिए समर्पण कर दिया, मा-बाप और बेटे सबसे हाथ धोया, फिर भी उन्होने राज्य के किसी भी पद को लेना स्वीकार नही किया। किसी बात पर मन-मुटाव हो जाने पर वे मारवाड छोडकर चले गये, परन्तु राजाओ का सामना नही किया और सच्ची स्वामिभक्ति का परिचय दिया।

भाइयो, जिनके हृदय मे देश के लिए, जाति के लिए और धर्म के लिए लगन होती है, वे तन, मन और धन सर्वस्व न्योछावर करके उसकी रक्षा करते है। इसी प्रकार जिनके हृदय मे आत्मा की लगन होती है, वे भी उसके लिए सर्वस्व न्योछावर करके आत्म-हित मे लगे रहते है, इसी का नाम आत्मजागृति है और इसे ही आध्यात्मिक चेतना कहते है।

बन्धुओ, कल चौमासे का अन्तिम दिन है। जैसे मन्दिर बन जाने पर उसके शिखर पर कलश चढ़ाया जाता है, इसी प्रकार कल चौमासे के कलशारोहण का दिन है और धर्म के पुनरुद्धारक लोकाशाह का जयन्ती-दिवस भी है। तथा कल साढे तीन करोड मुनिराजो के मोक्ष जाने का दिन भी है। अत कल का दिन हमें बड़े उत्साह के साथ मनाना चाहिए। कल चतुर्मास के लेखा-जोखा का दिन है। हमे देखना है कि हम कितने आगे बढे हैं और सघ कैसे आगे दिन-प्रतिदिन उन्नति करता रहे, इसका भी निर्णय करना है। हम तो यही चाहते है कि तप और धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे और सगठन का विगुल बजता रहे।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १४

जोधपुर

३० | धर्मवीर लोकाशाह

पूर्णिमा का पवित्र दिन

बुद्धिमान् सद्गृहस्थो, आज परम पुनीत क्रान्तिधर धर्मपरायण श्री लोकाशाह-जयन्ती का महान् पर्व दिन है। आज कार्तिकशुक्ला पूर्णिमा है। पूर्णमासी का कितना बडा भारी महत्व है, कितने जीवो को इससे लाभ पहुचा है, और आज कितने नये-नये काम हुये है, यह सारा इतिहास रखू, तो न मुझे सुनाने का समय है और न आप लोगो को ही सुनने का समय है। अत सक्षेप मे ही कहा जा सकता है कि आज की पूर्णिमा का दिन एक क्रातिकारी धर्म पर बलिदान होने की कथा से परिपूर्ण दिन है, अत. इसे एक पवित्र दिन भी कह सकते है। आज लोकाशाह की जयन्ती है और गुरु नानक की जयन्ती है। सिक्ख लोगो मे और हिन्दू जाति मे नया जोश पैदा करने का, हस-हसकर बलिदान होने का और गर्म तवे पर चीलडे के समान तपने का काम नानक ने किया है। ऐसे-ऐसे समाज के लिए बलिदान होने वाले अनेक महापुरुषो की जयन्ती का आज शुभ दिन है। आज के ही दिन साढे तीन करोड मुनिराजो ने ससार के बन्धनो को तोडकर और कर्मों को दूर कर परमधाम मोक्ष को प्राप्त किया है। अत परम पवित्र निर्वाण कल्याण का भी आज शुभ अवसर है।

अतीत की झाकी

भाइयो, मारवाड के सिरोही राज्य के ईशानकोण मे स्थित अटवाडा

गाव मे ओसवाल-कुलावतंस राज्य से सम्मानित श्री हेमाशाह दफ्तरी नामक महापुरुष रहते थे। उनकी पत्नी का नाम श्री गंगादेवी था। वि० सं० १४८२ में कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन एक होनहार पुत्र का आपके यहाँ जन्म हुआ। गर्भ में आने के पूर्व ही माता गंगादेवी ने शुभ स्वप्न देखे थे। शुभ मुहूर्त में पुत्र का नाम लोकचन्द्र रखा गया, जो आगे चलकर सचमुच में ही लोगों का चन्द्रमा के समान आनन्द-कारण और लोक में उद्योत-कारक सिद्ध हुआ।

इतिहास को लिखने का दावा करनेवाले अनेक इतिहासज्ञ, विद्वान् कहते हैं कि सिरोही राज्य में अटवाड़ा नामक कोई गाँव ही नहीं था। परन्तु मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि यह गाँव सिरोही से तीन कोस की दूरी पर आज भी अवस्थित है। जिस समय मैं इतिहास की खोज में लग रहा था, उस समय अजमेर में साधु-सम्मेलन होने वाला था। हम लोग गुजराती सन्तों को लेने के लिए गुजरात की ओर गये थे। उस समय हमने इस गाँव को स्वयं देखा वहाँ पर १५० घर हैं। इसी समाज के अग्रगण्य कई श्रावक हमारे साथ थे। आश्चर्य इस बात का है कि इतिहास लिखनेवाले बिना खोज छान-बीन किये लिखते हैं कि इस नाम का कोई गाँव ही नहीं है। जिन्हें आँखों से दिखता नहीं, ऐसे जीव यदि कह दें कि सूर्य ही नहीं है, तो क्या यह मान लिया जायगा? कभी नहीं।

जो पुण्यशाली और आदर्श महापुरुष होते हैं, उनका जन्म, रहन-सहन और आवागमन सारा मंगलमय हुआ करता है और उनकी पुण्यवानी से नयी-नयी बातें पैदा होती हैं। लोंकाशाह के पिता जवाहिरात का धन्धा करते थे। एक बार बालक लोकचन्द्र किसी काम से सिरोही पधारे और उद्धवशाह जी की दुकान पर गये। उनके भी जवाहिरात का व्यापार था। कुछ व्यापारी उस समय दुकान पर आये हुए थे। उद्धवशाह जी ने मोती-जवाहिरात का डिब्बा निकाला और व्यापारी लोग मोतियों को देखने लगे। उन लोगों की दृष्टि नहीं जमी तो मोल-भाव नहीं पट रहा था। लोकचन्द्र समीप ही बैठे हुए थे, उन्होंने एक दाना उठाकर कहा—इस जाति के मोती के एक दाने का मूल्य इतना होता है। यह सुनकर व्यापारी लोग उनकी ओर देखने लगे और पूछा—कुँवर साहब, आपने इतना मूल्य कैसे आँका? उन्होंने कहा—इसका पानी ही बतला रहा है और यह भविष्य में और भी [illegible] निकलेगा। व्यापारियों को बात जँच गई और वे मो[illegible]

लेकर चले गये। उनके जाने पर उद्धवशाह ने पूछा - तुम कहा रहते हो और किसके पुत्र हो ? लोकचन्द्र ने अपना परिचय दिया। परिचय पाकर वे वहुत प्रसन्न हुये।

उद्धवशाह जी के प्रसन्न होने का कारण यह था कि उनकी एक कन्या विवाह योग्य हो गई थी और वे योग्य पात्र की तलाश मे थे। वे स्वय अच्छे जौहरी थे और इस वालक मे जवाहिरात की परीक्षा का विशेप गुण देखा तो वे उस पर मुग्ध हो गये। और इनके ही साथ अपनी सुपुत्री का सम्वन्ध करने का निश्चय किया।

दूसरे ही दिन उद्धवशाह जी अटवाडा गये और हेमाशाह के घर आये। प्रारम्भिक शिष्टाचार के पश्चात् हेमाशाह ने पूछा—शाह जी, कैसे पधारना हुआ ? उद्धवशाह ने कहा—आपके जो कु वर लोकचन्द्र है उनके लिए नारियल देने को आया हू। हेमाशाह ने कहा - आप पधारे तो ठीक है। यद्यपि मेरा आपका पूर्व परिचय नही है और मैंने आपका घर-द्वार भी नही देखा है, तो भी जब आप जैसे वडे आदमी आये है, तब मैं आपका प्रस्ताव अस्वीकार भी नही कर सकता हू।

भाइयो, यदि आप जैसे सरदारो के सामने ऐसा प्रस्ताव आता है, तव आप तुरन्त पूछते—क्या कितना दोगे ? फिर कहते—हम पहिले घर आकर के लडकी देखेंगे, पीछे वावू भी लडकी देखने जायगा और साथ मे उसकी माँ-वहिन भी होगी। सव वातें तय होने पर ही यह सम्वन्ध हो सकेगा ? और ऐसा कहकर सामने वाले को तुरन्त पीछा ही लौटा देते। भाई, पहिले के लोग जाति का गौरव और समाज का वडप्पन रखते थे और यह सवाल ही नही उठता था कि वावू देखेगा। आपके पूर्वज जाति और समाज का गौरव देखते थे, वे कागज या चाँदी के टुकडो पर अपनी नीयत नही डुलाते थे।

हा, तो बिना कोई सौदा किये हेमाशाह ने नारियल झेल लिया और शुभ लग्न मे सानन्द विवाह सम्पन्न हो गया। और लोकचन्द्र अपने कारोवार को संभालने लगे। कुछ समय के बाद एक दिन रात्रि मे सोते समय भगवान् पार्श्वनाथ की अधिष्ठात्री पद्मावती देवी ने स्वप्न मे कहा—'लोकचन्द्र ! कैसे सोता है ? क्रान्ति मचा और सोते हुए समाज को जगा'। इसके पश्चात् तीसरे दिन पुन स्वप्न मे पद्मावती देवी ने दर्शन दिये। लोकचन्द्र ने पूछा—आप कौन हैं और क्या प्रेरणा दे रही है ? समाज तो भारी लम्बा चौडा है इसको जगाऊँ और क्रान्ति मचा दूँ, यह कैसे सभव है। देवी ने

अपना परिचय देते हुए कहा—तू चिन्ता मत कर और आगे जाकर काम कर। मैं तेरी सहायता करूंगी।

कुछ समय के पश्चात् एक दिन हेमाशाह ने लोकचन्द्र से कहा—अपने यहा धान्य बहुत एकत्रित हो गया है और घास भी। इन्हे बेच देना चाहिए। लोकचन्द्र ने कहा—पिताजी, अपने को दोनो ही नही बेचना है। आगे के पाच वर्ष देश के लिए बहुत भयकर आनेवाले है, उस समय ये ही अभाव की पूर्ति करेंगे और इनसे ही मनुष्य व पशुओ की पालना होगी। हेमाशाह ने पूछा—तुझे ऐसा कैसे ज्ञात हुआ? तब उन्होने कहा—मुझे स्वप्न मे ही ऐसी सूचना मिली है।

कुछ समय के पश्चात् चन्द्रावती नगरी—जो कि आबू पर्वत पर करोडो रुपये लगाकर मन्दिरो का निर्माण कराने वाले वस्तुपाल-तेजपाल की बसाई हुई थी, उसके राजा के साथ सिरोही के राजा की कुछ अनबन हो जाने से लडाई चेत गई। दुर्भाग्य से उसी समय दुष्काल पड गया। लगातार पाच वर्ष तक समय पर वर्षा नही होने से लोग अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसने लगे और घास के बिना पशुओ का जीवित रहना दूभर हो गया। सारे देश मे हाहाकर मच गया। पहिले आजकल के समान ऐसे साधन नही थे कि तत्काल बाहिर से ही सहायता पहुच सके। ऐसे विकट समय को देखकर लोकचन्द्र ने सारे देश मे समाचार भिजवाया कि कोई भी मनुष्य अन्न के बिना और कोई भी पशु घास के बिना भूखा न मरे। जिसको जितना धान्य और घास चाहिए हो, वह मेरे यहा से ले जावे। भगवती पद्मावती माता की ऐसी कृपा हुई कि प्रति दिन सैकडो लोगो के धान्य और घास के ले जाने पर भी उनके भडार मे कोई कमी नही आई और लगातार पाचवर्ष तक पूरे देश की पूर्ति उनके भडार से होती रही। इस प्रकार जनता का वह भयकर सकटकाल शाति से बीत गया। तब सारे देशवासियो ने एक स्वर से कहा—यह लोकचन्द्र केवल लोक का चन्द्रमा ही नही है किन्तु लोक का शाह भी है और तभी से लोग उन्हे लोकशाह के नाम से पुकारने लगे।

इसके कुछ दिन पश्चात् एक दिन लोकशाह के माता पिता ने पूछा—तुझे तो भविष्य की बहुत दूर की सूझती है। बता, मेरा आयुष्य कितना शेष है? लोकाशाह कुछ समय तक मौन रहे, फिर गभीर होकर बोले—पिताजी, आप की और माताजी की आयुष्य केवल सात दिन का शेष है। यह सुनते ही [illegible] और वैराग्य [illegible] सारा राज-पाट छोडकर और त्याग-

प्रत्याख्यान करके सथारा ले लिया । सात दिन पीछे उनके माता पिता का स्वर्गवास हो गया ।

पाटन के अधिकारी पदपर

माता पिता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् भाग्य ने कुछ पलटा खाया और लोकाशाह की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई । तव वे अहमदावाद चले गये । उस समय अहमदावाद को वसाने वाला अहमदशाह काल कर गया था और मोहम्मदशाह राज्य कर रहा था । उसने एक वार नगर के जौहरियो को बुलाया साथ मे लोकाशाह को भी । लोकाशाह की रत्न-परीक्षा से प्रसन्न होकर मोहम्मदशाह ने इन्हे पाटन का अधिकारी वनाकर वहा भेज दिया । उन्होने वहा पर विना किसी भेद-भाव के हिन्दू-मुसलमानो के साथ एक सा व्यवहार रक्खा, जिससे मोहम्मदशाह ने खुश होकर इन्हे अहमदावाद बुला लिया और यहा का काम-काज दे दिया ।

इसी बीच कुछ भीतरी विद्वेष की आग सुलगने लगी । भाई—

'जर, जेवर, जोरू, यह तीनो कजिया के छोरु' ।

जर, जेवर और जोरू ये तीनो लडाई के घर माने जाते है । जहा कही भी आप लोग देखेगे, इन तीनो के पीछे ही लडाई हुआ करती है । राज-पाट का भी यही हाल होता है । जो भी अधिकार की कुर्सी पर बैठता है, वह किसी को गिराने, किसी को लूटने और समाप्त करने की सोचा करता है । यह कुर्सी का नशा होता है । मोहम्मदशाह का लडका कुतुबशाह था । उसने देखा कि मेरा बाप बूढा हो गया, इतने वर्ष राज्य करते हुए हो गये । पर यह तो न मरता ही है और न राज्य ही छोडता है, तब उसने अपने बाप को ही मारने का षड्यन्त्र रचा और खाने के साथ उसे जहर दिलवा दिया । और आप बादशाह बन गया । जब इस षड्यन्त्र का पता लोकाशाह को चला तो उन्हे राज काज से बड़ी घृणा हुई । वे सोचने लगे कि देखो—जिस के ऋण से मनुष्य कभी ऊऋण नही हो सकता, उस पिता को ही कृतघ्नी सन्तान मार सकती है, तो वह औरो के साथ क्या और कौन सा जुल्म नही करेगा । उन्होने राज-काज छोडने का निश्चय किया और कुतुबशाह के पास जाकर कहा—हुजूर, मुझे रजा दी जाय । बादशाह ने पूछा—क्या बात है ? लोकाशाह ने कहा—अब मैं आत्मकल्याण करना चाहता हू । राज-काज करते हुए वह सभव नही है । तब बादशाह ने इनके स्थान पर इनके पुत्र पूनमचन्द को नियुक्त कर इन्हे रजा दे दी ।

देव, दानव और मानव सब उसकी उपासना करते हैं और उसे नमस्कार करते हैं।

इस गाथा को और उसके उक्त अर्थ को पढकर लोकाशाह को बडा आश्चर्य हुआ कि कहा तो धर्म का यह स्वरूप है और कहा आज उसके धारण करने वाले साधु-सन्तो की चर्या है। 'दोनो मे तो राई और पहाड या जमीन और आसमान जैसा अन्तर है। उनकी जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढने लगी और उसकी पूर्त्ति के लिए उन्होने शास्त्रो की दो-दो प्रतिलिपियाँ करनी प्रारम्भ कर दी। एक तो अपने निजी भडार के लिए और दूसरी ज्ञान भडार के लिए। इस प्रकार उन्होने सब शास्त्र लिख लिये।

जब सब शास्त्रो की प्रतिलिपिया तैयार हो गई और एक-एक प्रति ज्ञान भडार को सौंप दी गई, तब उन्होने अपने भडार के शास्त्रो का एक-एक करके स्वाध्याय करना प्रारम्भ किया। दिन मे जितना स्वाध्याय करते, रात मे उस पर मनन और चिन्तन करते रहते। उस समय स्वार्थी और अज्ञानी साधुओ ने लोगो मे यह प्रसिद्ध कर रखा था कि श्रावक को शास्त्र पढने का अधिकार नही है, केवल सुनने का ही अधिकार है और ऐसी उक्तिया बना रखी थी कि 'जो **वाचे सूत्र, उसके मरे पुत्र**'। इस प्रकार के वहमो से कोई भी गृहस्थ शास्त्र के हाथ नही लगाता था। फिर पढना तो दूर की बात थी। ऐसी कहावत प्रचलित करने का आशय यही था कि यदि श्रावक लोग शास्त्रो के जान कार हो जावेगे तो फिर हमारी पोल-पट्टी प्रकट हो जायगी और फिर हमे कोई पूछेगा नही। लोगो ने इनसे उक्त कहावत सुना कर कहा—शाहजी, आपका घर हरा-भरा है। जब इन सूत्रो के पढने से पुत्र मर जाने का भय है, तब आप इन्हे मत पढिये। लोकाशाह ने उन लोगो को उत्तर दिया—अश्लील कहानियो और पाप-वर्धक कथाओ के पढने से तो मरते नही और भगवान की वाणी जो प्राणिमात्र की कल्याण-कारिणी है—उसके पढने से मर जावेंगे ? मैं इस वहम मे आनेवाला नही हूँ। लोगो के बहकाने पर भी लोकाशाह ने शास्त्रो का पढना नही छोडा, बल्कि और अधिक लगन के साथ पढने लगे और अपने सम्पर्क मे आनेवाले लोगो को पढाने और सुनाने लगे। ज्यो-ज्यो वे आगे पढते गये, त्यो त्यो नवीन-नवीन तत्व उनको मिलते गये और उनके पढने-पढाने मे उन्हे भारी आनन्द आने लगा।

धर्मक्रान्ति का बिगुल

भाइयो, इधर तो उनके स्वाध्याय मे वृद्धि हो रही थी और दूसरी ओर मे उनके प्रति विरोध भी बढ रहा था। आखिर मे अटवाडा, सिरोही,

गिरनार, और पाटन इन चार स्थानो का सघ अहमदाबाद मे एकत्रित हुआ। उनमे मोतीजी, दयालजी आदि सैकडो व्यक्ति साथ थे। सघ को कहा गया कि हूँका बूढा (लोकाशाह) शास्त्र पढता है। सघ के अनेक प्रमुख लोग उनकी वाचना सुनने के लिए गये तो उन्हे बहुत आनन्द आया। वे लोग प्रतिदिन वाचना सुनने के लिए आने लगे। यात्रा-सघ मे शाह लखमशी भी थे। पाटन के कुछ व्यापारियो ने आकर सघवालो से कहा—आप लोग क्या देखते हो? लोकाशाह जो उत्पात मचा रहे है, उनको रोको। तब उन लोगो ने कहा—लोकाशाह छोटा बच्चा नही है जो यो ही रोकने से रुक जायगा। मै [illegible] जाऊगा और सब भ्रान्ति मिटा दूगा। अवसर पाकर लखमशी लोकाशाह से मिलने के लिए उनकी हवेली पर गये। लोकाशाह ने उनका समादर किया। लखमशी ने कहा—शाहजी, पहिले भी कई मत निकल गये है अब आपने यह कौतुक क्या शुरु किया है? उन्होने उत्तर दिया कि मुझे कोई नया मत नही निकालना है। आप शास्त्रो को सुनिये, तो आपका सब भ्रम मिट जायगा। यह कहकर लोकाशाह ने उन्हे आचाराग सूत्र सुनाया। शास्त्रो की वाचना सुनते ही वे आनन्द मे मग्न हो गये। उन्होने पूछा—आपने यह अनुपम ज्ञान कहा से पाया? लोकाशाह ने उत्तर दिया—भाई, यह भगवद्-वाणी तो ज्ञान का भडार है। इन शास्त्रो के स्वाध्याय से ही मैने यह कुछ थोडा-सा ज्ञान प्राप्त किया है। आप इनका स्वय स्वाध्याय कीजिए तो आपकी आखे खुल जायगी और पता चलेगा कि साधु का मार्ग क्या है और श्रावक का मार्ग क्या है? यह सुनकर लखमशी ने कहा—आप इस साधुमार्ग का और सत्यधर्म का उद्धार कीजिए। आप हमारे अग्रगामी बनिये, मै भी आपके साथ हूँ। लखमशी के आग्रह पर लोकाशाह सघ के साथ हो लिये और सारे सघ के लोग उनके अनुयायी बने। सघ तीर्थयात्रा के लिए आगे चला। जब वह सघ [illegible] स्थान पर पहुँचा और वर्षा काल आगया तो वहा कुछ दिन ठहरना पडा।

बन्धुओ, पहिले आवागमन के साधन आजकल के समान नही थे। बैलगाडियो [illegible] लोग यात्रा के लिए निकलते थे और एक ही तीर्थयात्रा मे [illegible] आते थे, क्योकि उस समय आजकल के समान सर्वत्र [illegible] नही थे। कच्चे मार्गो से जाना पडता था और जहा कही पानी बरस जाता था [illegible] दिन वहा ठहरना पडता था। जब मार्ग मे ठहरे हुए कई दिन [illegible] लोकाशाह ने कहा—[illegible]। सघपति [illegible] —महाराज,

वर्षा हो जाने से चारो ओर हरियाली हो रही है और केंचुआ-गिजाई, आदि अनेक प्रकार के त्रस जीव उत्पन्न हो रहे है, ऐसे समय मे सघ को कैसे रवाना किया जावे। जब वर्षा रुक जायगी और मार्ग भी उचित हो जायगा, तब आगे चलेंगे। यह सुनकर सघ के कुछ लोगो ने कहा—शाहजी, आप कोरे वृद्ध् है। अरे, धर्म के लिए जो हिंसा होती है, वह हिंसा नही है।

यह सुनकर लोकाशाह ने कहा—भाइयो जैनधर्म या वैष्णवधर्म कोई भी ऐसा नही कह सकता कि धर्म के लिए जीवघात करने पर हिसा नही है। जहर तो हसते हुए खावे तो भी मरेगा और रोते हुए खावे तो भी मरेगा। हिंसा तो हर हालत मे दु खदायी ही है। यह कहकर लोकाशाह सघ से वापिस लौट गये और अहमदाबाद मे जाकर कुछ विचारक पुरुषो को एकत्रित करके गोष्ठी की। उस समय पैतालीस प्रमुख व्यक्तियो ने कहा—धर्म के विषय मे अनेक मूढताएँ और भ्रम-पूर्ण धारणाएँ प्रचलित हो रही है, इनका निराकरण किये विना धर्म का उत्थान होना सभव नही है। उन लोगो ने लोकाशाह से कहा—शाहजी! केवल शास्त्र सुनाने से काम नही चलेगा। घर से वाहिर निकलो और लोगो को वतलाओ कि साधुपना इस प्रकार पाला जाता है और साधु की क्रिया और चर्या इस प्रकार की होती है। तभी दुनिया पर असर पडेगा और लोग धर्म का यथार्थ मार्ग जान सकेंगे। आप आगे हो जावे और हम सब आपके पीछे चलते हैं। उनकी वात सुनकर लोकाशाह ने कहा—भाइयो, मैं आप लोगो के प्रस्ताव से सहमत हू, आपके विचार सुन्दर और उत्तम हैं। परन्तु मैं अभी प्रचार करना नही चाहता हू, क्योकि श्रावक-द्वारा प्रचार मे सावद्य और निरवद्य सभी प्रकार के काम सभव हैं। मुनि बने विना निरवद्य प्रचार नही हो सकता। तव उन लोगो ने पूछा—हम किसके शिष्य बने? लोकाशाह ने कहा—भाई, भगवान का शासन पचम काल के अन्त तक चलेगा। अभी तो केवल दो हजार वर्ष ही व्यतीत हुए है। आप लोग योग्य गुरु की खोज कीजिए।

जिन दिनो ज्ञानजी स्वामी अहमदाबाद मे विचर रहे थे। उस समय वे लोग अहमदाबाद आये और लोकाशाह के सिवाय उन पैतालीस ही लोगो ने वि० स० १५२९ की वैशाख शुक्ला तीज—अक्षय तृतीया के दिन दीक्षा ले ली और दीक्षा लेकर अपने उपकारी का नाम अमर रखने के लिए उन्होने लोंकागच्छ की स्थापना की। इसके पश्चात् स० १५३६ मे चैत सुदी सप्तमी के दिन लोकाशाह ने दीक्षा ली। अव यहा दो मत है। कितने ही इतिहास-लेखको का मत है कि उन्होने दीक्षा नही ली, वे जीवन भर श्रावक धर्म ही

पालन करते रहे। और कुछ का मत है कि दीक्षा ली। किन्तु मेरे पास इस वात के प्रमाण हैं कि उन्होने दीक्षा ली और अनेको को दीक्षा दी। तत्पश्चात् वे दिल्ली गये और वहा चर्चा की और विजय प्राप्त करके पीछे वापिस आये।

दिल्ली से लौटने पर उन्होंने साधु-समाज मे फैल रहे भ्रष्टाचार की खुले रूप मे खरी समालोचना करना प्रारम्भ कर दिया। इससे उनके अनेक प्रवल विरोधी उत्पन्न हो गये। वि० स० १५४६ मे तेला की पारणा के समय विरोधियो ने उष्ण-जल के साथ अलवर मे विप दे दिया। उन्होने सोचा कि नेता के विना यह नया पथ समाप्त हो जायगा। पर आप लोग देखते है कि दयानन्द सरस्वती को जहर देकर मारदिया गया तो क्या आर्य-समाज समाप्त हो गया? एक सरस्वती मर गया तो अनेक सरस्वती-पुत्र उत्पन्न हो गये। कोई समझे कि व्यक्ति को मार देने से उसका पथ ही समाप्त हो जायगा, तो यह नही हो सकता। एक मारा जाता है तो आज करोडो की सख्या मे उनके अनुयायी सारे ससार मे फैले हुए हैं। जैसे यूरोप मे ईसा मसीह ने अपने धर्म की वेदी पर प्राण दिये हैं। उसी प्रकार भारत मे लोकाशाहने सत्य धर्म के प्रचार करने मे अपने प्राण दिये हैं। उस समय आज कल के समाचार पत्र आदि प्रचार के कोई भी साधन नही थे, किन्तु फिर भी सहस्रो व्यक्ति लोका-गच्छ के अनुयायी वने और आज तो आठ लाख के लगभग उनके मत के अनुयायी हैं।

लोकाशाह का विचार किसी नये मत को निकालने का नही था। उनकी तो भावना यही थी कि धर्म के ऊपर जो धूल आकर पड गई है, मैं उसे साफ कर दू। परन्तु उनके अनुयायियो ने उनके नाम से यह नाम चलाया है। यह कोई नया सम्प्रदाय नही है किन्तु आगमानुमोदित जैनधर्म का यथार्थ स्वरूपमात्र है।

लोकाशाह की परम्परा

लोकाशाह के वाद आठ पाट वरावर चले। फिर कुछ कमजोरी आगई तो श्रीमान लवजी, धर्मसिह जी, धर्मदास जी, और जीवराज जी जैसे सन्त पैदा हुए। उन्होने मुनि वनकर धर्म का प्रचार किया। आज सारे भारतवर्ष मे इन चारो सन्तो का ही परिवार फैला हुआ है। धर्मसिह जी का दरिया पुरी सम्प्रदाय हैं। लवजीऋषि का खभात और ऋषि सम्प्रदाय है। पजाव मे अमरसिह जी महाराज का सम्प्रदाय है और कोटा मे जीवराज जी के अनु-यायी साधुओ का सम्प्रदाय चला। जिसमे हुक्मीचन्द्र जी महाराज के पूज्य जवाहिरलाल जी, मन्नालाल जी, पूज्य शीतलदास जी, नानकराम जी, और तेजसिह जी हुए। और जो वाईस सम्प्रदाय कहलाती है वे हैं- धर्मदास जी

की। उनके ६६ शिष्य हुए। उनमे एक तो वे स्वय और इक्कीस अन्य शिष्यो का परिवार आज सब का सब श्रमण सघ मे सम्मिलित है। यद्यपि कितने ही सन्त उदासीन होकर आज अलग हो गये हैं, तथापि उन्हे कल श्रमण सघ मे मिलना पडेगा, क्योकि यह समय की पुकार है और एक होने का युग है। विना एक हुए काम नही चल सकेगा। पूर्वज कह गये हैं कि **'संघे शक्ति कलौ युगे'** अर्थात् इस कलियुग मे कोई एक व्यक्ति महान् काम नही कर सकता। किन्तु अनेक लोगो का सघ महान् काम कर सकेगा। जैसे एक-एक तृण मे शक्ति नगण्य होती है, पर वे ही मिल कर एक मोटी रस्सी के रूप मे परिणत होके मदोन्मत्त हाथियो को भी बाधने मे समर्थ हो जाते हैं। इसलिए बार-बार प्रेरणा करनी पडती है कि सब एक हो जावें। आज ये अलग हुए सन्त भले ही कहे कि हम एक साथ नही बैठेंगे, परन्तु समय सब को एक करके रहेगा। आज से कुछ पहिले रैंगर, चमार आदि हरिजनो (भगियो) के साथ बैठना पसन्द नही करते थे। परन्तु आज आप क्या देख रहे हैं ? आज काग्रेस के अध्यक्ष (जगजीवनराम) कौन हैं ? जो लोग पहिले मन्दिरो की देहली पर भी पैर नही रख सकते थे, वे ही हरिजन मन्दिरो मे प्रवेश कर रहे हैं और सरकारी संरक्षण के साथ जा रहे हैं और अनेक उच्च पदो पर आसीन है और सव पर शासन कर रहे है। इसलिए भाई, जो समय करायगा, वही सबको करना पडेगा। जो उससे पूर्व करेंगे, उनकी वाह-वाही होगी और यदि पीछे करेंगे तो फिर क्या है। आज सबके एक होने की आवश्यकता है, तभी समाज मे शक्ति रह सकेगी। यह श्रमणसघ कोई नया नाम नही है। जो साधु के दश धर्मो का पालन करे, वही श्रमण है। आज सप्रदायवादियो की दीवाले फट रही है—और थभे लगाते-लगाते भी गिर रही है। जिस सम्प्रदाय मे कुछ समय पूर्व दो तीन सौ साधु थे, उसमे आज दो-दो, तीन-तीन रह गये हैं। यद्यपि वे जागरूक हैं और कहते है कि हम इस सम्प्रदाय को चलावेंगे। पर मेरा तो सर्व सन्तो से यही निवेदन है कि यदि आप सब लोग मिलकर काम करेंगे तो आपका, श्रमण सघ का और सारे समाज का भला है। मैं तो सबको समान दृष्टि से देखता हू। जो हमारे साथ है, वे भी श्रमण हैं, जो हम से बाहिर है, वे भी श्रमण है, और जो हमसे अलग होकर चले गये है, वे भी श्रमण है। लाडू के सभी खेरे (दाने) मीठे हैं। यह हो सकता है कि किसी दाने पर चाशनी कम चढी हो और किसी पर अधिक। हलवाई ने तो सव पर समान ही चाशनी चढाने का प्रयत्न किया है। अत हम सबको एक होना आवश्यक है और यही समय की पुकार है।

दूसरा काम समाज के लोगो को करना है। समाज मे आज अनेक व्यक्ति वेकार हैं, आजीविका के साधनो से विहीन है, अनेक वृद्ध और अपग है तथा अनेक विधवा वहिनें ऐसी हैं, जिनके जीवन का कोई भी आधार नही हैं और महाजन होने के कारण घर से वाहिर निकल कर काम करने मे असमर्थ हैं। इन सवकी रक्षा का और जीविका-निर्वाह के साधन जुटाने का काम आप लोगो को करना है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने समाज के कमजोर वर्ग का सरक्षण करे और उनका स्थिरीकरण करे। इसके लिए भी सबको मिलकर और पर्याप्त पूजी एकत्रित कर काम करना चाहिए।

अभी अध्यक्ष महोदय ने कहा कि पापड की फैक्टरी खोली है। और उन्होने उसमे काफी मदद दी है, परन्तु एक व्यक्ति से सव कुछ होना सभव नही है। यह काम तो सारी समाज के सहयोग से ही हो सकेगा। आपके जोधपुर मे माहेश्वरी भाई कम हैं। परन्तु मुझे स्वय दाऊदयालजी ने कहा कि हम इतना देते हैं तो सुनकर आश्चर्य हुआ। आप लोग धन-सम्पन्न है और राज-सम्मानित है, फिर भी छोटी-छोटी सस्थाओ को आगे नही बढाते हैं। यह किसी एक-दो व्यक्ति का काम नही है, किन्तु सारी समाज का है। सव भाई हाथ वटा कर काम करेंगे तो काम के होने मे कोई देर नही हो सकती है। आज जो हमारे भाई कमजोर हैं, कल वे अच्छे हो जायेंगे, इसके लिए सवको प्रयत्न करना होगा। परन्तु क्या कहे, आप लोगो के भीतर अभी तक काम करने का तरीका नही आया है।

पर्युषण पर्व मे मैंने नौ जनो को खडा किया था। उन्होने कहा था कि हम काम करेंगे। इस से ज्ञात होता है कि उनमे काम करने की भावना है। वहा पर दो स्कूल चल रहे है और दोनो के एकीकरण का प्रस्ताव भी पास किया। वे दोनो मिलकर यदि एक हायर सैकेन्डरी स्कूल वन जावे, तो वहुत भारी काम हो सकता है। खर्चे की भी वहुत वचत हो और समाज के वालको को आगे नैतिकशिक्षा प्राप्त करने का भी सुअवसर प्राप्त हो, जो अलग-अलग रहने मे नही हो सकती है। लोग खर्च करने को भी तैयार हैं और मकान देने के लिए भी तैयार है। यदि भूमिका शुद्ध है और मन मे काम करने की लगन है, तो सब कुछ हो सकता है। पर इसके लिए सबको मिलकर ही काम करना चाहिए और प्रमुख लोगो को आगे आकर नेतृत्व करना चाहिए। बिना योग्य नेतृत्व के काम सुचारू रूप से [illegible] नही हुआ करते है।

आखो के आपरेशन के लिए शिविर लगाने का काम प्रारम्भ किया, और लिखा-पढी चल रही हैं। परन्तु जल्दी काम क्यो नही होता, क्योकि लोगो का सहयोग नही है। आप लोगो को व्यर्थ की बाते करने के लिए तो समय मिलता है, परन्तु समाज का काम करने के लिए समय नही मिलता है, यह आश्चर्य और दुःख की वात है। यही कारण है कि अच्छे काम होने से रह जाते है। इसलिए अब आप लोग एक दूसरे की आलोचना करना छोडें और आगे आवे। यदि आपके बालक और बालिकाएँ धर्म को पहिचानेगे तो धर्म की उन्नति होगी और आप लोगो का भी नाम रोशन होगा।

उपसहार

वन्धुओ, आज हमारे चातुर्मास का अन्तिम दिन है। इतने दिनो तक हम लोगो ने प्रात काल चौपाई और सूत्र सुनाये और व्याख्यान देकर आप लोगों का कर्तव्य भी बतलाया। बीच-बीच मे मैंने अपने हृदय के भाव भी आप लोगो के सामने रखे। कभी कडवे शव्दो मे और कभी मीठे शब्दो मे। यद्यपि साधु को मधुर शव्द ही कहना चाहिए। परन्तु कुछ कटु सत्य कहने की जो आदत पड गई है, वह अब जा नही सकती। पर इस सब मीठे-कडुए कहते समय एक ही भावना रही है कि आप लोगो का कुछ न कुछ भला हो। खरा कहने की जो जन्म-जात आदत है, वह जब आज सत्तर-अस्सी वर्ष से ऊपर का होने पर भी नही छूटी तो अब कैसे छूट सकती है? कडुवी बात कहते हुए मेरे हृदय मे आप लोगो के प्रति वैर या द्वेष भाव नही रहा है। न मैं किसी को नीचा दिखाना चाहता हू। मेरी तो सदैव यही भावना रहती है कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्ति ऊँचा उठे। आप लोग सामने है इसलिए आपसे वार-वार आग्रह किया है और प्रेरणा दी है कि आप लोग आगे आवे। जो आज नवयुवक हैं, वे वैसे ही न रहे, किन्तु आगे बढे। यदि नवयुवको मे नया खून आ जाय, जोश आ जाय और बूढो को होश आ जाय, तो फिर समाज और धर्म की उन्नति होने मे देर नही लग सकती है। आज लोकाशाह की जयन्ती पर मैंने जो कुछ अपने विचार रखे है, उन पर आप लोग अमल करने का प्रयत्न करे यही मेरा कहना है।

भाइयो, चातुर्मास सानन्द समाप्त हो रहा है, यह हमारे आपके सभी के लिए हर्ष की वात है। कल सुखे-समाधे विहार करने के भाव हैं। मेरा यही वार-वार कहना है कि सव लोग सगठित रूप मे रहे। कोई भाई न्यारा नही है। सारे सन्त मोतियो की माला हैं। परन्तु एक शर्त रखो कि महाराज साहव, आप किसी ओर रहे, परन्त सगठन को बुरा मत कहो। यदि वे श्रमण

सघ मे मिलते हैं तो लाख रुपये की वात है। यदि वाहिर रहकर कार्य करते हैं तो सवा लाख रुपये की वात है और यदि स्वतन्त्र रहकर सगठन का कार्य करते है तो डेढ लाख रुपये की वात है। कोई कही भी रहकर और किसी भी सघ मे मिलकर काम करे, पर एक ही आवाज सब ओर से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिए ही आनी चाहिए, मैत्रीभाव लेकर के आवे और सब मे मिलकर काम करें, यही भावना भरनी चाहिए।

वन्धुओ, कोई भी साधु किसी गच्छ या सम्प्रदाय का क्यो न हो, सबकी वाणी सुनना चाहिए और सबके पास जाना आना चाहिए। सुनने और जाने-आने मे कोई आपत्ति या हानि नही है। किन्तु जो सगठन का विरोध करे और कहे कि हम ही साहूकार हैं और सब चोर हैं, तो भाई, जो होगा उसे ही सब चोर दिखेंगे और वही सबको चोर कहेगा। और यदि वह साहूकार होगा, तो औरो को भी साहूकार कहेगा और भला वतलायगा। नया और धुला हुआ कपडा पहिनते हैं। उसमे यदि कदाचित् कीचड के छीटे लग जाते हैं, तो उसे क्या फाडकर फेंक देते हैं, या धोकर शुद्ध करते है। यदि कही किसी मे कोई कमजोरी दृष्टि गोचर हो तो उसे ठीक कर दो और यदि उचित जचे तो आगे वढने का प्रोत्साहन दे दो। सबको अपना उद्देश्य भी विशाल वनाना चाहिए और विचार भी उच्च रखना चाहिए।

अन्त मे एक आवश्यक वात और कहना चाहता हू कि यहा पर मनुष्यो की तो हितकारिणी सभा है और श्रावक सघ भी है। परन्तु वहिनो मे तो कोई भी सभा आदि नही है। मैं चाहता हू कि यहा पर एक वर्धमान स्थानकवासी महिला-मडल की स्थापना हो। यहा की अनेक वहिनें अच्छी पढी-लिखी और वी० ए० एम० ए० पास हैं और होशियार हैं। वे महिला-समाज मे जागृति का काम करे, कुरीतियो का निवारण करें और दिन पर दिन वढती हुई इस सत्यानाशी दहेज प्रथा को वन्द करने के लिए आगे आवे। मैं जहा तक जानता हू, लडके की मा को पुत्रवधू के घर से भर पूर दहेज पाने की उत्कट अभिलाषा रहती हैं। पर जव स्वय उनके सिर पर वीतती है, तव क्या सोचती हैं? इसका हमारी वहिनो को विचार होना चाहिए। पढी-लिखी लडकियो को चाहिए कि दहेज मागनेवालो को समाज का घातक व राक्षस समझें और ऐसे विवाहो का वहिष्कार कर देवे। यदि यह भावना इनमे आ जाय और ये स्त्री समाज-सुधार का वीडा हाथ मे उठा लें तो आधा काम रह जाय। आप वहिनो मे अनेक वहिनें काम करने जैसी है। यदि काम करने की लगन हो तो पच्चीस-

पचास बहिने खडी हो जाये। इससे तुम्हारा विकास होगा। आज उन्नति करने का समय है। अब जार्जेट, और चूदडी पहिनने का जमाना नही है। यह हसने का समय नही, किन्तु रोने का समय है। अब गहनो से और फैशनवाले कपडो से मोह छोडो। गुण्डे बढ रहे हैं। क्षण भर मे चाकू मारकर सब छीन लेगे। अभी अखबार मे पढा है कि चार करोडपति मोटर मे बैठकर जाने वाले थे। उनके मोटर मे बैठते ही गुडो ने आकर छुरे भोक दिये और माल-मत्ता लेकर चम्पत हो गये। इसलिए आप लोग सौगध ले लो कि सादगी से रहेगे और जोश और होश के साथ अपने आप को इस योग्य बनायेंगे कि गुण्डे उनकी ओर देखने का साहस भी नही कर सकेंगे। अतएव आप लोग अब समाज मे काम करने की प्रतिज्ञा करे। जो बहिने पढी-लिखी और उत्साह-सम्पन्न हैं, उन्हे अपना अगुआ बनाओ और सब उनके साथ हो जाओ। अब यदि आप लोगो की इच्छा कुछ काम करने की हो तो आज का दिन बहुत उत्तम है। अपने मे से एक को मत्री बना लो और फिर एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष, एक कोपाध्यक्ष और इकतीस सदस्यो को चुन लो और उनके नाम भेज दो। समाज मे काम कैसे किया जाता है, यह बात सघ के मत्री और अध्यक्ष से सीखो।

आज आप लोग पुरानी रूढियो और थोथी लोक-लाज को छोडे। मुझे सुनकर हसी आती है जब कोई बहिन कहती है कि मुझे सातसौ थोकडे याद हैं और मतलब एक का भी नही समझती है। ऐसे थोथे थोकडे याद करने मे क्या लाभ है। लाभ तो तब हो—जब कि आप लोग उनका अर्थ समझे और उनके अनुसार कुछ आचरण करे। यदि हमारी बहिनो ने महिला मडल की स्थापना कर कुछ समाज-जागृति और कुरीति-निवारण का काम प्रारम्भ किया तो मेरे चार मास तक बोलने का मुझे पुरस्कार मिल जायगा। आप लोग उक्त कार्य के लिए जितनी और जैसी भी मदद चाहेगी, वह सब आप लोगो को पुरुष-समाज की ओर से मिलेगी। वैसे आप लोग स्वय सम्पन्न है और गृहलक्ष्मी है। फिर भी समुचित आर्थिक सहायता श्री सघ से आपको मिलेगी। अब यदि कोई कहे कि हमे तो बाहिर आते और बोलते लाज आती है, तो उनसे मेरा कहना है कि पहिले तो आप लोग चाँदणियो मे आती थी और आज दो-दो हाथ के ओढने ओढकर आती हो, तो क्या इसमे लाज नही आती है? यदि नही, तो फिर काम करने मे लाज आने की क्या बात है? इसलिए अब आप लोग तैयार हो जावे और निर्भीकता और शूरवीरता दिखाकर काम करे। मैंने सबसे कह दिया है। ये सब बैठे हुए लडके-लडकिया आपकी ही सन्तान है। यदि आप लोग मिल कर काम करेंगी तो इन सबका भी सहयोग मिलेगा। फिर देखोगी कि सदा आनन्द ही आनन्द है।

कल मादलिया का सघ मेरी आंखो के आपरेशन कराने की विनती करने आया है। उनसे यही कहना है कि यदि डाक्टर कह देगा कि आपरेशन कराना आवश्यक है और मुझे सुख-समाधि रही तो मेरी भावना मादलिये मे कराने की है कल सुखे-समाधे विहार करने का भाव है। प्रातकाल प्रार्थना करेंगे और साढे आठ बजे विहार का विचार है। यहा चल कर सोजतिया गेट के बाहिर जहा ठीक स्थान मिल जायगा वहा जाने का भाव है। उसके बाद कोठारी हरकचद जी के मकान मे जाने का भाव है। पुन नवमी रोड पर इन्द्रमल जी के यहा भी जाने का विचार है तथा सूरसागर और महामन्दिर वा विद्यामन्दिर जाने के भी भाव हैं। ऐसा प्रोग्राम है। फिर कल जैसी समाधि रही वैसे वैसे ही जाने का भाव रखता हू।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १५
जोधपुर

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन-समिति का साहित्य

क्र.	पुस्तक	मूल्य
१	श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन-ग्रन्थ	मूल्य २५)
२	श्री पाण्डव यशोरसायन (महाभारत पद्य)	१०)
३	श्रीमरुधर केसरी ग्रन्थावली, प्रथमभाग	५) ४० पैसा
४	,, ,, द्वितीय भाग	७)५० पैसा
५	जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेषण	१०)
६	जीवन-ज्योति	५)
७	साधना के पथ पर	५)
८	प्रवचन-प्रभा	५)
९	धवल ज्ञान-धारा	५)
१०	सकल्प-विजय	२)
११	सप्त-रत्न	२)
१२	मरुधरा के महान् सत	२)
१३	हिम्मत-विलास	२)
१४	सिहनाद	१)
१५	बुध-विलास प्रथम भाग	१)
१६	,, द्वितीय भाग	१)
१७	श्रमण सुरतरु चार्ट	५)
१८	मधुर पचामृत	१)
१९	पतगसिह चरित्र	५० पैसा
२०	श्री बसत माधुमजूघापा	५० पैसा
२१	आषाढभूति	२५ पैसा
२२	भविष्यदत्त	२५ पैसा
२३	सच्ची माता के सपूत	१)
२४	तत्त्वज्ञान तरगिणी	१)
२५	लमलोटका लफदर	२५ पैसा
२६	भायलारो भिरु	२५ पैसा
२७	टणकाइ रो तीर	२५ पैस
२८	सच्चा सपूत	२५ पैसा
२९	पद्यमय पट्टावली	१)
३०	जिनागम सगीत	५० पैसा
३१	अद्भुत योगी	१)
३२	क्षमामूर्ति भूधर	१)

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति

(प्रवचन प्रकाशन विभाग)

सदस्यों की शुभ नामावली

विशिष्ट-सदस्य

१ श्री घीसुलाल जी मोहनलाल जी सेठिया, मैसूर
२ श्री वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सेला (सोजत-सिटी)
३ श्री रेखचन्द जी साहब राका, मद्रास (वगडी-नगर)
४ श्री वलवतराज जी खाटेड, मद्रास (वगडी-नगर)
५ श्री नेमीचन्द जी वांठिया, मद्रास (वगडी-नगर)
६ श्री मिश्रीमल जी लूकड, मद्रास (वगडी-नगर)
७ श्री माणकचन्द जी कात्रेला, मद्रास (वगडी-नगर)
८ श्री रतनलाल जी केवलचन्द जी कोठारी, मद्रास (निम्बोल)
९ श्री अनोपचन्द जी किशनलालजी बोहरा, अटपडा
१० श्री गणेशमल जी धीवसरा, मद्रास (पूजनू)

प्रथम-श्रेणी

१ मै० वी सी ओसवाल, जवाहर रोड, रत्नागिरी (सिरियारी)
२ शा० इन्दरसिंह जी मुनोत, जालोरी गेट, जोधपुर
३ शा० लादूराम जी छाजेड, ब्यावर (राजस्थान)

४ शा० चम्पालाल जी डूगरवाल, नगरथपेठ, वेगलोर सिटी (करमावास)

५ शा० कामदार प्रमराज जी, जुमामस्जिद रोड, वेगलोर सिटी (चावडिया)

६ शा० चादमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर, मद्रास, ११ (चावडिया)

७ जे. बस्तीमल जी जैन, जयनगर वेगलोर ११ (पुजलू)

८ शा० पुखराज जी सीसोदिया, व्यावर

९ शा० बालचद जी रूपचन्द जी वाफना,

११८/१२० जवेरीवाजार वम्वई–२ (सादडी)

१० शा० बालावगस जी चम्पालाल जी वोहरा, राणीवाल

११ शा० केवलचन्द जी सोहनराज वोहरा, राणीवाल

१२ शा० अमोलकचदजी धर्मीचन्दजीआच्छा,वडीकाचीपुरम्, मद्रास(सोजतरोड)

१३ शा० भूरमल जी मीठालाल जी वाफना, तिरकोयलूर, मद्रास (आगेवा)

१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादडी)

१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम्, मद्रास (सेवाज)

१६ शा० सिमरतमल जी सखलेचा, मद्रास (बीजाजी का गुडा)

१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (कालू)

१८ शा० गूदडमल जी शातिलाल जी तलेसरा, एनावरम्, मद्रास

१९ शा० चम्पालाल जी नेमीचन्द जबलपुर (जैतारण)

२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर, व्यावर

२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, कूपल (मारवाड-मादलिया)

२२ शा० हीराचन्द जी लालचन्द जी धोका, नक्साबाजार, मद्रास

२३ शा० नेमीचन्द जी धर्मीचन्द जी आच्छा, चगलपेट, मद्रास

२४ शा० एच० घीसुलाल जी पोकरना, एन्ड सन्स, आरकाट—N A D T. (बगडी-नगर)

२५ शा० गीसुलाल जी पारसमलजी सिंघवी, चागलपेट, मद्रास

२६ शा० अमोलकचन्द जी भवरलाल जी विनायकिया, नक्शावाजार, मद्रास

२७ शा० पी० बीजराज नेमीचन्दजी धारीवाल, तीरुवेलूर

२८ शा० रूपचन्द जी माणकचन्द जी वोरा, बुशी

२९ शा० जेठमल जी राणमल जी सर्राफ, वुशी

३० शा० पारसमल जी सोहनलालजी सुराणा कुंभकोणम्, मद्रास

३१ शा० हस्तीमल जी मुणोत, सिकन्दरावाद (आन्ध्र)

३२ शा० देवराज जी मोहनलाल जी चौधरी, तीरुकोईलूर, मद्रास

३३ शा० वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सोजतसिटी

३४ शा० गेवरचन्द जी जसराज जी गोलेछा, वेंगलोरसिटी

३५ शा० डी० छगनलाल जी नौरतमल जी वव, वेंगलोरसिटी

३६ शा० एम० मगलचन्द जी कटारिया, मद्रास

३७ शा० मगलचन्द जी दरडा % मदनलालजी मोतीलालजी,
शिवराम पेंठ, मैसूर

३८ पी० नेमीचन्द जी धारीवाल, N क्रास रोड, रावर्टसन पेंठ, K G F

३९ शा० चम्पालाल जी प्रकाशचन्द जी छलाणी न० ५७ नगरथ पेंठ, वेंगलूर-२

४० शा० आर विजयराज जागडा, न० १ क्रासरोड, रावर्टसन पेंठ, K.G F

४१ शा० गजराज जी छोगमल जी, रविवार पेंठ ११५३, पूना

४२ श्री पुखराज जी किशनलाल जी तातेड, पोट-मार्केट, सिकन्द्रावाद–A P

४३ श्री केसरीमल जी मिश्रीमल जी आच्छा, वालाजावाद-मद्रास

४४ श्री कालूराम जी हस्तीमल जी मूथा, गाधीचौक-रायचूर

४५ श्री वस्तीमल जी सीरेमल जी धुलाजी, पाली

४६ श्री सुकनराज जी भोपालचन्द जी पगारिया, चिकपेट वगलोर–५३

४७ श्री विरदीचन्द जी लालचन्द जी मरलेचा, मद्रास

४८ श्री उदयराज जी केवलचन्द जी वोहरा, मद्रास (वर)

४९ श्री भवरलाल जी जवरचन्द जी दूगड, कुरडाया

द्वितीय श्रेणी

१ श्री लालचन्दजी श्रीश्रीमाल, व्यावर

२ श्री सूरजमल जी इन्दरचन्द जी सकलेचा, जोधपुर

३ श्री मुन्नालाल जी प्रकाशचन्द जी नम्वरिया, चोधरी चौक, कटक

४ श्री घेवरचन्द जी रातडिया, रावर्टसनपेंठ

५ श्री वगतावरमल जी अचलचन्द जी खीवसरा ताम्बरम्, मद्रास

६ श्री छोतमल जी सायबचन्द जी खीवसरा, वौपारी

७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जो भडारी, नीमली

८ श्री माणकचन्द जी गुलेछा, व्यावर

९ श्री पुखराज जी वोहरा, राणीवाल वाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

१० श्री धर्मीचन्द जी बोहरा, जुठावाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

११ श्री नथमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चडावल

१२ श्री पारसमल जी शान्तीलाल जी ललवाणी, बिलाडा

१३ श्री जुगराज जी मुणोत मारवाड जक्शन

१४ श्री रतनचन्द जी शान्तीलाल जी मेहता, सादडी (मारवाड)

१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भडारी, बिलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी नेमीचन्द जी कटारिया, बिलाडा

१७ श्री गुलाबचन्द जी गभीरमल जी मेहता, गोलवड
[तालुका डेणु—जि० थाणा (महाराष्ट्र)]

१८ श्री भवरलाल जी गौतमचन्द जी पगारिया, कुशालपुरा

१९ श्री चनणमल जी भीकमचन्द जी राका, कुशालपुरा

२० श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा

२१ श्री सतोकचन्द जी जवरीलाल जी जामड,
१४६ बाजार रोड, मदरानगतम

२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोणम्

२३ श्री धरमीचन्द जी ज्ञानचन्द जी मूथा, वगडीनगर

२४ श्री मिश्रीमल जी नगराज जी गोठी, विलाडा

२५ श्री दुलराज जी इन्दरचन्द जी कोठारी
११४, तैयप्पा मुदलीस्ट्रीट, मद्रास-१

२६ श्री गुमानलाल जी मागीलाल जी चौरडिया चिन्ताधरी पैठ मद्रास-१

२७ श्री सायरचन्द जी चौरडिया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१

२८ श्री जीवराज जी जवरचन्द जी चौरडिया, मेडतासिटी

२९ श्री हजारीमल जी निहालचन्द जी गादिया, १९२ कोयम्तूर, मद्रास
३० श्री केसरीमल जी झूमरलाल जी तलेसरा, पाली
३१ श्री धनराज जी हस्तीमल जी सचेती, कावेरीचाक
३२ श्री सोहनराज जी शान्तिप्रकाश जी सचेती, जोधपुर
३३ श्री भवरलाल जी चम्पालाल जी सुराना, कानावना
३४ श्री मागीलाल जी शकरलाल जी भसाली,
२७ लक्ष्मीअमन कोयल स्ट्रीट, पैरम्बूर मद्रास-११
३५ श्री हेमराज जी शान्तिलाल जी सिंघी,
१' बाजाररोड रायपेठ मद्रास-१४
३६ शा० अम्बुलाल जी प्रेमराज जी जैन, गुडियातम
३७ शा० रामसिंह जी चोधरी, व्यावर
३८ शा० प्रतापमल जी मगराज जी मलकर—केसरीसिंह जी का गुडा
३९ शा० सपतराज जी चौरडिया, मद्रास
४० शा० पारसमल जी कोठारी, मद्रास
४१ शा० भीकमचन्द जी चौरडिया, मद्रास
४२ शा० शान्तिलाल जी कोठारी, उतशेटे
४३ शा० जव्वरचन्द जी गोकलचन्द जी कोठारी, व्यावर
४४ शा० जवरीलाल जी धरमीचन्द जी गादीया, लाविया
४५ श्री सेंसमल जी धारीवाल, वगडीनगर (राज०)
४६ जे० नोरतमल जी वोहरा, १०१८ के० टी० स्ट्रीट, मैसूर-१
४७ उदयचन्द जी नोरतमल जी मूथा
c/o हजारीमल जी विरधीचन्द जी मूथा, मेवाडी बाजार, व्यावर
४८ हस्तीमल जी तपस्वीचन्द जी नाहर, पो० कोनाना (जोधपुर)
४९ श्री आर पारसमल जी लुणावत, ४१-बाजार रोड, मद्रास
५० श्री मोहनलाल जी मीठालाल जी, बम्बई-३
५१ श्री पारसमल जी मोहनलाल जी पोरवाल, बेंगलोर
५२ श्री मीठालाल जी ताराचन्द जी छाजेड, मद्रास

५३ श्री अनराज जी शातिलाल जी विनायकिया, मद्रास-११

५४ श्री चान्दमल जी लालचन्द जी ललवाणी, मद्रास-१४

५५ श्री लालचन्द जी तेजराज जी ललवाणी, त्रिकोयलूर

५६ श्री सुगनराज जी गौतमचन्द जी जैन, तमिलनाडु

५७ श्री के० मागीलाल जी कोठारी, मद्रास-१६

५८ श्री एस० जवरीलाल जी जैन, मद्रास-५२

५९ श्री केसरीमल जी जुगराज जी सिंघवी, बैंगलूर-१

६० श्री सुखराज जी शान्तिलाल जी साखला, तीरुवल्लुर

६१ श्री पुकराज जी जुगराज जी कोठारी, मु० पो० चावडिया

६२ श्री भवरलाल जी प्रकाशचन्द जी वग्गाणी, मद्रास

६३ श्री रूपचन्द जी वाफणा, चडावल

६४ श्री पुखराज जी रिखबचन्द जी राका, मद्रास

६५ श्री मानमल जी प्रकाशचन्द जी चोरडिया, पीचियाक

६६ श्री भीखमचन्द जी शोभागचन्द जी लूणिया, पीचियाक

६७ श्री जैवतराज जी सुगनचन्द जी वाफणा, बैंगलोर (कुशालपुरा)

६८ श्री घेवरचन्द जी भानीराम जी चाणोदिया, मु० इसाली

तृतीय श्रेणी

१ श्री नेमीचन्द जी कर्णावट, जोधपुर

२ श्री गजराज जी भडारी, जोधपुर

३ श्री मोतीलाल जी सोहनलाल जी बोहरा, ब्यावर

४ श्री लालचन्द जी मोहनलाल जी कोठारी, गोठन

५ श्री सुमेरमलजी गाधी, सिरियारी

६ श्री जवरचन्द जी बम्ब, सिन्धनूर

७ श्री मोहनलाल जी चतर, ब्यावर

८ श्री जुगराज जी भवरलाल जी राका, ब्यावर

९ श्री पारसमल जी जवरीलाल जी धोका, सोजत

१० श्री छगनमल जी बस्तीमल जी बोहरा, ब्यावर

११ श्री चनणमल जी धानचन्द जी खीवसरा, सिरियारी

१२ श्री पन्नालाल जी भवरलाल जी ललवाणी, बिलाडा

१३ श्री अनराज जी लिखमीचन्द जी ललवाणी, आगेवा

१४ श्री अनराज जी पुखराज जी गादिया, आगेवा

१५ श्री पारसमल जी धरमीचन्द जी जागड, बिलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी धरमीचन्द जी खाराबाल, कुशालपुरा

१७ श्री जवरचन्द जी शान्तिलाल जी बोहरा, कुशालपुरा

१८ श्री चम्पालाल जी हीराचन्द जी गुन्देचा, सोजतरोड

१९ श्री हिम्मतलाल जी प्रेमचन्द जी माकरिया, साडेराव

२० श्री पुखराज जी रिखबाजी साकरिया, साडेराव

२१ श्री बाबूलाल जी दलीचन्द जी बरलोटा, फालना स्टेशन

२२ श्री मागीलाल जी सोहनराज जी राठोड, सोजतरोड

२३ श्री मोहनलाल जी गाधी, केसरसिंह जी का गुडा

२४ श्री पन्नालाल जी नथमल जी भसाली, जाजणवास

२५ श्री शिवराज जी लालचन्द जी बोकडिया, पाली

२६ श्री चान्दमल जी हीरालाल जी बोहरा, ब्यावर

२७ श्री जसराज जी मुन्नीलाल जी मूथा, पाली

२८ श्री नेमीचन्द जी भवरलाल जी डक, सारण

२९ श्री ओटरमल जी दीपाजी, साडेराव

३० श्री निहालचन्द जी कपूरचन्द जी, साडेराव

३१ श्री नेमीचन्द जी शान्तिलाल जी सीसोदिया, इन्द्रावड

३२ श्री विजयराज जी आणदमल जी सीसोदिया, इन्द्रावड

३३ श्री लूणकरण जी पुखराज जी लूकड, बिग-बाजार, कोयम्बतूर

३४ श्री किस्तूरचन्द जी सुराणा, कालेजरोड कटक (उडीसा)

३५ श्री मूलचन्द जी बुधमल जी कोठारी, बाजार स्ट्रीट, मण्ड्या

३६ श्री चम्पालाल जी गौतमचन्द जी कोठारी, गोठन स्टेशन

३७ श्री कन्हैयालाल जी गौतमचन्द जी [illegible], मद्रास ([illegible])

३८ श्री मिश्रीमल जी साहिबचन्द जी गाधी, केसरसिंह जी का गुडा
३९ श्री अनराज जी बादलचन्द जी कोठारी, खवासपुरा
४० श्री चम्पालाल जी अमरचन्द जी कोठारी, खवासपुरा
४१ श्री पुखराज जी दीपचन्द जी कोठारी, खवासपुरा
४२ शा० सालमसींग जी ढाबरिया, गुलाबपुरा
४३ शा० मिट्ठालाल जी कातरेला, ब्रगडीनगर
४४ शा० पारसमल जी लक्ष्मीचन्द जी काठेड, ब्यावर
४५ शा० धनराज जी महावीरचन्द जी खींवसरा, बैंगलोर ३०
४६ शा० पी० एम० चोरडिया, मद्रास
४७ शा० अमरचन्द जी नेमीचन्द जी पारसमल जी नागोरी, मद्रास
४८ शा० वनेचन्द जी हीराचन्द जी जैन, सोजतरोड, (पाली)
४९ शा० झूमरमल जी मागीलाल जी गूंदेचा, सोजतरोड (पाली)
५० श्री जयन्तीलाल जी सागरमल जी पुनमिया, सादडी
५१ श्री गजराज जी भडारी एडवोकेट, बाली
५२ श्री मागीलाल जी रैड, जोधपुर
५३ श्री ताराचन्द जी बम्ब, ब्यावर
५४ श्री फतेहचन्द जी कावडिया, ब्यावर
५५ श्री गुलाबचन्द जी चोरडिया, विजयनगर
५६ श्री सिंधराज जी नाहर, ब्यावर
५७ श्री गिरधारीलाल जी कटारिया, सहवाज
५८ श्री मीठालाल जी पवनकवर जी कटारिया, सहवाज
५९ श्री मदनलाल जी सुरेन्द्रराज जी ललवणी, बीताडा
६० श्री विनोदीलाल जी महावीरचन्द जी मकाणा, ब्यावर
६१ श्री जुगराज जी सम्पतराज जी बोहरा, मद्रास
६२ श्री जीवनमल जी पारसमल जी रेड, तिरुपति (आ० प्रदेश)
६३ श्री बकतावरमल जी दानमल जी पूनमिया, सादडी (मारवाड)
६४ श्री मैं० चन्दनमल पगारिया, ओरगाबाद

६५ श्री जवतराज जी सज्जनराज जी दुगड, कुरडाया

६६ श्री वी० भवरलाल जैन, मद्रास (पाटवा)

६७ श्री पुखराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, वेडकला

६८ श्री आर० प्रसन्नचन्द चोरडिया, मद्रास

६९ श्री मिश्रीलाल जी सज्जनलाल जी कटारिया, सिकन्द्राबाद

७० श्री मुकनचन्द जी चादमल जी कटारिया, इलकल

७१ श्री पारसमल जी कातीलाल जी वोरा, इलकल

७२ श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी जैन (पाली) वैंगलूर

● ●

श्री मरुधरकेसरी जी म० का

प्रवचन-साहित्य

जीवन-ज्योति

प्रवचन माला पुष्प ३

प्रवचन १४

पृष्ठ सख्या : ३२४

प्लास्टिक कवरयुक्त मूल्य : ५) रु०

प्रकाशन वर्ष
वि०स० २०२३
पौष कृष्णा प्रतिपदा

'जीवन ज्योति' सचमुच मे जीवन को ज्योतिर्मय वनानेवाले और **आत्म ज्योति** को, प्रज्वलित करने वाले महत्वपूर्ण प्रवचनो का सकलन है। इन प्रवचनो मे श्रद्धेय गुरुदेव की वाणी का स्वर—जीवन-स्पर्शी रहा है। जीवन का रहस्य समझाकर मनुष्य को **अपना मूल्यांकन** करने की प्रेरणा दी गई है। **असली और नकली आभूषणो** का अन्तर बताकर असली आभूषण, सत्य, दया, प्रेम, परोपकार आदि से जीवन को अलकृत करके **जन से सज्जन** और सज्जन से महाजन बनने का महत्व पूर्ण घोष इन प्रवचनो मे मुखरित हो रहा है।

प्रवचनो की भाषा बडी सरल है, प्रवाह पूर्ण है। विषय सीधा हृदय को छूता है। ये प्रवचन जोधपुर (वि० स० २०२७) के चातुर्मास मे श्रावण महीने मे दिये गये हैं।

अनेक पत्र पत्रिकाओ व विद्वानो ने और सत-प्रवरो ने पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशसा की है और सग्रहणीय बताई है।

साधना के पथ पर

प्रवचन माला, पुष्प ४

प्रवचन १७

पृष्ठ सख्या : ३३६

प्लास्टिक कवर युक्त मूल्य ५) रु०

प्रकाशन वर्ष वि०स० २०२९
अक्षय तृतीया

साधना का पथ—काटो की राह है, तलवार की पैनी धार है—इस पथ पर बढने के लिए प्रथम जीवनज्योति को जागृत करना होगा, फिर 'आत्म विकास का मार्ग' मिलेगा, साधना की पृष्ठ भूमि तैयार करनी होगी, सरलता, ऋजुता के बल पर। आत्मा और शरीर का पृथक्त्व—भेदविज्ञान समझना होगा, भेद विज्ञान से ही ध्यान मे स्थिर योग आता है, तभी आत्मदर्शन होगा, आत्मद्रष्टा ही वीतराग बन सकता है, वही स्वय स्वतत्र होगा और विश्व को स्वतत्रता का सच्चा सदेश सुना सकेगा—साधना पथ के इन विविध अगो का सुन्दर, सरल और जैन आगमो के रहस्य से भरा विवेचन इन प्रवचनो मे प्राप्त होता है।

इन प्रवचनो को पढने से जीवन का लक्ष्य स्थिर हो जाता है, साधना का पथ बहुत ही सरल और स्पष्ट दीखने लगता है। साधना पथ पर बढने के लिए त्याग, वैराग्य सयम और ध्यान-समाधि की ओर गतिशील होने के लिए इस पुस्तक का पठन-पाठन अत्यत उपयोगी है।

श्री मरुधर केसरी जी महाराज साहब के जोधपुर चातुर्मास मे प्रदत्त प्रवचनो का यह दूसरा सकलन है। यह पुस्तक सर्वत्र समादरणीय एव सग्रहणीय हुई है।

जैनधर्म में तप :

स्वरूप

और

विश्लेषण

प्रवचन माला, पुष्प ५ | तीन खण्डो में २३ अध्याय
४ महत्व पूर्ण परिशिष्ट | सम्पादक श्रीचन्द सुराना 'सरस'
पृष्ठ सख्या : ६१६ | प्लास्टिक कवर युक्त मूल्य १०) रु०

'तप' जैन धर्म का प्राण है, उसका सर्वांग सुन्दर अतिसूक्ष्म एव अति गभीर विवेचन जैनधर्म के अनेकानेक ग्र थो मे किया गया है ।

तप सम्बन्धी समस्त जैन साहित्य का सारभूत विवेचन और सरल-सरस भाषा शैली मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत पुस्तक मे किया गया है। श्री मरुधरकेसरीजी महाराज साहब के सपूर्ण प्रवचन साहित्य का दोहन करके तपसम्बन्धी प्रवचनो को यथाक्रम रखा गया है, और उसके बाह्य-आभ्यन्तर भेदो का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है ।

पुस्तक की भूमिका लिखते हुए उपाध्याय श्री अमर मुनि जी ने लिखा है—"जिज्ञासु साधक को इस एक ही पुस्तक मे वह सब कुछ मिल जाता है, जो वह 'तप' के सम्बन्ध मे जानना चाहता है ।" 'तप' के सम्बन्ध मे यह एक अद्वितीय पुस्तक है ।

अनशन आदि बाह्य तप, तथा प्रायश्चित्त, विनय, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि आभ्यन्तर तप का विवेचन खूब विस्तार के साथ किया गया है। साथ ही तपोजन्य लब्धिया, जैन व जैनेतर ग्र थो मे तप का स्वरूप, सज्ञान तप, सकाम तप आदि विविध विषय पर बडा ही गभीर चितन इस पुस्तक मे मिलता है ।

विद्वानो, तत्वद्रष्टा मुनिवरो तथा विविध पत्र-पत्रिकाओ ने इस पुस्तक की मुक्त कठ से प्रशसा की है ।' ★

प्रवचन-प्रभा

प्रवचन माला, पुष्प ६

प्रवचन : १७

पृष्ठ सख्या ३४८

प्लास्टिक कवर युक्त

मूल्य ५)रु०

प्रकाशन वर्ष
वि०स० २०२६ कार्तिक पूर्णिमा

●

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आंख है, इसी प्रथम सूत्र को लेकर प्रवचनो की यह शृ खला चलती है जिसमे ज्ञान के साथ सम्यक्श्रद्धा, श्रद्धा से सुख-दुःख मे समता, मोह को जीतने के उपाय, धर्म का स्वरूप, क्षमापना, सगठन, आत्म-जागृति, साधना के तीन मार्ग आदि विविध विषयो का विशद विवेचन 'प्रवचन प्रभा' मे हुआ है।

श्री मरुधर केसरी जी महाराज साहब के प्रवचनो मे स्पष्टता, सजगता और वस्तु को विविध दृष्टातो के साथ प्रतिपादन करने की अद्भुत क्षमता है। जब पढने लगते हैं तो उपन्यास का सा आनन्द आता है। सुनने लगते है तो जैसे शाति के सरोवर मे गोते लगाने लगते हैं।

जोधपुर चातुर्मास के ये प्रवचन सगठन, क्षमापना आदि सामयिक विषयो पर बडे ही नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं।

★
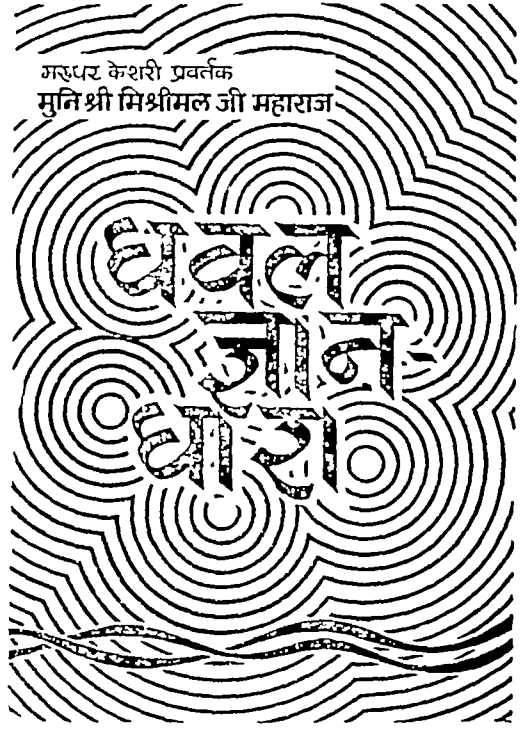
धवल ज्ञान-धारा-नाम से ही यह ध्वनित होता है कि इन प्रवचनो का मुख्य विषय ज्ञान की शुभ्र-निर्मल धारा ही है।

स्वभाव-रमण, आत्म-सिद्धि, समाधि प्राप्त करने का साधन, ऊर्ध्व मुखी चितन, आज के बुद्धिवादी, कर्मयोग, समन्वयवाद जैसे ज्ञान-प्रधान विषयो पर गुरुदेव का सूक्ष्म एव तर्क पूर्ण चिंतन इन प्रवचनो मे स्पष्ट झलकता है।

ये प्रवचन भी जोधपुर चातुर्मास मे सकलित किये गये है। इन प्रवचनो मे कही-कही ऐतिहासिक दृष्टात एव लोककथाए बडी रोचक शैली मे आई है। मनुष्य जीवन मे ज्ञान का महत्व, ज्ञान प्राप्ति के उपाय आदि विषय भी प्रस्तुत पुस्तक मे बहुत सुन्दर ढग से प्रतिपादित किये गये हैं।

★

प्रवचन-सुधा

प्रवचन माला, पुष्प ८

प्रवचन ३०

पृष्ठ सख्या ४१२

प्लास्टिक कवर युक्त

मूल्य . ८)रु०

प्रकाशन वर्ष

वि०स० २०३० .

आषाढ़ी पूर्णिमा

●

पूज्य मरुधरकेसरीजी महाराज साहब के जोधपुर चातुर्मास (वि० स० २०२७) के प्रवचनो की यह पाचवी पुस्तक है। इसमे ३० प्रवचन सकलित हुए है।

प्रवचनो के विषय की विविधता को देखते हुए कहा जा सकता है कि इसमे इन्द्रधनुषी प्रवचन है। आत्मा, परमात्मा, एकता, सगठन विचारो की उदारता, दृढता, समता, सहिष्णुता, मनकी पवित्रता, आस्था, ज्ञान, भक्ति आदि विभिन्न विषयो पर बडे ही सुन्दर और भावोत्तेजक प्रवचन है।

दीपावली पर उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन स्वरूप एक ही प्रवचन मे सम्पूर्ण उत्तराध्ययन का सक्षिप्त सार परिचय, रूप चतुर्दशी को स्वरूप दर्शन की भूमिका बनाना और पूर्णिमा के पवित्र दिन की स्मृति मे धर्मवीर लोका-शाह की धर्म क्रान्ति का ऐतिहासिक परिचय यो कुल ३० प्रवचन अनेक दृष्टियो से पठनीय एव मननीय है।

इन प्रवचनो मे श्रद्धेय गुरुदेव का ओजस्वी निर्भीक व्यक्तित्व पद-पद पर झलकता दिखाई देता। स्पष्ट भाषा मे सत्य को उजागर कर समाज की तन्द्रा तोडने वाले श्री मरुधर केसरी जी महाराज साहब के ये प्रवचन मन को तुरन्त प्रभावित कर देते है।

✶

——— ० ० – ——

आशुकविरत्न, प्रवर्तक

श्री मरुधरकेसरी जी महाराज

का

सम्पूर्ण साहित्य प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें—

१. **श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति**
जैन स्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर

२. **पूज्य रघुनाथ जैन पुस्तकालय**
द्वारा तेजराज जी पारसमल जी धोका
पो० सोजतसिटी (राजस्थान)

३. **जैन बुधवीर स्मारक मंडल**
द्वारा शा० हीराचन्द जी भीकमचन्द जी सकलेचा
सुमेर मार्केट के सामने पो० जोधपुर

——— ० ० ———